सामाजिक सामूहिक कार्य

डॉ. प्रयागदीन मिश्र



वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

सामाजिक सामूहिक कार्य

सामाजिक सामूहिक कार्य

प्रो. प्रयागदीन मिश्र
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
समाज कार्य विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

प्रकाशक
डॉ. सुधाकर अदीब
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
लखनऊ

ग्रन्थमाला संख्या - 178

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

ISBN : 978-93-82175-56-8

प्रथम संस्करण : 1977
द्वितीय संस्करण : 1992
तृतीय संस्करण : 2005
चतुर्थ संस्करण : 2008
पंचम संस्करण : 2011
षष्ठम् संस्करण : 2013
सप्तम् संस्करण : 2015

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : ₹ 100=00 (एक सौ मात्र)

मुद्रक
रोहिताश्व प्रिण्टर्स
268, ऐशबाग रोड, लखनऊ
फोन : 2692973

प्रकाशकीय

समय-समय पर हुए अनेकानेक प्रयोगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि मनुष्य की स्वस्थ पहचान समाज में ही विकसित हो सकती है और उससे अलग उसका कोई उल्लेखनीय अस्तित्व नहीं है। वह जो कुछ बनता और बन सकता है, समाज के भीतर ही सम्भव है। सामूहिक जीवन सामाजिक सम्बन्धों का विकास है। इस तरह स्पष्ट है कि विभिन्न सामाजिक सामूहिक कार्यों को समझे बिना आज की प्रगति को नहीं समझा जा सकता। उनकी बनावट, भूमिका, समस्याएँ और उनके उन्मूलन आदि का व्यक्ति के विकासक्रम में असाधारण योगदान है और आज के त्वरित विकास के बीच विभिन्न सामाजिक सामूहिक कार्यों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्यक्ति और समाज के बीच इन अत्यन्त महत्वपूर्ण कारकों का व्यापक अध्ययन वर्तमान की सर्वप्रमुख आवश्यकताओं में एक है। स्व. डॉ. प्रयागदीन मिश्र की चर्चित पुस्तक 'सामाजिक सामूहिक कार्य' इसी दिशा में एक स्तुत्य प्रयास है, जिसका तीन दशकों पूर्व प्रकाशित हुए पहले संस्करण के साथ ही अभूतपूर्व स्वागत होता आया है। तब से अब तक इस पुस्तक के छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अब यह सातवाँ संस्करण आपके हाथों में है।

'सामाजिक सामूहिक कार्य' २० अध्यायों में विभक्त है और इन अध्यायों में विद्वान लेखक ने व्यक्ति व समाज के अंतर्सम्बन्धों में सामाजिक सामूहिक कार्यों की विभिन्न धरातल पर व्यापक पड़ताल की है। पुस्तक का पहला अध्याय सामाजिक सामूहिक कार्यों की विकास यात्रा को शब्द देता है, वहीं दूसरा अध्याय इसके अर्थ एवं परिभाषा को मुखर करता है। तीसरा अध्याय सामाजिक सामूहिक कार्य के विभिन्न क्षेत्रों यथा चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य, श्रम कल्याण और सामाजिक नियोजन आदि पर प्रकाश डालता है। पुस्तक चौथे-पांचवे अध्याय सामाजिक सामूहिक कार्य के उद्देश्यों, दर्शन तथा उदात्त मूल्यों को शब्द देते हैं। इसी तरह छठा-सातवां अध्याय इस क्षेत्र की मूल मान्यताओं और अन्य प्रणालियों के साथ समाज कार्य के सम्बन्धों को समर्पित है।

पुस्तक के कुछ अन्य अध्याय इस क्षेत्र में समूह और सम्बन्धित इकाइयों कार्यकर्ता की भूमिका को अधिक व्यापक स्तर पर स्पष्ट करते हैं और इस तरह विभिन्न सामाजिक संगठनों की भूमिका को सफलतापूर्वक शब्द देते हैं। इसी तरह, नेतृत्व, कार्यक्रम, नियोजन व विकास सरीखे सामान्य से लगते शब्दों की भी यह पुस्तक

परिभाषिक आधार पर गहरी पड़ताल करती है। आज दुनिया की जनसंख्या लगभग साढ़े छः अरब है और इस सन्दर्भ में उसके बेहतर रहन-सहन व भोजन आदि की व्यवस्था महत्वपूर्ण चुनौती है। ऐसे में स्तरीय नियोजन, विकास और इस सबके लिए जरूरी जागरूक व सक्रिय नेतृत्व का महत्व और बढ़ जाता है। पुस्तक में इन सभी से सम्बन्धित मूल्यांकन की आवश्यकता को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, हिन्दी ग्रंथ अकादमी प्रभाग की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत इस गौरव ग्रंथ के प्रस्तुत सातवें संस्करण का प्रकाशन कर गौरवान्वित है। आशा है, 'सामाजिक सामूहिक कार्य' का यह संस्करण भी जागरूक पाठकों के द्वारा हाथों हाथ लिया जाएगा।

डॉ. सुधाकर अदीब
निदेशक

निवेदन

सामाजिक सामूहिक कार्य हमें समाज की उन आधारभूत स्थितियों, सवालों और सरोकारों से सुपरिचित कराते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी प्रायः सामाजिक विकल्प के क्रम में उपेक्षित रहे हैं और जिसका असर सम्पूर्ण समाज के एक बड़े वर्ग – विकास की दौड़ में पिछड़े व्यक्तियों पर पड़ रहा है। जिस प्रकार व्यक्ति विभिन्न प्रकोष्ठों (सेल) का इकाई है, समाज भी इसी तरह कार्य करता है। इनकी अपूर्णता, अवैज्ञानिकता और अपरिपक्वता से व्यक्ति व समाज की समूची पहचान कुप्रभावित होती है।

यह सोचना ही कितना भयावह है कि यदि व्यक्ति का विकासक्रम धीमा रहा होता, तो हम आज कहाँ होते? चुनौतियों के सामने हार न मानने की उसकी जिजीविषा के चलते ही वह अनेकानेक चुनौतियों का सफलतापूर्वक मुकाबला करता आया है। सामाजिक सामूहिक कार्य की प्रेरणा इसी जिजीविषा की और सामाजिक न्याय सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि और अभिव्यक्ति है। सामाजिक सामूहिक कार्य कोई सामान्य घटनाक्रम नहीं है, अपितु निरंतर विकसित, परिमार्जित और सकारात्मक रुझानों से जुड़े रहने का परिणाम है। यह क्रम आज भी निरंतर जारी है। विद्वान लेखक ने इस पुस्तक 'सामाजिक सामूहिक कार्य' में इस क्षेत्र के विविध आयामों को २० अध्यायों में अत्यन्त वैज्ञानिक आधार पर संजोया है। इनसे गुजरते हुये पाठकों के सामने इसकी परम्परा, विकास, वर्तमान ढांचा, उसके विविध क्षेत्र और भविष्य की आवश्यकताओं को स्पष्ट होते देर नहीं लगती।

इस पृष्ठभूमि में हम यह तथ्य कहीं अधिक अच्छी तरह समझ पाते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति और समाज मानो हमारे मानवीय परिवेश के दो छोर हैं, जिनके पारस्परिक सहयोग के बिना हमारी दुनिया की वर्तमान पहचान पूर्णता नहीं पाती। हमारे सामाजिक सामूहिक कार्य इस पूर्ण के लिए अनिवार्य है। इस पर विहंगम दृष्टि डालने और उन्हें अपनाने के लिए आवश्यक नीतियां तय करने में यह पुस्तक 'सामाजिक सामूहिक कार्य' सराहनीय सहयोग करती है। जिज्ञासु और जागरूक पाठक वर्ग इस तथ्य को आत्मसात् भी कर रहा है। पुस्तक का यह सातवाँ संस्करण इसका प्रमाण है। आशा है, इस संस्करण को भी पाठकों के बीच पूर्ववत् आत्मीयता मिलेगी।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

प्राक्कथन

मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। वह जो कुछ बनता है, समाज के कारण ही बनता है और जो कुछ बन सकता है वह भी समाज के द्वारा ही बन सकता है। बाल्यावस्था से ही उसे विभिन्न सामाजिक समूहों में रहना होता है इसलिए उसके उचित समायोजन एवं सरलीकरण के लिए आवश्यक है कि उसमें इनमें रहने के तौर तरीके विकसित हों। विद्वानों ने विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति का समूह से परे कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्तित्व विकास के लिए सामूहिक जीवन सम्बन्धी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि आवश्यक होती है। जहां एक ओर सामूहिक भागीकरण व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है वहीं दूसरी ओर भागीकरण से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य व्यक्तियों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभेदों से निपटने तथा अपने हितों एवं समूह के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजित एवं संचालित करने की योग्यता होनी चाहिये। सामाजिक सामूहिक कार्य द्वारा इन योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास किया जाता है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय संस्करण में सामूहिक कार्य के सभी पक्षों विशेषकर चिकित्सकीय योगदान का विश्लेषण समुचित रूप से किया गया है। पहले संस्करण में सामूहिक कार्य का परिचय से सम्बन्धित अध्यायों का लेखन किया गया था। इस संस्करण में उन अध्यायों में परिवर्तन का निदानात्मक एवं चिकित्सकीय स्वरूप प्रदान किया गया है। कुछ नये अध्याय भी जोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार यह प्रस्तुत संस्करण सामाजिक सामूहिक कार्य का विस्तृत अध्ययन है।

इस पुस्तक की रचना हिन्दी भाषी छात्रों के लिए की गयी है जिससे वे इस विषय का गहन अध्ययन कर सकें। आशा है प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी भाषी प्रदेशों के विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद होगी।

इस पुस्तक के लेखन में सबसे अधिक प्रेरणा एवं बल डॉ. सुरेन्द्र सिंह, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, समाजकार्य, लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त हुआ। हम डॉ. सिंह के अत्यन्त आभारी हैं। समाजकार्य विभाग के सभी प्राध्यापकों ने हर सम्भव सहायता की तथा आवश्यक सुझाव दिये जिसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं। हम अपनी पत्नी डॉ. (श्रीमती) वीना मिश्रा एवं पुत्र प्रगति एवं पीयूष के कृतज्ञ हैं क्योंकि इनके सहयोग एवं मृदु व्यवहार के परिणामस्वरूप वर्तमान पुस्तक का लेखन कार्य सम्भव हो सका।

– प्रो. प्रयाग दीन मिश्र

पंचम संस्करण की प्रस्तावना

मानव का विकास सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होता है। जिस प्रकार का समाज होता है तथा जिस प्रकार का उसका व्यवहार होता है, वह उसी प्रकार बनता है, बढ़ता है तथा उसका विकास होता है। व्यक्ति की मानसिकता ही उसके विकास का कारण होती है।

स्वास्थ्य जीवन का प्रमुख अंग है। इसी पर हमारा जीवन निर्भर है। स्वास्थ्य के कई अंग हैं। सामाजिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य आदि। हमारा जीवन इसी पर निर्भर है। यदि स्वास्थ्य अच्छा होता है तो शरीर के सभी अंग तथा मन सामान्य रूप से कार्य करते रहते हैं।

इस पुस्तक को लिखने का मुख्य उद्देश्य यह है कि किस प्रकार हम अपने को नियंत्रित रखें। इसी प्रकार इसका यह भी उद्देश्य है कि किस प्रकार अपने कार्यों को सुचारू रूप से कर सकें। इसके साथ ही साथ हम सभी अपने कर्तव्यों का पालन उचित प्रकार से कर सकें तथा समाज की सेवा कर सकें, यह भी इसका प्रमुख उद्देश्य है। इस पुस्तक के लिखने में अनेक व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं उन सभी का आभारी हूँ लेकिन विशेष रूप से पत्नी डॉ. बीना मिश्रा, पुत्र स्क्वार्डन लीडर, पी.पी. मिश्र, बहू अमिता मिश्रा, पौत्री परी तथा पुत्र पीयूष मिश्र ने इस कार्य में विशेष योगदान दिया है। मैं उनको धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ तथा उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ. पी.डी. मिश्र

विषय सूची

●

अध्याय 1

सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास

सामाजिक सामूहिक कार्य समाजकार्य की एक प्रणाली है, जिसका उद्देश्य व्यक्तियों को मनोरंजन प्रदान करना तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और सामन्जस्य सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करके विकास एवं उन्नति करना है। दुनियाँ में इस प्रकार के कार्य बहुत दिनों से होते चले आये हैं। परन्तु व्यावसायिक समाजकार्य के रूप में सामूहिक समाजकार्य का विकास अधिक समय पहले नहीं हुआ। इसका स्वरूप पहले दान पद्धति थी, जिसके द्वारा व्यक्तियों व समूहों की सहायता की जाती थी। इस प्रकार के कार्यों का आधार धर्म था। इसके साथ ही साथ दूसरों की सहायता करने की मौलिक प्रकृति ने इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कार्य की भावना तथा सहायता की मौलिक प्रकृति के साथ पुरोहित लोग असहायों, विधवाओं, अनाथों तथा रोगग्रस्त लोगों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए आगे आये। धार्मिक निष्ठा से परोपकार तथा दानशीलता को अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। सभी प्राचीन धर्मों में हम इसी उद्देश्य को निहित पाते हैं: वेदान्तवाद तथा हिन्दू दर्शन में, असीरिया, बेबीलोनिया, मिस्र की धार्मिक संहिताओं में, यूनान तथा रोम की प्रथाओं में, विशेषकर यहूदी तथा ईसाई धार्मिक उपदेशों में इसी मूल उद्देश्य के दर्शन होते हैं।[1] ईश्वर की कृपा प्राप्त करने और पारलौकिक जीवन के लिए पुण्य कार्यों के फलों को प्राप्त करने की इच्छा से दानशीलता को प्रारम्भिक रूप में प्रोत्साहन मिला लेकिन निर्बलों के प्रति मानव की स्वाभाविक दयालुता ने ही कल्याण सम्बन्धी कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया। गरीबों एवं असहायों की कठिनाइयों को दूर करना तथा अन्य समस्याओं का समाधान करना ईसाइयों का आवश्यक कर्तव्य माना जाने लगा। इसराइल के पैगम्बरों तथा ईसाई धार्मिक संस्थाओं में सेन्ट पाल, सेंट अगस्टीन, सेन्ट फ्रान्सिस, सेन्ट थामस आदि के उपदेशों के फलस्वरूप एक ओर दान प्राप्त करने वालों को धार्मिक सम्मान प्राप्त हुआ तथा दूसरी ओर दानी को अपने दान से महानता मिली। प्रारम्भ में क्लेश, दुःख, गरीबी तथा अन्य समस्याओं के लिए ईसाई लोग एक

---

1. **Friedlander, W. A.: Introduction to Social Welfare, Prentice-Hall, Inc., NewYork, 1955, p. 7.**

दूसरे की सहायता करते थे परन्तु मध्यकाल में यह कार्य पादरी करने लगे। वृद्धों, गरीबों तथा रोगियों के लिए आश्रमों एवं संस्थाओं की स्थापना की गयी। गाई डी मान्टेपेलियर्स (Guy De Montepelliers) द्वारा स्थापित हास्पिटलर्स तथा सेन्ट फ्रान्सिस डी एसोसी (Saint Francis de Assisi) द्वारा स्थापित फ्रान्सिसिकन्स (Franciscans) ने निर्धनों, अपाहिजों, पीड़ितों की सहायता, चिकित्सा तथा आश्रय देने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रारम्भ की। मठ, विहार तथा आश्रम जहाँ पर दान देने की व्यवस्था थी, के अस्पताल बन गये। ये स्थान बीमार, वृद्ध, अनाथ, त्याज्य बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों की सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध करते थे। लेकिन दान प्रकृति के कारण भिक्षावृत्ति सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया क्योंकि भिक्षा माँगना केवल जीवनयापन का साधन ही नहीं था बल्कि इसका समाज में सम्मान भी था।

सोलहवीं शताब्दी के सुधार काल में भिक्षावृत्ति को रोकने का प्रयास किया गया। जर्मनी में मार्टिन लूथर (Martin Luther) ने जर्मन राष्ट्र के कुलीन ईसाई लोगों से अपील की कि वे भिक्षावृति को रोकें और सभी पैरिशों में 'सामान्य दान पेटियों' (Common chests) की स्थापना करें। सन् 1525 ई० में ज्यूरिख तथा स्विट्जरलैण्ड में अलरिक ज्वीगली ने सहायता के लिए प्रभावकारी योजना प्रस्तुत की। परन्तु अनेक योजनाओं तथा प्रयत्नों के बावजूद असहाय परिवारों की सामाजिक दशाओं को सुधारने में पर्याप्त सफलता नहीं प्राप्त हुई। 16वीं शताब्दी में स्पेन के दार्शनिक जुआन लूइस बाइवेज (Juan Luis Vives) ने पहली बार यह मत प्रकट किया कि निर्धन व्यक्तियों की परिस्थितियों की ओर ध्यान देना चाहिये। यह विचार वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित था। उनका सुझाव था कि पूरे नगर को छोटे-छोटे भागों में बाँटा जाय, प्रत्येक भाग को दो सिनेटर्स और एक मंत्री उनकी सहायता के लिए दिया जाये जिससे वह उस क्षेत्र के प्रत्येक निर्धन परिवार की छानबीन करे और उसे परम्परागत दान के वितरण के स्थान पर व्यावसायिक प्रशिक्षण, नौकरी तथा पुनर्वास द्वारा सहायता दी जाये। वृद्ध तथा अयोग्य व्यक्तियों को भिक्षागृह में रखने का सुझाव दिया। इनकी विधियों का उपयोग सन् 1788 में हैम्बर्ग (Hamberg) में शुरू हुआ।

सन् 1990 में म्यूनिख में इसी प्रकार का कार्य प्रारम्भ हुआ। बवोरियन (Bavarian) ने एक सैनिक कर्मशाला की स्थापना की, जिसमें उन समर्थ भिक्षुकों को इस कर्मशाला में भर्ती किया गया। सन् 1853 में एल्वरफेल्ड शहर में भी इसी प्रकार की योजना चलायी गयी। इन समितियों के कार्यकर्ता उन्हीं क्वार्टरों

में रहते थे, जिनमें गरीब तथा असहाय रहते थे। वे उनकी स्थितियों का अवलोकन करते थे तथा सामाजिक व आर्थिक सहायता प्रदान करते थे।

फ्रान्स के श्रेष्ठ समाज सुधारक फादर विन्सेन्ट डी पाल (Father vincent de paul) ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने सन् 1633 में 'भिक्षा की लड़कियों' (Daughters for charity) का सामान्य ढंग का संगठन बनाया, जिसके अन्तर्गत किसानों की साधारण महिलायें सम्मिलित थीं, जो भिक्षा का कार्य करती थीं तथा साथ ही साथ गरीबों की सेवा करती थीं। उन्होंने राज दरबार की महिलाओं को भी इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया कि वे व्यक्तिगत रूप से अनाथों और बीमारों की सेवा करें। भिक्षा की महिलायें (Ladies for Charity) संगठन का गठन किया जो निर्धन परिवारों में खाद्य पदार्थ तथा वस्त्रों का वितरण करती थी। इन दोनों संगठनों ने महत्वपूर्ण कार्य किया तथा यही कार्यकर्ता आगे सामाजिक कार्यकर्ताओं की अग्रणी बनीं। फादर विन्सेन्ट के विचारों ने लोगों पर बहुत प्रभाव डाला और उससे प्रभावित होना फ्रांस में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी निर्धनों की सहायता कार्यक्रम को वैज्ञानिक मोड़ मिला।

(I) इंग्लैण्ड में सामूहिक कार्य का विकास :

इंग्लैण्ड में सामूहिक समाजकार्य के इतिहास को निम्न स्तरों में प्रदर्शित कर सकते हैं :

1. जरूरतमंदों की सहायता
2. सामुदायिक सेवायें
3. श्रम कल्याण
4. सुधारात्मक सेवायें

(i) **जरूरतमंदों की सहायता :** चौदहवीं शताब्दी तक गरीबों, अपंगों, अशक्तों तथा अपाहिजों को भिक्षा देना पुण्य कार्य समझा जाता था। चर्च का प्रमुख कार्य गरीबों को दान देना तथा उनकी सहायता करना था। चर्चा धार्मिक तथा दान वाली संस्था के रूप में कार्य करती थी। यद्यपि चर्च ने काफी प्रयत्न किया कि गरीबों की दशा में सुधार हो लेकिन कोई स्थायी योजना नहीं चलायी गयी, जिससे गरीबों के भाग्य को बदला जा सके। सन् 1349 में किंग इडवार्ड III ने यह आदेश दिया कि प्रत्येक पुष्ट शरीर वाला व्यक्ति कोई न कोई कार्य अवश्य करे। यह प्रथम प्रयास था जिसमें गरीबी के लिए व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया गया तथा सक्षम को काम करने के लिए बाध्य किया गया। सन् 1531 में हेनरी नियमावली ने भिक्षा माँगने वालों के लिए पंजीकरण आवश्यक कर दिया। इस

4 : सामाजिक सामूहिक कार्य

कानून के अन्तर्गत महापालिका अध्यक्ष तथा न्यायाधीशों के लिए यह आदेश हुआ कि वे वृद्ध और ऐसे निर्धनों के प्रार्थना-पत्र की जाँच करें जो काम करने में असमर्थ थे। यह ऐसा पहला अधिनियम था, जिसके द्वारा निर्धनों के प्रति जिम्मेदारी का आभास हुआ। हेनरी VIII द्वारा चर्च की सम्पत्ति जब्त कर लेने के कारण यह आवश्यक हो गया कि गरीबों की सहायता अन्य प्रकार से की जाय। सन् 1536 में गरीबों की सहायता के लिए सरकारी योजना बनायी गयी, जिसमें यह नियम बनाया गया कि निर्धनों का उनकी पैरिशों में पंजीकरण हो लेकिन वे वहाँ 3 वर्ष से रह रहे हों। पुष्ट शरीर वाले भिक्षुकों को काम करने के लिए बाध्य किया गया तथा निकम्में बच्चों को जो 5 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बीच के थे, उनके माता-पिता से लेकर मास्टरों को प्रशिक्षण हेतु दे दिया गया। सन् 1572 में एलिजाबेथ क्वीन ने गरीबों को सहायता देने के लिए एक सामान्य कर लगा दिया। साथ ही साथ नया कानून पालन करवाने हेतु ओवरसियर्स नियुक्त किये। यह भी कहा गया कि सरकार ऐसे व्यक्तियों को आश्रय प्रदान करेगी, जो स्वयं अपनी सहायता करने में असमर्थ होंगे। सन् 1576 में सुधार गृह (House of corrections) बनाये गये, जहाँ पर पुष्ट शरीर वाले व्यक्तियों, विशेषकर युवकों को काम करने के लिए बाध्य किया जाता था।

धनहीनों के लिए 1601 में कानून बना जो '43 एलिजाबेथ' के नाम से जाना जाता था। इस कानून द्वारा साधन विहीनों को 3 वर्गों में विभाजित किया गया।

1. **पुष्ट शरीर वाले निर्धन** (Able-bodied poor) : ऐसे लोगों से सुधार-गृह अथवा कार्यशाला में काम लिया जाता था। नागरिक इनको भिक्षा नहीं दे सकते थे। जो ऐसा भिक्षुक काम करने से इन्कार कर देता था उसे कारागार में डाल देते थे।

2. **शक्ति-विहीन निर्धन** (Impotent poor) : ये लोग काम करने में असमर्थ थे। इस श्रेणी में रोगी, वृद्ध, अंधे, बहरे, गूँगे, लँगड़े, पागल और वे मातायें जिनके पास छोटे-छोटे बच्चे थे, माने जाते थे। ये निर्धन यदि अपने घरों में रहना चाहते थे तो बाह्य सहायता का प्रबन्ध किया जाता था जो सामान्यतः खाना, कपड़ा, ईंधन आदि के रूप में होता था।

3. **आश्रित बच्चे** (Dependent Children) : ये अनाथ पितृहीन तथा ऐसे बच्चे होते थे जिनको उनके माता-पिता ने त्याग दिया अथवा वे इतने गरीब थे कि उनकी सहायता नहीं कर सकते थे। ऐसे बच्चे उन नागरिकों को दे दिये जाते थे जो उनको रखना चाहते थे।

1601 का कानून अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसने सरकार के लिए एक उत्तरदायित्व सौंप दिया कि उन लोगों की सहायता करना सरकार का उत्तरदायित्व है, जो स्वयं अपनी सहायता नहीं कर सकते थे।[2]

सन् 1662 में सेटेल्मेंट कानून (Law of Settlement) बनाया गया। इसके अनुसार शान्ति के न्यायाधीशों (Justices of Peace) को अधिकार दिया गया कि आगन्तुकों के विषय में 40 दिन के अन्दर अथवा तथ्यों की खोज करें। किसी प्रकार की अनियमितता ज्ञात होने पर वे न्यायाधीशों से आगन्तुक के निष्कासन की प्रार्थना कर सकते थे। सन् 1795 में 1662 के कानून का पुनः संशोधन किया गया। इस कानून के अन्तर्गत यह व्यवस्था रखी गयी कि आगन्तुक को अपने प्राचीन निवास जाने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक कि वह किसी विशेष सहायता के लिए प्रार्थना-पत्र न दे। सन् 1696 में कर्मशाला कानून के बन जाने के बाद ब्रिस्टल एवं अन्य शहरों के कार्यशालाओं ने वहाँ के निवासी—प्रौढ़ों एवं बच्चों को कताई, बुनाई, सन से बने वस्त्र की बुनाई, गोटर किनारी की कला एवं जाली तथा पालों (Sails) के उत्पादन की शिक्षा तथा प्रशिक्षण देना प्रारम्भ किया। सन् 1767 में 6 वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों को कार्यगृहों से हटा देने और उन्हें पोषक परिवारों में रखने की व्यवस्था की गयी। सन् 1795 में स्पीनहम लैण्ड कानून बनाया गया, जिसके अन्तर्गत परिवारों की इकाइयों के अनुसार या तो उनकी उपजीविका अथवा उनकी कम मजदूरी की पूर्ति के लिए सहायता सुविधायें निर्धनों के घर पर ही पहुँचायी जायँ। इस प्रकार वृद्ध, व्याधिग्रस्त तथा अपंगों के लिए बाह्य सहायता का सूत्रपात हुआ।

सन् 1832 में निर्धन कानूनों के प्रशासन तथा व्यावहारिक कार्यविधि सम्बन्धी जाँच करने के लिए एक राजकीय आयोग बनाया गया। इस आयोग के एडविन चड्विक सचिव थे। इस आयोग ने निम्न सिफारिशें कीं :

(1) स्पीनहम लैण्ड तरीके के अन्तर्गत दी जाने वाली "आंशिक सहायता" को समाप्त किया जाय।
(2) सहायता चाहने वाले सभी समर्थ प्रार्थियों को कार्यगृहों में रखा जाय।
(3) केवल रोगी, वृद्ध, अशक्त एवं नवजात शिशुओं सहित विधवाओं को ही 'बाह्य सहायता' दी जाय।

---

2. Schweinitz, Karlde : England's Road to Social Security, University of Pennsilvania Press, Philadelphia, 1943, p. 29.

(4) विभिन्न पैरिशों के सहायता सम्बन्धी प्रशासन का एक 'निर्धन कानून संघ' के रूप में समन्वय हो।

(5) निर्धन सहायता प्राप्त करने वालों की स्थिति समुदाय में निम्न वेतन पाने वाले मजदूरों की तुलना में कम हो।

(6) नियंत्रण के लिए एक केन्द्रीय परिषद् की स्थापना की जाय।

इन्हीं सिफारिशों के आधार पर सन् 1834 में नवीन निर्धन कानून (The New Poor Law) पास किया गया। साथ ही साथ निर्धन संघों का संगठन किया गया। एक समान निर्धन कानून नीति विकसित करने के लिए एक स्थायी शाही निर्धन-कानून आयोग (Permanent Royal Poor Law Commission) की स्थापना की गयी। लेकिन सन् 1834 के नवीन निर्धन कानून से भी आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई। सन् 1847 में निर्धन कानून कमीशन के स्थान पर निर्धन कानून बोर्ड गठित किया गया, जिसका कार्य निर्धनता के कारणों तथा सामाजिक सुधार के प्रभावशाली साधनों के लिए किये गये अन्वेषणों का निरीक्षण करना था।

यद्यपि व्यवसाय के रूप में सामूहिक कार्य का इतिहास 20वीं शताब्दी से ही प्रारम्भ होता है परन्तु इसके सिद्धान्तों, निपुणताओं तथा व्यावहारिक दक्षताओं का उपयोग बहुत पहले से होता चला आ रहा है। मोनजिइयोर जौरडेन Monsieur Jourdain) ने अपने अनुभव स्पष्ट करते हुये कहा कि वह इंग्लैंड में बहुत वर्षों से ऐसा कार्य करते चले आ रहे हैं जिसे अब सामूहिक कार्य कहा जाने लगा है।[3] सामूहिक कार्य के विकास में सबसे अधिक भूमिका दान संगठन समिति (Charity Organization Society) ने निभायी। सन् 1869 में हेनरी सोली (Henry Solly) ने वैयक्तिक एवं सार्वजनिक परोपकारी समितियों की कार्यविधियों के बीच समन्वय करने के लिए परोपकारी कल्याण संगठन एवं भिक्षावृत्ति उन्मूलन समिति की नींव डाली जिसे बाद में दान संगठन समिति (Charity Organisation Society) के नाम से जाना जाने लगा।[4] समिति

3. Report of the Association of (English) Social Workers of a conference on the Social worker and the Group Approach, May 1954, p. 24.

4. Transactions of the National Association for the Prevention of Social Sciences (1874), Paper read by M. Bosanquet, p. 898. Quoted by Cohen, E. W. : English Social Services, Allen and Unwin Ltd., London, 1949, p. 135.

ने यह स्वीकार किया कि व्यक्ति अपनी निर्धनता के लिए स्वयं जिम्मेदार है। सार्वजनिक कल्याण को सहायता प्राप्ति से निर्धनों को आत्म सम्मान की भावना का विनाश होता है क्योंकि इससे आश्रित रहने का प्रलोभन प्राप्त होता है। समिति ने दान के कार्यों तथा निर्धन कानून के कार्यों में अन्तर स्पष्ट किया। दान का कार्य निराजयता को रोकना है तथा निर्धन कानून का कार्य निराश्रयता को दूर करना है।[5] समिति का विचार था कि सभी निर्धनों को उनके निर्वाह के लिए पहले अपनी स्वयं की सभी सम्भव क्षमताओं को काम में लाने को कहा जाय। इस कार्य के लिए समिति ने एक जाँच विभाग की स्थापना की, जो निर्धन कानून संरक्षकों, उपकारी समितियों तथा व्यक्तिगत मानव प्रेमियों को सहायता चाहने वाले प्राथियों के सम्बन्ध में जानकारी देते थे।

दान संगठन समिति के दो मुख्य कार्य थे : व्यक्ति का वैयक्तीकरण तथा वैयक्तिक समाज कार्य का उपयोग, दूसरे व्यक्ति का समाजीकरण तथा सामूहिक संस्थाओं तथा सामुदायिक संगठन का उपयोग।[6] उस समय के सामाजिक दर्शन के अनुसार निर्धनता का कारण चरित्र दोष है अतः सामाजिक व्यवस्था को अवश्य प्रभावित करना होगा। लेकिन यह कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब सम्बन्ध का उपयोग इस निपुणता के साथ किया जाय कि व्यक्ति को स्वयं समझ आये तथा परिवर्तन करने की इच्छा जागृत हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मित्र अभ्यागत (Friendly visiters) की व्यवस्था की गयी थी। ओक्टाविया हिल का विचार था कि मेरी आशा व्यवस्थाओं पर योजनाओं का दशाओं में परिवर्तन करने की नहीं है।[7] परेशानियों का उन्मूलन व्यवस्थित ढंग से समिति द्वारा किया जायेगा लेकिन मैं इस बात से सन्तुष्ट हूँ कि बिना वैयक्तिक प्रभाव के उन लोगों का आमूल उपचार नहीं किया जा सकता है, जो निम्न स्तर में पहुँच गये हैं।[8]

---

5. On the Best Means of dealing with Exceptional Distress. Report of a Special Committee of the Charity Organisation Society, 1859, p. x.
6. Woodroofe, Kathlen : From Charity to Social Work, Routledge & Kegen Paul Ltd., London, 1962, p. 57.
7. Our Dealings with the poor : *The Nineteenth Century*, Vol. xxx, No. 174, 1891, p. 169.
8. An Address to the Social Science Association 1869, Printed in Henrietta, G. Barnett, Cannon Barnett : His life, work and friends, 1919, 1, p. 29.

समिति का यह दृढ़ विश्वास था कि निर्धनता का उत्तरदायित्व सामाजिक व्यवस्था पर है। इसीलिए सी० एस० लोच (C. S. Loch) ने बूथ (Booth) की वृद्धावस्था पेंशन 5 शिलिंग प्रति सप्ताह का विरोध किया। उन्होंने अपना मत प्रकट किया कि जिन्हें यह पेंशन मिलेगी वे शीघ्र ही और अनिर्धन हो जायेंगे।[9]

दान संगठन समिति के 'मित्र अभ्यागत' तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के विचारों में भी यही आया कि इस समस्या का समाधान क्रमागत होना चाहिये। एच० डेन्डी (H. Dendy) ने इस बात पर बल दिया कि सेवार्थियों का विगत इतिहास तथा उन सामाजिक कारणों का जानना अत्यन्त आवश्यक है जो सेवार्थी के व्यवहार पर प्रकाश डालते हैं। मानव को एक साधारण इकाई की भाँति नहीं समझा जा सकता है। वह अपने स्वभाव तथा पर्यावरण एवं समुदाय, जिसका वह अंश है, के अनुकूल ही प्रतिक्रिया करता है।[10]

प्रथम वार्षिक रिपोर्ट में यह कहा गया कि जिला कमेटियों को यह अनुभव हुआ कि स्वच्छता में सुधार, शिक्षा, प्रोवीडेन्ट सोसाइटीज तथा निर्धनों के लिए आवास दशाओं में सुधार तथा अन्य कारकों पर ध्यान देना परम आवश्यक है।[11] इस अनुभव के आधार पर दान संगठन समिति ने वैयक्तिक सेवा कार्य के साथ ही साथ सामाजिक दशाओं के सुधारने का आन्दोलन चलाया।[12]

कैनन बारनेट (Canon Barnet) ने सन् 1873 में लंदन में निर्धनों के बीच रहकर यह अनुभव किया कि जीवन की निर्धनता को तभी दूर किया जा

9. Pauperism and Old Age pensions : A Paper read at the Poor Law Conference for the South Wales District, May 1892.

10. Human being can not be treated as single Units',····the man with his character such as his temperament and surroundings have made *it*, can only act within a limits of the community of which he is a fraction''.

"Through charity." A Paper read at the first Meeting of charity organization conference, London, 15 May 1893, p. 4.

11. Bosanquet, H. : Social Work in London : 1869 to 1912.

12. History of the Community Organization Society (1914), pp. 28-29 quoted by Woodroofe, Kathlen, op. cit, p. 60.

सकता है जब जीवन की उच्च सुविधायें रखने वाले लोगों से इसका सम्पर्क हो।[13] उन्होंने ह्वाइट चैपेल के निवासियों का अध्ययन किया और पाया कि उनमें से अधिकांश बेकार, अपाहिज तथा रोगी हैं। वे दुर्गन्धयुक्त मकानों में रहते हैं तथा उनकी बहुत ही निम्न दशा है।

लैम्बर्ट (Lambert) का विश्वास था कि जो मानसिक भेद अथवा घृणा निर्धनों एवं सम्पन्न लोगों के बीच उत्पन्न हो गयी है, तब तक दूर नहीं की जा सकती है जब तक शिक्षित तथा सम्पन्न लोग निर्धनों के बीच नहीं जायेंगे तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता नहीं करेंगे।[14] इसी अनुभवों के आधार पर बारनेट ने ह्राइट चैपेल में विश्व का प्रथम व्यवस्था गृह (Settlement House) बनाया। इस व्यवस्था गृह के 3 मुख्य उद्देश्य थे :

1. निर्धनों का शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विकास करना,
2. निर्धनों की दशाओं एवं सामाजिक सुधार की अत्यन्त आवश्यकता के सम्बन्ध में छात्रों का व्यवस्था गृह के अन्य निवासियों को जानकारी देना,
3. सामाजिक तथा स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण और सामाजिक विधि निर्माण में व्यापक हितों की सामान्य जागृति उत्पन्न करना। इसका उद्देश्य पढ़ाने के अतिरिक्त सांस्कृतिक प्रभाव भी डालना था। अतः भाषण तथा वाद-विवाद गोष्ठियों का आयोजन भी किया जाता था।

व्यवस्था गृहों का एकमात्र उद्देश्य धनवानों तथा निर्धनों के बीच मधुर व आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करना था।

कैनन बारनेट ने अनुभव किया कि व्यक्ति की शक्ति को अधिक शक्तिशालो समूह में ही बनाया जा सकता है। जहाँ पर समान लक्ष्य, उद्देश्य के प्रति चेतनता उत्पन्न करता है, जहाँ मित्रता आराम देती है और संख्या सहयोग करने के लिए बाध्य करतो है।[15] व्यवस्था गृहों की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है।

---

13. Cannan Barnet : His life, work and Friends : quoted by Woodroofe, K., op cit., p. 67.
14. Lambert, Brooke, "The outcaste Poor" : Esauds cry. The Contemporary review, XI-VI, Sept. 1884, pp. 373–82.
15. He realized that this aim to make stronger a person's strength could often be better achieved within a group where the pursuit of a common goal created a sense of purpose, where followship spelt comfort, and numbers imposed the discipline of cooperation."

    Woodroofe, K. : op. cit, p. 72.

इसने न केवल सामाजिक सुधार को जन्म दिया है अपितु सामूहिक समाजकार्य के सिद्धान्त व व्यवहार का प्रतिपादन किया है। विशेषरूप से ट्वायनबी हाल (Toynbee Hall) ने सामूहिक समाजकार्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। व्यवस्था गृह के वार्डेन की योग्यता ग्रुप वर्कर की ही योग्यता थी। वह सामूहिक समाजकार्य की विधियों, तकनीकियों तथा कौशल का प्रयोग करता था। ट्वायनबी हाल में जो भी कक्षायें चलती थीं, उनमें समूह कार्य पर लेख भी लिखवाये जाते थे।

(ii) सामुदायिक सेवाएँ :

दान संगठन समिति ने आवासीय सुधार पर ध्यान दिया। स्वच्छता सहायक कमेटी (Sanatory Aid Committee) बनायी गयी, जिसके द्वारा रोगों को रोकने का प्रबन्ध किया गया। 500 से अधिक स्वास्थ्य अभ्यागतों (Health Visiters) की नियुक्ति की गयी। सन् 1886 में बीमार तथा अपंग बच्चों के लिए अपंग बालकों का सहायता संघ (Invalid Children's Aid Association) बनाया गया। कुछ ही दिनों बाद विद्यालय बच्चे देखभाल कमेटी (School Children's Care Committee) तथा क्षय रोगियों के लिए डिस्पेन्सरी खोली गयी। दान संगठन समिति ने अंधों तथा मानसिक विकृत व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी कार्य किया। सन् 1895 में मिस स्टेवार्ट (Stewart) को रॉयल फ्री हॉस्पिटल (Royal Free Hospital) में अलमोनर (Almoner) के रूप में नियुक्त किया गया। इसी व्यवस्था ने चिकित्सकीय सामाजिक कार्य को जन्म दिया।[16]

सन् 1906 में भोजन का प्रावधान अधिनियम (The Provision of Meals Act) पास किया गया। इसके द्वारा विद्यालय में निःशुल्क स्वल्पाहार की सुविधा प्रदान की गयी।

सन् 1842 में औद्योगिक वर्गों की आवास व्यवस्था में सुधार लाने के लिए नगर-क्षेत्र संघ, लंदन में स्थापित किया गया। चार्ल्स डिकेन्स के लेखों से प्रभावित होकर आम जनता की रुचि आवास सुधार की ओर आकृष्ट हुई। सन् 1864 में ओक्टाविया हिल ने लंदन में गन्दी बस्तियों के पुनर्निर्माण की मानवतावादी योजना को प्रारम्भ किया। इस योजना के अन्तर्गत उन्होंने स्वयंसेवकों के रूप में कई महिलाओं को भर्ती किया जो किरायेदारों से किराया इकट्ठा किया करती थीं, साथ ही साथ वे परिवारों को आर्थिक गृह प्रबन्ध तथा खाली समय के उपयोग के लिए परामर्श देती थीं।

---

16. Ibid. p. 61.

सन् 1865 में 'कामन्स समाज' की स्थापना की गयी। इस समाज ने लंदन के विभिन्न क्षेत्रों में मनोविनोद सुविधाओं, पार्कों तथा उद्यानों की व्यवस्था की।[17]

सन् 1844 में चार्टिस्टों ने रोचडेल में सबसे पहला सहकारी भंडार खोला, जिसके मालिक स्वयं श्रमिक ही थे। सहकारी उपभोक्ता भंडारों का प्रारंभ कर मानवतावादी राबर्ट ओवेन (Robert Owen) ने अपने कपड़े की मिलों में एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने एक आदर्श औद्योगिक समुदाय की स्थापना की, जहाँ पर कम कीमत वाटिकाओं, स्वच्छता एवं क्रीड़ास्थलों से सुसज्जित स्वास्थ्यप्रद आवास सुविधाओं, मजदूरों तथा उनके परिवारों के लिए पुस्तकालय एवं मनोविनोद की सुविधाओं की व्यवस्था की थी।

(iii) श्रमकल्याण :

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व जमींदारों, उत्पादकों तथा व्यापारियों द्वारा श्रमिक वर्ग का दमन तथा शोषण किया जाता था। सन् 1802 में स्वास्थ्य एवं सदाचार कानून (Health and Morals Act) बनाया गया। इस कानून के अनुसार अकिंचन भिक्षुकों व प्रशिक्षार्थियों के काम करने के लिए 6 बजे प्रातः से 9 बजे रात के बीच दिन भर में 12 घण्टे निश्चित कर दिये गये। साथ ही साथ बच्चों से रात में काम लेना मना कर दिया गया। सन् 1833 में कारखाना अधिनियम (Factory Act) पास किया गया, जिसमें कपड़े के कारखानों में 9 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को काम करना वर्जित कर दिया। 13 वर्ष तक के बच्चों के लिए काम करने का समय 9 घण्टे तथा सप्ताह में 48 घण्टे सीमित कर दिया। केन्द्रीय तथा राष्ट्रीय कार्यालय के अन्तर्गत कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति भी प्रारम्भ हो गयी। सन् 1847 के कारखाना अधिनियम सुधार ने औरतों तथा 18 वर्ष से कम बच्चों के लिए प्रतिदिन अधिक से अधिक काम करने के 10 घण्टे का आदेश जारी किया गया। स्वच्छता, कम किराये वाली आवास योजना तथा बच्चों के लिए सामान्य शिक्षा की व्यवस्था द्वारा स्वास्थ्य रक्षा का प्रयास भी किया गया।

(iv) सुधारात्मक कार्य :

श्रीमती एलिजाबेथ फ्राई (Fry) जेल सुधार प्रयासों की श्रेणी में एक महत्वपूर्ण महिला थीं, जिन्होंने जेल के अन्दर ही बच्चों के लिए एक विद्यालय की

17. Bevridge, Lord William : Voluntary Action, G. Allen, London, 1948, p. 133.

शुरुआत कराने में सफलता प्राप्त की और अपराधी औरतों में से ही एक अध्यापिका को नियुक्त किया गया। प्रौढ़ महिलाओं के लिए कढ़ाई एक गोटा किनारी बुनाई का काम शुरू किया। सन् 1912 में बाल अधिनियम (Children's Act) पास हुआ, जिसके अन्तर्गत बाल अपराधियों के सुधार के उद्देश्य से उनके प्रोवेशन सेवाओं का प्रावधान किया गया। सन् 1950 में दूसरा बाल अधिनियम पास किया गया, जिसके अन्तर्गत काउन्टीकौशिल तथा बाल कमेटियाँ बनायी गयीं जिसे बालकों से सम्बन्धित देखभाल करने का उत्तरदायित्व दिया गया।

सन् 1844 में जार्ज विलियम्स नामक वस्त्र विक्रेता ने युवकों तथा युवतियों को ईसाई जीवन पद्धति पर चलने की प्रेरणा दी और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए युवक पुरुष ईसाई संघ (Young Men Christian Association Y. M. C. A.) की स्थापना की। सन् 1860 में एक चर्च महिला समूह 'डैश अके क्लब' की स्थापना कनेक्टीकट में की गयी। इस क्लब में बालकों के लिए खेलकूद, संगीत, नृत्य, नाटकीय क्रियाओं तथा मनोविनोद का पूरा प्रबन्ध था। यह क्लब बच्चों को भाग लेने का समान अवसर प्रदान करता था।

(v) सामूहिक कार्य की स्थिति :

उन्नीसवीं शताब्दी में सामूहिक कार्य उद्देश्य प्रारूप पर आधारित था। अर्थात् इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक चेतना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास करना था[18]। सन् 1920 के बाद इसका उपयोग व्यक्ति में परिवर्तन तथा विकास के लिये किया जाने लगा, जिससे सामूहिक चिकित्सा पद्धतियों का विकास हुआ।[19]

इंग्लैण्ड में सामूहिक कार्य का विकास अमरीका से बाद में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के समय पहली बार शिक्षा मंत्रालय द्वारा युवा सेवाओं के रूप में सामूहिक कार्य को मान्यता प्राप्त हुई जिसके द्वारा खाली समय की सेवायें तथा अनौपचारिक शिक्षा देने का काम प्रारम्भ हुआ। युवाओं के प्रशिक्षण में सामूहिक

---

18. Mitchell J., Ginsberg & Jack R. Goldberg : The impact of the current Scheme on Group work policy and practice. "Summary Presentation : Group work Sections 'Meetings', 1961-62, p. 30.
19. Specht, H. and Vickory, A. : Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1978, P. 152.

कार्य का ज्ञान कराया जाने लगा। लेकिन जैसा कि एलबेमारले रिपोर्ट (Albemarle Report) का कहना है कि सन् 1960 तक सामूहिक कार्य विषय की शिक्षा अपर्याप्त थी। लेकिन उसके बाद सभी समाज कार्य के विद्यालयों में इसक शिक्षा दी जाने लगी।

अमरीका में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास

इंग्लैण्ड के एलिजाबेथ कानून (Elizabethan Poor Law) के आधार पर ही अमरीका में भी ओवरसियरों तथा सुपरवाइजरों की नियुक्ति सन् 1961 में पैरिशों अथवा टाउनशिप के लिए की गयी। ये लोग वहाँ के निवासियों से निर्धनता कर (Poor Tax) वसूल करते थे तथा सहायता के लिए आवेदन पत्र देने वालों की जाँच-पड़ताल करते थे। निर्धन सहायता दो प्रकार से की जाती थी :

1. निर्धनों के घर पर ही 'वाह्य सहायता' वस्तुओं के रूप में जैसे भोजन, वस्त्र, ईंधन आदि।
2. उनके भरण-पोषण के लिए विक्रय। सशक्त व्यक्तियों के भरण-पोषण के लिए खेती के कार्य के लिए उन्हें बेच दिया जाता था। विधवाओं, अशक्त एवं वृद्ध निर्धनों को विशेष प्रकार की व्यवस्था से बेचा जाता था। उन्हें एक बार में अधिक दिनों तक नहीं रखा जाता था।

अशक्त निर्धनों के लिए पहला भिक्षा गृह (Alm House) सन् 1657 में रेने सेलयर्सवाइक (Renesselaerswyck) न्यूयार्क में स्थापित किया गया। सन् 1658 में प्लाईमाउथ कालोनी (Playmouth Colony) में सशक्त निर्धनों के लिए एक कार्यगृह (Workhouse) खोला गया। अन्य नगरों में भी इसी प्रकार के भिक्षागृह तथा कार्यगृह खोले गये। मैसाचूसेट्स के विधान मण्डल ने सन् 1699 में आवारा, भिखारी और अव्यवस्थित लोगों को सुधार गृहों में रहने तथा काम करने से सम्बन्धित कानून बनाया। कनेक्टीकट में काउन्टी जेलों का संगठन सन् 1713 में सुधार गृहों की भाँति किया गया, जहाँ पर कैदियों को काम पर लगाया जाता था। सन् 1773 में फिलेडेल्फिया में सबसे पहला निर्धन फार्म (Poor Farm) बनाया गया।

सन् 1821 में 'मैसाचूसेट्स' के सामान्य न्यायालय ने निर्धन कानूनों के विषय में खोज करने की एक समिति बनायी। इस समिति के अध्यक्ष जोसियाह क्वेन्सी (Josiah Quincy) थे। उन्होंने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये :

1. निर्धन कानूनों में 'बाह्य सहायता' व्यर्थ एवं महँगी थी तथा इससे निर्धनों के नैतिक तत्त्वों को भी ठेस लगती थी।

2. 'अनाथालय' एक प्रकार से कल्याण का सर्वाधिक सस्ता तरीका था क्योंकि एक उद्योग गृह में प्रत्येक निर्धन को उसकी सामर्थ्य देखते हुये काम में लगाया जाता था। इस प्रकार एक समर्थ व्यक्ति अपनी जीविका के लिए तो पैदा कर ही लेता था, साथ ही साथ अशक्त समूह के निर्वाह के लिए भी सहायता करता था।
3. निर्धनों को कृषि कार्य में भी लगाना आवश्यक था।
4. एक नागरिक परिषद द्वारा इन अनाथालयों का निरीक्षण आवश्यक होना चाहिये।
5. असंयम निर्धनता को बहुत ही प्रभावपूर्ण और सार्वभौमिक कारण माना जाना चाहिये।

सन् 1823 में न्यूयार्क में जे० वी० एन० येट्स (J. V. N. Yates) को निर्धन कानून की कार्य प्रणाली और व्यय सम्बन्धी सूचना एकत्र करने का निर्देश दिया गया। येट्स रिपोर्ट में निर्धनों को दो वर्गों में विभक्त किया गया : वे जिन्हें स्थायी सहायता प्राप्त हो रही थी और दूसरे 'अस्थायी निर्धन'। येट्स रिपोर्ट ने निम्न संस्तुति की :

1. प्रत्येक काउन्टी में एक रोजगार गृह (House of Employment) की स्थापना की जाय, जो बच्चों की शिक्षा और कृषि कार्य के लिए भूमि प्रदान करे।
2. सशक्त निर्धनों तथा आवारा लोगों के लिए एक कार्यगृह (सुधार गृह) उपलब्ध किया जाय, जहाँ पर जबरन कठिन कार्य लिया जाय।
3. निर्धन कल्याण के लिए धनराशि प्राप्त करने के उद्देश्य से शराब कारखानों पर उत्पादन कर लगाया जाय।
4. न्यूयार्क के एक काउन्टी में एक वर्ष के निवास से वैधानिक बन्दोबस्त करने का नियम बनाया जाय।
5. निष्कासन आदेशों और निर्धन कानून मुकदमों की अपील करने की व्यवस्था समाप्त की जाय।
6. 18 से 50 वर्ष के बीच की आयु वाले किसी भी हृष्ट-पुष्ट को निर्धनों की श्रेणी की सूची में न रखा जाय।
7. गलियों में भीख माँगने और राज्य के अन्दर शारीरिक रूप से बाधित (destitute) को लाने पर दण्ड दिया जाय।

येट्स की रिपोर्ट के आधार पर मैसाचूसेट्स, न्यूयार्क तथा संघ के कई राज्यों में अनाथालयों और कार्यगृहों की स्थापना की गयी। इस रिपोर्ट के

तुरन्त बाद 1824 में न्यूयार्क ने काउन्टी निर्धन गृह कानून पास किया, जिसके अनुसार अनाथालय का प्रबन्ध कार्य टाउनशिप से काउन्टी को हस्तांतरित कर दिया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में विकलांगों के लिए अनेक राजकीय संस्थाओं की स्थापना हुई जिनमें चिकित्सालयों, पागल आश्रय गृहों व स्कूलों, मानसिक रोगियों के लिए कारागार, सुधार गृहों तथा अपराधी बालकों के लिए सुधार विद्यालय के नाम प्रमुख हैं। इस कारण इनके प्रशासन में एक अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो गयी। अतः सभी राजकीय दान संस्थाओं का निरीक्षण करने के लिए एक केन्द्रीय एजेन्सी बनायी गयी।

सन् 1873 के आर्थिक संकट के समय लन्दन दान संगठन संस्था के कार्य के प्रति जनता ने अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। रेवरेण्ड एस० एच० गुरटीन (H. S. Gurteen) ने सन् 1877 में न्यूयार्क में दान संगठन समिति (Charty Organization Society)[20] की स्थापना की। इसका उद्देश्य निर्धनों को अधिक प्रभावपूर्ण तरीके से सहायता करना था और धन के अपव्यय, प्रतिस्पर्धा तथा धार्मिक समितियों के बीच कार्य की पुनरावृत्ति पर रोक लगाना था।

दान संगठन समिति के मुख्य सिद्धान्त निम्न थे :

1. सभी स्थानीय दान संस्थाओं में उनके ही प्रतिनिधियों के एक परिषद् की देख-रेख में सहयोग स्थापित करना।
2. कार्य की पुनरावृत्ति, छलकपट तथा धन की बर्बादी रोकने के लिए एक केन्द्रीय 'गुप्त रजिस्टर' तैयार करना।
3. प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में आवश्यकता एवं आवश्यक वैयक्तिक उपायों का निर्धारण करने के उदेश्य के लिए एक-एक मित्र अभ्यागतों (Friendly Visitors) द्वारा प्रत्येक प्रार्थी का सामाजिक अनुसंधान करवाना।

दान संगठन समिति के निम्न कार्य थे :

1. परिवार जो आत्म-निर्भर नहीं थे उनका पुनर्स्थापन करना।
2. सहायता के उचित सिद्धान्तों के विषय में समुदाय को शिक्षित करना।

---

20. Kellogg, Charles D. : Charity Organization Society in U. S. Report of the Committee on the History of Charity Organization. Proceedings, 20th NCCC., Chicago, 1893, p. 53.

3. गरीबी के कारणों के उन्मूलन में सहायता करना।[21]

(i) युवाओं के साथ कार्य करने का युग :

इंग्लैण्ड में जार्ज विलियम द्वारा स्थापित वाई० एम० सी० ए० (Young Men's Christian Association) की सफलता को देखते हुये अमरीका में भी जे० वी० सुलीवान ने बास्टन में सन् 1851 में वाई० एम० सी० ए० की आधार-शिला रखी। इसी तरह बोस्टन में ही सन् 1866 में लुक्रेटिया वोयड ने वाई० डब्ल्यू० सी० ए० (Young Women's Christian Association) की नींव डाली। सन् 1910 में अमेरिका ब्वाय स्काउट (American Boy Scout) संगठित किया गया। सन् 1911 में कैम्फायर गर्ल्स (Camfire Girls) तथा सन् 1912 में गर्ल्स गाइड (Girls Guide) को बनाया गया। इन सभी युवा संगठनों का उद्देश्य युवाओं का सर्वोमुखी विकास करना था।

(ii) जरूरतमंद लोगों के साथ रहने तथा काम करने का युग :

संयुक्त राज्य में पहुँचने वाले अप्रवासियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। निर्धन जो विभिन्न देशों एवं विभिन्न पृष्ठभूमियों से आये थे और भिन्न-भिन्न भाषायें बोलते थे, उनमें पारस्परिक मेल-जोल की मात्रा शून्य के बराबर थी। गन्दी बस्तियों की स्थिति में सुधार करने, उनमें अच्छे नागरिक तैयार करने तथा पडोस की भावना को उत्पन्न करने की आवश्यकता सबसे पहले लंदन में कैनन सैमुअल (Cannan Samuel) को हुई थी। ट्वायनबी हाल की स्थापना ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम प्रारम्भ किया। इसी हाल ने अमरीकी यात्री निरीक्षकों को प्रेरणा दी कि ऐसे पड़ोस में निर्धनों के साथ शिक्षित लोगों का रहना और कम विशेषाधिकार युक्त लोगों के साथ-साथ जीवन व्यतीत करना सामाजिक एवं आध्यात्मिक विघटन के खतरों पर विजय पाने के लिए अत्यधिक लाभकारी है। इसी सिफारिश पर स्टैन्टन क्वाइट (Stanton Coit) तथा चार्ल्स बी० स्टोवर (Charls B. Stover) पहले अमरीकी व्यक्ति थे जिन्होंने इस व्यवस्था को अमेरिका में लागू किया। उन्होंने सन् 1857 में न्यूयार्क सिटी में पड़ोस संघ (Neighbourhood Guild) की स्थापना की। तत्पश्चात् इसने विश्वविद्यालय बन्दोबस्त आवास (University Settlement House) का रूप ले लिया। शिकागो में हल हाउस (Hull House) बनाया गया, जिसकी नींव

---

21. Watson, Frank. D., The Charity Organization Movement in United States, Mac Millan Company, Newyork, 1922, p 94.

जेन आदमस (Jane Adams) तथा एलेन गेट्स (Allen Gates) ने डाली। शिकागो के पश्चिमी भाग में स्थापित सेटलमेंट हाउस विदेशी अप्रवासियों के विशाल समूह के लिए खोला गया जिसमें इटैलियन, जर्मन, ग्रीक, पोलिश तथा रूसी आदि नवागन्तुक रहते थे। यहीं पर पड़ोस (Neighbourhood) की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दैनिक नर्सरी तथा किंडर गार्डन की स्थापना की गयी, जिसके बाद बालक व बालिकाओं के लिए विभिन्न क्लबों का गठन किया गया। हल हाउस के अनुभवों ने अन्य सेटेलमेंट हाउसेस की स्थापना में बड़ी सहायता की। न्यूयार्क में सन् 1889 में महिलाओं के लिए कालेज सेटेलमेंट सन् 1892 में बोस्टन में तथा 1894 में शिकागो कामर्स की स्थापना हुई। 1894 में न्यूयार्क में हेनरी स्ट्रीट सेटेलमेंट की नींव डाली गयी। इसी प्रकार विभिन्न नगरों में सेटेलमेंट बनाये गये।

सेटेलमेंट के निवासी सामाजिक सुधार तथा सामूहिक कार्य के क्षेत्र में अग्रगामी सिद्ध हुए। इन लोगों ने औद्योगिक श्रमिकों एवं अप्रवासियों के बीच रहते हुये अस्वस्थकर आवास दशाओं, कम मजदूरी तथा स्त्रियों एवं बच्चों के लिए रात्रि के समय कार्य करने आदि से होने वाले नुकसान का स्वयं अनुभव किया। अतः सेटेलमेंट हाउसेस द्वारा शिक्षा तथा रहने व कार्य करने की दशाओं में सुधार करने पर बल दिया गया। आज सेटेलमेंट का उद्देश्य व्यक्तियों के आत्म-संयम का विकास करना है। सामाजिक गौरव (Social elevation) प्रदान करने का तरीका अपनाया जाता है। परन्तु यह संरक्षकता द्वारा नहीं काम में लाया जाता है बल्कि परस्पर विश्वास तथा सम्मान के द्वारा उपयोग में लाया जाता है।[22]

उड्स तथा केनेडी (Woods & Kennedy) जिन्होंने कई वर्षों तक इंग्लैण्ड में सेटेलमेंट हाउ स का अनुभव प्राप्त किया था उन्होंने सेटेलमेंट के विषय में बताया कि विश्वविद्यालयों का सबसे अच्छा प्रोडक्ट अपने को लन्दन में मलिन बस्तियों में पड़ोसी तथा साथी-नागरिक के रूप में स्थापित किया था। इन लोगों ने उनकी शिक्षा, मनोरंजन, स्वच्छता तथा दान सहायता के लिए भरसक प्रयत्न किया।[23]

सेटेलमेंट का उद्देश्य दूसरे समूहों तथा संस्थाओं से भिन्न है जो इसी मौलिक दर्शन पर आधारित है। इसका उद्देश्य पड़ोस की भावना का विकास

22. Peabody, F. G., Social Settlements' Conference of Charities and Corrections, XX IV, 1897, p. 330.
23. Woods, R. A., Kennedy, A. J., The Settlement Horizon. Russell Sage Foundation, NewYork, 1922, p. 28.

करना है जिनमें वे कार्यरत हैं।[24] अमेरिका में यद्यपि सभी सेटेलमेंट अपने ही प्रकार से विकसित किये गये थे लेकिन सभी का उद्देश्य पड़ोस के लोगों का जीवन अधिक सुखमय बनाना था।[25] आज इन सेटेलमेंट हाउसों का उद्देश्य पड़ोस के सामाजिक विचारों (Social thinking) में परिवर्तन करना है।[26]

सेटेलमेन्ट व्यवस्था ने सामूहिक कार्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उन हाउसों के नेताओं ने अपने पड़ोसियों के अच्छे जीवन की दशाओं के लिए यद्यपि लड़ाई लड़ी लेकिन सामूहिक संगठनों तथा मीटिंगों के द्वारा पड़ोसियों को उस समस्या जो उन्हें स्वयं प्रभावित कर रही थी उसके विषय में विचार-विमर्श करने तथा क्रिया में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ।[27]

डॉ० जान इलियर ने 20 वर्षों से सेटेलमेन्ट हाउसेस के अनुभव के बाद सन् 1915 में सामाजिक चेतना (Social consciousness) पर बल दिया और कहा कि लोगों की सहायता केवल इसलिए ही नहीं करनी चाहिये कि वे स्वयं अपनी सहायता करने में समर्थ हों बल्कि इसलिए करनी चाहिए कि वे अपने लिए स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें जिसे केवल दूसरों की स्वतंत्रता के लिए कार्य करने से ही प्राप्त किया जा सकता है।[28]

सेटेलमेंट के वही उद्देश्य हैं जो आज सामाजिक सामूहिक कार्य के उद्देश्य हैं :

1. पड़ोस के लोगों की इस प्रकार से सहायता करना जिससे वे ऐसा रहना सीखें कि उससे उनके सामाजिक सम्बन्धों में बढ़ोत्तरी एवं वृद्धि के लिए एक दूसरे को प्रोत्साहन प्राप्त हो।

2. ऐसे नेतृत्व की खोज एवं उसका विकास करना जो सभी जातियों,

---

24. John Mc Dowell and Participants in the cleveland Settlement Study. Foreword and Statement of Purposes and Functions of Settlements in Cleveland, 1946.
25. Phillips, Helan U. : Essentials of Social Group Work Skills, Association Press, Newyork, 1957, p. 18.
26. Addams, Jane : 'Social Settlements' Confreence of Charities and Corrections, XXV, 1897, p. 389.
27. Phillips, Helen, U., op. cit. p. 19.
28. Elliott John Lovejoy, Address given in Newyork City before the Society of Ethical Culture, April 11, 1915.

धर्मों तथा सभी राष्ट्रीयता के लोगों की समान रूप से भलाई के लिए कार्य कर सके।

3. एक दूसरे के प्रति नागरिकता के उत्तरदायित्व को पूरा करने में लोगों की सहायता करना तथा वृहद् समुदाय की प्रभावकारी वैयक्तिक एवं सामूहिक क्रियाओं द्वारा सहायता करना।[29]

सन् 1922 में रावर्ट वुड्स ने सेटेलमेंट के शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट किया। ये वही उद्देश्य थे जिन्हें आज सामूहिक कार्य व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक समझता है। उन्होंने कहा कि सेटेलमेंट का पूरा कार्यक्रम शिक्षात्मक होना चाहिए। कार्यक्रम का प्रत्येक स्तर स्वास्थ्य में सुधार, उच्च जीवन स्तर, प्रसन्नता तथा खुशी में वृद्धि, नैतिक तथा आध्यात्मिक सन्तुष्टि सभी कार्य पहले तथा अन्त में दोनों ही स्थितियों में शिक्षात्मक रूप में देखे जाने चाहिए।[30]

सन् 1931 में मिस हेलेन हार्ट जो किंगसले हाउस, पिट्सवर्ग की निदेशक थीं, उन्होंने सुझाव दिया कि सेटेलमेंट का उद्देश्य सामूहिक सम्बन्धों द्वारा व्यक्तित्व विकास होना चाहिए।[31]

(iii) सामाजिक सामूहिक कार्य के कार्यक्रम :

अमरीका में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास पिछले 50 वर्षों में हुआ। प्रारम्भ में इसका स्वरूप केवल मनोरंजनात्मक था और इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उनमें परिवर्तन होकर सामूहिक कार्य का रूप प्रकट हुआ। जो संगठन एवं संस्थायें इस प्रकार का काम करती थीं उनके उद्देश्यों में धीरे-धीरे परिवर्तन आता गया। आज इन संस्थाओं एवं संगठनों के कार्यक्रमों को 4 भागों नें विभाजित किया जा सकता है :—

(1) वे कार्यक्रम जिनके द्वारा पूर्णरूपेण मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है। इनमें प्रौढ़ शिक्षा, विद्यालय तथा विश्वविद्यालय प्रसार

29. Bosworth, Francis : "Settlements and Neighbourhood Centres." Social Work Year Book, National Association of Social Workers, Newyork, 1954, pp. 471-72.
30. Woods, Robert A. : The Neighbourhood in Nation Building. Houghtan Mifblin, Borton, 1923, p. 310.
31. Haxt, Helen : The Changing function of Settlement under Charging Conditions, Proceedings of the National Conference of Social Work, University of Chicago Press, Chicago, 1931, pp. 291-92.

सेवायें, क्लब्स, सेटेलमेन्ट्स, कैम्प्स, वाई० एम० सी० ए०, वाई० डब्लू० सी० ए० प्रमुख हैं। सन् 1866 में प्रथम बाल खेल मैदान बना। इसका महत्त्व इतना अधिक समझा गया कि सन् 1885 में राष्ट्रीय स्तर पर इस ओर प्रयास प्रारम्भ हुआ। शारीरिक शिक्षा आन्दोलन ने भी मनोरंजन के महत्त्व को स्पष्ट किया। आगे चलकर इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत न केवल खेलकूद एवं शारीरिक क्रियाओं को सम्मिलित किया गया बल्कि मनोरंजनात्मक, कला, संगीत, अभिनय, नृत्य, क्रैफ्ट्स तथा अन्य प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया। 19वीं शताब्दी के मध्य प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता अनुभव हुई और सन् 1870 व 1880 के मध्य प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन चलाया गया। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों तथा विश्वविद्यालय प्रसार सेवायें प्रारम्भ हुईं।

(2) दूसरे प्रकार के संगठनों का कार्य मनोरंजनात्मक तथा शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा व्यवहार को आशातीत प्रभावित करना है। यह दो रूप से सम्पन्न होता है। किशोरों (9 से 17 वर्ष) के लिए कार्यक्रम को चरित्र निर्माण के रूप में तथा युवकों के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विकास करने के साधन के रूप में उपयोग किया जाता है। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य युवकों में रचनात्मक क्रियाओं का विकास करना तथा निश्चित सामाजिक मूल्यों के आधार पर व्यक्तित्व विकसित करना है। सन् 1875 ई० में तथा 1895 ई० के मध्य प्रत्येक बड़े प्रोटेस्टेन्ट समुदाय ने अपना युवक कार्यक्रम संगठित किया। इपवर्थ लीग, दि किंग्स डाटर्स, द बैपिट रूट यूथ तथा प्यूपिल्स यूनियन्स ने युवक कार्यक्रमों को चर्च के उद्देश्यों के साथ सम्मिलित किया। जैविश, कैथेलिक ने भी चर्च के अन्तर्गत युवक कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया।

धार्मिक भावनाओं के विकास के साथ-साथ चरित्र निर्माण के लिए ब्वायज स्काउट, गर्ल स्काउट, कैम्प फायर गर्ल्स, 44 एच क्लब्स आदि संगठनों का विकास हुआ। सांस्कृतिक मूल्यों के विकास के लिए इन संस्थाओं का भी उपयोग किया गया। युवकों में प्रजातांत्रिक मूल्यों के महत्त्व को चर्च तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं ने स्पष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। इस बात पर जोर दिया गया कि व्यक्ति का समुदाय तथा सामाजिक परिस्थितियों से अटूट सम्बन्ध है।

(3) तीसरे प्रकार के वे संगठन हैं जिनका मनोरंजन तथा शिक्षा के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों की पूर्ति करनी है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक संस्थाओं के लिए मनोरंजन कार्यक्रम, श्रमिक संघों, राजनीतिक पार्टियों तथा राजनीतिक संगठनों को मनोरंजन प्रदान करना है। जहाँ पर सदस्य एक उद्देश्य के लिए

एकत्र होते हैं वहाँ ये कार्यक्रम अधिक प्रभावकारी होते हैं। अन्य स्थानों पर मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों का उपयोग सदस्यों की संख्या में वृद्धि करके तथा संगठित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में इन कार्यक्रमों का उद्देश्य शिक्षा देना है परन्तु वास्तविकता इससे भिन्न होती है। सदस्यों की रुचियों, मनोवृत्तियों तथा व्यवहारों को नियंत्रित करने के लिए इनका उपयोग किया जाता है। अमेरिकन यूथ कांग्रेस इसी प्रकार की संस्था है।

(4) चौथे प्रकार के वे संगठन हैं जिनमें मनोरंजन का उपयोग उपचार के रूप में किया जाता है। इन कार्यक्रमों को व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने या प्रभाव को कम करने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। हृदय रोगी, तनावग्रस्त बच्चे, मानसिक रोगी, बाल अपराधी आदि के साथ मनोरंजन उपचार के रूप में प्रयोग होता है। अस्पतालों में इसके महत्त्व को दिनोंदिन स्वीकार किया जाने लगा है। संगीत, ड्रामा, नृत्य तथा खेल द्वारा उपचार क्रिया सम्पन्न होती है। तदुपरान्त सामूहिक सम्बन्धों का उपयोग उपचारार्थ किया जाता है।

(iv) व्यवसायिक सामूहिक कार्य का विकास :

सन् 1935 में सामूहिक कार्यकर्ताओं में व्यावसायिक चेतना जागृत हुई। इस वर्ष समाज कार्य की राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में सामाजिक सामूहिक कार्य को एक भाग के रूप में अलग से एक अनुभाग बनाया गया। इसी वर्ष सोशल वर्क ईयर बुक\में सामाजिक सामूहिक कार्य पर अलग से एक खण्ड के रूप में कई लेख प्रकाशित किये गये। इन दो कार्यों से सामाजिक सामूहिक कार्य व्यावसायिक समाज कार्य का एक अंग बना। सन् 1935 में सामूहिक कार्य के उद्देश्यों को एक लेख के रूप में समाज कार्य की राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में प्रस्तुत किया गया।

"स्वैच्छिक संघ द्वारा व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक समायोजन पर बल देते हुए तथा एक साधन के रूप में इस संघ का उपयोग सामाजिक इच्छित उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रक्रिया के रूप में समूह कार्य को परिभाषित किया जा सकता है।" "Group work may be defined as an educational process emphasizing the development and social adjustment of an individual through voluntary association; and the use of this association as a means of furtharing socially desirable ends."[32]

---

32. Newstetter Wilber, I. "What is Social Group Work?" Proceedings of the National Conference of Social Work, 1935, p. 291.

सन् 1937 में ग्रेस क्वायल ने लिखा कि "सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्तियों की पारस्परिक क्रिया द्वारा व्यक्तियों का विकास करना तथा ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना जिससे समान उद्देश्यों के लिए एकीकृत, सहयोगिक, सामूहिक क्रिया हो सके।" Social group work aims at the development of persons through the interplay of personalities in group situations and at the creation of such group situations as provide for integrated cooperative group action for common ends,"[33]

(v) सामूहिक कार्य के प्रत्यय :

बीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में सामूहिक कार्य के अनेक प्रत्यय उभर कर सामने आये। समूहों के साथ काम करने के सम्बन्ध में डेवी, जैम्स, कूले, लिंडमैन तथा फोलेट के विचार प्रमुख थे। निकटतम, पड़ोस, आत्म मार्गीकरण, के प्रत्यय जो सेटेलमेन्ट का अंग थे तथा समस्या समाधान के यन्त्र थे, प्रजातांत्रिक प्रक्रिया को जन्म दिया। समस्या समाधान में अन्तःक्रिया तथा निरन्तरता दो महत्त्वपूर्ण अंग तथा सामूहिकता का महत्व, इन दोनों डेवी के विचारों ने ही समस्या समाधान में वैज्ञानिक विधि के उपयोग पर बल दिया।[34]

हार्टफोर्ड (Hartford)[35] का विचार है कि सन् 1930 तक समूह कार्य के 3 प्रमुख क्षेत्र थे :

1. व्यक्ति का मनुष्य के रूप में विकास तथा सामाजिक समायोजन करना।
2. ज्ञान तथा निपुणता में वृद्धि द्वारा व्यक्तियों की रुचियों में बढ़ोत्तरी करना।
3. समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना।

सन् 1940 से 1950 के मध्य फ्रायड के मनोविश्लेषण का प्रभाव समूह कार्य व्यवहार में आया। इस कारण यह समझा जाने लगा कि सामाजिक अकार्यात्मकता (Social dysfunctioning) का कारण सांवेगिक संघर्ष है। अतः अचेतन को महत्त्व दिया जाने लगा जिससे समूह कार्य सांवेगिक रूप से

33. Coyle, Grace : Social Group Work, Social Work Year Book, 1937, NASW, p. 461.
34. Dewey, J. : How to think ? Health, Boston, 1933.
35. Hartford, M. E. (ed) Working Report toward a Frame Reference for Social Group Work. NASW, Newyork, 1964, p. 65.

पीड़ित व्यक्तियों के साथ कार्य करने लगा। द्वितीय विश्व युद्ध ने चिकित्सकीय तथा मनोचिकित्सकीय समूह कार्य को जन्म दिया।

सन् 1950 के बाद से समूह कार्य की स्थिति में काफी परिवर्तन आये हैं। सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक, प्रौद्योगिक परिवर्तनों ने समूह कार्य व्यवहार को प्रभावित किया है। इसीलिए सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समूह कार्य के 3 प्रारूप (Models)[36] तैयार किये हैं :

1. उपचारात्मक प्रारूप (Remedial Model)
2. परस्परात्मक प्रारूप (Reciprocal Model)
3. विकासात्मक प्रारूप (Developmental Model)

प्रथम प्रारूप का विकास विंटर[37] ने किया। दूसरे का स्कदारट[38] तथा तीसरे का बेरस्टीन[39] ने किया है। ये तीनों प्रारूप आज उपयोग में लाये जाते हैं।

(iii) भारत में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली है, जिसका इतिहास समाज कार्य के इतिहास के साथ ही देखा जा सकता है। भारत में समाज कार्य के विकास तथा उसका ऐतिहासिक वर्णन मजूमदार[40], मेहता[41], गोरे[42], राजाराम

36. Papell C. and Rothman B. "Social Group Work Models : Possessian and Heritage," Journal of Education for Social Work, Vol. 2, 1966.
37. Vinter, R. D. : "Programe Activities : An Analysis of their efforts on Participant Behaviour", R. D. Vinter : Readings in Group Work Practice, Campus Publishers, Ann Arbor, 1967.
38. Schwartz, W. : The Social Worker in the Group; New Perspective to Groups : Theory Organisation of Practice, NASW, Newyork 1961.
39. Berstein, S. (ed) : Explorations in Group Work : Boston University, School of Social Work, Boston, 1965.
40. Majumdar, R. C. : "Social Work in Ancient and Medieval India". in (ed). A. R. Wadia, History and Philosophy of Social Work in India, Allied Publishers, Bombay, 1968.
41. Mehta, B. M. : "Historical development of Social Work in

शास्त्री[43], पाठक[44] आदि सामाजिक कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने लेखों द्वारा किया है। भारतीय साहित्य में सामाजिक सुधार तथा सामाजिक सामूहिक कार्य का स्पष्ट चित्रण 19वीं शताब्दी में विशेषकर राजाराम मोहनराय के समय से प्राप्त होता है।[45] इसके अतिरिक्त मुस्लिम तथा मराठों के समय का साहित्य भी यदा-कदा प्राप्त होता है।[46] लेकिन प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से उस समय की व्यवस्था को जानकर ज्ञात होता है कि भारत में सामूहिक कार्य की जड़ें बहुत प्राचीन हैं।

(i) प्राचीनकाल

प्रो० शास्त्री ने वैदिक काल की सामुदायिक समाज की व्यवस्था का वर्णन करते हुये लिखा है कि इस व्यवस्था में समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करने का उतरदायित्व प्रत्येक व्यक्ति का था। व्यक्ति की आवश्यकताओं को सामूहिक प्रयास से पूरा किया जाता था। इस काल में विशिष्ट सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों का उत्तरदायित्व शासक, धनी तथा साधारण समुदाय के सदस्यों द्वारा आपस में बाँट लिया जाता था।[47] सहायता का कार्य धार्मिक माना जाता था। यह कार्य मंदिरों और आश्रमों की स्थापना, सन्त-महात्माओं के लिए आवास स्थलों का निर्माण, मन्दिरों में रहने वालों के लिए भोजन, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं की पूर्ति, आदि द्वारा किया जाता

India", Indian Journal of Social Work, Vol. 13, June 1952.

42. Gore M. S. : "Historical Background of Social Work in India" in Social Welfare in India, Planning Commission, Government of India, New Delhi, 1955.
43. Shastri, Raja Ram : Social Work Tradition in India, Welfare Forum and Research organization, Varanasi, 1958.
44. Pathak, Shankar : Social Welfare : An Evolutionary and Developmental Perspective, Mac Millan, India, New Delhi, 1981,
45. Natrajan, S; A Century of Social Reform in India, Asia Publishing House, New Delhi, 1962.
46. Banerjee, G. R. : "Social Welfare in Ancient India" in Papers on Social Work : An Indian Perspective, Tata Institute of Social Sciences, Bombay, 1972.
47. Shastri, Raja Ram. Op. cit, p. 4.

था। गृहहीनों को मन्दिरों में रहने की व्यवस्था थी। वृद्धों, बीमारों तथा समुदाय के अन्य आश्रमहीन वर्गों की आवश्यकतायें पूरो करने के लिए सामाजिक संस्थाओं में व्यवस्था होती थी। सहायता की आवश्यकता रखने वाले व्यक्तियों का भार जाति और समुदाय परिषदों पर था।[48]

सामूहिक सहायता की परम्परा भी मठों तथा मन्दिरों में चलती थी। संघ तथा गण शब्द ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में सामूहिकता के बोधक थे। संघ का नाम बौद्ध भिक्षुकों ने अपनाया जो अपने आपको सामूहिक रूप से भिक्षु संघ कहते थे। पौराणिक कथाओं से पता चलता है कि उस समय दो प्रकार की संन्यासी बस्तियाँ थीं (1) आवास (2) आराम। बस्ती जो गाँव के बाहर होती थी जिसे भिक्षु स्वयं बनाते थे, उसकी मरम्मत करते थे, उसे आवास कहा जाता था। जब कोई धनी व्यक्ति इन भिक्षुकों को दान में देता था तथा उसकी स्वयं देखभाल करता था, उसे आराम कहते थे। आराम की सभी सम्पत्ति सामूहिक होती थी। इसका उपयोग संघ के सभी सदस्य करते थे। संघ को दी जाने वाली कोई भी सम्पत्ति किसी भी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से अधिकार में नहीं ली जा सकती थी।

बोधिसत्त्व ने मगध में युवावस्था में ही गाँव के तीस व्यक्तियों को एकत्र किया और उनको जनता की भलाई के लिए कार्य करने की प्रेरणा दी। उन्होंने सड़कें बनवाईं, मार्ग समतल किये, बाँध बनवाये तथा तालाब खुदवाये। मौर्य काल में भी जनता की भलाई के अनेक कार्य किये गये।

(ii) सामाजिक सुधार कार्यक्रम :

अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक सुधार में अनेक सामूहिक प्रयास किये। सन् 1780 में बंगाल में सेरामपुर मिशन (Serampur Mission) की स्थापना हुई। धर्म प्रचारकों का दृढ़विश्वास था कि हिन्दू सामाजिक ढाँचे में विशेषकर बालविवाह, बालिकाओं की हत्या, सती प्रथा और विधवा विवाह के क्षेत्रों में सामाजिक सुधार लाना अति आवश्यक है।[49]

राजाराम मोहनराय ऐसे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने सामाजिक बुराइयों के सुधार की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने जाति बंधनों तथा सती प्रथा के उन्मूलन के लिए अनेक प्रयास किये। सामाजिक सुधार के लिए उन्होंने सन्

48. Gore, M. S. & Soares, E. : "Historical Background of Social Work in India", in Social Welfare in India, op. cit. p. 2.
49. Bisheshwar Prasad : Bandage and Freedom, Rajesh Publications, New Delhi, 1977, p. 441.

1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। ब्रह्म समाज ने दुर्भिक्ष कल्याण, बालिकाओं के लिए शिक्षा, विधवाओं की स्थिति में सुधार, जाति बंधनों के उन्मूलन और दान तथा संयम को उत्साहित करने के अनेक कार्य किये।[50] इन सभी समाज सुधार के कार्यों में सामूहिक कार्य का प्रयोग किया जाता था।

केशवचन्द्र सेन ने सन् 1883 में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू विधवा पुनर्विवाह के लिए आन्दोलन चलाया। न्यायाधीश रानाडे ने सन् 1861 में विधवा विवाह संघ की स्थापना की।

आर्य समाज जो एक महत्वपूर्ण समाज सुधार का आन्दोलन था उसकी नींव सन् 1877 में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा बम्बई में डाली गयी। इस आन्दोलन ने सामूहिक कार्य के सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का उपयोग करते हुए जाति प्रथा, बाल विवाह, धर्म परिवर्तित लोगों के लिए गृह प्रवेश-निषेध नीति आदि के विरोध में आवाज उठायी। स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1897 में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस मिशन का उद्देश्य दलित व्यक्तियों की सेवा तथा सामाजिक-शैक्षिक विकास लाना था। सन् 1881 में मैडम बलावस्की तथा कर्नल आल्काट (Madam Blavastsky and Olcott) ने मद्रास में ब्रह्मवाद समाज (Theosophical Society) की स्थापना की। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने अपना सारा जीवन उसी में लगा दिया।

बम्बई में लोकान्डे (Lokhande) द्वारा श्रम कल्याण कार्य प्रारम्भ किया गया। सन् 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की गयी। कार्वे, भंडारकर, चिन्तामणि, नरेन्द्र नाथ सेन आदि व्यक्तियों ने सामूहिक कार्य विधि का उपयोग करते हुए समाज सुधार कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। तिलक तथा गोखले ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन् 1882 में रामबाई ने आर्य महिला समाज की स्थापना की। सन् 1887 में शशिपद बनर्जी द्वारा बंगाल में हिन्दू विधवाओं के लिए एक विधवा गृह की नींव डाली गयी। कार्वे ने 1896 में पूना शहर में एक विधवा गृह की स्थापना की। सन् 1892 में युवा सुधारकों ने मद्रास में 'मद्रास हिन्दू समाज सुधार संघ' की स्थापना की।

सन् 1905 में गोखले द्वारा सर्वेन्ट आफ इंडिया सोसाइटी की नींव डाली गयी। इसके द्वारा राजनैतिक कार्यों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और दलित वर्ग के लिए कार्य प्रारम्भ हुए।

---

50. Joshi, V. C. : Raja Ram Mohan Roy and the Process of Modernization in India, Vikas Publishing House, New Delhi, 1915.

सन् 1906 में बी० आर० शिन्दे द्वारा भारत दलित वर्ग मिशन समाज (Depressed Class Mission Society) की स्थापना बम्बई में की गयी। इस संस्था का उद्देश्य शिक्षा का प्रसार करना था। एन० एम० जोशी तथा चन्द्रावरकर ने बम्बई में सोशल सर्विस लीग की स्थापना की, जो मिल में काम करने वाले लोगों के लिए तथा उनके बच्चों के लिए मनोरंजन का प्रबंध करती थी व रात्रि पाठशालायें चलाती थी। बम्बई संघ ने 1908 में सेवा सदन की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य महिला कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना, चिकित्सा सम्बन्धी सहायता तथा कार्यशालायें चलाना था।

समाज सेवा सम्मेलन की पहली बैठक 1917 में हुई। 1917 में डॉ० एनी बेसेन्ट तथा मारगैरेट कासिन्स ने मद्रास में प्रान्तीय महिला संघ की स्थापना की। सन् 1925 में राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की राष्ट्रीय सभा की गयो।

गाँधी जी का स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन केवल राजनैतिक न होकर समाज-कल्याण से सम्बन्धित था। गाँधी जी के आन्दोलन से समूहकार्य का आधुनिक प्रत्यय उभर कर सामने आया। सामूहिक कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व है कि वह केवल सेवायें ही न प्रदान करे बल्कि संस्थागत संरचना में भी आवश्यक परिवर्तन करे। गाँधी जी ने मानव महत्ता तथा गरिमा पर जोर दिया तथा विकास के लिए आत्म सम्मान को आवश्यक बताया। वे मूल्य सामूहिक कार्य के मूल्य हैं। गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि दूसरों पर विचार छोपे नहीं जाने चाहिये बल्कि स्वयं सहायता सबसे अच्छी सहायता है। गाँधी जी ने चरखा तथा खादी का उपयोग आर्थिक आत्म निर्भरता के लिए किया। गाँधी जी ने प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की तथा आश्रम बनाये जहाँ पर लोगों को साथ-साथ काम करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। गाँधी जी स्वयं रोगियों, अछूतों, ग्रामीणों आदि के बीच काम करते थे। ये कार्य सामूहिक समाज कार्य तथा वैयक्तिक कार्य दोनों ही रूप में थे। गाँधी जी सदैव दो मूल्यों में विश्वास रखते थे : व्यक्ति की महत्ता एवं समायोजन तथा उनमें परिवर्तन। यही दो सामूहिक कार्य के महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मानसिक व शारीरिक विकास के लिए अनेक उपाय किये गये। बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए एन० सी० सी०, एन० एस० एस०, गर्ल्स स्काउट, ब्वायज स्काउट आदि संगठन बने। युवकों से सम्बन्धित राष्ट्रीय स्तर पर कार्य किये जाने लगे। समाज कल्याण निदेशालय एवं युवा कल्याण निदेशालय इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। नगरों में युवक कल्याण समितियाँ कार्य करती हैं। वाई० एम० सी० ए० तथा वाई० डब्लू० सी० ए० वही

भूमिका यहाँ निभा रही है जो अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में अदा करती है। नौकरी करने वाली महिलाओं के रहने व मनोरंजन के लिए गृहों का निर्माण किया गया है। मानसिक मंदित बालकों के लिए स्कूल खोले गये हैं।

भारत स्काउट तथा गाइड्स, आकिजलरी कैडेट कोर तथा नेशनल कैडेट कोर युवकों को नेतृत्व का प्रशिक्षण देते हैं तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास करते हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना युवकों में व्यक्तित्व का समुचित विकास करने, राष्ट्रीय पुनरुत्थान करने तथा श्रम के महत्व को समझाने के लिए चलायी गयी हैं। श्रमिकों के लिए श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गयी है। इन केन्द्रों पर स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन, सामाजिक शिक्षा, मनोरंजनात्मक क्रियायें, क्राफ्ट शिक्षा आदि सेवायें प्रदान की जाती हैं। श्रमिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया है।

(iii) सामूहिक कार्य की शिक्षा :

सामाजिक सामूहिक कार्य की शिक्षा समाज कार्य की शिक्षा के साथ ही प्रारम्भ हुई। सन् 1936 में सर डोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क बना। उसके उपरान्त सन् 1947-48 में डेलही स्कूल आफ सोशल वर्क स्थापित हुआ। सन् 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाज कार्य की शिक्षा प्रारम्भ हुई। उसके बाद लगातार समाज कार्य के विभाग खुलते गये। आज 41 समाज कार्य के विभाग हैं, जहाँ सामाजिक सामूहिक कार्य की शिक्षा दी जाती है। सन् 1960 में बड़ौदा स्कूल ने सामूहिक कार्य व्यवहार पर प्रथम अभिलेख तैयार किया। लेकिन भारत में सामाजिक सामूहिक कार्य की अलग से शिक्षा नहीं दी जाती है। सामूहिक समाज कार्य को एक प्रणाली के रूप में समाज कार्य के कोर्स में ही पढ़ाया जाता है। इसमें अलग से विशेषीकरण नहीं है। सामूहिक कार्य का व्यावहारिक पक्ष अभी निर्बल है। यह व्यवसाय के रूप में अभी पनप नहीं पाया है। इसका अलग से अभी तक संगठन नहीं बन पाया है।

●

अध्याय 2

सामाजिक सामूहिक कार्य का अर्थ एवं परिभाषा

जहाँ पर सामाजिक जीवन ने मनुष्य को अस्तित्व प्रदान किया है वहीं पर दरिद्रता, निर्धनता, बेरोजगारी, स्वास्थ्य तथा समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का विकास हुआ है। जिसके फलस्वरूप समाज ने अनेक प्रकार के सुरक्षात्मक कदम उठाये हैं। समाज कार्य इसी प्रकार का एक वैज्ञानिक प्रयास है, जिसके द्वारा लोगों की सामाजिक तथा भावात्मक अनुकूलन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सहायता की जाती है। मूलतः तीन स्तरों पर सहायता प्रदान की जाती है। इन विभिन्न स्तरों पर सहायता प्रदान करने वाली विधियों को वैयक्तिक कार्य, सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन कहते हैं। सामूहिक कार्य इस प्रकार समाज कार्य की एक प्रणाली है जिसके द्वारा समूह की सहायता समाज कार्य के परिपेक्ष्य में की जाती है। अतः समाज कार्य का अर्थ एवं दर्शन समझना आवश्यक प्रतीत होता है।

(i) समाज कार्य

समाज कार्य का अर्थ एवं परिभाषा—यहाँ पर हम कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं :

एलिस चेनो (1926)[1]—समाज कार्य में वे सभी ऐच्छिक प्रयास सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य आवश्यकताओं की सतुष्टि करना है जिसका सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों से है और जो वैज्ञानिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रणालियों का उपयोग करते हैं।

विटमर (1942)[2]—समाज कार्य का प्रमुख कार्य व्यक्तियों की उन

1. Social Work includes all voluntary attempts to extend benefits in response to needs which are concerned with social relationships and which avail themselves of scientific knowledge and methods.

   Cheyney, Alice : Nature and Scope of Social Work, Association of Social Work, Newyork, 1926.

2. The Prime function of social work is "to give assistence to individuals in regards to the difficulties they encounter in

समस्याओं को दूर करने में सहायता करता है जो वह एक संगठित समूह की सेवाओं का प्रयोग करने में या एक संगठित सदस्य के रूप में अपने कार्य सम्पादन में अनुभव करते हैं।

पिंक (1942)[3]—समाज कार्य सेवाओं का एक ऐसा विधान है जो व्यक्तियों को अकेले या समूहों में, ऐसी वर्तमान या भविष्य में आने वाली सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक अड़चनों से निपटने में सहायता देता है जो उन्हें समाज में पूरा या प्रभावशाली भाग लेने से रोकती है।

ऐन्डरसन (1945)[4]—समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसका उद्देश्य लोगों की वैयक्तिक या सामूहिक परिस्थिति में सहायता प्रदान करना है, जिससे वे अपनी विशेष इच्छाओं और योग्यताओं के अनुसार और सामाजिक इच्छाओं और योग्यताओं के अनुरूप सन्तोषजनक सम्बन्ध एवं जीवन स्तर प्राप्त कर सके।

क्लार्क (1947)[5]—समाज कार्य व्यावसायिक सेवा का एक रूप है जिसका

---

their use of an organized group's service or in their performance as a member of an organized group."
Witmer, Helen L., Social Work : An analysis of social institution, Farror and Rinehart, Newyork, 1942, p. 121.

3. Social Work is the provision of services designed to aid individuals, singly or in group in coping with present or future social and psychological obstacles that prevent or are likely to prevent, full of effective participation in society.
Pink, Arthur E, : The fields of social work, Henry Holt, Newyork, 1942, p. 2.

4. Social work is "a professional service rendered to people for the purpose of assiting them, as individuals or in groups to attain satisfying relationships and standards of life in accordance with their particular wishes and capacities and in harmony with those of the community.
Anderson, J. P. : "Social work as a profession", Social Work Year Book, NASW, Newyork, 1945.

5. Social Work is a form of professional service comprising a composite of knowledge and skills, parts of which are

आधार ज्ञान एवं निपुणता के ऐसे मिश्रण पर है जिसका कुछ भाग समाज कार्य का विशेष भाग है और कुछ भाग समाज कार्य का विशेष भाग नहीं है और जो सामाजिक पर्यावरण में आवश्यकताओं की संतुष्टि करने में व्यक्ति की सहायता करने का प्रयास करता है और दूसरी ओर इस बात का प्रयत्न करता है कि जहाँ तक हो सके उन बाधाओं को दूर किया जाय जो लोगों को सर्वोत्तम विकास से जिसके वे योग्य हैं, रोकती हैं।

बी० जी० खेर (1947)[6]—समाजकार्य का उद्देश्य जैसा कि सामान्य रूप से समझा जाता है सामाजिक अन्याय को दूर करना, विपत्तियों को हटाना, दुःखों को रोकना, समाज के कमजोर सदस्यों और उनमें परिवारों के पुनर्वास में सहायता देना और संक्षिप्त ये 5 दानव आकार बुराइयों—1. भौतिक आवश्यकता, 2. रोग, 3. अज्ञानता, 4. मलीनता, 5. निष्क्रियता से संघर्ष करना है।

फ्रीडलैण्डर (1955)[7]—समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है, जो वैज्ञानिक ज्ञान और मानव सम्बन्धों की निपुणता पर आधारित है। वह व्यक्ति की अकेले या समूह में सहायता करता है जिससे वे सामाजिक एवं वैयक्तिक संतुष्टि एवं स्वतंत्रता प्राप्त कर सकें।

---

and parts of which are not distinctive of social work which attempts on the one hand to help the individuals satisfying his needs in the social miliev and on the other to remove as far as possible the barriers which obstruct people from achieving the best of which they are capable. Clarke, Helen, I. : Principles and Practice of Social Work, Appleton century crofts, Newyork, 1948, p. 5-6.

6. The aim of Social Work, as generally understood, is to remove social injustice, to relieve distress to prevent suffering and to assist the weaker members of society to rehabilitate themselves and their families and, in short, fight the five giant evils of (1) Physical want (2) Disease (3) Ignorance (4) Squalor (5) Idleness. Quoted in United Nations, Training for Social work—An International Survey, p. 108.

7. Social work is a professional service based on scientific knowledge and skill in human relations, which assists,

इण्डियन कान्फ्रेन्स आफ सोशल वर्क (1957)[8]—समाज कार्य एक कल्याणकारी क्रिया है जिसका आधार मानवोचित दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रविधिक निपुणताओं पर है और जिसका उद्देश्य, समूहों या सम्प्रदायों की सहायता करना है जिससे वे सुखी और सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

मिर्जा आर० अहमद (1969)[9]—समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसका आधार मानव सम्बन्धों के ज्ञान और सम्बन्धों में निपुणता पर है जिसका संबंध अभ्यन्तर वैयक्तिक एवं अन्तर वैयक्तिक समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से है, जो आपसी, वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती हैं।

समाज कार्य की उपरिलिखित परिभाषाओं से स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य व्यक्ति, समूह व समुदायों को उन्नत बनाना है। परन्तु विकास तथा उन्नति में सदैव बाधायें, समस्यायें, कमियाँ तथा कठिनाइयाँ आती रहती हैं। इन सभी बातों को सुलझाने तथा दूर करने का कार्य समाज कार्य अपने निश्चित तरीकों तथा प्रणालियों द्वारा करता है। व्यक्ति एवं समूह का समाज में उचित व्यवस्थापन होना अत्यन्त आवश्यक होता है। समाज कार्य सदैव यह प्रयत्न करता है

---

individuals, alone or in groups, to obtain social and personal satisfaction and independence.

Friedlander, W. A. : Introduction to Social Welfare, Prentice Hall, Newyork, 1955, p. 4.

8. "Social work is a welfare activity based on humanitarian philosophy, scientific knowledge and technical skills for helping individuals or groups or community, to live a rich and full life.

   Social Work in Uttar Pradesh : Indian conference of Social work. U. P. Branch, 1954, p. 13.

9. Social work is a professional service based on knowledge of human relations and skill in relationships and concerned with problems of intra-personal and or inter personal adjustments resulting from unment individual, group or community needs."

   अहमद, मिर्जा आर० : समाज कार्य—दर्शन एवं प्रणालियाँ, ब्रिटिश बुक डिपो, लखनऊ, 1969, पृ० 4.

कि व्यक्ति स्वयं समूह में माध्यम से समाज में अपना उचित समायोजन तथा व्यवस्थापन करने में समर्थ हो। यदि उसे कहीं बाधायें घेरने का प्रयत्न करती हैं, या घेर लेती हैं तो समाजकार्य इन बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न करता है।

साधारण अर्थ में समाजकार्य एक सहायता का कार्य है, जिसका उद्देश्य सेवार्थी को, चाहे वह व्यक्ति हो अथवा समूह, सहायता प्रदान करना होता है। परन्तु इस सहायता का अर्थ तथा रूप साधारण सहायता से भिन्न होता है। इसके द्वारा सेवार्थी की स्थायी रूप से सहायता की जाती है। सेवार्थी इस योग्य हो जाता है कि वह आगे चलकर अपनी समस्याओं का समाधान निर्देशित मार्गों को अपना कर करने लगता है। व्यक्ति या समूह में किसी प्रकार की हीन भावना नहीं विकसित होती है। कार्यकर्ता कार्यक्रमों के उपयोग द्वारा व्यक्ति व समूह में अन्तर्दृष्टि जाग्रत करता है, जिसके द्वारा वह स्वयं अपने विकास एवं उन्नति के लिए मार्ग ढूँढ़ लेता है।

समाजकार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसका तात्पर्य ज्ञान, निपुणता तथा समुचित प्रणाली द्वारा कार्य सम्पन्न कराना है। इन विशेषताओं के आधार पर ही साधारण समाज कार्य (बोलचाल की भाषा) तथा व्यावसायिक समाज में अन्तर स्पष्ट होता है। समाज कार्य की 3 प्राथमिक तथा 3 द्वितीयक या गौण प्रणालियाँ हैं, जिनकी अलग-अलग निपुणतायें तथा कार्य क्षेत्र हैं। सामाजिक वैयक्तिक कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य, सामुदायिक संगठन के प्राथमिक प्रणालियाँ मानी जाती हैं। जबकि समाज कार्य, प्रशासन, समाज कार्य अनुसंधान तथा सामाजिक क्रिया द्वितीयक प्रणालियाँ हैं। परन्तु अब सामाजिक क्रिया को भी प्राथमिक प्रणाली के रूप में मानने लगे हैं।

समाजकार्य में सामान्य मूल्यों को अपनाया जाता है। व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार किया जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति में सुधार करने या विकसित करने के तत्त्व सदैव उपस्थित रहते हैं, यदि उसे ऐसा करने का अनुकूल अवसर मिलता है।

समाज कार्य की सम्पूर्ण कार्य पद्धति मानव सम्बन्धों पर आधारित है। व्यक्ति या समूह जिस समाज में रहता है उसके साथ उसका भावात्मक सम्बन्ध होता है। चूँकि समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और व्यक्ति उस समाज का अभिन्न अंग है अतः विकास एवं उन्नति के लिए सामान्य सम्बन्धों का होना आवश्यक है। मानव व्यवहार मनोजैविकीय तथ्यों पर ही नहीं बल्कि सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है। अतः उसमें सामाजिक सम्बन्धों का विशेष महत्त्व है। वैयक्तिक सेवा कार्य प्रणाली हो या सामूहिक सेवा कार्य प्रणाली, उपचार क्रिया सामाजिक सम्बन्धों से ही प्रारम्भ होती है।

समाज कार्य की यह मूल मान्यता है कि व्यक्ति और समाज में पारस्परिक निर्भरता है। इस कारण सेवार्थी व्यक्ति, समूह अथवा समुदाय चाहे जो हो, उसकी समस्या निराकरण के लिए सामाजिक दशाओं एवं स्थितियों का अवलोकन एवं मूल्यांकन आवश्यक होता है। सामाजिक शक्तियाँ व्यवहार तथा दृष्टिकोण दोनों को प्रभावित करती हैं अतः सामाजिक शक्तियों में हस्तक्षेप करना आवश्यक होता है। बाधित पारस्परिक अन्तःक्रिया (व्यक्ति तथा पर्यावरण के बीच) समस्या का कारण होती है। अतः समाज कार्य के कार्य का मुख्य केन्द्र अन्तः-क्रियायें होती हैं। समस्या के अनेक रूप होते हैं अतः अनेकानेक विधियों की आवश्यकता होती है।

समाज कार्य की विशेषतायें :

समाज कार्य की निम्न विशेषताओं को अंकित कर सकते हैं।

1. समाज कार्य एक व्यावसायिक सेवा है। इसमें विशेष ज्ञान एवं निपुणतायें होती हैं।
2. समाज कार्य का विशेष बल मानव व्यवहार के विश्लेषण तथा संश्लेषण पर होता है।
3. इसके द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं एवं वैयक्तिक समस्याओं का समाधान भिन्न प्रविधियों एवं ढंगों द्वारा किया जाता है।
4. यह समायोजन सम्बन्धी समस्याओं पर विशेष ध्यान देता है।
5. इसका उद्देश्य सेवार्थी को स्वावलम्बी बनाना है।
6. समाज कार्य समस्याओं का निराकरण भी करता है तथा विरोध भी करता है।
7. समाज कार्य न केवल चिकित्सालय निरोधात्मक सेवायें प्रदान करता है बल्कि विकासात्मक साधनों का एकीकरण तथा समन्वय करता है।
8. समाज कार्य की सेवायें किसी संस्था के माध्यम से प्रदान की जाती हैं।
9. समाज कार्य प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखता है।

(2) समाज कार्य के उद्देश्य :

क्राउन ने समाज कार्य के 4 उद्देश्यों का उल्लेख किया है :

1. भौतिक सहायता प्रदान करना–उन व्यक्तियों की भौतिक सहायता करना जो आर्थिक संकट में हैं।
2. समायोजन स्थापित करने में सहायता करना–परिवार, स्कूल, पड़ोस, कार्य-स्थल आदि सामाजिक पर्यावरण में समायोजन के लिए सहायता करना।
3. मानसिक समस्याओं का समाधान करना।

4. अच्छे जीवन स्तर की सुविधायें कमजोर वर्ग को प्रदान करना ।

(iii) समाज कार्य की प्रणालियाँ :

समाज कार्य की 6 प्रणालियाँ हैं :

1. सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य
2. सामाजिक सामूहिक कार्य
3. सामुदायिक संगठन
4. समाज कल्याण प्रशासन
5. सामाजिक अनुसंधान
6. सामाजिक क्रिया ।

(iv) सामाजिक सामूहिक कार्य

सामाजिक सामूहिक कार्य समाजकार्य की एक प्रणाली है, जो सामूहिक क्रियाओं द्वारा रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का विकास करता है। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की संतुष्टि आवश्यक होती है। जहाँ एक ओर सामूहिक भागीकरण व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है, वहीं दूसरी ओर भागीकरण से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य व्यक्तियों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभेदों को निपटाने तथा अपने हितों तथा समूह के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजित एवं संचालित करने की योग्यता होनी चाहिये। सामूहिक कार्य द्वारा इन विशेषताओं एवं योग्यताओं का विकास किया जाता है।

सामूहिक जीवन का आधार सामाजिक सम्बन्ध हैं। मान्टैग्यू[10] ने यह विचार स्पष्ट किया कि सामाजिक सम्बन्धों का तरीका जैविकीय निरन्तरता पर आधारित है। जिस प्रकार से जीव की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार से सामाजिक अभिलाषा भी उत्पन्न होती है। जीव के प्रकोष्ठ (cell) एक दूसरे से उत्पन्न होते हैं, उनके लिए और किसी प्रकार से उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। प्रत्येक प्रकोष्ठ अपनी कार्य प्रक्रिया के ठीक प्रकार से होने के लिए दूसरे प्रकोष्ठों की अन्तःक्रिया पर निर्भर है। अर्थात् प्रत्येक अवयव सम्पूर्ण में कार्य करता है। सामाजिक अभिलाषा भी उसका अंग है। यह मनुष्य का मूल

10. Mantagu, Ashly, M. F. : On Being Human Henry Schuman, Newyork. 1950, p. 30.

प्रवृत्तियात्मक गुण है, जिसे उसने जैविकीय वृद्धि प्रक्रिया से तथा उसकी दृढ़ता से प्राप्त किया है।

अतः सामूहिक जीवन व्यक्ति के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना उसकी भौतिक आवश्यकतायें महत्त्वपूर्ण हैं। जब सामूहिक जीवन में कोई व्यवधान उत्पन्न हो जाता है तो व्यक्ति अस्त-व्यस्त तथा विघटित हो जाता है। सामूहिक कार्य इस प्रकार की समस्याओं के समाधान करने का प्रयत्न करता है।

1. सामूहिक कार्य प्रणाली के रूप में :

जब हम कहते हैं कि सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है तो इसका अभिप्राय केवल यह एक काम करने का तरीका ही नहीं है बल्कि इसका अभिप्राय एक क्रमानुसार व्यवस्थित तथा नियोजित, समूह के साथ काम करने का तरीका है। प्रणाली, उद्देश्य प्राप्त करने का चेतन तरीका तथा अभिकल्पित साधन होती है। साधारण अर्थों में प्रणाली कोई भी कार्य करने का तरीका है परन्तु यहाँ पर हम सदैव ज्ञान की संगठित व्यवस्था ग्रहण शक्ति, सूझ तथा सिद्धान्तों की खोज करते हैं।[11]

प्रणाली और निपुणता में अन्तर है। प्रणाली का तात्पर्य ज्ञान और सिद्धान्तों के आधार पर उद्देश्यपूर्ण ढंग से अन्तर्दृष्टि तथा समझ का उपयोग है। निपुणता, ज्ञान और समझ को निश्चित परिस्थिति में उपयोग करने की क्षमता है। प्रक्रिया करने का उपयोग प्रणाली है, निपुणता इसके उपयोग की क्षमता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक प्रणाली है, जिसके द्वारा समाज कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति अन्य प्रणालियों के समान ही की जाती है। अतः हम सामूहिक कार्य के अर्थ, सिद्धान्त, दर्शन, निपुणताओं तथा कार्यविधि का वर्णन यहाँ करेंगे।

---

11. In its outer aspect, method is a way of doing something, but underneath the doing we always discover an integrated arrangement of knowledge, understanding and principles;"

Trecker, H. B. : Social Group Work : Principles and Practice, Association Press, Newyork, 1955, p. 3.

2. सामूहिक कार्य की परिभाषा :

सामाजिक सामूहिक कार्य समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता करता है। समूह द्वारा ही व्यक्ति में शारीरिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं को उत्पन्न कर समायोजन के योग्य बनाया जाता है। सामाजिक सामूहिक कार्य को व्यवस्थित ढंग से समझने के लिए हम यहाँ पर कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं।

न्यूज टेट्टर (1935)[12]

स्वैच्छिक संघ द्वारा व्यक्ति के विकास तथा सामाजिक समायोजन पर बल देते हुये तथा एक साधन के रूप में इस संघ का उपयोग सामाजिक इच्छित उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए शिक्षा प्रक्रिया के रूप में सामूहिक कार्य को परिभाषित किया जा सकता है।

क्वायल, ग्रेस (1939)[13]

सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामूहिक स्थितियों में व्यक्तियों की अन्तःक्रियाओं द्वारा व्यक्तियों का विकास करना तथा ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करना जिससे समान उद्देश्यों के लिए एकीकृत, सहयोगिक सामूहिक क्रिया हो सके।

---

12. "Social Group Work may be defined as an educational process emphasizing the development and social adjustment of an individual through voluntary association; and the use of this association as a means of furthering socially desirable ends."
    Newstetter, Wilber, I : "What is Social Group Work ?" Proceedings of National Conference of Social Work LXII 1935, p. 291.
13. "Social Group Work aims at the development of persons through the interplay of personalities in group situations and at the creation of such group situations as provide for integrated, cooperative group action for common ends."
    Coyle, Grace : "Social Group Work", Social Work Year Book, National Amciation of Social Workers, Newyork, 1937, p. 461.

विल्सन एण्ड राइलैण्ड (1949)[14]

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य एक प्रक्रिया और एक प्रणाली है, जिसके द्वारा सामूहिक जीवन एक कार्यकर्ता द्वारा प्रभावित होता है जो समूह की परस्पर सम्बन्धी प्रक्रिया को उद्देश्य प्राप्ति के लिए सचेत रूप से निर्देशित करता है जिससे प्रजातांत्रिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

हैमिल्टन (1949)[15]

सामाजिक सामूहिक कार्य एक मनो-सामाजिक प्रक्रिया है, जो नेतृत्व की योग्यता और सहकारिता के विकास से उतनी ही सम्बन्धित है, जितनी सामाजिक उद्देश्य के लिए सामूहिक अभिरुचियों के निर्माण से है।

कर्ले, आडम (1950)[16]

सामूहिक कार्य के एक पक्ष के रूप में, सामूहिक सेवा कार्य का उद्देश्य, समूह के अपने सदस्यों के व्यक्तित्व परिधि का विस्तार करना और उनके मानवीय सम्पर्कों को बढ़ाना है। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से व्यक्ति के अन्दर ऐसी क्षमताओं का निर्मोचन (Release) किया जाता है जो उसके अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बढ़ने की ओर निर्देशित होती है।

---

14. "We....see social group work or a process and a method through which group life is affected by worker who consciously directs the interacting process towards the accomplishment af goals which....are concived in a democratic frame of reference."
Wilson, G. and Ryland, G. : Social Group Work Practice, Houghton Mifflin, Boston, 1947, p. 6.

15. "Social Group Work is a psycho-social process which is concerned no less than with developing leadership ability and co-operation than with building on the interests of the group for a social purpose."
Hamilton, Gordon : Social Work as Human Relations, Columbia University Press, NewYork, 1949, p. 19.

16. Curle, Adam : "Dynamics of Group Work" in Social Group Work in Great Britain, (ed) Kuenstler, Faber and Faber, London, 1950, p. 141.

ग्रेस क्वायल (1954)[17]

सामाजिक सामूहिक सेवा कार्य को वैयक्तिक सेवा कार्य, सामुदायिक संगठन, प्रशासन और अनुसंधान कार्य की भाँति समाज कार्य अभ्यास के एक मौलिक पक्ष के रूप में माना जाता है। इसकी भिन्न विशेषताएँ इस बात में हैं कि सामूहिक कार्य का प्रयोग, सामूहिक अनुभव के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों में, व्यक्ति के विकास एवं संवृद्धि के एक साधन के रूप में किया जाता है और सामूहिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध प्रजातांत्रिक समाज उन्नति के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व एक सक्रिय नागरिकता के विकास से होता है।

ट्रेकर (1955) :

सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है जिसके द्वारा व्यक्तियों की सामाजिक संस्थाओं के अन्तर्गत समूहों में एक कार्यकर्ता द्वारा सहायता की जाती है। यह कार्यकर्ता कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रक्रिया का मार्ग दर्शन करता है जिससे वे एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर सकें और वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक विकास की दृष्टि से अपनी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास के सुअवसरों को अनुभव कर सकें।[18]

---

17. Its distinct characteristics lie in the fact that group work is used within group experience as a means to individual growth and development, and that the group worker is concerned in developing social responsibility and active citizenship for the improvement of democratic society."
    Coyle, Grace : 'Social Group Work', Social Work Year Book, AASW, Newyork, 1954, p. 480.
18. Social Group Work is a method through which individuals in groups in social agency settings are helped by a worker who guides their interaction in programme activities so that they may relate themselves to others and experience growth opportunities in accordence with their needs and capacities to the end of the individual, group and community development.
    Trecker, H. B. : Social Group Work; Principles and Practice, Association Press, Newyork, 1955, p. 5.

कोनोप्का (1963)[19] :

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक ऐसी प्रणाली है जो व्यक्तियों की सामाजिक कार्यात्मकता बढ़ाने में सहायता प्रदान करती है, उद्देश्यपूर्ण सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्तिगत, सामूहिक और सामुदायिक समस्याओं की ओर प्रभावकारी ढंग से सुलझाने में सहायता प्रदान करती है।

विंटर (1965)[20] :

लघु आमने सामने के समूहों में तथा उनके द्वारा व्यक्तियों की सेवा करने का सामूहिक कार्य एक तरीका है जिसके सेवार्थी भागोकृत लोगों में इच्छित परिवर्तन आ सके।

3. परिभाषाओं का विश्लेषण :

न्यूजटेट्टर ने अपनी परिभाषा में सामूहिक कार्य को एक शिक्षात्मक प्रक्रिया बताया है। उन्होंने कहा कि स्वैच्छिक संघ ही इस दिशा में काम करते हैं जो व्यक्ति के सामाजिक समायोजन तथा विकास को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं। परन्तु सामूहिक कार्य केवल शिक्षात्मक कार्य ही नहीं है बल्कि इसके द्वारा सेवा प्रदान की जाती है। यह कार्य केवल स्वैच्छिक संगठनों द्वारा ही नहीं होता है बल्कि दोनों प्रकार के संगठन स्वैच्छिक तथा सार्वजनिक सामूहिक कार्य प्रणाली का उपयोग करते हैं।

ग्रेस क्वायल ने सन् 1937 में कहा कि सामूहिक कार्य व्यक्तियों का विकास करता है। इस विकास का माध्यम व्यक्ति स्वयं सामूहिक स्थितियों में होता है। जब उनमें आपस में अन्तः क्रिया होती है तो व्यक्तित्व को नयी दिशा प्राप्त होती है। इसका दूसरा कार्य ऐसी सामूहिक स्थितियों को उत्पन्न करता है जहाँ पर एकीकृत एवं सहयोगिक भावना इस सीमा तक कार्य करे जिससे समान उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। क्वायल ने समस्या समाधान की बात इसमें नहीं कही है।

---

19. Konopka, G. : Social Group Work : A Helping Process, Prentice Hall, Englewood Cliffs, 1963, p. 29.
20. "Group Work is a way to serving individuals within and through small face to face groups in order to bring about the desired changes among the client participants."
    Vinter, R. D. : "Social Group Work" in H. L. Lurie (ed)" Encyclopaedia of social work, National Association of Social Workers, Newyork, 1965, p. 715.

विल्सन तथा राइलैण्ड ने सामूहिक कार्य को एक प्रक्रिया तथा प्रणाली बताया है। इसका कार्य व्यक्ति के सामूहिक जीवन को प्रभावित करना है। सामाजिक कार्यकर्ता समूहों के साथ इस प्रकार कार्य करता है जिससे कार्यक्रमों के माध्यम से वे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकें। वह चेतनरूप से अन्तःक्रिया प्रक्रिया को उद्देश्य पूर्ति के लिए निर्देशित करता है। सामूहिक कार्य द्वारा प्रजातांत्रिक लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।

हैमिल्टन के विचार अपने समय में सभी विद्वानों के विचारों से भिन्न हैं। उनका विचार है कि सामूहिक कार्य एक मनो सामाजिक प्रक्रिया है अर्थात् इसके द्वारा व्यक्ति को मानसिक रूप से तथा सामाजिक रूप से दोनों प्रकार से प्रभावित किया जाता है। वह सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक अभिरुचियों के विकास का प्रयत्न करता है। साथ ही साथ उनके नेतृत्व एवं सह-कारिता की भावना के विकास पर भी बल देता है।

आडम का मत है कि सामूहिक कार्य के दो पक्ष हैं। सामूहिक कार्य का प्रथम लक्ष्य समूह के सदस्यों मे व्यक्तित्व का विकास करना है। ऐसे कार्यक्रम आयोजित करना है जिससे आपसी सम्बन्ध प्रगाढ़ हों तथा वृद्धि एवं विकास के अवसर सुलभ हों। इसका दूसरा कार्य प्रणाली के रूप में है जो अपने कार्यक्रमों के माध्यम से समूह सदस्यों में ऐसी क्षमतायें विकसित करता है जिससे वे दूसरों से अधिक सम्पर्क करने का प्रयत्न करते हैं।

क्वायल ने दूसरी परिभाषा में सामाजिक सामूहिक कार्य के रूप को विशेष रूप से स्पष्ट किया है। सामूहिक कार्य का उपयोग सामूहिक अनुभव के उद्देश्य से किया जाता है जिससे एक ओर सामाजिक सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आवे तथा रचनात्मक सम्बन्धों का विकास हो वहीं दूसरी ओर इस अनुभव द्वारा व्यक्ति का विकास तथा उसकी समृद्धि हो। सामूहिक कार्यकर्ता का कार्य सामाजिक उत्तरदायित्व को पूरा करने की क्षमता तथा ऐसा नागरिक बनाना होना है जिससे प्रजातंत्र की जड़ें मजबूत होती हैं।

सामाजिक सामूहिक कार्य की सबसे उपयुक्त एवं पूर्ण परिभाषा ट्रेकर ने दी है। उनके अनुसार :

(i) सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है :

इसका तात्पर्य यह है कि सामूहिक कार्य के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। कार्यकर्ता को जब तक समूह की विशेषताओं, दशाओं, मनोवृत्तियों, आदि का ज्ञान नहीं होगा तब तक वह कार्य नहीं कर सकता है। उसको व्यक्ति के व्यवहार का ज्ञान तथा समूह के व्यवहार का ज्ञान दोनों का होना

आवश्यक है। कार्यकर्ता में वैज्ञानिक ज्ञान होता है। उसे कार्य-कारण का सम्बन्ध ज्ञात होता है। उसमें समझ होती है जिससे वह भिन्न-भिन्न स्थितियों तथा समूहों के साथ कार्य करने में समर्थ होता है। उसको समूह की गत्यात्यन का ज्ञान होता है। ट्रेकर का मत है कि सामूहिक कार्य के अपने कुछ सिद्धान्त हैं जो दूसरो प्रणालियों से भिन्न हैं। नियोजित समूह निर्माण का सिद्धान्त, विशिष्ट उद्देश्यों का सिद्धान्त, उद्देश्यपूर्ण कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध, निरन्तर वैयक्तिकरण, निर्देशित सामूहिक अन्तःक्रिया, प्रजातांत्रिक सामूहिक आत्म-निश्चयीकरण, लोचदार कार्यात्मक संगठन, निरन्तर प्रगतिशील कार्यक्रम, स्रोतों का उपयोग तथा निरन्तर मूल्यांकन का सिद्धान्त इसके अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सामूहिक कार्य की अपनी विशिष्ट निपुणतायें हैं, जिनको सामूहिक कार्यकर्ता अपने व्यवहार में लाता है। कार्यकर्ता में उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता होती है। वह सामूहिक स्थिति को विश्लेषित करने में दक्ष होता है। वह समूह के साथ भाग लेने में निपुण होता है। अपनी भूमिका की व्याख्या तथा उसकी आवश्यकता को समयानुसार निश्चित करने में समर्थ होता है। उसमें इस बात की निपुणता होती है कि वह प्रत्येक नयी स्थिति का निष्पक्ष होकर अध्ययन करता है। समूह की सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं को समझकर ही कार्यक्रम को आगे बढ़ाता है। वह समूह की संधियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ही कार्यक्रम सम्पन्न करता है। इसमें संस्था तथा समुदाय के स्रोतों को उपयोग में लाने की निपुणता होती है।

(ii) **सामूहिक कार्य द्वारा समूह में संस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों की सहायता की जाती है :** ट्रेकर की परिभाषा को दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सामूहिक कार्य में समूह तथा संस्था दोनों का होना महत्वपूर्ण है। अर्थात् व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है। समूह की अपनी विशेषतायें होती हैं तथा उसके गठन का भी एक उद्देश्य होता है। यह समूह किसो संस्था के अन्तर्गत ही गठित किया जाता है। ये समूह समुदाय की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। संस्था से बाहर यदि उससे सम्बन्धित है तो समुदाय में बने समूहों के साथ भी इसका प्रयोग होता है।

(iii) **सामूहिक कार्य एक कार्यकर्ता द्वारा सम्पन्न होता है जो समूह को कार्यक्रम क्रियाओं में होने वाली अन्तंक्रिया को निर्देशित करता है।** सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। वह सभी कार्यों की धुरी होती है। अतः जैसी उसमें योग्यता एवं क्षमता होती है, समूह उसी

प्रकार की उपलब्धि प्राप्त करता है। वह अपनी भूमिका का सम्पादन समूह की स्वीकृति के आधार पर करता है। जिस सीमा तक समूह उसकी अपनी भूमिका पूरी करने की आज्ञा देता है वह वहीं तक अपनी कार्य क्षेत्र की सीमा बढ़ाता है। कार्यकर्ता समूह का वैयक्तिकरण करके उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं तथा अन्तर्निहित क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करता है। वह सहायता उद्देश्यों के निर्धारण में समूह की करता है तथा कार्यक्रमों के चलाने व उनकी आवश्यकता के विषय में ज्ञान प्रदान करता है। वह समूह को मंत्रणा भी देता है तथा कार्यों के सम्पादन के लिए उत्तेजित भी करता है। कार्यकर्ता समूह की सहायता सामूहिक प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर जहाँ आवश्यक होती है, करता है। सामुदायिक स्रोतों के समुचित उपयोग में भी सहायता करता है।

(iv) **सामूहिक कार्य का उद्देश्य आपसी सम्बन्धों में वृद्धि तथा अपनी क्षमताओं के अनुसार विकास करना है।** सामूहिक कार्य के अन्तर्गत कार्यकर्ता इस प्रकार से कार्यक्रमों का आयोजन करता है जिसके द्वारा समूह के सदस्यों में दूसरे लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता बढ़ती है। वे अपनी आवश्यकताओं एवं क्षमताओं के अनुसार विकास के अवसरों का अनुभव करते हैं। समूह सदस्यों में भागीकरण की क्षमता आती है। सम्पर्कों की विधि सीखते हैं तथा निर्णय की क्षमता आती है। उत्तरदायित्व ग्रहण करना सीखते हैं। उनमें स्वयं सम्प्रेरक शक्ति काम करते लगती है, अपनत्व की भावना का विकास होता है। इन सभी गुणों से वह अन्य व्यक्तियों के साथ समायोजित करने में सफल होता है एवं वृद्धि के अवसरों से लाभ उठाता है।

(iv) **सामूहिक कार्य सहायता का उद्देश्य वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक विकास है।** सामूहिक कार्यकर्ता कार्यक्रमों का उपयोग व्यक्तियों के व्यवहार के परिवर्तन के लिए करता है। चाहे वह समस्या हो अथवा विकास का प्रश्न हो, दोनों ही स्थितियों में व्यवहार की बाधा बनता है। अतः यदि दोनों प्रकार से सफलता प्राप्त करनी है तो व्यवहार में परिवर्तन लाना होगा। इस परिवर्तन से व्यक्ति समूह में परिवर्तन आता है जिससे प्रजातांत्रिक लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

4. सामूहिक कार्य की विशेषतायें :

जब हम सामाजिक सामूहिक कार्य की उपर्लिखित परिभाषाओं का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि—

1. सामाजिक सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक प्रजातांत्रिक प्रणाली है। इसमें समूह को विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बाध्य नहीं किया जाता है। समूह

को पूरा अधिकार होता है कि वह अपने लक्ष्यों, कार्यक्रमों एवं क्रियाकलापों को अपनी रुचि के अनुसार व्यवस्थित एवं संगठित करे ।

2. सामाजिक सामूहिक कार्य व्यक्तियों में प्रजातांत्रिक जीवन के आदर्शों एवं नेतृत्व की योग्यता का विकास करता है ।

3. सामाजिक सामूहिक कार्य द्वारा समूह के सदस्यों में रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है । कार्यकर्ता एवं विशेषज्ञ के रूप में कार्य करता है ।

4. सामाजिक सामूहिक कार्य समूह के सदस्यों में आत्म निर्देशन की योग्यता का विकास करता है । कार्यकर्ता समूह की सहायता उसी सीमा तक करता है जहाँ तक समूह आवश्यक समझता है ।

5. समूह का उपयोग सामूहिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए किया जाता है ।

6. इस प्रणाली की अपनी विशिष्ट निपुणतायें, सिद्धान्त एवं प्रविधियाँ हैं ।

7. सामाजिक सामूहिक कार्य एक संस्था के माध्यम से कार्य करता है ।

8. यह व्यक्तियों की समानता में विश्वास रखता है और प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक जीवन में बराबर का भाग देने और अपने व्यक्तित्व का विकास करने का अवसर देता है ।

9. समूह सदस्यों के लिए सामूहिक कार्य एक नवीन अनुभव होता है ।

10. इसके माध्यम से व्यक्तियों की एक दूसरे के साथ काम करने, रहने, समस्याओं को समझाने तथा वास्तविकता को ज्ञात करने का अवसर मिलता है ।

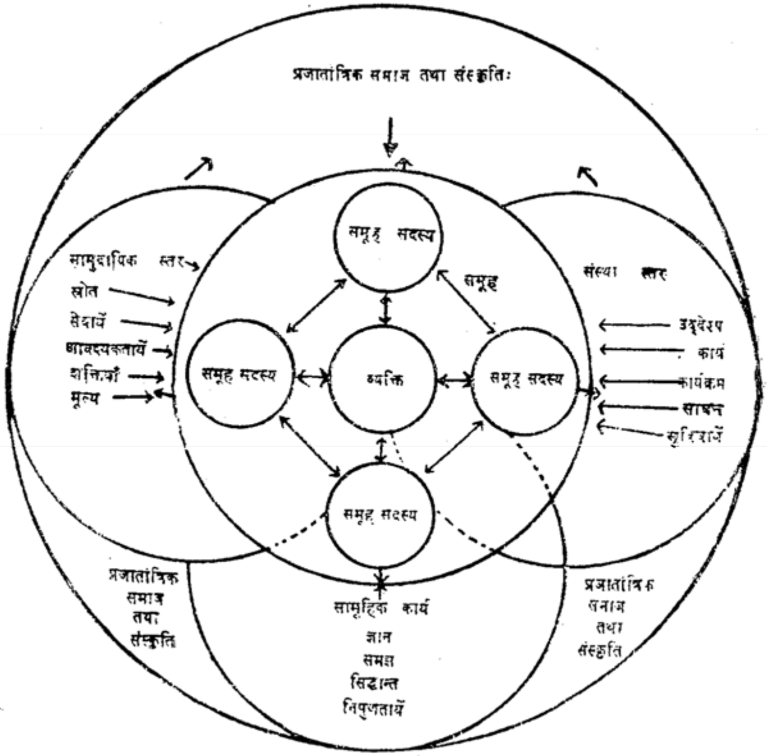
उपरलिखित विशेषताओं के आधार पर हम सामाजिक सामूहिक कार्य को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं :

"सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली जिसमें कार्यकर्ता अभिकरण के माध्यम से समूह की उन्नति एवं आत्मविकास के लिए कार्यक्रमों का निर्धारण उन्हीं के माध्यम से करता है और अन्तःसम्बन्धों को इस उन्नति और विकास का आधार मानता है ।"

सम्पूर्ण सामाजिक सामूहिक कार्य का चित्रण ट्रेकर[21] ने निम्न ढंग से किया है ।

---

21. Trecker, H. B., op. cit., p. 19.



5. सामूहिक कार्य की भ्रान्तियाँ (Miscanception) :

समाज कार्य एक नवीन व्यवसाय है, इस कारण अधिकांश लोग यहाँ तक कि शिक्षित लोग भी इसके अर्थ से पूर्णतया अवगत नहीं हैं। सामूहिक कार्य के विषय में भी अनेक अटकलें लगायी जाती हैं तथा अलग-अलग विचार प्रस्तुत किये जाते हैं। ट्रेकर ने निम्नलिखित भ्रान्तियों का उल्लेख किया है।

(i) सामूहिक कार्य एक अभिकरण (agency) के रूप में : कुछ लोगों की धारणा है कि सामूहिक कार्य एक ऐसा सामाजिक अभिकरण है, जिसके द्वारा कुछ निश्चित कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। सामूहिक कार्य के उद्देश्य स्वयं कुछ न होकर वे एक विशेष प्रकार के अभिकरण के उद्देश्य होते हैं। परन्तु यह कथन किसी भी प्रकार से सत्य नहीं है क्योंकि सामूहिक कार्य द्वारा अभिकरण के सभी अथवा कुछ कार्य पूरे किये जाते हैं।

(ii) सामूहिक कार्य एवं विशेष कार्यक्रम के रूप में : कुछ व्यक्तियों की

धारणा है कि सामूहिक कार्य एक विशेष कार्यक्रम है। परन्तु यह कार्यक्रम स्वयं नहीं है बल्कि इसके द्वारा विभिन्न कार्यक्रम क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है। यदि स्वयं कार्यक्रम होता तो कोई एक ही कार्यक्रम चलाया जाय। परन्तु यहाँ पर अनेक कार्यक्रम सम्पन्न किये जाते हैं।

(iii) **सामूहिक कार्य एक विशेष प्रकार के समूह के रूप में** : कुछ लोगों का विचार है कि सामाजिक सामूहिक कार्य एक ऐसा समूह है जिसमें विशेष क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। यह कोई विशेष समूह नहीं होता है। जहाँ जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, समूह का निर्णय कर लिया जाता है और उसके माध्यम से कार्यक्रम सम्पादित किये जाते हैं। कुछ लोग क्लब को सामूहिक कार्य मानते हैं। क्योंकि इसके द्वारा विभिन्न क्लबों व समूहों के कार्यों को सम्पन्न किया जाता है।

6. सामूहिक कार्य की मूल मान्यताएँ (Basic Assumptions)

सामाजिक सामूहिक कार्य की निम्नलिखित प्रमुख मान्यतायें हैं :

1. शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक क्रियायें व्यक्ति तथा समाज के लिए लाभदायक होती हैं। सामूहिक कार्यकर्ता इसी मान्यता के आधार पर व्यक्ति को समूह के माध्यम से शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक दोनों प्रकार की सेवायें तथा उनका अनुभव प्रदान करता है।

2. कार्यकर्ता में अपनी भूमिका निभाने की अर्न्तदृष्टि होती है। वह सदैव समूह के अन्तर्गत दो बातों का ध्यान रखता है। एक तरफ वह कार्यक्रम, क्रियाओं तथा उनकी उन्नति देखता है तथा दूसरी ओर समूह में सामाजिक सम्बन्धों की भूमिका को ध्यान में रखता है। अतः वह अपने सम्बन्धों को भी साथ ही साथ समझता जाता है।

3. कार्यक्रम सदैव व्यक्तियों पर प्रभावात्मक होना चाहिए। यह मान्यता इस बात को निश्चित करती है कि कार्यकर्ता के सम्बन्ध व्यक्ति-केन्द्रित हों न कि क्रिया-केन्द्रित। कार्यकर्ता की दृष्टि से सफलता खेल के प्रकार में नहीं बल्कि सदस्यों के अनुभवों से सम्बन्धित होती है। कार्यक्रम सदैव अनुभव के अनुसार आयोजित किये जाने चाहिये।

4. सामूहिक कार्य के अन्तर्गत कार्यक्रम तथा क्रियायें कार्यस्थिति, पारिबारिक सम्बन्ध तथा सामुदायिक मनोवृत्ति पर आधारित हों। कार्यकर्ता को न केवल सांवेगिक, सामाजिक तथा शारीरिक तत्वों के कारकों का ज्ञान हो बल्कि उसे समूह के सदस्यों, कार्यस्थिति, दशा, परिवारिक सम्बन्ध तथा सामुदायिक मनोवृत्तियों से अवगत होना चाहिये।

5. सदस्यों के व्यवहार का ज्ञान आवश्यक होता है । यदि कार्यकर्ता व्यक्तियों को शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाओं द्वारा पूर्ण सफलता एवं उद्देश्य से सहायता करना चाहता है तो उसे उनके व्यवहारों का ज्ञान अवश्य हो। बिना इस ज्ञान के वह सफल नहीं हो सकता है ।

6. कार्यकर्ता व्यवसायिक रूप से कार्य करने में सक्षम हो । इसका तात्पर्य यह है कि कार्यकर्ता में आवश्यक योग्यता, निपुणता, ज्ञान तथा कार्य करने की आन्तरिक इच्छा हो और वह व्यावहारिक रूप से अपने उद्देश्यों को कार्यान्वित करने में निपुण हो ।

समाजकार्य व्यक्तियों की आवश्यकता की संतुष्टि पर बल देता है । जब व्यक्ति की आवश्यकताओं का समाधान नहीं होता है तो उसका सामाजिक संतुलन बिगड़ जाता है । इस स्थिति में समाज कार्य व्यक्तियों की वैयक्तिक रूप से या समूह के माध्यम से सहायता करता है ।

7. सामूहिक कार्य दर्शन :

1. व्यक्ति अकेला नहीं रहता है । वह परिवार जाति तथा द्वितीयक समूहों में रहकर ही उन्नति एवं विकास कर सकता है । उसका उचित विकास तभी हो सकता है जब वह सम्पूर्ण का एक अंग के रूप में रहता है तथा कार्य करता है । उसके सभी शारीरिक तथा मानसिक कार्य तभी सही, सामान्य व स्वस्थ विकसित होकर व्यवहार करते हैं जब वे पर्याप्त सामाजिक भावनाओं के साथ जुड़े रहते हैं व सहयोग के लिए संगठित व एकत्रित होते हैं । मानव जीवन की सभी समस्यायें सहयोग की क्षमता तथा उसकी तैयारी की माँग करती हैं । यही सामाजिक भावनाओं का दृष्टिगोचर चिह्न है ।[22]
2. प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे की आवश्यकता होती है क्योंकि समूह में वह अधिक शक्तिशाली हो जाता है । साधारणतया मनुष्य एक निर्बल प्राणी है । जन्म से वह दूसरों पर निर्भर होता है । वह अपनी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास समूह के ही माध्यम से करता है ।
3. सामूहिक अनुभव की आवश्यकता मौलिक एवं सर्वमान्य हैं । ग्रेस क्वायल के अनुसार सामूहिक अनुभव 5 प्रकार से महत्त्वपूर्ण हैं :

   (i) **परिपक्वता प्रक्रिया** (Maturing process) में जिस प्रकार से परिवार

---

22. Adler, Alfred : Social Interest : A Challange to Mankind, Faber and Faber, Newyork, 1938, p. 283-84.

का महत्वपूर्ण योगदान होता है उसी प्रकार से लघु समूहों की भूमिका अतुलनीय होती है। बालकों का नर्सरी स्कूल, पूर्ण विद्यालय शिक्षा, खेल समूह तथा इसी प्रकार के अन्य समूहों से जो अनुभव प्राप्त होता है उसी के आधार पर उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है।

(ii) **दूसरे सम्बन्धों के लिए पूरक** (Supplement to other relationship) : सामूहिक अनुभव न केवल व्यक्तित्व का विकास करते हैं बल्कि वे सम्बन्धों को और अधिक प्रगाढ़ बनाने व उनका सकारात्मक योगदान करने में महत्त्वपूर्ण होते हैं। सामूहिक अनुभव से प्रौढ़ भी लाभ प्राप्त करते हैं तथा सम्बन्धों का उचित प्रयोग करना सीखते हैं।

(iii) **सक्रिय नागरिकता की तैयारी** (Preparation for active citizenship) : जब व्यक्ति सामूहिक क्रियाओं में भाग लेता है तो वह अपने अधिकारों व कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करता है। समूह में नागरिकता की शिक्षा देने की बड़ी क्षमता होती है। वह स्थानीय तथा राष्ट्रीय समस्याओं से अवगत होता है तथा उन समस्याओं को दूर करने की प्रक्रिया में भाग लेता है।

(iv) **सामाजिक विघटन के लिए उपचार** (Cerrective for social disorganization) : समूह का उपयोग बाल अपराधियों तथा अपराधियों के साथ इसीलिए किया जाता है क्योंकि इसके माध्यम से वे नये तरीके से रहना सीखते हैं और नकारात्मक प्रवृत्तियों का ह्रास होता है।

(v) **अभ्यन्तर मनोवैज्ञानिक असमायोजन का उपचार** (Treatment of Intrapsychic maladjustments) : यह मानसिक रोगियों के साथ महत्वपूर्ण कार्य करता है।[23]

4. सामूहिक कार्य की धारणा है कि सामाजिक संस्था के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास और मनोवृत्तियों में परिवर्तन दूसरे लोगों के अनुभवों द्वारा किया जा सकता है। व्यक्तियों के लिए सामाजिक संस्थायें एक यंत्र का कार्य करती हैं। इसके द्वारा ही वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हैं तथा विकास की ओर बढ़ते हैं। संस्थायें समूहों की कुछ सामान्य तथा कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए संगठित की जाती हैं तथा उनका प्रतिनिधित्व करती हैं।

---

23. Coyle, Grace : "Some Basic Assumptions about Social Group Work;" in Marjorie Murphy (ed) The Social Group Work Method in Social Work Education; Council on Social Work Education, NewYork, 1959, pp. 88–105.

5. जिन समूहों में सामूहिक कार्यकर्ता अपनी सेवाओं का सदुपयोग करता है, उनके सदस्यों में न केवल एक गुण का विकास होता है वरन् सम्पूर्ण प्रतिभा का विकास होता है। व्यक्ति न केवल समूहों में विकास करते हैं बल्कि समूहों द्वारा ही विकास सम्भव होता है।
6. समूह द्वारा व्यक्तित्व का विकास, अभिरुचियों में परिवर्तन तथा आदतों का संग्रहण होता है। इसलिए यदि समूह का निर्माण सुनियोजित ढंग से किया जाता है तो उद्देश्य की पूर्ति सुगमता से हो सकती है।
7. पारस्परिक स्वीकृति के बिना सामाजिक जीवन का कोई महत्त्व नहीं है। स्वीकृति अस्वीकृति की घटना समूह में उस समय घटित होती है, जब समूह में अन्तःक्रिया होती है तथा विचारों, अभिरुचियों व इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है।
8. सामूहिक कार्य का विश्वास है कि जनतांत्रिक व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार है।[24] उसका विश्वास है कि प्रजातंत्र दो बातों पर निर्भर है : (1) व्यक्तियों को प्रजातंत्र समझने का अवसर मिले (2) उन्हें जनतांत्रिक ढंग से रहने का अवसर प्राप्त हो।
9. सामूहिक कार्य प्रणाली समूह द्वारा व्यक्तियों की आवश्यकताओं और रुचियों की अधिकतम पूर्ति की स्वतंत्रता देती है।
10. सामाजिक सामूहिक कार्य लक्ष्य का साधन है। और यह लक्ष्य है व्यक्ति का विकास।[25]

8. सामूहिक कार्य का उद्देश्य :

सामूहिक कार्य का उद्देश्य समूह द्वारा व्यक्तियों में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता एवं आत्मनिर्देशन का विकास करना है। सामाजिक कार्यकर्ता व्यक्तियों में सामंजस्य को बढ़ाने और सामूहिक उत्तरदायित्व एवं चेतना का विकास करने में सहायता देता है। सामूहिक कार्य द्वारा व्यक्तियों में इस प्रकार की चेतना उत्पन्न की जाती है तथा क्षमता का विकास किया जाता है जिससे वे समूह और समुदाय की क्रियाकलापों में, जिसके वे अंग हैं, बुद्धिमत्तापूर्वक भाग ले सकते हैं। उन्हें अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं, रुचियों आदि की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।

---

24. Smith, T. V. and Lindeman, E. : The Democratic way of Life, Meutor Books, NewYork, 1961.
25. Trecker, H.B. op. cit, p. 11.

क्वाइल[26] ने सामूहिक कार्य के निम्न उद्देश्य बताये हैं :

1. व्यक्तियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार विकास के अवसर प्रदान करना,
2. व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों, समूहों और समुदाय से समायोजन प्राप्त करने में सहायता देना,
3. समाज के विकास हेतु व्यक्तियों को प्रेरित करना,
4. व्यक्तियों को अपने अधिकारों, सीमाओं और योग्यताओं के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों के अधिकारों, योग्यताओं एवं अन्तरों को पहचानने में सहायता देना।

मेहता [27] ने सामूहिक कार्य के निम्न उद्देश्य बताये हैं :

1. परिपक्वता (**maturation**) प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों की सहायता करना,
2. पूरक सांवेगिक तथा सामाजिक खुराक प्रदान करना,
3. नागरिकता तथा जनतांत्रिक भागीकरण को बढ़ावा देना,
4. असमायोजन व वैयक्तिक तथा सामाजिक विघटन का उपचार करना।

विल्सन तथा राइलैण्ड[28] ने कहा है कि अधिकांश सामाजिक संस्थायें जो समूहों के लिए कार्य करती हैं, दो उद्देश्य रखती हैं :

1. समूह के माध्यम से व्यक्तियों के सांवेगिक संतुलन को बनाना तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रखना,
2. समूह की उन उद्देश्यों को प्राप्ति में सहायता करना जो आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक जनतंत्र के लिए आवश्यक हैं।

ट्रेकर[29] ने भी इसी प्रकार के उद्देश्यों का वर्णन किया है। उनके अनुसार सामाजिक सामूहिक कार्य का मूल रूप से उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का सम्भव

26. Coyle, Grace : op, cit., pp. 480-81.
27. Mehta, Vera D. "Group Work," Encyclopaedia of Social Work in India, Ministry of Welfare, Govt. of India, 1986, Vol II, 7.
28. Wilson, G. and Ryland, G. : Op. Cit, p. 61.
29. "Fundamentally the purpose of social group work is to bring about the highest possible development of human personality, dedicated and devoted to the democratic ideal."

    Trecker, H.B., Op. Cit., pp. 67-68

उच्चतम विकास करना है जो जनतांत्रिक आदर्शों के प्रति समर्पित तथा अनुरक्त हो।

फिलिप्स[30] ने सामूहिक कार्य के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए कहा कि इसका प्रमुख कार्य सदस्यों का समाजीकरण करना है।

कोनोप्का[31] का विचार है कि सामूहिक कार्य सामूहिक अनुभव द्वारा सामाजिक कार्यात्मकता में वृद्धि करता है।

उपरिलिखित विचारों के अध्ययन के पश्चात् हम सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित उद्देश्यों को पाते हैं :

(i) **जीवनोपयोगी आवश्यकताओं को पूर्ति करना** (To fulfil essential needs) : सामूहिक कार्य का प्रारम्भ आर्थिक समस्याओं का समाधान करने से हुआ है। परन्तु कालक्रम के साथ-साथ यह अनुभव किया गया कि आर्थिक आवश्यकता का समाधान सभी समस्याओं का समाधान नहीं है। स्वीकृति, प्रेम, भागीकरण सामूहिक अनुभव, सुरक्षा आदि ऐसी आवश्यकतायें हैं जिनको भी पूरा करना आवश्यक है। इस आधार पर अनेक संस्थाओं का विकास हुआ जिन्होंने जीवनोपयोगी आवश्यकताओं को पूरा करने का कार्य प्रारम्भ किया। आज सामूहिक कार्यकर्ता समूह में व्यक्तियों को एकत्रित करके उनके एकाकीपन की समस्या का समाधान करता है। भागीकरण को प्रोत्साहन देता है तथा सुरक्षा की भावना का विकास करता है।

(ii) **सदस्यों को महत्व प्रदान करना** (To give importance) : आधुनिक समय में भौतिकवादी युग के कारण व्यक्ति का कोई महत्व न होकर धन, मशीन तथा यंत्रों का महत्व हो गया है। इसके कारण व्यक्ति में निराशा तथा हीनता के लक्षण अधिक प्रकट होने लगे हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसका कुछ

---

30. Phillips Helen, U. : Essentials Skills of Social Group Work, Association Press, Newyork, 1957.
31. Social Group work is a method of social work which helps individuals to enhance their social functioning through purposeful group experiences and to cope more effectively with their personal, group or community problems."
Konopka, G. : Social Group Work : A Helping Process; Englewood Cliffs, Prentice Hall, 1963, p. 29.

महत्व हो तथा समाज में सम्मान प्राप्त हो। यह समस्या युवावस्था में उतनी गम्भीर नहीं होती है जितनी कि वृद्धावस्था में। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि केवल वृद्धावस्था में ही विशेष सेवाओं की आवश्यकता होती है। यदि हम मानव विकास के स्तरों का सूक्ष्म अवलोकन करें तो ऐसा कोई भी स्तर नहीं है जहाँ पर व्यक्ति अपना सम्मान प्राप्त करने की इच्छा न रखता हो। बाल अपराध का मुख्य कारण बालक की महत्ता एवं स्वीकृति को अस्वीकार करना है। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता समूह के सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान करता है तथा उन्हें उचित स्थान व स्वीकृति देता है।

(iii) **सामञ्जस्य स्थापित करने की शक्ति का विकास करना** (To develop strength for adjustment) : व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता सामञ्जस्य प्राप्त करने की होती है। व्यक्ति इससे जीवन रक्षा के अवसर प्राप्त करता है तथा वाह्य पर्यावरण को समझ कर अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति जब तक जीवित रहता है तब तक अनेकानेक समस्यायें उसको घेरे रहती हैं और समायोजन स्थापित करने के लिए बाध्य करती रहती हैं। सामूहिक कार्यकर्ता सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति को सामञ्जस्य स्थापित करने की कुशलता प्रदान करता है। व्यक्ति जब समायोजन स्थापित करने में असमर्थ होता है तो इसका कारण उसकी या उसके पर्यावरण की कमियाँ हैं। व्यक्ति में शासन करने, अधिकार जमाने, आवश्यक हस्तक्षेप करने, वास्तविक स्थिति को अस्वीकार करने की, उत्तरदायित्व को पूरा न करने, दूसरों का सहयोग स्वीकार न करने आदि के कारण सामञ्जस्य स्थापित करने में असमर्थ होता है। सामूहिक कार्यकर्ता कार्यक्रमों के माध्यम से उन कमियों को दूर करके सामान्य गुणों को विकसित करता है।

(4) **आत्म विश्वास व आत्म निर्भरता को विकसित करना** (To develop self confidence and self dependency) : जब तक व्यक्ति में आत्म विश्वास नहीं होता है तब तक वह न तो कोई अपने आप निर्णय ले सकता है और न ही कोई जोखिम का कार्य करता है। आत्म निर्भरता का होना भी व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक होता है। सामूहिक कार्यकर्ता व्यक्ति में इन गुणों का विकास करने के लिए प्रत्येक सदस्य को पृथक् पृथक् कार्य करने तथा उत्तरदायित्व ग्रहण करने का अवसर देता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमताओं, शक्तियों एवं निपुणताओं को प्रगट करने का पूरा अवसर देता है जिसके कारण उनमें स्वतः आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता विकसित हो जाती है।

(5) **प्रजातांत्रिक नेतृत्व का विकास करना** (To develop democratic

leadership) : सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता का जहाँ एक ओर उद्देश्य व्यक्तियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना है वहीं दूसरी ओर प्रजातांत्रिक नेतृत्व का विकास भी करता है। सामूहिक कार्य समूह के प्रत्येक सदस्य को नेतृत्व करने का अवसर देता है। नेता यद्यपि किसी प्रकार की राय तो दे सकता है परन्तु अंतिम निर्णय समूह पर निर्भर होता है। नेता सभी सदस्यों को समानता, समान अवसर एवं उन्नति की समान सुविधायें प्रदान करता है।

(6) **सामाजिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाना तथा मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान करना** (To strengthen social relations and to solve psycho-social problems) : व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों में पैदा होता है और सामाजिक सम्बन्धों में ही अपना जीवन व्यतीत करता है। इसी कारण मैकाइवर ने समाज को सामाजिक सम्बन्धों का जाल कहा है। सम्बन्धों के आधार पर ही समाज के कार्य सम्पन्न होते हैं। परन्तु कभी-कभी व्यक्ति इन सम्बन्धों को पूरा करने में असमर्थ होता है जिसके कारण मानसिक तनाव एवं अन्य मानसिक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी व्यक्ति मानसिक रोगों का शिकार भी हो जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता व्यक्तियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार द्वारा तनाव को कम करता है। कार्यकर्ता का उद्देश्य न केवल तनाव को कम करना होता है बल्कि समान व्यक्तियों को सामूहिक अनुभव द्वारा ज्ञात कराता है कि उसकी कठिनाइयाँ उसकी असफलताओं के कारण ही नहीं हैं बल्कि अन्य व्यक्ति भी इसी प्रकार से पीड़ित हैं। ऐसा होने पर उनमें संतोष आता है और समाधान की शक्ति आती है। उनमें सम्बन्ध स्थापन की इच्छा का विकास होता है। उनमें नवीनता का संचार होता है तथा वे स्वयं अपनी समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं।

9. सामाजिक सामूहिक कार्य एक वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में :

जिस प्रकार से औषधि शास्त्र तथा कानून में वैज्ञानिक प्रणाली आधार होती है उसी प्रकार सामूहिक कार्य में भी वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग किया जाता है। वैज्ञानिक प्रणाली में तथ्यों की खोज (fact findings), निदान (Diagnosis) तथा उपचार (Treatment) तीन स्तर होते हैं जिनका सामूहिक कार्य में उपयोग किया जाता है।

(i) **तथ्यों की खोज** : सामाजिक सामूहिक कार्य में तथ्यों की खोज निम्न साधनों द्वारा की जाती है :

(1) अवलोकन द्वारा (2) समूह सदस्यों को सुनने के द्वारा (3) असामयिक सदस्यों की भेंट के द्वारा (4) सदस्यों के परिवार से मिलकर तथा उनसे सम्पर्क द्वारा (5) होम विजिट्स द्वारा (6) आर्थिक तथा सामाजिक प्रभावों की जानकारी

ज्ञात करके (7) कार्यस्थल की दशा को जानकर (8) जहाँ से सेवार्थी आया है।

इस प्रकार सामूहिक कार्य में तथ्यों की खोज निम्न ज्ञान एवं समझ पर आधारित है।

1. व्यक्ति के व्यवहार तथा उसकी गत्यात्मकता के विषय में सम्पूर्ण जानकारी।
2. उसका समूह में सम्बन्ध तथा भूमिका।
3. व्यक्ति पर समूह के प्रभाव की सीमा।
4. समूह पर व्यक्ति के प्रभाव की सीमा।
5. सम्पूर्ण समूह का वातावरण।
6. समूह के बाहर अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध।
7. सामाजिक तथा आर्थिक पर्यावरण।[32]

सामूहिक कार्यकर्ता समूह के तथ्यों की खोज करता है। वह इस बात का पता चलाता है कि समूह की संधियों, इच्छायें, शक्तियाँ एवं सीमायें क्या हैं। वह समूह की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करता है, सामाजिक संरचना का पता लगाता है जहाँ से समूह सदस्य आया है। वह उनकी आवश्यकताओं तथा उनकी प्राथमिकता तय करता है। उन साधनों का पता चलाता है जो संस्था अथवा समुदाय में उपलब्ध हैं। कार्यकर्ता सदस्यों परिवारों के विषय में, उनकी टूटी आशाओं के विषय में, उनकी निरर्थकता की भावनायें तथा उनके झगड़ों के विषय में, साथ ही साथ उनकी शक्तियों के विषय में जानने का प्रयत्न करता है।[33]

(2) **निदान** (Diagnosis) : निदान शब्द चिकित्साशास्त्र में अधिकांशत: प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य रोग के सम्पूर्ण ज्ञान से है। समाजकार्य में निदान का अर्थ न केवल समस्या के पूर्ण ज्ञान से होता है बल्कि सेवार्थी के सम्बन्ध में भी पूर्ण ज्ञान से होता है।[34] सामूहिक कार्यकर्ता तथ्यों को ज्ञात कर लेने के पश्चात् यह पता लगाता है कि कौन कौन से कारक हैं जो समूह व व्यक्ति के वर्तमान व्यवहार के लिये उत्तरदायी हैं। वह उनकी खोज करके समस्या का निदान करता है। इस निदानात्मक उपकल्पना को निश्चित करना हर प्रकार से

32. Friedlander, W.A., Concepts and Methods of Social Work, Prentice Hall of India, New Delhi, 1977, p. 107.
33. Sampson, Edward E. Brandon, A. C. : Effects of Role and opinion Deviation on Small Group Behaviour, Sociometry, 27, 1964, p. 261-81.
34. Hamilton, A. : Principles of Social case work Recording, Columbia University Press, Newyork, 1966, p. 66.

आवश्यक होता है यदि सेवार्थी की समस्या का समाधान चेतन अथवा अचेतन किसी भी प्रकार से करना है ।[35]

निदान के अन्तर्गत हम दो बातों का मुख्य रूप से उत्तर देते हैं :

(1) समूह की समस्या अथवा समस्याओं के क्या कारण हैं ?

(2) किन-किन साधनों द्वारा समस्या का निदान किया जाता है। निदान का कार्य तथा संकलन साथ ही साथ चलता है ।

निदान के अन्तर्गत 3 चरण होते हैं :

(1) तथ्यों का संकलन : (1) समस्या का मूल्यांकन ।
(2) समूह के व्यक्तित्व का मूल्यांकन ।
(3) सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन ।

(2) कारणान्वेषण : (1) समस्या का रूप क्या है ?
(2) सामुदायिक पर्यावरण का समूह पर क्या प्रभाव पड़ा है या पड़ रहा है ।
(3) समस्या उत्पत्ति में अथवा विकास के मार्ग में कौन-सी बाधायें हैं ।
(4) समस्या के उपचार के कौन कौन साधन सुलभ हैं तथा कौन कौन सुलभ नहीं हैं जिसका प्रबन्ध करना है ।

(3) श्रेणीकरण : (1) समस्या के आधार समूह सदस्यों का वर्गीकरण अथवा समूहों का वर्गीकरण ।
(2) समस्या के समाधान में संस्था की भूमिका को निश्चित करना ।

सामूहिक कार्य में निदान की प्रक्रिया कभी भी समाप्त नहीं होती है । प्रथम स्तर से प्रारम्भ होकर समस्या के समाधान तक चलती है । केवल उसके आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता है । इधर कई वर्षों से सामूहिक कार्य में घनिष्ठता (Intimacy) का महत्व बढ़ता जा रहा है । इसके समूह की सामूहिक प्रविधियाँ जैसे प्रतिरोधी समूह (encounter group) संवेदनात्मक समूह मराथोन्स (Marathons) समूह बन गये हैं ।[36, 37, 38]

35. Tousing, Helen P. : Treatment as an Aid to Diagnosis. The Family, Jan. 1939, pp. 289-94.
36. Rogers, Carl. The Process of Basic Encounter Groups' in Challange, of Humanistic Psychology (ed) James F. Bugeutal, McGrow Hill, Newyork, 1967, pp. 261-268.
37. Masters, W. H. & V.E. Johnson : Human Sexual Response, Little Brown, Boston, 1966.
38. Kaplan, H. I. and Benjamin, J. S., Sensitivity Through Encounter and Marathon; Aronson, J. Newyork, 1972.

उपचार (Treatment) :

जब सामूहिक कार्यकर्ता तथ्य संकलन तथा निदान द्वारा यह निश्चित कर लेता है कि समूह किस प्रकार की सहायता चाहता है और उसकी इच्छा किस सीमा तक पूरी की जा सकती है तो वह उसके अनुरूप विभिन्न 'कार्यक्रमों का आयोजन सिद्धान्तों एवं प्रविधियों के आधार पर करता है। साथ ही साथ वह मूल्यांकन करता रहता है कि उसके कार्यक्रम का प्रभाव उस विशेष समस्या को हल करने में कहाँ तक सफल हो रहा है।

10. सामूहिक कार्य के उपागम (Approaches)

सामाजिक सामूहिक कार्य के उपागमों को 4 बृहद खण्डों में वर्गीकृत किया गया है।[39]

(1) **दीर्घ अवधि/लघु अवधि समूह** (Long term/Short term Group) : इन समूहों की स्थिति का निर्धारण सेवार्थी की उपलब्धता, अनुकूलता तथा प्रकृति पर निर्भर होती है। सुधारात्मक तथा चिकित्सात्मक संस्थाओं में सामूहिक कार्य की अवधि निश्चित होती है। लघुकालीन समूह वहाँ पर अधिक उपयुक्त होते हैं जहाँ पर सेवार्थी काफी दूर दूर निवास करते हैं। उद्योगों एवं कारखानों में भी लघुकालीन समूह अच्छा कार्य करते हैं। लेकिन जब कार्यकर्ता कई समूहों को एक साथ चला रहा हो तो ऐसे ही समूह उपयुक्त होते हैं। आधुनिक समय में लघु अवधि के समूहों के साथ कार्य करने को प्रोत्साहन दिया जाना है क्योंकि इनका प्रभाव अधिक होता है।

(2) **वैयक्तिक और/या सामूहिक अभिविन्यास** (Individual and/or group orientes) : यह निश्चित करना होता है कि समूह को या व्यक्तियों को सामूहिक कार्य के माध्यम से प्राथमिकता दी जाय। चिकित्सात्मक समूहों में व्यक्ति पर प्राथमिक ध्यान होता है जबकि सामाजिक क्रिया अथवा उद्देश्य पर आधारित समूह में समूह के लक्ष्य को प्राथमिकता प्राप्त होती है।

3. **संकटकालीन हस्तक्षेप** (Crisis Intervention) :

कभी 2 ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ पर तुरन्त सहायता की आवश्यकता होती है। इस दशा में सामूहिक कार्यकर्त्ता तुरन्त कोई उपाय करता है।

4. **बन्द या खुले समूह** (Closed or open groups) :

यह समूह पर निर्भर करता है कि वह नये सदस्यों को अपने कार्यक्रम में भर्ती करे या न करे। चिकित्सात्मक समूह प्रायः खुले समूह होते हैं जबकि बाल निर्देशन गृहों में बन्द समूह होते हैं।

---

39. Mehta, Vera D, : Social Group Work, Encylopaedia of Social Work in India, Govt. of India, 1986, Vol. II, p. 9.

सामूहिक कार्य के प्रारूप (Model)

सामूहिक कार्य के 3 प्रमुख प्रारूप हैं[40] :

1. सामाजिक लक्ष्य प्रारूप (The social goals model)
2. चिकित्सा सम्बन्धी प्रारूप (The remedial model)
3. परस्पर प्रारूप (Reciprocal model)

सामाजिक लक्ष्य प्रारूप : इस प्रारूप का उल्लेख क्वायले, केसर, फिलिप्स, कोनोप्का, कोहेन, मिलर जिन्सवर्ग तथा क्लीन के लेखों में किया गया है। इस प्रारूप के दो मुख्य प्रत्यय हैं : सामाजिक चेतनता (Social consciousness) तथा (Social responsibility)। सामूहिक कार्य का उत्तरदायित्व दक्षपूर्ण एवं ज्ञानवान नागरिकों को बनाना है। इसका कार्य क्रिया के विकल्प को परिभाषित करना है जिससे राजनैतिक तथा सामाजिक क्रिया की वृद्धि होती है। इस प्रारूप का कहना है कि सामाजिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य में एकरूपता (Unity) होती है। प्रत्येक व्यक्ति समाज की वर्तमान जीवनधारा में कुछ न कुछ योगदान करने की क्षमता रखता है। अतः इस प्रारूप का विश्वास है कि उसको अपने सामाजिक योगदान के लिए अवसरों की उपलब्धि तथा सम्प्रेरक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। सामाजिक भागीकरण चिकित्सात्मक रूप में इसी प्रारूप के अन्तर्गत किया जाता है।

यह प्रारूप कार्यकर्ता को प्रभावकारी व्यक्ति मानता है क्योंकि परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धों के आधार पर ही सामाजिक चेतना तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है।[41]

सामाजिक लक्ष्यों का प्रारूप सामुदायिक स्तर पर सामूहिक कार्य की सेवाओं को उपयोग में लाता है तथा संस्था का स्थान महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि संस्था के माध्यम से विभिन्न प्रकार की सामाजिक चेतना उत्पन्न की जा सकती है। सामुदायिक अध्ययन के उपरान्त समूहों के माध्यम से सामाजिक क्रिया का सूत्रपात करता है। संस्था से वे सलाह, दक्षता तथा निपुणता एवं आवश्यक सामग्री प्राप्त करते हैं। इस प्रारूप का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन करना है।

---

40. Specht, Harry and Anne, Vickery : Integrating Social Work Methods, George Allen & Unwin, London, 1978, pp. 135-149.
41. Wiener, Social Change and Social Group Work Practice. p. 109, quoted in above book, p. 138.

(2) चिकित्सा सम्बन्धी प्रारूप :

चिकित्सा सम्बन्धी प्रारूप का विकास रेडेल (Redl), कोनोप्का (Konopka), स्लोअन (Sloan), फिशर (Fisher) तथा गैन्टनर (Gantner) के कार्यों से हुआ।[42] लेकिन इस प्रारूप का व्यवस्थित रूप राबर्ट विन्टर (Robart Vinter)[43] ने दिया। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता वैयक्तिक एवं सामूहिक सम्बन्धों से सम्बन्धित समायोजन की समस्याओं को सामूहिक कार्य द्वारा सुलझाने एवं समाधान करने में समर्थ एवं निपुण होता है। यह प्रारूप किलकिल प्रारूप जैसा ही है, जहाँ पर असमायोजित व्यक्ति को समायोजित किया जाता है तथा उसकी सामाजिक कार्यात्मकता को बढ़ावा दिया जाता है। समूह को एक पत्र के रूप में उपयोग में लाया जाता है। इस प्रकार का समूह पहले से निश्चित होता है तथा कार्यकर्ता अपने कार्यक्रमों के माध्यम से उपचारात्मक कार्य करता है।

कार्यकर्ता इस प्रारूप में परिवर्तनकारी एजेंट (Change Agent) माना जाता है, जो उपचार के लिए सामाजिक संरचना में अथवा सामूहिक स्थिति में परिवर्तन लाता है। इस प्रारूप का चिकित्सात्मक लक्ष्य (treatment goal) है।

इस प्रारूप ने निम्न सैद्धान्तिक तथ्यों को सुदृढ़ता प्रदान की है :

1. व्यक्ति की समूह की कार्यात्मिकता के निदान के लिए प्रथ-प्रदर्शन सूची।
2. समूह निर्माण के आधार (Crieteria)।
3. क्लिनिकल टीम भागीकरण के आधार।
4. निदान के लिए समूह का उपयोग।

इस प्रकार इस प्रारूप ने चिकित्सात्मक संस्थाओं में काम करने वाले व्यक्तियों को बहुत अधिक सुविधायें प्रदान की हैं।

3. **परस्पर आदान-प्रदान का प्रारूप** (Reciprocal) :

यह प्रारूप व्यक्ति तथा समूह दोनों को समान रूप से सहायता देता है। यह प्रारूप इस मान्यता पर आधारित है कि सामूहिक कार्य समाज कार्य की एक सामान्य प्रणाली है, जो मानव दशाओं में सुधार का प्रयत्न करती है। ये दशायें

---

42. Sarri, Rosemary, Diagnosis in Social Group Work, University of Michigan, School of Social Work, Ann Arbor, 1964.
43. Vinter, Robart D. : Group Work : Perspectives and Prospects Social Work with Groups, NASW, Newyork, 1959.

चाहे एक व्यक्ति की हों या समूह की। इस क्षेत्र में स्क्वार्ट, विलियम (Schwartz, Villiam)[44] के विचार बहुत महत्वपूर्ण हैं। उनका प्रभाव इस प्रारूप पर विशेष रूप से पड़ा। सामूहिक कार्य का दोहरे केन्द्र बिन्दु के विषय में केसर ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। इस प्रारूप को सुदृढ़ करने के लिए इमनुअल ट्रोप्प[45] के विचार बड़ा योगदान देते हैं। यह प्रारूप व्यक्ति और समाज में जैविकीय, व्यवस्थित सम्बन्ध को स्वीकार करता है। इन दोनों में अन्तर्निर्भरता है। यह अन्तर्निर्भरता ही समाजकार्य का केन्द्र बिन्दु है। छोटे समूहों में वैयक्तिक एवं सामूहिक कार्यात्मकता को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार समाज कार्य का क्षेत्र रोकथाम (Prevention), प्रावधान (Provision) साथ ही साथ पुनर्स्थापन करना है। इस प्रारूप में समूह को प्राथमिकता दी जाती है। इसमें इस बात का प्रयास किया जाता है कि ऐसी क्रियायें करे, जिससे अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में वृद्धि हो। समूह सदस्य अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण सामूहिक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर करते हैं। कार्यकर्ता सम्बन्धों को अधिक महत्व देता है क्योंकि उन्हीं के द्वारा सामूहिक लक्ष्यों की पूर्ति होती है।

स्कवार्ट ने समाज कार्य अभ्यासकर्ताओं के 5 प्रमुख कार्य बताये हैं :

1. पृष्ठभूमि को ढूँढ़ना, जहाँ पर सेवार्थी की अपनी आवश्यकताओं का प्रत्यक्षीकरण तथा सामाजिक भागीकरण दोनों में समानता हो।
2. उन बाधाओं को ढूँढ़ना तथा ललकारना जो सामान्य हितों को ठेस पहुँचाते हैं।
3. सेवार्थी को उन आँकड़ों को देना, जो वह नहीं रखता है जैसे—विचार, तथ्य मूल्य जिनको नहीं जानता है।
4. दृष्टिकोण में परिवर्तन करना।
5. आवश्यकताओं (Requirements) को परिभाषित करना तथा सीमा का निर्धारण करना, जिसमें सेवार्थी-कार्यकर्ता व्यवस्था कार्य कर रही है।

कार्यकर्त्ता निम्न कार्य भी करता है :

1. कार्यकर्ता उन लक्ष्यों को पूरा करने में विशेष सहायता करता है, जो सभी में होते हैं।

---

44. Schwartz, Williams : Towards a Strategy of Group Work Practice : Social Service Review, Sept. 1962, p. 274.
45. Tropp, Emanuel : Group Intent and Group Structure : Essential Criteria for Group Work Practice, Journal of Jewish Communal Service, Vol XL1, N. 3, 1965.

2. समूह की इच्छा के अनुरूप अपने कार्यों को सम्पादित करता है।
3. कार्य के केन्द्र बिन्दु की रक्षा करता है।

यह प्रारूप वैयक्तिकरण तथा सामाजिक केन्द्र बिन्दु पर समान रूप से अध्ययन के लिए तथा कार्य के लिए बल देता है।

12. सामूहिक कार्य के अंग :

सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है, जिसके द्वारा कार्यकर्ता व्यक्ति को समूह के माध्यम से किसी संस्था अथवा सामुदायिक केन्द्र में सेवा प्रदान करता है, जिससे उसके व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास सम्भव होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सामूहिक कार्य तीन स्तम्भों पर आधारित है :

(1) कार्यकर्ता (2) समूह (3) संस्था

कार्यकर्त्ता :

सामाजिक सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता एक ऐसा व्यक्ति होता है, जो उस समूह का सदस्य नहीं होता है, जिसके साथ वह कार्य करता है। इस कार्यकर्ता में कुछ निपुणतायें होती हैं, जो व्यक्तियों की रुचियों, व्यवहारों तथा भावनाओं के ज्ञान पर आधारित होती हैं। उसमें समूह के साथ कार्य करने की क्षमता होती है तथा सामूहिक स्थिति से निपटने की शक्ति एवं सहनशीलता होती है। उसका उद्देश्य समूह को आत्म निर्देशित तथा आत्म संचालित करना होता है तथा वह ऐसे उपाय करता है जिससे समूह का नियंत्रण समूह-सदस्यों के हाथ में रहता है। वह सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति में परिवर्तन एवं विकास लाता है। कार्यकर्ता को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है :

1. सामुदायिक स्थापना।
2. संस्था के कार्य तथा उद्देश्य।
3. संस्था के कार्यक्रम तथा सुविधायें।
4. समूह की विशेषतायें।
5. सदस्यों की रुचियाँ, आवश्यकतायें तथा योग्यतायें
6. अपनी स्वयं की निपुणतायें तथा क्षमतायें।
7. समूह की कार्यकर्ता से सहायता प्राप्त करने की इच्छा।

सामूहिक कार्यकर्ता अपनी सेवाओं द्वारा सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह व्यक्ति को स्वतंत्र विकास तथा उन्नति के लिए अवसर प्रदान करता है तथा व्यक्ति के सामान्य निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। वह सामाजिक सम्बन्धों को आधार मानकर

शिक्षात्मक तथा विकासात्मक क्रियाओं का आयोजन व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के लिए करता है।

समूह :

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता अपने कार्य का प्रारम्भ समूह के साथ करता है और समूह के माध्यम से ही उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है। वह व्यक्ति को समूह सदस्य के रूप में जानता है तथा उसकी विशेषताओं को पहचानता है। समूह एक आवश्यक साधन तथा यन्त्र होता है, जिसको उपयोग में लाकर सदस्य अपने उद्देश्य को पूर्ति करते हैं। जिस प्रकार का समूह होता है, कार्यकर्ता को उसी प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। सामान्य गति से काम करने के लिए समूह-सदस्यों में कुछ सीमा तक सधियों, उद्देश्यों, बौद्धिक स्तर, आयु तथा पसन्दों में समानता होनी आवश्यक होती है। इसी समानता पर यह निश्चित होता है कि सदस्य समूह में समान अवमर कहाँ तक पा सकेंगे तथा कहाँ तक उद्देश्य पूर्ण तथा प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित हो सकेगा। समूह तथा कार्यकर्ता सामाजिक, मनोरंजनात्मक तथा शिक्षात्मक क्रियाओं को सदस्यों के साथ सम्पन्न करते हैं तथा इसके द्वारा वे निपुणताओं का विकास करते हैं। लेकिन सामूहिक कार्य इस बात में विश्वास रखता है कि समूह का कार्य निपुणता प्राप्त करना नहीं है बल्कि प्राथमिक उद्देश्य प्रत्येक सदस्य का समूह में अच्छी प्रकार से समायोजन करना है। व्यक्ति समूह के माध्यम से अनेक प्रकार के समूह अनुभवों को प्राप्त करता है, जो उसके लिए आवश्यक होते हैं। समूह द्वारा वह मित्रों तथा सधियों का भाव सदस्यों में उत्पन्न करता है, जिससे सदस्यों को महत्वपूर्ण आवश्यकता 'मित्रों के साथ रहने की' पूर्ति होती है। समूह के सदस्य अपनी सधियों को साकार रूप देते हैं, निपुणता तथा विशेषीकरण प्राप्त करते हैं, स्वीकृति की इच्छा पूरी होती है, स्थिति का निर्धारण होता है। वे माता-पिता के नियन्त्रण से अलग होकर अन्य लोगों के साथ सामंजस्य करना सीखते हैं तथा निपुणता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के विकास के लिए समूह आवश्यक होता है।

संस्था :

सामाजिक सामूहिक कार्य में संस्था का विशेष महत्व होता है क्योंकि सामूहिक कार्य की उत्पत्ति ही संस्थाओं के माध्यम से हुई है। संस्था की प्रकृति एवं कार्य कार्यकर्ता की भूमिका को निश्चित करते हैं। सामूहिक कार्यकर्ता अपनी निपुणताओं का उपयोग एजेन्सी के प्रतिनिधि के रूप में करता है क्योंकि समुदाय एजेन्सी के महत्व को समझता है तथा कार्य करने की स्वीकृति देता है। अतः

कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह संस्था के कार्यों से भलीभाँति परिचित हो। समूह के साथ कार्य प्रारम्भ करने से पहले कार्यकर्ता को संस्था की निम्न बातों को भलीभाँति समझना चाहिये :

1. कार्यकर्ता को संस्था के उद्देश्यों तथा कार्यों का ज्ञान होना चाहिये। अपनी रुचियों की उन कार्यों से तुलना करके कार्य करने को तैयार रहना चाहिये।
2. संस्था की सामान्य विशेषताओं से अवगत होना तथा उसके कार्य क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिये।
3. उसको इस बात का ज्ञान होना चाहिये कि किस प्रकार संस्था समूह की सहायता करती है तथा सहायता के क्या-क्या साधन तथा स्रोत हैं।
4. संस्था में सामूहिक सम्बन्ध स्थापन की दशाओं का ज्ञान होना चाहिये।
5. संस्था के कर्मचारियों से अपने सम्बन्ध के प्रकारों की जानकारी होनी चाहिये।
6. उसको जानकारी होनी चाहिये कि ऐसी संस्थायें तथा समूह कितने हैं, जिनमें किसी समस्याग्रस्त सदस्य को सन्दर्भित किया जा सकता है।
7. संस्था द्वारा समूह के मूल्यांकन की पद्धति का ज्ञान होना चाहिये।

सामाजिक संस्था के माध्यम से ही समूह सदस्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं तथा विकास की ओर बढ़ते हैं। वे संस्थायें व्यक्तियों व समूहों की कुछ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित की जाती हैं तथा उनका प्रतिनिधित्व करती हैं।

13. कार्यक्रम माध्यमों का उपयोग (Use of Programme Media) :

कार्यकर्ता को समूह की रचना, उद्देश्य तथा स्तर के आधार पर कार्यक्रमों को निर्धारित करना होता है। बालकों में मौखिक योग्यताओं का विकास कम होता है अतः खेल तथा शिल्प क्रियाओं का आयोजन कार्यक्रम के अंग के रूप में किया जाता है। किशोरों तथा युवाओं के साथ अनेक प्रकार की सामाजिक क्रियायें तथा सामूहिक क्रियायें प्रभावपूर्ण होती हैं। सामाजिक विकास तथा अन्तर्विवेक के बहुत से सन्देश गाँवों में लोकरीतियों के माध्यम से किये जाते हैं। ये सभी कार्यक्रम क्रियायें अर्थपूर्ण अन्तःक्रिया के लिए अवसर प्रदान करते हैं। प्रायः निम्न प्रकार की कार्यक्रम क्रियायें समस्या समाधान अथवा उपचार के लिए उपयोग में लायी जाती हैं :

1. खेल (Play) : इसके अन्तर्गत शारीरिक, बौद्धिक, स्मृति सम्बन्धी आदि सभी खेल आते हैं। बच्चों के सम्बन्ध में खिलौनों, बालू तथा पानी आदि खेल भी सम्मिलित हैं।

2. **ड्रामा, हास्यनाटक, कठपुतली का नाच तथा भूमिका निर्वाह** (Role play) : समूह सदस्यों को विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए उत्साहित किया जाता है, जो उनकी कठिनाइयों तथा समस्याओं के लिए महत्वपूर्ण होती हैं। व्यक्ति अपने तथा दूसरों के व्यवहार के विषय में अन्तर्दृष्टि का विकास इनके माध्यम से करते हैं।

3. **संगीत, कला तथा शिल्प** (Music, Art and Craft) : संगीत के माध्यम से मनुष्य में संवेगों को अभिव्यक्ति होती है। संगीत चाहे वैयक्तिक स्तर पर आयोजित हो अथवा सामूहिक; दोनों ही स्थितियों में हृदय एवं मन दोनों को राहत देता है। कलात्मक कार्यों से जहाँ एक मानसिक सन्तोष मिलता है, ध्यान केन्द्रित होता है वहीं दूसरी ओर आत्म प्रगटन का अवसर लकड़ी, मिट्टी, कागज पर कलाकृतियों द्वारा होता है। उसमें रचनात्मक शक्ति का विकास होता है तथा व्यक्तित्व में सन्तुलन आता है।

4. **वार्तालाप** (Talk) : वार्तालाप का प्रारम्भ समूह के निर्माण के समय से ही हो जाता है। कार्यकर्ता वार्तालाप के माध्यम से ही समूह सदस्यों की विशेषताओं से अवगत होता है तथा वैयक्तिक इतिहास प्राप्त करता है। इन क्रियाओं में भाषण (Lecturs), सेमिनार, विचार-विमर्श, संवेदनशील खेल आदि सम्मिलित हैं।

5. **गति सम्बन्धी** (Movement) : इस प्रकार की क्रियाओं का उपयोग मौखिक संचार प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप होती है। इसके अन्तर्गत, छुआ छुई, (Touch), अमौखिक संचार, नृत्य, हास्य, व्यंग तथा शारीरिक अभ्यास।

6. **कार्य** (Work) : समूह सदस्यों को किसी परियोजना को पूरा करने के लिए निर्देश दिये जाते हैं तथा सहयोगिक क्रियाओं के आधार पर कार्यक्रम सम्पन्न होता है।

कार्यकर्ता इन कार्यक्रम माध्यमों से ही समूह की समस्याओं का समाधान करता है तथा समूह सदस्य अपनी क्षमताओं, योग्यताओं और कौशलों का विकास करते हैं। उन्हें अपने पर नियन्त्रण रखने की योग्यता आती है, इच्छा सन्तुष्टि के अवसर प्राप्त होते हैं, दिवा स्वप्नों तथा कल्पना तरंगों से छुटकारा मिलता है, संवेगों की अभिव्यक्ति होती हैं, वास्तविकता को समझने का अवसर प्राप्त होता है, उचित एवं सामान्य दृष्टिकोण विकसित होता है, तथा नेतृत्व का विकास होता है। उन्हें समूहों में काम करने तथा जीवन यापन की कला आती है।

14. सामाजिक सामूहिक कार्य की आवश्यकता एवं महत्व :

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह में रहता है। उसकी

भौतिक तथा मानवीय आवश्यकतायें समूह में ही रहकर पूरी हो सकती हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य इन आवश्यकताओं की संतुष्टि में सहायता करता है। अत: सामूहिक कार्य एक आवश्यक सेवा है। उसकी आवश्यकता को निम्न प्रकार से आँका जा सकता है।

1. सामूहिक कार्य द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। व्यक्ति समूह में ही जन्म लेता है, बढ़ता है तथा सामाजिक प्राणी बनता है। समूह से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है। सामूहिक जीवन ही व्यक्ति का वास्तविक जीवन है। व्यक्ति का विकास सामूहिक अनुभव पर ही निर्भर करता है। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि समुचित सामूहिक जीवन के अभाव में व्यक्ति व्यक्ति नहीं बनता है। वर्तमान समय में भौतिकवादी युग के कारण सामूहिक जीवन का अस्तित्व अजीबोगरीब हो गया है। व्यक्ति रहता तो लाखों के बीच है लेकिन अपने को उसका आवश्यक अंग नहीं समझ पा रहा है। धीरे-धीरे वह अपने को मशीन समझने लगा है। यह विचार स्वयं उसके तथा समाज के लिए हानिकारक है। वह प्रेम, सौहार्द, मित्रता आदि का अभाव देखता है। अत: ऐसी स्थिति में सामूहिक कार्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
2. सामूहिक कार्य व्यक्ति की पृथक्कीकरण एवं एकान्तता की प्रकृति को कम करता है। नगरीकरण के परिणामस्वरूप कहीं भी आन्तरिक रूप से एकता देखने को नहीं मिलती है। सभी लोग अपने तक ही सीमित होकर रह गये हैं तथा पृथक्वाद की विचारधारा दिनोंदिन बढ़ रही है। इस विचार-धारा के कारण मानव अपने को कभी निरीह, तो कभी असहाय समझने लगता है। वह सदैव चितातुर रहता है, जिससे मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है। सामूहिक कार्य इस दिशा में प्रयत्नशील है कि व्यक्ति किसी भी अवस्था में एकान्त जीवन न व्यतीत करे, जो स्वयं दबावमूलक बन जाय।
3. सामूहिक कार्य व्यक्ति की महत्ता की इच्छा सन्तुष्ट करता है। प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक इच्छा होती है कि उसका समाज में स्थान हो, लोग उसका आदर एवं सम्मान करें। सामूहिक कार्य अपने कार्यक्रमों के माध्यम से प्रत्येक सदस्य को यह अनुभव का अवसर देता है कि उसका भी कहीं कोई महत्व है।
4. सामूहिक कार्य स्वीकृति किये जाने की इच्छा को सन्तुष्ट करता है। समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो यह न चाहता हो कि उसके कार्यों, व्यवहारों तथा विचारों को मान्यता प्राप्त हो। लेकिन आज व्यक्ति का जीवन इतना

संकटमय है कि वह स्वयं ही परेशान रहता है। उसका सदैव प्रयत्न अपने को अनुकूल बनाने में ही लगा रहता है। सामूहिक कार्य द्वारा प्रत्येक सदस्य को अपनी उपलब्धि की स्वीकृति प्राप्त होती है।

5. सामूहिक कार्य व्यक्ति को आत्म-निर्भर बनाता है। सामूहिक कार्य के माध्यम से लघु उद्योगों तथा हस्तशिल्प का प्रशिक्षण दिया जाता है, जिससे सदस्यों में आर्थिक क्षमता बढ़ती है।
6. सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति सामञ्जस्य स्थापित करना सीखता है। समूह में प्रत्येक सदस्य को अपनी-अपनी भूमिका पूरी करनी होती है। वह अपनी भूमिका तभी पूरी कर सकता है, जब दूसरे सदस्य उसे अवसर प्रदान करें। इस प्रकार वह दूसरों के साथ रहना, काम करना तथा व्यवहार करना सीखता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह अपने जीवन का रास्ता समायोजनात्मक बना लेता है।
7. सामूहिक कार्य निर्भरता को स्वीकार करने की क्षमता उत्पन्न करता है। शारीरिक रूप से बाधित अशक्त तथा वृद्धों का समूह जब सामूहिक क्रिया करता है तो उनमें एक ओर आशा का संचार होता है तथा दूसरी ओर अपनी निर्भरता को स्वीकार करने की क्षमता आती है।
8. सामूहिक कार्य समग्र होने की इच्छा की पूर्ति करता है। सभी व्यक्तियों की यह इच्छा होती है कि वह सम्पूर्ण का अंश बने तथा एक आवश्यक अंश के रूप में मान्यता प्राप्त हो। सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से इस इच्छा की संतुष्टि सम्भव होती है।
9. सामूहिक अनुभव द्वारा सहयोग से कार्य करने तथा रहने के गुण का विकास होता है। वर्तमान समय में सहयोगिक क्रियायें अत्यन्त आवश्यक हैं। क्योंकि उसकी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति दूसरों के सहयोग पर निर्भर है। सामूहिक कार्य द्वारा उन्हें सहयोगिक क्रियाओं का अनुभव होता है।
10. सामूहिक कार्य उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करता है। व्यक्ति समूह का सदस्य किसी विशेष उद्देश्य को लेकर बनता है। इन उद्देश्यों के आधार पर ही सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार वह संबंधों का उपयोग उद्देश्यपूर्ण ढंग से करना सीख लेता है।
11. सामूहिक कार्य द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। सामूहिक अनुभव प्रत्येक सदस्य को समानता, स्वतंत्रता तथा सामाजिक न्याय प्रदान करता है।
12. सामूहिक कार्य मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करता है। सामूहिक कार्य

5

न केवल मनोरंजन प्रदान करता है, सामूहिक क्रियाओं के माध्यम से मानसिक बोझ भी हल्का होता है तथा मन को राहत मिलती है।

13. मानवीय क्षमताओं को दृढ़ करता है। सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति की छिपी क्षमतायें तथा योग्यतायें उभरकर प्रगट होती हैं, जिससे वह अपना भविष्य का जीवन सुखमय बनाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में सामाजिक सामूहिक कार्य महत्वपूर्ण प्रणाली के रूप में सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए उपयोग में लायी जा रही है।

●

अध्याय 3

सामाजिक सामूहिक कार्य के क्षेत्र

1 चिकित्सालय में सामूहिक कार्य :

जब व्यक्ति सामान्य जीवन से असामान्य जीवन पद्धति का शिकार होता है तो वह अनेक समस्याओं का सामना करता है। चिकित्सालय में रोगी को आकर हो जाने से उसका महत्वपूर्ण सम्बन्ध परिवार तथा समुदाय से अस्थायी रूप से टूट जाता है। रोग के भी कई कारण होते हैं—रासायनिक, जैविकीय, भौतिक, सामाजिक, सांवेगिक, आर्थिक इत्यादि। अतः रोग के उचित निदान तथा उपचार के लिए समाजकार्य की आवश्यकता होती है। चिकित्सालय में समाजकार्य के उपयोग को चिकित्सकीय समाजकार्य स्वास्थ्य तथा चिकित्सकीय देखरेख में समाजकार्य की प्रणालियों तथा दर्शन का उपयोग है।

चिकित्सक रोग के शारीरिक कारणों को जानकर दूर करने का प्रयत्न करता है जबकि कार्यकर्ता रोगी के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करता है तथा सामाजिक पर्यावरण के प्रभाव को जो रोगी के विरोध में है उसको कम करता है। रोगी व्यक्ति जैविकीय अवयव के साथ ही साथ सामाजिक व्यवस्था की एक इकाई है और उसके पास मानव व्यक्तित्व है। इन कारकों को किसी भी स्तर पर पृथक् नहीं किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक कारण निम्न प्रकार से रोग को प्रभावित करते हैं।

1. रोग उत्पन्न करने वाले कारकों को प्रभावित करते हैं या उन्हें उत्पन्न करते हैं।
2. सामाजिक कारक रोग का कारण हो सकते हैं।
3. रोग के कारणों का संचरण करते हैं।
4. रोग प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
5. सामाजिक कारक न केवल रोग को उत्पन्न करते हैं बल्कि रोग स्वयं सामाजिक दशाओं को प्रभावित करता है।
6. औषधि सदैव लाभकारी नहीं होती है क्योंकि व्यक्ति के रूप में रोगी प्रतिक्रिया करता है।
7. सामूहिक जीवन से सम्बन्ध विच्छेद रोग को कभी-कभी बढ़ाता है।

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता चिकित्सालय में निम्न सेवायें प्रदान करता है :

1. रोगों का उपचार।
2. स्वास्थ्य शिक्षा।

3. मनोरंजन।
4. सामाजिक सम्बन्धों की सुदृढ़ता।
5. मेडिकल टीम से सामूहिक वार्तालाप।
6. व्यवसायिक चिकित्सा।
7. सामूहिक चिकित्सा।
8. माता-पिता व संरक्षकों को निर्देशित।

सामूहिक कार्यकर्ता एक प्रकार के रोगियों को एक समूह में एकत्र करता है, उन्हें उस रोग के लक्षणों, कारणों, उत्तरदायी कारकों तथा परिणामों से अवगत कराता है। वह उन विधियों तथा तरीकों को भी समझाता है, जो रोग को शीघ्र दूर करने में सहायक हो सकते हैं। इसके साथ ही मानव शरीर सम्बन्धी ज्ञान, पोषण सम्बन्धी शिक्षा, संसर्ग रोगों की रोकथाम आदि के विषय में जानकारी देता है। वह मनोरंजन के कार्यक्रम सम्पन्न करता है। जो भी खेल हो सकते हैं, उनका प्रबन्ध करता है, कहानियाँ सुनाता है, चलचित्र का प्रबन्ध करता है, सामूहिक वार्तालाप करता है, सामूहिक वार्तालाप समूह के सदस्य अपने विचारों एवं भावनाओं को प्रगट करते हैं। इससे उनका मन हल्का होता है। मेडिकल टीम के साथ वार्तालाप करता है तथा अपने सुझावों एवं भावी कार्यक्रम की योजना बताता है। टीम में एक सदस्य के रूप में रोग के सांवेगिक एवं सामाजिक पक्षों को स्पष्ट करते हुये सामाजिक चिकित्सा के महत्त्व तथा उसके रूप को स्पष्ट करता है। सामूहिक कार्यकर्ता रोगियों के समूह को किसी न किसी शिल्प में प्रशिक्षण प्रदान करता है, जिससे वे आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होते हैं। इन रोगी बालकों के माता-पिता को एक समूह के रूप में साक्षात्कार करता है तथा उनको आवश्यक निर्देश देता है। बाल विकास एवं संरक्षण की विधियों को बताता है।

(ii) सामूहिक कार्य एवं स्वास्थ्य शिक्षा :

कुछ विद्वानों की धारणा है कि जब तक आर्थिक स्थिति नही सुधरेगी तब तक स्वास्थ्यता को ऊँचा उठाना सम्भव नहीं है। परन्तु इस बात पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांवेगिक कारक भी अपना प्रभाव डालते हैं। आज छम्हारोगों के टीके मुफ्त में लगाये जाते हैं परन्तु अभी भी शत-प्रतिशत सफलता नहीं मिल रही है। कुँओं में कीटाणुनाशक दवाओं का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया गया है लेकिन बहुत ही कम लोग कुँओं में दवाई डालने देते हैं। उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग जनता अपनी अज्ञानता तथा अन्धविश्वास के कारण नहीं कर पाती है। रहने, खाने, पीने, काम करने

आदि ढंग में शिक्षा की आवश्यकता होती है । क्योंकि इन सभी का स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है ।

सामूहिक कार्यकर्ता स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में निम्न कार्य करता है :

1. वह समुदाय में समूह संगठित कर लोगों को स्वास्थ्य की आवश्यकता तथा महत्त्व को समझाता है । जब तक इस क्षेत्र में ज्ञान नहीं होगा, स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य सफल नहीं होगा । लोगों को यह अवश्य समझना होगा कि जिस प्रकार भोजन आवश्यक होता है उसी प्रकार यह आवश्यक होता है कि किस प्रकार बनाया जाय और स्वास्थ्य को बनाये रखने व स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठाने के नियमों का भी ज्ञान आवश्यक कराना होगा कि अच्छे स्वास्थ्य से उतनी उन्नति तथा समृद्धि का क्या और कैसा सम्बन्ध है । यह कार्य सामूहिक कार्यकर्ता करता है ।
2. सामूहिक कार्यकर्ता उनको उन तरीकों को बताता है जिनसे वे अपने स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं । लोगों को इस बात का ज्ञान कराना आवश्यक होना है कि वे किस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का स्वयं अपने प्रयत्नों व कार्यों से समाधान कर सकते हैं । कार्यकर्ता केवल स्वास्थ्य के विषय में बताने से ही अपना उद्देश्य पूरा नहीं समझता है । वह उनको प्रेरित करता है जिससे वे अपनी आदतों तथा रहन-सहन में परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं । इन परिवर्तनों से ही सामुदायिक स्वास्थ्य समस्या हल हो सकती है और तभी गिरे हुये स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है । मलेरिया, बुखार, हैजा आदि बीमारियों की रोकथाम के उपाय मौजूद हैं परन्तु दृष्टिकोण में परिवर्तन न होने के कारण इनको रोकने में सफलता नहीं मिल पा रही है । लोग परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने में पूरा सहयोग नहीं दे रहे हैं । इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वास्थ्य का व्यक्ति विशेष के व्यवहार से सीधा सम्बन्ध होता है ।
3. सामूहिक कार्यकर्ता लोगों की गलत धारणाओं को दूर करता है तथा अज्ञानता को दूर भगाता है । इस कार्य से उनके व्यवहार एवं दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है । स्वयं एक सक्रिय एजेन्ट के रूप में कार्य करने लगते हैं ।
4. सामूहिक कार्यकर्ता माताओं के समूहों में बच्चों के लालन-पालन की शिक्षा देता है । वह माताओं को बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण, बीमारियों तथा उनकी रोकथाम के उपाय बताता है ।
5. संसर्ग रोगों की रोकथाम करता है । भारत में ऐसी बहुत-सी बीमारियाँ हैं, जिन्हें थोड़ा ध्यान देने से रोका जा सकता है क्योंकि वे बीमारियाँ प्रायः

अज्ञानता तथा लापरवाही से ही होती हैं। हैजा, चेचक, टी० बो०, आँखों की बीमारियाँ आदि लापरवाही से ही होती हैं। अतः सामाजिक कारकों को दूर करने का सामूहिक कार्यकर्ता प्रयास करता है।

6. सुविधाओं का ज्ञान कराता है। यद्यपि सरकार स्वास्थ्य की उन्नति के लिए काफी प्रयत्नशील है तथापि उसका पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पा रहा है क्योंकि जनता को इस बात का ज्ञान नहीं है कि उसे क्या-क्या सुविधायें उपलब्ध हैं। कार्यकर्ता स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के विषय में सूचना प्रदान करता है।

सामूहिक कार्य

(III) वृद्ध एवं अशक्त व्यक्तियों के साथ सामूहिक कार्य :

वृद्धावस्था न केवल जैविक बल्कि एक सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। भौतिक, सामाजिक तथा भावनात्मक परिवर्तनों के कारण परिवार तथा पड़ोस के साथ तालमेल बिठाना जरूरी हो जाता है। चूँकि वृद्ध तो रोगों के लिए रचनात्मक कार्यों की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होती है इसलिए उनकी निष्क्रियता न केवल उनके लिए बल्कि उनके परिवार के लिए भावनात्मक समस्यायें उत्पन्न करती है। पुत्रवधुएँ तथा पुत्र बूढ़ों का अत्यधिक हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। नये परिवेश में नये मूल्यों की स्थापना के कारण न केवल वृद्धों के लिए समायोजन जरूरी हो गया है बल्कि पुराने एकाधिकारी ढाँचे के स्थान पर लोकतंत्रीय जीवन पद्धति के रूप में इसकी शिक्षा भी जरूरी है। इसलिए वृद्ध लोगों को उनकी रुचियों एवं योग्यताओं के अनुरूप रचनात्मक कार्यों में लगाये रखने के लिए सुनियोजित एवं सोद्देश्य गतिविधियों का संगठन भी करना आवश्यक होता है।

वृद्धों की आवश्यकताओं को मोटे तौर पर निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है :

1. पर्यावरण सम्बन्धी।
2. व्यवसायिक सम्बन्धी।
3. आर्थिक सम्बन्धी।
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी।
5. अवकाश सम्बन्धी।

इन आवश्यकताओं के आधार पर देश में वृद्धों और अशक्तों के लिए 5 प्रकार के कार्यक्रम किये जा रहे हैं :

1. अपने परिवार के साथ रहने वाले वृद्धों के लिए दिवारक्षा केन्द्र या वृद्ध व्यक्तियों के लिए क्लब।
2. निराश्रित और मित्ररहित वृद्धों के लिए संस्थायें।

3. लाइलाज और सदा बीमार रहने वाले वृद्धों के लिए अशक्तालय ।
4, समर्थ शरीर वाले वृद्ध व्यक्तियों को आर्थिक सुरक्षा ।
5. उन वृद्धों और अशक्तों के लिए जो अपने परिवारों में रह सकते हैं परन्तु भरण-पोषण के समुचित साधन नहीं हैं, उन्हे वित्तीय सहायता या पेंशन व्यवस्था ।

सामूहिक कार्यकर्ता उपलिखित वृद्धों की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न अपनी सेवाओं के माध्यम से करता है । वह वृद्धों के लिए क्लब बनाता है तथा उस क्लब में सामूहिक कार्य सेवाओं का उपयोग करते हुए उन्हें मनोरंजन कराता है, आत्मनिर्देशन की शक्ति आती है, अहं दृढ़ होता है तथा जीवन में निराशा के स्थान पर सक्रियता का विकास होता है । वृद्ध संस्थाओं में सामूहिक कार्यकर्ता न केवल मनोरंजनात्मक सेवायें आयोजित करता है बल्कि उनके लिए पढ़ने के लिए साहित्य तथा खेलों का भी आयोजन करता है । कार्यकर्ता उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उन्हें किसी न किसी हस्तशिल्प में प्रशिक्षण भी देता है, जिससे जहाँ एक ओर अपने समय का वे सदुपयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर आर्थिक लाभ भी होता है ।

स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के निदान व उपचार के लिए चिकित्सकों की सहायता लेता है तथा स्वयं स्वास्थ्य शिक्षा देता है । आवश्यकतानुसार वह अन्य संस्थाओं की सहायता भी लेता है । वह सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से इस प्रकार का वातावरण तैयार करता है जहाँ पर वृद्ध व अशक्त अपने को अकेला अनुभव करना छोड़ देते हैं । उनके जीवन में नयी ज्योति प्रज्ज्वलित होती है ।

(iv) सामूहिक कार्य तथा जन स्वास्थ्य :

जन स्वास्थ्य के 3 प्रमुख क्षेत्र हैं :

1. उपचारात्मक सेवायें ।
2. रोगों की रोकथाम सम्बन्धी सेवायें ।
3. स्वास्थ्योन्नति सम्बन्धी सेवायें ।

औषधि विज्ञान ने इन तीनों क्षेत्रों में अद्भुत कार्य किया है । परन्तु अब समझा जाने लगा है कि स्वास्थ्य स्तर को बनाये रखने तथा उन्नति के लिए अन्य सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता है । क्योंकि जन स्वास्थ्य का सम्बन्ध व्यक्ति से है और व्यक्ति सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, सांवेगिक आदि पर्यावरणों से घिरा हुआ है । उस पर ये शक्तियाँ पूर्णतया अपना प्रभुत्व बनाये हुये हैं । अतः समाज कार्य की आवश्यकता है । सामूहिक कार्य इस बात पर बल देता है कि समुदाय का उत्तरदायित्व केवल रोग का उपचार करना ही नहीं है

बल्कि उन सुख-सुविधाओं को भी बढ़ाना है जिससे स्वास्थ्य को उत्तम बनाया जा सकता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जन स्वास्थ्य के सामूहिक कार्य का उद्देश्य रोकथाम सम्बन्धी सेवाओं का प्रबन्ध करना है।

जनस्वास्थ्य दो शब्दों से मिलकर बना है, जन तथा स्वास्थ्य। इसका तात्पर्य यह है कि केवल स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना पर्याप्त नहीं है बल्कि लोगों के विषय में भी सम्पूर्ण ज्ञान होना स्वास्थ्य कार्यक्रमों को चलाने के लिए आवश्यक होता है। जब तक जनता इन कार्यक्रमों को अपना कार्यक्रम नहीं समझेगी तथा हार्दिक सहयोग नहीं प्रदान करेगी तब तक कोई कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि किस प्रकार से मनोवृत्तियों, विचारों, भावनाओं, आदतों तथा मानसिक दशाओं को कार्यक्रमों की अनुकूलता की ओर मोड़ा जाय। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए जनता को न केवल स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों को बतला देना ही होता है वरन् विचार परिवर्तन द्वारा उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह कार्य सामूहिक कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है।

रोगों की रोकथाम के लिए सामूहिक कार्यकर्ता समुदाय में समूहों के माध्यम से निम्न कार्य करता है :

1. रोगों के कारणों को स्पष्ट करता है।

2. सामाजिक कारक किस प्रकार रोग को उत्पन्न करते हैं, स्पष्ट करता है।

3. विभिन्न उपकरणों के माध्यम से लोगों को रोगों की रोकथाम की जानकारी देता है।

4. व्यक्तिगत तथा स्वास्थ्य सिद्धान्तों को बताता है।

5. जब सुदृढ़ीकरण करना बताता है।

6. रोग का प्रारम्भिक निदान करता है।

7. उभरते हुये रोग के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करता है।

8. आवश्यकता पड़ने पर उच्च अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करता है।

सामूहिक कार्यकर्ता स्वास्थोन्नति के लिए निम्न उपाय करता है :

1. स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार करता है।

2. विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा का प्रबन्ध करता है।

3. रोग के प्रति अंधविश्वासों को दूर करता है।

4. मनोरंजनात्मक सेवायें प्रदान करता है।

5. महिला एवं बाल कल्याण सेवाओं के उचित उपयोग में सहायता करता है।

6. सामुदायिक नियोजन में भाग लेता है ।
7. गाँव की सफाई सम्बन्धी कार्यक्रम बनाता है ।
8. नये नये कार्यक्रमों के लिए अनुसंधान करता है ।

उपर्लिखित कार्यों का अवलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि सामूहिक कार्यकर्ता जनस्वास्थ्य को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह उन सभी उपायों को अपने व्यवहार में लाता है जिनका सम्बन्ध सामाजिक पर्यावरण से है ।

(v) सामूहिक कार्य तथा चिकित्सालय में भर्ती बालक :

बालक के लिए चिकित्सालय में भर्ती होना ही सबसे बड़ी समस्या है। बीमारी तो उसकी सबसे बड़ी सांवेगिक समस्या है लेकिन जब वे चिकित्सालय में भर्ती होकर कमरे में बन्द होकर रह जाते हैं तो इस समस्या में गुणात्मक वृद्धि होती है। उस समय यदि उन्हें तथा उनके माता-पिता को उचित शिक्षा द जाय तो इन समस्याओं के प्रभाव को कार्य सीमा तक कम किया जा सकता है। यहाँ पर सामूहिक कार्यकर्ता की आवश्यकता निम्न कारणों से है :

1. **सांवेगिक प्रतिक्रियायें**—बालकों में चिकित्सालय में आने पर सांवेगिक प्रतिक्रियायें होती हैं। इतना ही माताओं को भी इसका गहरा अनुभव करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई बालक आपरेशन के बाद ठीक होता है तो वे फिर आपरेशन नहीं पसन्द करती हैं। अतः उन्हें तथा रोगी बच्चों को इसके लिए सांवेगिक रूप से तैयार करना पड़ता है। यह कार्य समूह के माध्यम से ठीक प्रकार से किया जा सकता है ।

2. **मानसिक गिरावट**—बालक जब चिकित्सालय में भर्ती होता है तो उसका स्कूल जाना बंद हो जाता है, इस कारण वह कक्षा में पिछड़ जाता है। ऐसे बालकों को चिकित्सालय में मानसिक रूप से बहुत कष्ट होता है। अतः सामूहिक कार्यकर्ता इस समस्या का समाधान कर सकता है ।

3. **आत्मकेन्द्रित** (Egocentric) : कभी-कभी बालक के माता-पिता स्वयं भर्ती वाले बालक को आत्मकेन्द्रित बना देते हैं। वे स्वयं बालक की सभी आवश्यकताओं को पूरा करते रहते हैं तथा आवश्यकता से अधिक ध्यान देते हैं। उसकी देखभाल पर अधिक समय तथा ध्यान दिया जाता है अतः वह केवल प्राप्तकर्ता बनकर रह जाता है। उसका अपना योगदान कम होता जाता है अतः एकाकी बन जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इस समस्या का समाधान करता है ।

4. **ईर्ष्या की भावना**—बालकों में कभी-कभी अपने माता-पिता के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। वे समझने लगते हैं कि माता-पिता उनका अच्छा

उपचार नहीं करा रहे हैं तथा पैसा खर्च नहीं करना चाहते। वे माता-पिता को अपनी बीमारी का दोषी मानते हैं। ऐसी जब भावना आ जाती है तो बालक का माता-पिता से सम्बन्ध बिगड़ जाता है जो स्वयं उपचार कार्य में बाधक हो जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता इस समस्या का समाधान करता है।

5. **एकाकीपन की तथा भार की भावना**—प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बालक दिन भर अस्पताल में बिस्तर पर पड़े रहते हैं। उनके पास मनोरंजन का कोई साधन नहीं होता है और न ही वे विचारों का आदान-प्रदान कर पाते हैं। इस कारण उनमें तनाव उत्पन्न हो जाता है और परिवार से घृणा करने लगते हैं। वे अपने से भी घृणा करते हैं। वे कभी-कभी अनुभव करते हैं कि वे समाज तथा परिवार पर भार हैं। ऐसी भावना उपचार कार्य में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न करती हैं। सामूहिक कार्यकर्ता शैक्षिक प्रविधि द्वारा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने तथा एक दूसरे को समझने का अवसर देता है।

सामूहिक कार्यकर्ता यहाँ पर दो तरीके अपनाता है :

एक तरीका प्रणाली।
दोहरा तरीका प्रणाली ।

एकहरी प्रणाली में कार्यकर्ता भाषण देता है, फिल्म दिखाता है। चार्ट प्रदर्शित करता है, प्रदर्शनी का आयोजन करता है। दोहरी विधि में कार्यकर्ता मनोरंजनात्मक समूहों का निर्माण करता है, उसमें कार्यक्रम करवाता है। सामूहिक वार्तालाप करता है, सामाजिक अभिनय आयोजित करता है तथा डिमानस्ट्रेशन करता है।

(vi) सामूहिक कार्य एवं मानसिक स्वास्थ्य :

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अतुलनीय सफलता ने जहाँ एक ओर अनेक समस्याओं को सुलझा कर जीवन को सरल तथा सुखमय बना दिया है वहीं दूसरी ओर गम्भीर समस्यायें विकराल रूप धारण कर सामने आ खड़ी हुई हैं। आर्थिक उतार-चढ़ाव, बेरोजगारी, गरीबी तथा स्वार्थपरता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रजातीय पूर्वाग्रह, श्रेष्ठता की भावना, विभेदीकरण, अव्यवहारिकता, स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों ने जीवन को कष्टकर बना दिया है। परम्परागत मूल्यों तथा विश्वासों में अन्तर आता जा रहा है। आज का व्यक्ति परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। वह प्राचीनतम स्वीकृत मान्यताओं के विषय में प्रश्नवाचक हो गया है। दुर्भाग्य इस बात का है कि मानव से संबंधित ज्ञान के क्षेत्र में वह पीछे रह गया है। हम आज तक जीन्स के विषय में जो

जीन गये हैं परन्तु प्रेम तथा नैतिक मूल्यों की कितनी आवश्यकता है जिससे परिवर्तित जीवन सुखी रह सके, नहीं जान सके हैं। वास्तव में मनुष्य की प्रकृति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। यही कारण है कि हम चारों ओर चिन्तित, अप्रसन्न, दुखो, व्याकुल, परेशान, भयातुर व्यक्तियों को पाते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य की समस्या अत्यन्त गम्भीर होती चली जा रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किसी भी देश में, भारत में भी 1 प्रतिशत लोग गम्भीर मानसिक रोगों से पीड़ित हैं तथा 10 प्रतिशत लोग साधारण मानसिक रोगों के शिकार हैं। इस गणना के हिसाब से भारत में 7 लाख लोग गम्भीर रूप से पीड़ित मानसिक रोगी हैं तथा 70 लाख साधारण प्रकार के मानसिक रोगी हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि 15 से 20 प्रतिशत लोग जो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर चिकित्सकीय सहायता के लिए जाते हैं, वे सामान्य अस्पतालों के नाते हैं, मानसिक रोगों के शिकार होते हैं। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता है। इसके अतिरिक्त मिर्गी के रोगियों की संख्या भी दिनोंदिन बढ़ रही है। इस समय मानसिक रोगियों की संख्या के लिए केवल 42 चिकित्सालय हमारे देश में हैं तथा केवल 20,000 शैय्यायें हैं। केवल 1 मनोचिकित्सक 1 लाख रोगी पर। 1500 नर्सें हैं तथा केवल 200 सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

मानसिक चिकित्सालयों में सामूहिक कार्यकर्ता निम्न कार्य करता है :

1. सामूहिक कार्यक्रमों के माध्यम से सेवार्थी की रुचियों का पता लगाता है तथा अचेतन मन को ढूंढ़ने का प्रयास करता है।

2. वह सेवार्थियों की बाह्य तथा आन्तरिक सभी विशेषताओं का अध्यापन करता है।

3. रोग के प्रति उनके दृष्टिकोणों का पता लगाता है तथा सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए चलचित्र, वार्तालाप, ड्रामा आयोजित करता है।

4. परिवार, समूह तथा समुदाय का रोग उत्पन्न करने में कितना सहयोग है, ज्ञात करता है तथा बाधक कारणों को दूर करता है।

5. कार्यकर्ता सेवार्थियों तथा उनके सम्बन्धियों को रोग के सम्बन्ध में सूचना देता है तथा उनके भ्रमों को दूर करता है।

6. वह शिक्षात्मक सेवायें प्रदान करता है।

7. पर्यावरण में सुधार की योजना बनाता है तथा उसे कार्यान्वित करता है।

8. मनोरंजनात्मक कार्य जैसे कला, खेल, संगीत आदि का आयोजन करता है।

9. व्यवसायिक चिकित्सा की व्यवस्था करता है।

10. सामाजिक अभिनय का भी आयोजन करता है।

11. सामूहिक कार्यकर्ता मानसिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए निम्न कार्य करता है :

1. समुदाय में मानसिक रोगियों का पता लगाना।

2. आपातकाल में फर्स्ट एड देना।

3. रोगियों को चिकित्सालय में भेजना।

4. परिवार तथा समुदाय को मानसिक स्वास्थ्य की शिक्षा देना।

गाँवों के रोगियों के विषय में जानकारी ज्ञात करना :

कार्यकर्ता गाँवों में जाकर लोगों से पूछता है कि उनके गाँव में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसमें निम्न लक्षण हों :

1. विचित्र प्रकार का व्यवहार हो।

2. बातचीत अजीबोगरीब हो।

3. किसी से बातचीत न करता हो, सदा एकान्त में रहता हो।

4. जो विचित्र आवाजें सुनता हो तथा दूसरों की बातों को सुनता न हो अथवा विचित्र दृश्य देखता हो।

5. बिना कारण अति प्रसन्न रहता हो तथा बड़ी-बड़ी बातें करता हो।

6. बिना कारण रोता रहता हो तथा चिल्लाता हो।

7. जिसने आत्महत्या का प्रयत्न किया हो।

8. जिसे प्रेत-आत्मा ने पकड़ रखा हो।

9. दौरे पड़ते हों।

10. नींद न आती हो।

11. विद्यालयों में जाकर यही जानकारी प्राप्त करता हो।

12. परिवार तथा बाहर लड़ाई करता हो।

13. परिवार नियोजन विधियों को जिन्होंने अपनाया है उनसे बातचीत करता है।

आपातकालीन उपचार :

वह आपातकालीन स्थिति में कुछ आवश्यक दवाइयों की सहायता से तथा पत्रांक द्वारा उपचार भी करता हो।

उसे संदर्भित करना :

जब रोगियों का पता चल जाता है तो समुदाय के लोगों को इसके उपचार

हेतु चिकित्सालय बताता है तथा यदि आवश्यक हुआ तो चिकित्सालय में भर्ती भी करा देता है।

वह इनका फालोअप भी करता है।

मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा :

कार्यकर्ता समुदाय को मानसिक रोगों के लक्षणों, कारणों तथा उपचार के तरीकों को बताता है। वह यह भी बताता है कि किस प्रकार से मानसिक रोग विकसित होते हैं तथा किस प्रकार की परिस्थितियां इसके लिए उत्तरदायी होती हैं।

(vii) सामूहिक कार्य तथा परिवार नियोजन :

भारत में सन् 1951 में जनसंख्या को सीमित करने के लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है क्योंकि बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित साधनों में समन्वय स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि जनसंख्या पर नियन्त्रण किया जाय। आर्थिक विकास की दृष्टि से जनसंख्या पर नियोजन रखना उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर के लिए भोजन आवश्यक है। यदि जनसंख्या पर नियन्त्रण न लगाया गया तो न तो रहने के लिए स्थान और न ही भोजन के लिए पर्याप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध होंगे। इस समस्या को ध्यान में रख कर ही राष्ट्रीय स्तर पर परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाया जा रहा है। परन्तु जिस गति से इसे चलना चाहिये, चल नहीं पा रहा है। इसके कई कारण हैं।

भारत में अज्ञानता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, गरीबी आदि के कारण कार्य-क्रम को सफलता नहीं मिल पा रही है। रहन-सहन का स्तर नीचा होने के कारण परिवार में एक बच्चे की वृद्धि का कोई भार नहीं प्रतीत होता है क्योंकि कुछ अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ दिनों में वही बच्चा आपका स्रोत हो जाता है। इन कठिनाइयों को ध्यान में रखकर परिवार नियोजन कार्यक्रम को विकास के अन्य कार्यक्रमों के साथ जोड़ दिया गया है तथा जनसंख्या नियोजन के साथ ही साथ अन्य उद्देश्यों को भी इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने परिवार नियोजन के अन्तर्गत निम्न बातों को सम्मिलित किया है :

1. जन्म में उचित समयान्तर तथा जन्म-दर पर रोक लगाना।
2. बच्चे विहीन परिवारों को चिकित्सकीय सुविधायें प्रदान करना।
3. बच्चों की देख-रेख सम्बन्धी ज्ञान देना।
4. यौन शिक्षा देना।

5. प्रजनन सम्बन्धी दोषी परिवार की स्क्रीनिंग करना ।
6. जैनटिक मन्त्रणा देना ।
7. पूर्व वैवाहिक सलाह देना तथा परीक्षण करना ।
8. गर्भावस्था का परीक्षण करना ।
9. विवाह मण्त्रणा देना ।
10. प्रथम बच्चे के जन्म से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान करना तथा अन्य सुविधायें देना ।
11. अविवाहित माताओं को सेवायें प्रदान करना ।
12 गृह अर्थशास्त्र द्वारा पोषण सम्बन्धी शिक्षा देना ।
13. गोद लेने में सहायता करना ।

इस प्रकार से परिवार नियोजन कार्यक्रम का उद्देश्य परिवार के सदस्यों की सीमा में नियन्त्रण करना है । जिन परिवारों में बच्चे अधिक सीमा में पैदा होते हैं उन दम्पतियों को परिवार नियोजन विधियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना है । इस कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी सेवायें भी प्रदान की जाती हैं । इसमें प्रति रक्षाकरण प्रसव के पूर्व, प्रसव में, प्रसव के पश्चात् माताओं की देखरेख, दवाइयों का प्रबन्ध, चेचक, डिफ्थोरिया, काली खाँसी आदि के बचाव के लिए टीके लगाना तथा दवाइयाँ देना भी है ।

समाज कार्य ने परिवार नियोजन कार्यक्रम को अपने हाथ में ले लिया है । सामूहिक कार्यकर्ता, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक कारण जो परिवार नियोजन के तरीकों को अपनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं, दूर करता है । वह शिक्षा, चिकित्सा तथा कल्याणकारी संस्थाओं की सेवाओं का सदुपयोग भी इसी उद्देश्य पूर्ति हेतु करता है । वह व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करता है जिससे व्यक्ति परिवार नियोजन के महत्त्व को समझ सकने में समर्थ हो । वह पोषण सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करता है, महत्त्वपूर्ण रोगों के विषय में जानकारी देता है । शिक्षा सुविधाओं की चर्चा करता है, कल्याणकारी कार्यक्रमों से अवगत कराता है, नवीन कानूनों का ज्ञान देता है तथा स्वास्थ्य शिक्षा देता है । वह गर्भावस्था का स्वास्थ्य पर प्रभाव बताता है, शरीर तथा मन पर गरीबी के प्रभाव को स्पष्ट करता है । परिवार कल्याण कार्यकर्ता के रूप में सामूहिक कार्यकर्ता समूहों के माध्यम से निम्न जानकारी देता है तथा कार्य करता है :

1. अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करता है ।
2. वह परिवार नियोजन सम्बन्धी सभी सकारात्मक तथा नकारात्मक बातों को बताता है ।

3. समूह सदस्यों की भावनाओं का आदर करते हुये उनके सकारात्मक तथा नकारात्मक विचारों को प्रगट होने का अवसर देता है।

4. वह व्यक्तियों में केवल उपयुक्त ज्ञान का संचार करता है। इसके पश्चात् वह उनकी इच्छा पर छोड़ देता है कि वे अपने जीवन को खुशहाल बनाने के लिए स्वयं निर्णय लें। वह यह नहीं कहता है कि 'यह' करना आवश्यक है। वह केवल सलाह देता है।

5. कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य का वैयक्तिक अध्ययन भी करता है और उसको सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षात्मक पृष्ठभूमि को देखता है।

6. वह परिवार नियोजन के प्रत्येक तरीके से होने वाले लाभों तथा हानियों का कार्य करता है।

7. कार्यकर्ता परिवार नियोजन सम्बन्धी भ्रमों को भी दूर करता है।

8. यद्यपि उसकी सहायता कार्य की प्रक्रिया धीमी होती है परन्तु एक बार यदि सेवार्थी सन्तुष्ट हो जाते हैं जो वे आगे चलकर 'नेता' का कार्य करने लगते हैं।

9. वह बाल रक्षा के उपायों को बताता है तथा सुविधायें भी उपलब्ध कराता है।

10. बड़े संख्या परिवार की समस्याओं तथा आर्थिक विकास पर प्रभाव को स्पष्ट करता है।

11. धार्मिक तथा सांस्कृतिक कारणों का विवेचन परिवार नियोजन के सन्दर्भ में करता है।

12. सामूहिक कार्यकर्ता प्रोत्साहक, एडवोकेट, शिक्षक, मध्यस्थ तथा उपदेशक के रूप में कार्य करता है।

(viii) सामूहिक कार्य तथा शारीरिक विकलांगता :

शारीरिक दृष्टि से विकलांग व्यक्ति वे हैं जिनकी शारीरिक क्षमता का ह्रास हो गया है, शरीर विकृत हो गया है या किसी अंग विशेष का ह्रास हो गया है या अंग शून्यता हो गयी है। ऐसे व्यक्ति या तो किसी बीमारी के कारण या दुर्घटना के कारण सामान्य कार्य करने के योग्य नहीं रह जाते हैं जिसके कारण वे सदैव निराशा, दुखी एवं पराश्रित रहते हैं।

शारीरिक रूप से बाधित व्यक्तियों को चिकित्सा सुविधा प्रदान करना यद्यपि महत्त्वपूर्ण है परन्तु यह सम्पूर्ण पुनर्स्थापन प्रक्रिया का केवल एक अंग है। सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समायोजन प्राप्त करना भी महत्त्वपूर्ण कार्य है। बाधित व्यक्ति को न केवल चिकित्सकीय सहायता की आवश्यकता होती है बल्कि

उसकी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर भी दबाव पड़ता है जिसके कारण वह सदैव अस्तव्यस्त रहता है क्योंकि व्यक्तित्व सम्पूर्णता में प्रभावित होता है। सामाजिक, सांवेगिक तथा शारीरिक तत्त्व एक साथ प्रतिक्रिया करते हैं।

विकलांगों की सामाजिक तथा सांवेगिक समस्याओं को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उन प्रतिक्रियाओं का भी अवलोकन करें जो सामान्य लोग इन विधियों के प्रति प्रगट करते हैं :

विमुख मनोवृति : साधारण तथा स्वस्थ व्यक्ति विकलांगों से दूर रहना चाहता है क्योंकि उन्हें यह होता है कि कहीं उसको भी इसी प्रकार की व्याधि न हो जाय। वे शारीरिक विकलांगता को रोग समझते हैं तथा संक्रमण से बहुत डरते हैं। इस प्रकार से सामान्यतया लोगों की विमुख मनोवृत्ति होती है।

पाप का परिणाम : लोगों की यह सामान्य धारणा है कि विकलांगता का कारण पूर्व जन्म के पाप होते हैं। अपने कुकृत्यों के परिणामस्वरूप यह स्थिति प्राप्त करते हैं अतः उनकी दशा में किसी भी प्रकार से सुधार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उन्हें यह तो भुगतना ही है।

दुरात्मा का प्रवेश : कुछ लोगों का विचार है कि कुकृत्यों के परिणाम-स्वरूप व्यक्ति में दुरात्मा का प्रवेश हो जाता है, जिसके कारण वह अपंग हो जाता है। यह दुरात्मा किसी भी व्यक्ति को परेशान कर सकती है। अतः ऐसे व्यक्ति से दूर रहना अधिक अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त विकलांग व्यक्ति को नारकीय जीवन व्यतीत करना आवश्यक भी है, जिससे वह अपने पापों का प्रायश्चित्त कर सके तथा दूसरे जन्म में इससे पीड़ित न हो।

शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति को सम्पूर्ण व्यवित के रूप में तथा समाज के सदस्य के रूप में समझने के लिए सामूहिक कार्य की आवश्यकता होती है। पुनर्वासिन की सुविधायें यद्यपि ऐसे सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक होती हैं परन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो इसका विरोध करते हैं। अतः उनके भ्रमों तथा अवरोधकों का समझना आवश्यक होता है।

सामूहिक कार्यकर्ता ऐसे व्यक्तियों की निम्न प्रकार से सहायता करता है :

1. वह समुदाय में सामूहिक कार्य के माध्यम से विकलांगता के कारण, लक्षण तथा रोकथाम के उपायों की चर्चा करता है। वह उन उपायों को भी बताता है जिनके द्वारा विकलांगता से बचा जा सकता है।

2. वह सामुदायिक मनोवृत्तियों को मोड़ने का प्रयत्न करता है तथा जहाँ तक समानता होती है सहयोगिक एवं अनुकूल भावनाओं का विकास करता है।

3. विकलांग व्यक्तियों को किसी न किसी हस्तशिल्प तथा लघु उपयोग में प्रशिक्षण देने की सुविधा प्रदान करता है जिससे वे आत्मनिर्भर बनते हैं।

4. भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधाओं को उपलब्ध कराने का प्रयास करता है।

सामूहिक कार्य तथा विकलांग बालक :

शारीरिक रूप से विकलांग बालक के प्रति माता-पिता अनेक प्रकार की प्रतिक्रियायें करते हैं। कुछ माता-पिता ऐसे बालक की आवश्यकता से अधिक देखभाल करते हैं। इसके विपरीत कुछ माता-पिता ऐसे बालक को तिरस्कृत कर देते हैं। जो माता-पिता किसी रोग से ग्रस्त होते हैं तथा गर्भपात करवाने का प्रयास करते हैं परन्तु उसे पाप भी समझते हैं, ऐसे बालक को वे पूर्ण रूप से पराश्रित बना देते हैं। कुछ माता-पिता को दोषी बालक से हार्दिक क्लेश होता है। जब वे सामान्य बालक तथा बाधित बालक में अन्तर देखते हैं तो अपने को हीन समझने लगते हैं और बालक से घृणा करने लगते हैं। कुछ माता-पिता बाधित बालक की पहले तो आवश्यक देखभाल करते हैं परन्तु जब उन्हें खर्चा बढ़ता दिखायी देता है तो मन ही मन उन्हें कोसने लगते हैं तथा अरुचि दिखाने लगते हैं।

कुछ शारीरिक विकलांगता की स्थितियाँ न तो माता-पिता को समझ में आती हैं और न ही सामान्य व्यक्ति इसको समझ सकता है। हृदय विघटित बालक का यही हाल होता है। उसमें शारीरिक अक्षमता दिखायी नहीं देती है जिसके कारण माता-पिता बालक को सभी कार्य करने के लिए कहते हैं। परन्तु जब वह कठिन कार्य करने में असमर्थ होता है तो उसे दण्ड दिया जाता है। कभी-कभी माता-पिता बालक को शारीरिक अक्षमता को बौद्धिक उपलब्धि से क्षतिपूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं जिसके परिणामस्वरूप बालक पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। बालक सांवेगिक तनाव तथा चिन्ता के लक्षण उत्पन्न कर लेता है।

मिर्गीग्रस्त बालक को दूसरे प्रकार की समस्यायें होती हैं तथा उनके प्रति प्रतिक्रियायें भी दूसरे प्रकार की होती हैं। उनमें चूँकि किसी का शारीरिक व्यवधान नहीं होता है अतः वे किसी प्रकार की सुरक्षा अथवा सीमा बन्धन नहीं मानने के लिए तैयार होते हैं। वे जरा-जरा-सी बात पर झुझलाहट व्यक्त करते हैं। बालक चिन्तातुर पारिवारिक वातावरण में एकाकी व एकांतवासी हो जाता है तथा अहमन्यता की भावना विकसित कर लेता है फिर माता-पिता के प्रति अति उग्र दृष्टिकोण अपनाता है, जिन्होंने उसके चारों ओर एक सुरक्षात्मक दीवार खड़ी कर दी है।

मनोसामाजिक विकास के लिए खेल क्रियाओं में भाग लेना बालक के लिए आवश्यक होता है। परन्तु विकलांग बच्चे इस क्रिया से वंचित रहते हैं। उनकी भावनाओं का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है और न ही अपना स्थान निर्धारित कर पाते हैं। सामूहिक कार्यकर्ता समूहों के माध्यम से खेलों का आयोजन करता है, जिससे उसमें उग्रात्मकता कम होती है तथा समायोजन की क्षमता विकसित होती है। सामूहिक कार्यकर्ता बाधित बालकों की सांवेगिक प्रतिक्रियाओं का निरन्तर अध्ययन करता है तथा समूह के माध्यम से आवश्यक निराशा को दूर रखने का भरसक प्रयत्न करता है। सामूहिक कार्यकर्ता विद्यालय समायोजन में भी कार्य करता है। विकलांग बालकों को इस प्रकार से शिक्षा देता है तथा अतिरिक्त सहायता प्रदान करता है जिससे वह सामान्य बच्चों से बराबरी कर सके।

सामूहिक कार्य तथा नेत्रहीनता :

भारत उपमहाद्वीप में तीन लाख से अधिक नेत्रहीन व्यक्ति अपना पालन-पोषण भिक्षावृत्ति द्वारा करते हैं। यह संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। फल-स्वरूप भिक्षावृत्ति को रोकना सम्भव नहीं हो पा रहा है। यह तो संख्या सिर्फ केवल उनकी है जो भिक्षावृत्ति करते हैं। वैसे सम्पूर्ण नेत्रहीनों की संख्या सन् 1976 में केन्द्रीय सरकार के रोजगार तथा प्रशिक्षण निदेशालय के एक सर्वेक्षण के अनुसार 90 लाख बतायी गयी।

नेत्रहीनों की 3 प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं :

1. अपने विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा।
2. वर्तमान स्थिति का कारण तथा
3. पुनर्स्थापन।

नेत्रहीन अपनी स्थिति से स्पष्ट अवगत होना चाहता है तथा यह जानने की इच्छा रखता है कि उसकी स्थिति में सुधार हो सकता है या नहीं। यह जान लेने से उसको समायोजन में सहायता मिलती है तथा सांवेगिक आलम्बन प्राप्त होता है। उसको पुनर्वासन की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है। व्यक्तित्व तथा परिस्थिति के अनुरूप यदि पुनर्वासन हो जाता है तो उसके व्यक्तित्व का विघटन नहीं होता है। उसको आत्मनियन्त्रण तथा आत्मनिर्भरता की भी आवश्यकता होती है। इन उद्देश्यों को प्राप्ति के लिए प्रशिक्षित कार्यकर्ता की आवश्यकता होती है जो सांवेगिक आलम्बन देने में समर्थ हो सके, सम्भव विकल्पों का चयन कर सके, नेत्रहीन अपना निष्पक्ष मूल्यांकन कर सके तथा अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुरूप प्रयत्न कर सके।

नेत्रहीन बालकों के माता-पिता को विशेष सहायता की आवश्यकता होती है।

चिन्ता तथा ग्लानि के लक्षण उनमें स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। भाग्यवादिता की भावना के कारण अधिकांश माता-पिता बालक की नेत्रहीनता को अपना दोष मानते हैं। ऐसी व्यक्तियों को प्रशिक्षित कार्यकर्ता की आवश्यकता होती है, जो बालकों की वास्तविक स्थिति को चित्रित कर सके तथा उन उपायों को बता सके जिनसे नेत्रहीनता में कमी आ सकती है।

तथ्यों को जान लेने के बाद नेत्रहीन में अनेक प्रतिक्रियायें होती हैं जो समायोजन उत्पन्न करने में बाधा उत्पन्न करती हैं। नेत्रहीन समझने लगता है कि समाज उसे अब अस्वीकार कर देगा जिसके कारण वह आशा को त्याग देता है। वह निराश्रित हो जाने से ग्लानि अनुभव करता है जिससे प्रतिगमन के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। वे आत्महत्या का भी इसी कारण प्रयास कर सकते हैं।

नेत्रहीनों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण द्वारा स्वावलम्बी बनाने का कार्य किया जाता है। कार्यकर्ता इनके अभिभावकों को शिक्षा देता है तथा उन्हें आवश्यक बातों को बताता है जो बालक के विकास के लिए आवश्यक होती हैं। नेत्रहीन बालकों को जिन बातों की आवश्यकता होती है वे हैं: स्नेह और प्यार, शिक्षा के अवसर, लक्षित वस्तुओं को प्राप्त करने तथा प्रयोग करने की स्वतन्त्रता, महत्ता की भावना आदि। इन बालकों की शिक्षा तभी सफल हो सकती है जब उनके माता-पिता पूर्ण सहयोग दें। माता-पिता तथा कार्यकर्ता के सहयोग से उनकी बुद्धि को तेज किया जा सकता है।

विद्यालय की शिक्षा में इन बालकों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है। कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह इन बालकों में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करे तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने में प्रोत्साहन दे। सामूहिक कार्यकर्ता इन बालकों को शारीरिक प्रशिक्षण देता है, सामान्य विषयों का ज्ञान कराता है, खेल-कूद में रुचि उत्पन्न करके, उन्हें खेल में लगाता है, संगीत के माध्यम से संवेगों की अभिव्यक्ति करता है तथा कला का विकास करता है। वह उन्हें हस्त-शिल्प कला का भी ज्ञान कराता है, जिससे उनमें आत्मनिर्भरता आती है तथा ऐसी जीवन पद्धति का विकास करता है जो उन्हें पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है।

(ix) सामूहिक कार्य तथा मानसिक मंदता :

मानसिक मंदित व्यक्ति का मानसिक विकास अपूर्ण एवं अवरुद्ध होता है, जिसके परिणामस्वरूप वह न तो अपने पर नियन्त्रण रख पाता है और न ही जीविकोपार्जन में समर्थ होता है। उसमें परिपक्वता के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। इसलिए वह दूसरों के मार्गदर्शन पर निर्भर होता है। उसको पथ प्रदर्शन,

निर्देशन, निरीक्षण तथा आश्रय की सदैव आवश्यकता होती है। मानसिक मंदता के अर्थ को समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों का समझना आवश्यक प्रतीत होता है। सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार जो बालक प्रारम्भ से ही सामाजिक समायोजन नहीं प्राप्त कर पाता है क्योंकि उसमें मानसिक दुर्बलता होती है उसे मानसिक मंदित कहा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में जो बालक दुर्बल पाये जाते हैं तथा कक्षा के स्तर के अनुरूप विकास नहीं कर पाते उन्हें मानसिक मंदित कहते हैं। वैधानिक दृष्टिकोण के अनुसार मानसिक दुर्बलता या मंदता का अर्थ उस व्यक्ति से होता है जिसको नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित, भले-बुरे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। बुद्धिहीनता के अभाव में उसे किसी व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार जिस व्यक्ति की बुद्धि 70 से कम होती है उसे मानसिक मंदित माना जाता है।

मानसिक मंदित प्रायः 3 प्रकार के होते हैं—**मूर्खः** इनकी बुद्धि लब्धि 50 से 90 के बीच होती है। यह मानसिक मंदित की पहली श्रेणी होती है अतः मन्द करना भी कभी-कभी कठिन होता है। ऐसे बालक सामाजिक समायोजन स्थापित नहीं कर पाते हैं क्योंकि बुद्धि का निम्न स्तर होता है। पढ़ने में उसका मन नहीं लगता है। प्रत्येक विषय उसके लिए कठिन होते हैं। इस वर्ग के मानसिक मंदित चोरी करना, गुण्डागर्दी करना, वेश्यागमन तथा अन्य समाज विरोधी कार्य सीख लेते हैं।

मूढ़ : इनकी बुद्धि लब्धि के 25 से 30 के बीच होती है। इनमें आत्म-नियन्त्रण तथा आत्म-संयम की क्षमता नहीं होती है। इनमें मानसिक दुर्बलता इतनी अधिक होती है कि वे अपने आपको कार्य अथवा स्थिति में संतुलित नहीं कर पाते हैं। इनमें किसी प्रकार की पढ़ने-लिखने की क्षमता नहीं होती है। इन बालकों को किसी मानसिक मंदित संस्था में रखना अनिवार्य होता है।

जड़ : ऐसे बालक न तो सुनते हैं न ही देखने का प्रदर्शन करते हैं। वे शारीरिक अंगों जैसे हाथ-पैर का भी प्रयोग नहीं करते। उनके संवेदनशीलता का पूर्णतया अभाव होता है। वे पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर होते हैं।

सामूहिक कार्यकर्ता मानसिक मंदित स्कूलों में जहाँ शिक्षण तथा प्रशिक्षण दोनों प्रकार की सुविधायें उपलब्ध होती हैं, निम्न कार्य करता है :

1. वह मनोवैज्ञानिक सेवायें प्रदान करता है।
2. मनोविकार चिकित्सात्मक सेवाओं का प्रबन्ध करता है।
3. व्यवसायिक प्रशिक्षण देता है जिससे वे अपनी आय कर सकें और जीवनयापन कर सकें।

4. सामान्य ज्ञान सम्बन्धी सेवायें प्रदान करता है। वह साधारण व्यावहारिक ज्ञान की बातें बताता है ।

5. मनोचिकित्सकीय सेवायें उपलब्ध कराता है।

6. वह बालकों को व्यवहार के सामान्य नियमों तथा ढंगों का प्रशिक्षण देता है।

7. यह सम्पर्क करके सेवार्थी का सम्पूर्ण इतिहास प्राप्त करता है तथा संस्था को इससे अवगत कराता है।

8. वह माता-पिता की प्रतिक्रियाओं को जानकर उन्हें वास्तविक एवं अनुकूल दृष्टिकोण, व्यवहार, ढंग आदि के लिए सम्प्रेरित करता है।

9. वह उन माता-पिता की विशेष सहायता करता है जो आवश्यकता से अधिक परवाह एवं देखभाल करते हैं या आवश्यकता से कम करते हैं।

10. वह पुनर्स्थापन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करता है।

(x) सामूहिक कार्य तथा सुधारात्मक कार्य :

अनेक अनुसंधानों तथा अध्ययनों से यह सिद्ध हो चुका है कि अपराधी को केवल दण्ड देकर उसकी मनोवृत्ति एवं व्यवहार में परिवर्तन नहीं ला सकते हैं। प्रतिकारात्मक, प्रतिशोधात्मक, भयात्मक प्रकार की विधियाँ अपराधी दशा को सुधारने में नकारात्मक प्रकार की भूमिका निभाती हैं। अपराधी को ऐसे अवसर प्राप्त हों, जिससे वह अपना व्यवहार परिवर्तित कर सके। ऐसे कार्यों की आवश्यकता कारागारों में है। सुधारात्मक दर्शन के अनुसार दण्ड का आधार या लक्ष्य अपराधी को दण्ड देना न होकर अपराधी की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाना है, जिससे कारागार से वापस जाने पर समाज के सामाजिक एवं वैधानिक नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने की मनोवृत्ति तथा एक उत्तरदायी नागरिक की तरह रहने की कला का विकास कर सके। समाज कार्य के दर्शन का प्रभाव दण्डशास्त्र पर पड़ा और अपराधी कार्य को असमंजन, विस्थापन, विचलन, मानसिक विकार आदि का चिह्न माना जाने लगा है।

दण्डशास्त्र के नवीन दृष्टिकोण के अनुसार अपराधों का मुख्य कारण समाज की सामाजिक, आर्थिक दोषपूर्ण संरचना है। अतः अपराधी को दण्ड देना अवांछित तथा अमानवीय एवं अनैतिक है। सामूहिक कार्य का दृढ़ विश्वास है कि सामूहिक व्यक्ति में एक निहित आत्म-सम्मान की भावना एवं सुधार की क्षमता होती है। यदि उसे सहायता पहुँचायी जाय तो वह अपनी समस्याओं का निस्तार मार्ग ढूँढ़ सकता है।

सुधार कार्यकर्ताओं की टोली में निम्न भूमिकायें पूरी करता है :

1. अपराधियों के विषय में जाँच-पड़ताल करके सुधारवादी कार्यक्रम निश्चित एवं प्रस्तुत करने में सहायता करना।

2. सामूहिक कार्य के माध्यम से इस प्रकार से पर्यवेक्षण करना जिससे वह आत्मनियंत्रण सीखे।

3. सामाजिक तथा वैधानिक मजबूरियों को दूर करने में सहायता करना तथा इनमें व्यवहार को सामाजिक आदर्शों के अनुरूप बनाना।

4. इस प्रकार से सहायता करना जिससे वे कानूनी तथा प्रशासनिक नियमों का पालन अपने हित को ध्यान में रखकर कर सकें।

5. उन संवासियों को परामर्श देना तथा मार्गदर्शन करना जो कारागार में पहली बार आये हैं।

6. मानसिक कुंठाओं, आहत भावनाओं तथा विक्षिप्त मनोदशाओं को दूर करने में सहायता करना तथा उन्हें संस्था के अन्य संवासियों, अधिकारियों तथा कार्य-पद्धतियों के समरूप व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना। कारागारों में नियुक्त कल्याण अधिकारियों के कार्यों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है :

1. नये संवासियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करना।

2. कारागार के कार्यक्रम अवगत कराना।

3. अपने जीवन की नवीनदशा तथा संस्था में ठीक से रहने के मार्ग बताना।

4. संस्थागत समस्याओं को दूर करने के मार्ग ढूँढ़ना।

5. संवासियों को संस्था की समस्याओं को दूर करने में प्रोत्साहित करना।

6. उन्हें अपने परिवार के साथ सम्बन्ध बनाये रखने में हर सम्भव सहायता करना।

7. परिवार के सदस्यों की भी सहायता करना।

8. बंदी को आत्मनिर्भर, कानून पालनकर्ता तथा उत्तरदायी नागरिक बनाने का प्रयत्न करना।

9. कारागार अधिकारियों के साथ बैठकर बंदी के उपचार के कार्यक्रम उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाने पर बल देना।

10. कारागार प्रशासन तथा बंदी के बीच कड़ी का काम करना।

(xi) सामाजिक सामूहिक कार्य तथा बाल अपराध :

सामाजिक विघटन की जितनी भी समस्यायें आधुनिक औद्योगिक नगरीय समाजों को घेरे हुये हैं उनमें बाल तथा किशोर अपराध की समस्या एक गम्भीर

विचारणीय प्रश्न हैं। अपराधी बालक प्रायः निम्न कृत्यों में से किसी एक या एक से अधिक क्रियाओं में भाग लेता है :

1. कानून तथा अध्यादेश का उल्लंघन।

2. स्वभाव से अनुपस्थित होना।

3. जानबूझकर चोरों, अपराधियों तथा अनैतिक व्यक्तियों के साथ मेल-जोल रखना।

4. माता-पिता तथा अभिभावकों के नियन्त्रण में न होना।

5. अपराध की दशाओं में बड़ा होना।

6. ऐसा आचरण करना जिससे स्वयं या दूसरों को नुकसान या चोट पहुँचे।

7. बिना किसी आवश्यक कार्य तथा माता-पिता की अनुमति के घर से बाहर रहना।

8. अनैतिक तथा अशिष्ट व्यवहार करना।

9. स्वभावतः गंदी भाषा का प्रयोग करना तथा गाली-गलौज करना।

10. जानबूझकर बदनाम घरों में जाना।

11. जुआ के अड्डों पर जाना।

12. आश्तन स्टेशन या रेल पटरी के आस-पास रहना।

13. चलती गाड़ी से कूदना।

14. उन जगहों पर जाना जहाँ शराब तथा मादक द्रव्य पिये जाते हैं।

15. रात में सड़कों तथा गलियों में घूमना।

16. स्कूल या अन्य स्थान पर अनैतिक आचरण करना।

17. अवैधानिक व्यवसाय करना।

18. सिगरेट, तम्बाकू तथा शराब व मादक द्रव्य पीना।

19. यौन अनियमितताओं में रत होना।

20. भिक्षावृत्ति करना।

बाल अपराध समस्या के नियन्त्रण के दो पक्ष हैं : (1) बाल अपराधियों का सुधार जिससे वह अपने आगे के जीवन में अपराधी प्रवृत्तियों को त्याग सके और वयस्क अपराधी न बने, तथा

(2) उन बालकों का उचित निर्देशात्मक नियन्त्रण जिससे व्यवहारिक सामंजस्य की समस्यायें तथा चारित्रिक दोषों का जन्म हो रहा है तथा जो पूर्व बाल अपराध की अवस्था से गुजर रहे हैं।

सामूहिक कार्यकर्ता अपराध उत्पन्न करने वाली सामूहिक दशाओं में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। अपराध या बाल अपराध जैसी विषम समस्याओं का नियन्त्रण उस समय तक समाप्त नहीं है जब तक कि उन समुदायों की आर्थिक

जीवन दशा नहीं सुधरेगी जिसमें बाल अपराध की समस्यायें स्वतः पनपती हैं। अतः इन समुदायों के लिए आर्थिक सुरक्षा के कार्यक्रम आयोजित करना, उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा गरीबी, अशिक्षा व आवास की समस्या का समाधान करना, सामूहिक कार्यकर्ता का कार्य हो जाता है। समुदाय के प्रबुद्धजनों का एक ऐसा संगठन तैयार करना जो अपराधी व्यक्तियों पर अपना प्रभाव दिखायें व बालकों को उनके पास न जाने दें। इस कार्य में वह स्कूलों, धार्मिक संस्थाओं, कल्याणकारी सेवाओं आदि की सहायता लेता है। वह बाल अपराधियों को मनो-चिकित्सकीय सेवायें भी प्रदान करता है। वह मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था करता है क्योंकि मनोरंजन के अभाव में ही असामाजिक तथा अपराधिक प्रवृत्तियों का विकास होता है। सामूहिक कार्यकर्ता मनोरंजन की संस्थाओं, कार्यों, खेलों के मैदानों, क्लबों आदि की व्यवस्था करता है। उसके द्वारा बालकों की मनोरंजन विधियों को चरित्र निर्माणक बनाया जा सकता है। सामूहिक कार्यकर्ता पारिवारिक कल्याण सेवा केन्द्रों की स्थापना करता है तथा बाल एवं युवा कल्याण सेवाओं का विस्तार करता है। अपराधी प्रवृत्ति रखने वाले बालकों का लेखा तथा उनके सुधार के लिए उचित कार्यक्रमों का आयोजन करता है। सामूहिक कार्यों के माध्यम से उनके जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है तथा वे प्रयत्न करता है जिससे उनमें वैयक्तिक क्षमतायें बढ़ती हैं तथा आत्म-निर्भरता आती है।

(xii) सामाजिक सामूहिक कार्य तथा श्रमकल्याण

औद्योगीकरण के विकास तथा यन्त्रीकरण की वृद्धि से उद्योगों एवं कारखानों में मानवीय पक्ष की 'अवहेलना के परिणामस्वरूप अनेक अधिनियम पारित किये गये। इन अधिनियमों का मुख्य उद्देश्य मानवीय पक्ष की सुरक्षा करना तथा प्रतिष्ठा एवं हितों की रक्षा करना है। यन्त्र और व्यक्तियों में इस प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करना जिससे श्रमिकों का सम्मान और विश्वास नये मानवीय मूल्यों और मान्यताओं के अनुरूप विकसित हो तथा उत्पादन में वृद्धि हो। सन् 1948 में कारखाना कानून पास हुआ जिसमें श्रमिकों के विशेष कल्याण की व्यवस्था की गयी। इस कानून के अन्तर्गत श्रमकल्याण अधिकारी की नियुक्ति की गयी है। यह अधिकारी एक प्रकार का सामूहिक कार्यकर्ता होता है जो श्रमिकों के कल्याण के लिए उपाय करता है। श्रमकल्याण अधिकारी का प्रमुख कार्य श्रमिकों की आवश्यक एवं कल्याण सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ध्यान देना तथा उनको पूरा करने का प्रयत्न करना है। वह सदैव उन सुविधाओं एवं स्थितियों को पूरा करने का प्रयत्न करता है जिनसे श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और कार्य स्थिति से संतोष प्राप्त होता है।

श्रमकल्याण में कार्यकर्ता के कार्य अन्य सामाजिक संस्थाओं से भिन्न हैं क्योंकि कारखाना न तो सामाजिक संस्था है और न ही श्रमिकों का कल्याण करना प्रमुख उद्देश्य है। इसका प्राथमिक उद्देश्य उत्पादन वृद्धि करना है। कल्याणकारी कार्यों का तात्पर्य उत्पादन उद्देश्य को पूरा करने में सहायता करना है। दूसरे श्रमकल्याण अधिकारी की नियुक्ति प्रबन्धकों द्वारा की जाती है और कल्याण का कार्य श्रमिकों के लिए करता है। अतः इन परिस्थितियों में काम करने के लिए कार्यकर्ता को वृहत कला निपुणता एवं ज्ञान की आवश्यकता होती होती है। श्रमकल्याण अधिकारी को औद्योगिक सम्बन्ध और शक्ति तथा सामाजिक सम्बन्धों के लिए निम्न कार्य करने होते हैं :

1. प्रबन्धकों तथा श्रमिकों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना।

2. दोनों पक्षों के विचारों तथा भावनाओं का एक दूसरे से अवगत कराना।

3. श्रमिकों के विवादों को व्यक्तिगत स्तर पर सुलझाना तथा उनको प्रबन्धकों की दृष्टि में लाना जिससे उनका शीघ्र समाधान सम्भव हो सके।

4. श्रमिकों की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाना।

5. श्रम सम्बन्धी नीति निर्माण के लिए श्रमिकों के दृष्टिकोण का अध्ययन करना तथा प्रबन्धकों को अवगत कराना।

6. सम्भावी विवादों पर ध्यान रखना तथा उनके समाधान के उपायों को ध्यान में रखना।

7. अवैधानिक हड़ताल रोकने में श्रमिकों को सलाह देना।

8. प्रबन्धकों को अवैधानिक तालाबन्दी न करने की सलाह देना।

9. हड़ताल के समय निष्पक्ष रूप से प्रबन्धकों तथा श्रमिकों की सहायता करना।

10. उन व्यवस्थाओं को पूरा करना जो कारखाना अधिनियम में वर्णित हैं। जैसे, कर्मचारियों का चिकित्सकीय परीक्षण, अनुपयुक्त कार्यों की निगरानी, बीमारी में देखभाल, दुर्घटनाओं की रोकथाम, सुरक्षा, शिक्षा, मातृत्व लाभ, क्षतिपूर्ति लाना आदि व्यवस्थाओं का प्रबन्ध।

11. जलपान गृह, आवासीय प्रबन्ध, बच्चों की शिक्षा, शौचालय, पीने के पानी की व्यवस्था करना।

12. कारखाने के नियमों से अवगत कराना।

13. श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के हर सम्भव प्रयत्न करना।

(xiii) सामाजिक सामूहिक कार्य तथा सामाजिक नियोजन :

सन् 1964 में समाज कार्य की 12वीं अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई जिसका

विषय था सामाजिक नियोजन द्वारा सामाजिक प्रगति समाज कार्य की भूमिका। कान्फ्रेंस में यह निष्कर्ष निकला कि अधीन समाज कल्याण अधिकारी का ज्ञान है कि उसे सामाजिक नियोजन में अधिकाधिक भाग लेना चाहिये परन्तु व्यवहार में यह सम्भव नहीं हो पाता है। सन् 1974 में समाज कल्याण की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई जिसमें यह प्रस्ताव किया गया कि अधिक उत्पादन पर जोर देने के साथ-साथ समुचित वितरण, संतोष, आत्मनिर्भरता पर भी जोर दिया जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ऐसे कार्य हों जिनसे गरीबों को लाभ हो, वर्ग भेद कम हो, शोषण समाप्त हो तथा सम्पूर्ण समुदाय का हित हो। परन्तु इन कार्यों को लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप किया जाना चाहिये। इस प्रस्ताव के कारण अनेक सामाजिक सेवायें, भूमि सुधार का कार्य, प्रौढ़ शिक्षा, औद्योगिक विकास आदि कार्य प्रारम्भ किये।

सामाजिक नियोजन के निम्न प्रमुख कार्य हैं जो सामूहिक कार्य के उद्देश्यों एवं कार्यों के अनुरूप है।

1. संरचना में परिवर्तन लाना जिससे सामाजिक सुधार की गति तेज हो सकें।

2. विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए संस्थागत तथा प्रशासनिक व्यवस्था को बेहतर बनाना।

3. विकास के लक्ष्यों के निर्धारण तथा निर्माण प्रक्रिया में जनभागीकरण को बढ़ावा देना।

4. समुदाय में रोजगार के अवसरों की अधिकता तथा उनके उपयोग के लिए आवश्यक प्रबन्ध तथा तकनीकी ज्ञान प्रदान करना।

5. विकास के लिए स्थानीय शक्तियों, स्रोतों तथा ज्ञान का उपयोग करना।

6. समुदाय को अधिक उत्पादन तथा उत्पादकता के लिए प्रेरित करना।

7. कार्यक्रमों में सक्रिय भागीकरण को प्रोत्साहन देना।

8. समाज के पिछड़े वर्ग के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, बल प्रशिक्षण आदि का प्रबन्ध करना।

सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक नियोजन के क्षेत्र में निम्न कार्य करता है :

1. आकड़ों का एकत्रीकरण, विश्लेषण तथा व्याख्या करना।

2. समुदाय की समस्याओं तथा आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करना तथा नियोजन समिति को बताना।

3. समस्या जटिलता, महत्त्व, समाधान के सामान आदि के विषय में सूचनायें एकत्र करना।

4. समुदाय की समस्या के आधार पर उद्देश्यों को निश्चित करना तथा विभिन्न उद्देश्यों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना।

5. उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर उद्देश्यों को कहाँ तक प्राप्त किया जा सकता है, ज्ञान प्राप्त करना।

6. श्रम शक्ति, साधन, वित्तीय स्थिति आदि सभी कारणों का विश्लेषण करना।

7. कार्य के उत्तरदायित्व को निश्चित करना तथा श्रमशक्ति की आवश्यकता का पता लगाना।

8. प्रत्येक आगत के लिए किन सेवाओं की आवश्यकता है, निश्चित करना।

9. संगठन बनाना तथा सरकारी विभागों से जोड़ना।

10. समन्वित तरीकों से किस प्रकार कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाय तथा उसके संचालन की काय संरचना क्या हो इसका निर्धारण करना।

11. भागीकृत नियोजन तथा विकास प्रबन्ध की सफलता के लिए जनता को प्रोत्साहित करना तथा उसका ज्ञान प्रदान करना।

12. बजट निर्धारण में सहायता करना।

(xiv) सामाजिक सामूहिक कार्य तथा सामाजिक आर्थिक विकास

मानव समाज की जटिलता के परिणामस्वरूप सामाजिक शक्तियों, कारकों तथा स्थितियों को समझना साधारण मनुष्य के लिए कठिन हो गया है। इसीलिए सामाजिक आर्थिक विकास के संगठन तथा संस्थायें समस्या के मूल कारणों के समझने में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में उपयुक्त सहायता उस व्यक्ति से मिल सकती है जो जनता के साथ कार्य करने के योग्य हो और तत्कालीन समाज की कार्य पद्धति तथा व्यक्ति पर उसके प्रभाव को समझता हो। सामूहिक कार्य का विकास सुव्यवस्थित महायता देने के उद्देश्य से ही हुआ है। सामूहिक कार्य लोगों के लिए दो वस्तुयें ढूँढ़ता है : आर्थिक समृद्धि एवं सुख का गहरा स्रोत तथा आत्मोन्नति। सामूहिक कार्य का उद्देश्य सामाजिक अन्याय को दूर करना, दुखों को दूर करना, समाज के कमजोर सदस्यों की सहायता करना, अज्ञानता को दूर करना तथा मलिनता को हटाना है। सामाजिक आर्थिक विकास का भी उद्देश्य आर्थिक समृद्धि लाना तथा सामाजिक न्याय एवं कार्य के समान अवसर उपलब्ध कराना है।

सामूहिक कार्य की मौलिक मान्यतायें सामाजिक न्याय तथा सामाजिक समानता पर आधारित हैं। सामूहिक कार्य की महत्त्वपूर्ण धारणा है कि प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान है। वह प्रतिष्ठा का अधिकारी है। वह समग्रता का भाग है।

उसे आत्मनिश्चय का अधिकार है तथा समस्या समाधान के उचित साधनों का स्वयं निर्णय लेने का अधिकार ही सामूहिक कार्यकर्ता अपनी सामूहिक क्रियाओं में इन मूल्यों को प्राथमिकता देता है। सामूहिक कार्य का दृढ़ विश्वास है कि समस्या सदैव श्रृंखलाबद्ध रूप में प्रतिक्रिया करती है। एक समस्या अनेक कठिनाइयों को उत्पन्न करती है। समस्या सभी को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है परन्तु जो समाधान कर लेता है वह सेवार्थी नहीं होता है। अतः व्यक्ति में समस्या समाधान करने की क्षमता का विकास करना सम्भव है।

सामूहिक कार्यकर्ता सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए निम्न कार्य करता है।

1. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों का विश्लेषण करता है।

2. मानवीय आवश्यकताओं के विषय में तथ्यों की जानकारी प्राप्त करता है।

3. तथ्यों का संश्लेषण, सहसम्बन्ध और परीक्षण करता है।

4. सम्बन्धित व्यक्तियों एवं समूहों के प्रतिनिधियों को प्रक्रिया के सभी चरणों में सहभागी बनाता है।

5. परस्पर समझ पर आधारित समझौता लाने की दृष्टि से प्रतिनिधित्व दृष्टिकोणों और मनोवृत्तियों के बीच अंतःक्रिया को विकसित करता है।

6. सामाजिक समस्याओं के प्रति लोगों में रुचि उत्पन्न करना तथा शिक्षा एक सहःभागिता द्वारा अभिप्रेरणा का सृजन करता है।

7. कार्यक्रमों की प्राथमिकता निर्धारित करता है।

8. सेवाओं के स्तर में सुधार लाने का प्रयास करता है।

9. शिक्षा के माध्यम से समूहों के ज्ञान में वृद्धि करता है।

10. नैतिक तथा आर्थिक समर्थन को जुटाता है।

11. वह सामूहिक दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

12. कमजोर वर्ग के लोगों के लिए विशेष कार्यक्रम, सुविधाओं तथा साधनों को जुटाता है तथा सहायता करता है।

(xv) सामूहिक कार्य तथा प्रौढ़ शिक्षा

सन् 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में केवल 36.19 प्रतिशत लोग साक्षर हैं। इसका तात्पर्य यह है कि 100 व्यक्तियों में से 64 व्यक्ति निरक्षर हैं। अर्थात् 44 करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं। निरक्षरता की स्थिति का असर देश के सामाजिक-आर्थिक विकास के कार्यक्रमों पर पड़ रहा है। इन कार्यक्रमों से वह परिणाम नहीं मिल पा रहा है जो उन्हें मिलना चाहिए। इसी समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को प्रारम्भ किया। इसका औपचारिक रूप से प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1978 को हुआ।

इसका उद्देश्य न केवल साक्षरता प्रदान करना है वरन् निरक्षर प्रौढ़ों को जागरूक बनाना, चेतना जागृत करना, समग्र विकास करना तथा व्यावहारिक दक्षता को बढ़ाना है जिससे शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक स्तर में सुधार सम्भव हो सके।

प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता निम्न कारणों से प्रमुख है :

1. व्यक्ति के विकास तथा राष्ट्र की समृद्धि में निरक्षरता गम्भीर बाधा है।

2. प्रत्येक व्यक्ति में सीखने की क्षमता होती है केवल अवसर ही महत्वपूर्ण होते हैं।

3. सामूहिक प्रयासों से निर्धन और निरक्षर व्यक्ति भी शिक्षा ग्रहण कर अपनी और अपने परिवार की स्थिति सुधार सकते हैं।

4. साक्षरता मानव विकास का सशक्त साधन है।

5. सीखना, काम करना तथा जीवन को सुधारना–तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। नयी बातें सीखने से वह नये ढंग से काम करना सीखता है। जिससे उसकी आय बढ़ती है।

6. राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सहभागिता तथा धार्मिक सहिष्णुता शिक्षा से आती है।

प्रौढ़ शिक्षा केवल साक्षरता ही नहीं है। साक्षरता उसे ग्रहण करने के लिए अनिवार्य साधन है। साक्षरता के माध्यम से अनपढ़ लोगों में चेतना का विकास होता है। उनको अपने हित, परिवार के हित, अपने समाज के हित, तथा राष्ट्र के हित के प्रति जागरूक बनने में सहायक होती है तथा अन्याय और शोषण का मिलकर सामना करने के लिए उन्हें तैयार करती है।

राष्ट्रीय साक्षरता अभियान में प्रौढ़ शिक्षा के निम्नलिखित प्रमुख आयाम हैं :

1. व्यावहारिक दक्षता
2. स्वास्थ्य एवं स्वच्छता
3. साक्षरता
4. मनोरंजन
5. चेतना जागृति
6. मूल्य परक शिक्षा।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम ग्रामीण निरक्षर प्रौढ़ों को जो 15 से 35 वर्ष की आयु के हों, को साक्षर बनाने के साथ साथ उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है। इसका दोहरा उद्देश्य है : साक्षरता के साथ साथ लक्ष्य समूह को आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करना।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यकर्ता सामूहिक कार्य की विधियों तथा सिद्धान्तों का उपयोग करके करता है। वह प्रायः निम्न कार्य करता है :

1. व्यवसायिक दक्षता कार्यक्रम को प्रारम्भ करने के लिए व्यवसायिक सर्वेक्षण करता है। वह पता लगाता है कि गाँव में कौन सा व्यवसाय किया जा सकता है, कच्चा माल की क्या स्थिति होगी, सम्बन्धित व्यवसाय के लिए किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी, नये व्यवसायों के लिए किन किन उपकरणों की आवश्यकता होगी, व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए आर्थिक सहायता के स्रोत कौन से होंगे। इसके पश्चात् वह सम्बन्धित संगठनों से सहायता प्राप्त करता है।

2. प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों पर शिक्षण का कार्य करता है।

3. वह चेतना जागृति के लिए कार्य करता है।

4. स्वास्थ्य एवं सफाई में व्यक्तिगत एवं सामाजिक नियन्त्रण बताता है तथा व्यावहारिकता में आता है।

5. मनोरंजन की क्रियायें करता है।

6. अंधविश्वासों को दूर करता है।

7. सामाजिक कुरीतियों की हानियों को बताता है।

8. आर्थिक-सामाजिक विकास के लिए सामूहिक शोध्र को संचालित करता है।

(xvi) सामाजिक सामूहिक कार्य तथा राष्ट्रीय सेवायोजना

राष्ट्रीय सेवा योजना सन् 1969–70 में इस विचार से प्रारम्भ की गयी थी कि कालेज के छात्रों में सामाजिक चेतना और दायित्व बोध के विकास के साथ-साथ अनुशासन की भावना का विकास और श्रम के प्रति आदरभाव पैदा हो। उन्हें ऐसे अवसर प्रदान किये जायँ कि वे शैक्षिक परिवारों के आसपास के लोगों के साथ मिलकर सृजनात्मक और रचनात्मक कार्य कर सकें तथा जो वे शिक्षा ग्रहण करते हैं उसे समाजोन्मुख करके ठोस सामाजिक उपयोग में ला सके। यह महसूस किया गया है कि छात्र समाज सेवा के माध्यम से अपने व्यक्तित्व का विकास करे और अपना अनुभव बढ़ावे। इस योजना का लक्ष्य समाज सेवा के माध्यम से विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करना है। अतः उन्हें निम्न कार्यों के लिए प्रेरित किया जाता है।

1. जिस समाज में वे काम करते हैं उसे समझे,

2. अपने आपको समाज के संदर्भ में समझे,

3. समाज की आवश्यकताओं तथा कठिनाइयों का उन्हें ज्ञान हो तथा समाधान में सक्रिय रूप से भाग ले।

4. सामाजिक और नागरिक दायित्व की भावना का विकास करे।

5. शिक्षा का उपयोग समाज की कठिनाइयों का व्यवहारिक हल ढूँढ़ने में करे।

राष्ट्रीय सेवा योजना के कार्यक्रमों के 4 पहलू हैं :

1. संस्थागत कार्य—छात्रों को परिसर के बाहर स्वयंसेवकों के रूप में कार्य करने के लिए कुछ चुनी हुई कल्याण एजेन्सियों में सामूहिक कार्य करने के लिए लगाया जाता है।

2. संस्थागत परियोजनायें—परिसरों में सुधार लाना, खेल के मैदानों तथा तालाबों का निर्माण करना।

3. ग्रामीण परियोजनायें—निरक्षरता का उन्मूलन, कृषि सम्बन्धी कार्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, सफाई, सड़क निर्माण, पौध लगाना आदि।

4. शहरी परियोजनायें—प्रौढ़ शिक्षा, गंदी बस्ती में रहने वालों का कल्याण, प्राथमिक उपचार कार्य, सफाई, स्वास्थ्य आंदोलन चलाना आदि।

(xvii) सामूहिक कार्य तथा सामाजिक न्याय :

सामाजिक न्याय संतुलित विकास के लिए संग्रहक तथा असंग्रहक के बीच संतुलन चक्र है। इसका उद्देश्य समाज में असंतुलन को समाप्त करके प्रगति की ओर ले जाना है। सामूहिक कार्य का विश्वास है कि सभी को विकास के अवसर मिलने चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि धनी तथा शक्तिशाली व्यक्ति योग्य तथा निर्धन व दुर्बल व्यक्ति अयोग्य हो। सामाजिक न्याय वहीं सम्भव हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान दिया जाय तथा विकास के उचित अवसर प्रदान किये जायें। सामूहिक कार्य इन कसौटियों को पूरा करता है।

●

अध्याय 4

सामाजिक सामूहिक कार्य के उद्देश्य

सामूहिक कार्यकर्ता के लिए समूह कार्य के उद्देश्यों तथा उसके आधारों का ज्ञान कार्य सम्पन्नता के लिए आवश्यक होता है। उद्देश्य कुतुबनुमा के समान होते हैं जो कार्यकर्ता को करने की दिशा का बोध कराते हैं। उद्देश्य यह स्पष्ट करते हैं कि कार्यकर्त्ता क्या प्रयास करने जा रहा है तथा किस दिशा में प्रयास की गति है। उद्देश्य ऐसे कथन या नियम हैं जो बताते हैं कि सामूहिक कार्य में हम क्या करने का प्रयत्न कर रहे हैं।[1] उद्देश्यों को स्पष्टता व्यवस्थित प्रक्रिया का आधार होती है। ये प्रेरक शक्ति का कार्य करते हैं जिसके सहयोग से सामूहिक कार्य प्रक्रिया एक निश्चित दिशा की ओर शनैः शनैः चलती रहती है।

1. उद्देश्यों का महत्त्व (Importance of Objectives)

उद्देश्यों की स्पष्टता निम्न कारणों से महत्वपूर्ण होती है।

1—उद्देश्य कार्यकर्ता को सही दिशा प्रदान करते हैं तथा निश्चित मार्ग को अनुमोदित करते हैं।

2—उद्देश्यों के निश्चित होने पर साधनों के उपयोग में सुविधा होती है।

---

1. Trecker, H. B. : op. cit., p. 56.
"Objectives are not merely goals; they are motivating forces for action, and we move toward them or retreat by concerted action. As a practical matter objectives which have been developed and defined by one group lose some and at times all of their motivating force for action when they are passed on to another group. The success of objectives in stimulating action is proportionate to the spirit of participation in determining the objectives.
........Among people who are to take action the process of thinking about objectives is more important than the final words in which they are put on paper."

3—उद्देश्यों के निश्चित होने से कार्यकर्ता संस्था की सेवाओं तथा कार्य-क्रमों का आवश्यकतानुसार उपयोग करता है।

4—उदेश्यों के स्पष्ट होने से कार्यकर्ता को यह ज्ञात हो जाता है कि किसके साथ कार्य करना है तथा सामूहिक कार्य के किस प्रारूप का उपयोग करना है।

5—उद्देश्यों के स्पष्ट होने पर ही संस्थायें निश्चित करती हैं कि कार्य का प्रारम्भ कैसे और किसके साथ किया जाय।

6—उद्देश्यों की स्पष्टता से नेतृत्व की आवश्यकता का ज्ञान होता है तथा पता चलता है कि किस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता है।

7—उद्देश्यों की सहायता से ही कार्यकर्ता अपनी निपुणताओं तथा कार्य-पद्धति में परिवर्तन एवं परिवर्धन करता है।

8—उद्देश्य के स्पष्ट होने से संस्था के लिए आवश्यक यंत्रों, साधनों तथा कोष को निश्चित करने में सहायता मिलती है तथा बजट के निर्धारण में आसानी रहती है।

9—उद्देश्यों की स्पष्टता से सम्बन्धों की एक दिशा निश्चित होती है तथा सम्बन्धों का रूप निश्चित होता है।

10—उद्देश्यों के निश्चित होने पर कार्यक्रमों की प्राथमिकता निश्चित करने में आसानी रहती है।

11—उद्देश्यों की स्पष्टता पर ही जन भागीकरण सम्भव होता है।

12—मूल्यांकन की प्रक्रिया उद्देश्यों को आधार मानकर ही चलती है। कार्यकर्ता, समूह तथा संस्था तीनों ही अपने कार्यों, कार्यक्रमों तथा कार्य-विधियों का मूल्यांकन अपने-अपने उद्देश्यों के आधार पर ही करते हैं।

उद्देश्यों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए डेविड (David)[2] का कथन है कि उद्देश्य केवल लक्ष्य ही नहीं हैं, वे क्रिया के लिए सम्प्रेरक शक्ति हैं। हम उन्हीं के आधार पर आगे बढ़ते हैं अथवा वापस होते हैं। व्यावहारिक स्तर पर एक समूह के उद्देश्य दूसरे समूह के साथ क्रिया करने पर अपनी सम्प्रेरक शक्ति को खो देते हैं। उद्देश्यों की सफलता उद्देश्यों के निश्चित करने में भागीकरण

2. David, Donald K. : "The objectives of Professional Education" in Education for Professional Responsibility, A Report of the Proceedings of The Inter–Professions Conference on Education for Professional Responsibility, Held at Buck Hill Falls, Pensylvania, April 12-14, 1948.

की गम्भीरता एवं गहनता पर निर्भर होती है। जिन लोगों को क्रिया में भाग लेना है, उद्देश्यों के प्रति उनके विचार अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(II) सामाजिक बस्तियों का ऐतिहासिक उद्देश्य :
(Historical Purpose of Social Settlements)

सामाजिक सामूहिक कार्य के उद्देश्यों को वास्तविक रूप में समझने के लिए उसके ऐतिहासिक स्वरूप को देखना होगा। सामाजिक आन्दोलन का इतिहास सामूहिक कार्य के उद्देश्यों को समझने में सहायता प्रदान करता है। बस्तियों की स्थापना पड़ोसियों के सामाजिक जीवन को सुधारने की दृष्टि से की गयी थी। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर अंग्रेजों ने 1884 में रायन्वी हाल की स्थापना की। यद्यपि कुछ बस्तियों का लक्ष्य मनोरंजनात्मक सेवायें प्रदान करना था, कुछ का जीवन की दशाओं में सुधार करना था तथा कुछ कल्याणकारी सेवायें प्रदान करती थीं, परन्तु सभी बस्तियों का लक्ष्य जीवन स्तर में वृद्धि तथा सामाजिक दशाओं में सुधार लाना था।[3] सन् 1900 में एक बस्ती के मुख्य जोडेन्ट ने बस्तियों को नये विचारों का गर्मीले केन्द्र (Hot centres of new thought)''[4] सन् 1925 में डा० जान इलियट (John Elliot) ने अपने 20 वर्षों के अनुभव के उपरान्त समाज-कार्य के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि इसका उद्देश्य व्यक्तियों की इस प्रकार से सहायता करना जिससे वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें नहीं है बल्कि स्वयं स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें इसके लिए सहायता करना है और यह स्वतन्त्रता तभी प्राप्त हो सकती है जब वे दूसरों की स्वतन्त्रता के लिए कार्य करें।

सामाजिक बस्तियों का उद्देश्य पड़ोस की दशाओं पर निर्भर है क्योंकि पड़ोस

---

3. Scudder, Vida D. : "Settlement Past and Future, Denison House College Settlement Report 1900.

4. "It seems to me that this should be the real purpose of social work–not to help people just to help themselves, but to help them to achieve a freedom for themselves which can only be achieved through working for the free-dom of others."

   Elliott, John, L. : "After Twenty Years in the Tenement Houses of Newyork, Address given in Newyork city before the Society of Ethical culture, April 11, 1915.

(Neighbourhood) ही सामाजिक बस्तियों का सेवार्थी (client) है। वर्तमान समय में सामाजिक बस्तियों के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य हैं :

1. पड़ोस के लोगों की सहायता करना जिससे वे सामाजिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बना सकें और आपस में घनिष्ठता पूर्वक रह सकें। उनमें जो भी सम्बन्ध स्थापित हो वह एक दूसरे को प्रेरणा प्रदान करे।

2. स्वदेशी (Indegenous) नेतृत्व की खोज करना तथा उसका विकास करना जो बिना किसी जातीय धार्मिक अथवा राष्ट्रीयता भेदभाव के सभी के कल्याण के लिए कार्य करेगा।

3. प्रभावात्मक वैयक्तिक एवं सामूहिक क्रियाओं के प्रतिमानों के द्वारा एक दूसरे के प्रति तथा विस्तृत राय से समुदाय के प्रति नागरिकता के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए सहायता करना।[5]

ऐतिहासिक रूप से सामाजिक बस्तियों का उद्देश्य सांस्कृतिक क्रियाओं—संगीत, नाटक, कला तथा नृत्य को सम्पन्न करना रहा है। सन् 1926 में फिलेडेल्फिया के संगीत स्कूल के निदेशक ने इसी प्रकार के विचार स्पष्ट करते हुये कहा कि बस्तियाँ (Settlements) सांस्कृतिक उत्थान में महान् भूमिका निभा रही है।[6]

(III) सामाजिक सामूहिक कार्य का व्यावसायिक उद्देश्य :

सन् 1935 में सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास व्यावसायिक रूप में हुआ। इसी वर्ष पहली बार सामूहिक कार्य के उद्देश्यों पर समाज कार्य की राष्ट्रीय कान्फ्रेंस ने प्रकाश डाला। इसके अनुसार सामूहिक कार्य को ऐच्छिक संघों द्वारा व्यक्ति के विकास एवं सामाजिक सामंजस्य को प्रोत्साहन देने तथा इन संघों के माध्यम से इच्छित सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने को एक शिक्षात्मक प्रक्रिया है।

---

5. Bosworth, F. "Settlements and Neighbourhood Centres. Social Work Year Book, AASW, Newyork, 1954, pp. 471-72.
6. Grolle, Johan : Symposium on Settlement Goals for the Next Third of a century" National Association of Settlements, 1926, p. 29.

विलसन तथा रॉइलैण्ड (Wilson and Ryland)[7]

अधिकांश सामाजिक संस्थायें, जो समूहों की सेवा करती हैं, वे दो सामान्य उद्देश्य रखती हैं—

1. व्यक्तियों की इस प्रकार से सहायता करना जिससे वे समूह का उपयोग सांवेगिक संतुलन, बौद्धिक स्वतन्त्रता तथा शारीरिक स्वस्थ व्यक्तियों के रूप में अपना विकास आगे बढ़ा सके।

2. समूह को उन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करना जो आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक जनतन्त्र के लिए वांछनीय हैं।

कोयले (Coyle)[8]

सामूहिक कार्यकर्ता समूहों को इस प्रकार से कार्य करने के लिए उत्साहित करता है जिससे सामूहिक अन्तःक्रिया तथा कार्यक्रम क्रियायें व्यक्ति और वांछनीय सामाजिक लक्ष्यों की उपलब्धि की वृद्धि में योगदान देती है।"

कोयले का विचार है कि सामूहिक कार्य के निम्नलिखित कार्य हैं :

1. व्यक्तियों की आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुरूप विकास के अवसर प्रदान करना।

---

7. "Most social agencies serving groups have two purposes in common :
   (1) "to help individuals use groups to further their development into emotionally balanced, intellectually free and physically fit persons.
   (2) to help groups achieve ends desirable in the economic, political and social democracy;"

   Wilson G. and Ryland, G. : Social Group Work Practice; Houghton Mifflin, Boston, 1949, p. 61.

8. "The group worker enabls various types of groups to function in such a way that both group interaction and programmes activities contribute to the growth of the individual and the achievement of desirable social goals." Coyle, G. L. : "Social group Work" Social Work Year Book A A S W, Newyork, 1951, p 466.

2. व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों, समूहों और समुदायों में समायोजन प्राप्त करने में सहायता करना।

3. समाज के प्रजातान्त्रिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों को प्रेरित करना।

4. कार्यक्रमों का इस प्रकार निर्देशन करना जिससे व्यक्तियों में अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध हो सके।

5. कार्यकर्ता सामूहिक सम्बन्धों को वैयक्तिक वृद्धि एवं विकास के लिए उपयोग करता है। लेकिन अन्तिम लक्ष्य समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार को सिखाना होता है।

ट्रेकर (Trecker)[9]

"मूलत: सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्‌देश्य मानव व्यक्तित्व का सम्भव उच्चतम विकास करना है जो जनतांत्रिक आदर्शों के प्रति समर्पित तथा अनुरक्त हो।

विंटर (Vinter)[10]

सामूहिक कार्य समूहों में तथा छोटे समूहों को आमने-सामने के द्वारा लोगों की सहायता करने का एक तरीका है जिससे सेवार्थी भागीकृत लोगों में वांछित परिवर्तन आ सके।

नार्दन (Northen)[11]

सामाजिक कार्यकर्ता उस तरीके को प्रभावित करने के लिये जिसमें सदस्य अपनी समस्याओं—व्यक्तियों की, समूह की अतिरिक्त व्यवस्था की तथा विस्तृत पर्यावरण की, को सामना करने तथा समाधान करने के लिये कार्य करते हैं।

---

9. "Fundamentally the purpose of social group work is to bring about the highest possible development of human personality, dedicated and devoted to the democratic ideal."
Trecker, H. B. : op, cit., pp. 67-68.

10. Group Work is a way of serving individuals within and through small face to face groups in order to bring about the desired changes among the client participants."
Vinter, R. D. : op. cit., p. 715.

कोनोप्का (Konopka)[12]

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज,कार्य की एक ऐसी प्रणाली है जो व्यक्तियों की उद्देश्यपूर्ण सामूहिक अनुभव द्वारा सामाजिक कार्यात्मकता बढ़ाने में सहायता प्रदान करती है तथा वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक समस्याओं को और प्रभावकारी ढंग से सुलझाने में सहायता करती है ।

कोनोप्का ने सामूहिक कार्य के निम्न उद्देश्यों का उल्लेख किया है—

1. वैयक्तिकरण (Individualization) :

सामूहिक कार्य द्वारा व्यक्ति की सहायता अपने को स्वतंत्र होने के लिए दी जाती है जिससे वह अपने साथियों के साथ स्वतंत्र रूप से अन्तर्क्रिया कर सके ।

2. सम्बद्धता की भावना का विकास (Development of a sense of belonging) :

मनुष्य को सबसे अधिक कष्ट एकान्तवासी होने की स्थिति में होता है । आत्महत्यायें प्रायः अकेलेपन की समस्या के कारण ही होती हैं । यह समस्या भीड़ से नहीं सुलझती है । इसके लिए प्रगाढ़ सम्बन्धों का होना आवश्यक होता है । सामूहिक कार्य के द्वारा इस समस्या का निराकरण किया जाता है ।

---

11. "The social worker participates in the group system to influence the way in which the members work toward facing and solving their problems–those of the individuals, the internal system of the group, and the wider environment."

Northen, H. : Psycho-Social Practice in Small Groups" in R. W. Robert and H. Northen (eds) Theories of social work with Groups, Columbia University Press, Newyork, 1976, p. 11.

12. "Social Group work is a method of social work which helps individuals to enhance their social functioning through purposeful group experiences and to cope more effectively with their personal, group or community problems. Konopka, G, : op. cit, p. 29.

3. भागीकरण की क्षमता का मूलतः विकास किया जाता है (Basic development of the capacity to participate) :

भागीकरण प्रजातांत्रिक प्रत्ययों में से एक प्रमुख प्रत्यय है। प्रजातंत्र में यद्यपि सभी लोग एकमत नहीं होते हैं लेकिन भाग सभी लेते हैं। क्योंकि प्रजातंत्र का अस्तित्व ही भागीकरण पर आधारित है। सामूहिक कार्यकर्ता समूह सदस्यों की भावनाओं से अवगत होकर ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिससे सभी सदस्य समान रूप से भाग लेते हैं।

4. सामूहिक चर्चाओं के माध्यम से तथा तार्किक विचारों के आधार पर निर्णयों में भाग लेने की क्षमता में वृद्धि करना। साधारणतः या समाज में बहुत ही कम निर्णय तार्किक आधार पर लिये जाते हैं। किसी एक व्यक्ति का प्रभाव होता है। लेकिन समूह कार्य इसमें विश्वास नहीं रखता है। वह प्रजातांत्रिक ढंगों का उपयोग करता है तथा प्रत्येक सदस्य को सामूहिक क्रियाओं के सम्बन्ध में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए उत्साहित करता है।

5. लोगों में अंतरों के प्रति आदर की भावना में वृद्धि करना (Increased respect for differences among people) :

अन्तरों के कारण सामूहिक एकरूपता की कमी होती है जिससे कार्यक्रम सुगमता से नहीं चल पाते हैं। अतः कार्यकर्ता का उद्देश्य इन अन्तरों के रहते हुए भी ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जहाँ पर एक दूसरे के अन्तरों का महत्व हो और सदस्य प्रतिद्वन्द्वी न होकर सहयोगी की भूमिका निभायें।

6. सौहार्दपूर्ण एवं अपनायी जाने वाली सामाजिक जलवायु का विकास करना (Development of warm and accepting social climate) :

इस प्रकार की सामाजिक स्थिति का होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि सामूहिक कार्य एवं क्रिया कलाप तभी हो सकता है जब सभी लोग आपस में घनिष्ठता अनुभव करें। सामूहिक कार्य में रचनात्मक सामूहिक जलवायु का निर्णय किया जाता है।

स्पेक्ट (Specht)[13]

स्पेक्ट के अनुसार सामूहिक कार्य के 4 प्रमुख उद्देश्य हैं—

1. सामूहिक कार्य व्यक्तियों को आंतरिक व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करता है अथवा समायोजन के लिए उत्साहित करता है। इससे

13. Specht, H. and Vickery, A. : Integrating Social Work Methods, George Allen and Unwin, London, 1977, pp. 154–155

वे अपनी विभिन्न भूमिकाओं जैसे माता-पिता, बालक, कार्यकर्त्ता, मित्र आदि को मनोचिकित्सकीय समूहों का यही उद्देश्य होता है पूरा करने की क्षमता में वृद्धि करते हैं।

2. सामूहिक कार्य व्यक्तियों को नयी भूमिकायें ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। सामूहिक अनुभव द्वारा सदस्यों को नयी नयी कार्यविधियों का ज्ञान कराया जाता है जिससे वे नयी चुनौतियों का सामना आसानी से कर लेते हैं।

3. सामूहिक कार्य समूह सदस्यों में अन्तर्सम्बन्धों में घनिष्ठता लाता है तथा वृद्धि करता है जिससे भौतिक तथा सांवेगिक आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। यहाँ पर कार्यकर्ता का मुख्य उद्देश्य परिपक्वता में वृद्धि अथवा मनोवैज्ञानिक वृद्धि करना है। यहाँ पर सामाजिक सीखने की कला पर विशेष बल दिया जाता है।

5. सामूहिक कार्य का उद्देश्य दोनों व्यवस्थाओं में संचार प्रक्रिया में सुधार अथवा पारस्परिक आदान-प्रदान की स्थिति को सुदृढ़ करना है। उदाहरण के लिए, स्कूलों में अभिभावक अध्यापक संघ जिसका निर्माण बाल अपराधी प्रवृत्ति को रोकने के लिए किया जाता है, ऐसे संघों में आपसी विचारों में सुस्पष्टता तथा सम्बन्धों में प्रगाढ़ता लाने का प्रयास किया जाता है। इन समूहों में सामाजिक चेतनता का विकास किया जाता है।

(iv) सामूहिक कार्य के प्रारूप तथा उद्देश्य :

सामाजिक सामूहिक कार्य के प्रारूपों (**Models**) के अनुसार ही उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है।

चिकित्सात्मक प्रारूप के उद्देश्य :

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता का उद्देश्य व्यक्ति की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाना है जिससे वह अपनी भूमिकाओं का निर्वाह उचित ढंग से कर सके। इस प्रारूप का उद्देश्य असमायोजित व्यक्ति को समायोजित करना है तथा उसकी सामाजिक कार्यात्मकता को बढ़ावा देना है। समूह का एक अंग के रूप में उपयोग किया जाता है। कार्यकर्ता का प्रमुख कार्य व्यक्ति की समूह सदस्य के रूप में आवश्यकताओं का पता लगाना तथा सामाजिक समायोजन सम्बन्धी समस्या का निराकरण करना है।

सामाजिक लक्ष्य प्रारूप के उद्देश्य :

इस प्रारूप का उद्देश्य सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्तियों में सामाजिक चेतनता का विकास करना है जिससे वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह

भलीभाँति कर सकें। सामूहिक कार्य के द्वारा राजनैतिक तथा सामाजिक क्रियात्मकता की वृद्धि की जाती है। व्यक्तियों को सामाजिक योगदान के लिए अवसर उपलब्ध कराये जाते हैं जिससे वे समाज के आवश्यक एवं सक्रिय सदस्य बनते हैं।

परस्पर आदान-प्रदान के प्रारूप के उद्देश्य :

इस प्रारूप का उद्देश्य मानवीय दशाओं में सुधार करना है। ये दशायें दोनों प्रकार की हो सकती हैं। वैयक्तिक एवं सामाजिक। इस प्रारूप में समूह को प्राथमिकता दी जाती हैं तथा ऐसी क्रियाएँ की जाती हैं जिससे अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है कार्यकर्ता सम्बन्धों को अधिक महत्व देता है क्योंकि उन्हीं के द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।

(v) उद्देश्य निर्धारण से पूर्व आवश्यक जानकारी :

सामूहिक कार्य की क्रियाओं को सम्पन्न कराने के लिए उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। परन्तु इन उद्देश्यों के निर्धारण के पूर्व निम्न बातों का ज्ञान आवश्यक होता है।

1. अभिकरण के उद्देश्यों, कार्यों तथा नीतियों का ज्ञान।
2. समुदाय की विशेषताओं, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा संरचनात्मक कार्यात्मकता का ज्ञान।
3. समूहों की सामाजिक, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक विशेषताओं का ज्ञान।
4. अभिकरणों के कार्यक्रमों तथा समुदाय की आवश्यकताओं में सम्बन्ध का ज्ञान।
5. समुदाय में उपलब्ध तथा समुदाय से बाहर सहायता के स्रोतों का ज्ञान।
6. समूह की आवश्यकताओं तथा अभिकरण में उन आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता का ज्ञान।
7. समूह की शक्तियों और सीमाओं का ज्ञान।
8. समूह में सम्बन्ध स्थापित करने तथा उनमें दृढ़ता लाने की क्षमता का ज्ञान।
9. उपयोगी सामाजिक यन्त्रों का ज्ञान।
10. कार्यकर्ता की भूमिका की स्पष्टता।

(VI) समाज कार्य तथा सामूहिक कार्य के उद्देश्यों में सम्बन्ध :

यद्यपि सामाजिक सामूहिक कार्य का प्रमुख सम्बन्ध शिक्षा तथा मनोरंजन से है, परन्तु इसका वास्तविक स्वरूप तथा मूल उद्देश्य समाज कार्य व्यवसाय में निहित है। उसकी मूल प्रवृत्तियाँ उद्देश्य, भावनाएँ, पद्धति या निपुणताएँ

तथा सिद्धान्त समाज कार्य से सम्बन्धित है। अतः यहाँ पर यूनाइटेड नेशन्स सोशल कमीशन की समाज कार्य से सम्बन्धित परिभाषा का विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रत्येक देश में होने वाले वास्तविक समाज कार्य की सामान्य विशेषताएँ होती हैं। वे हैं :

1. यह एक सहायक क्रिया है तथा उस समय समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करती है जब व्यक्ति परिवार तथा समूह सामाजिक तथा आर्थिक कुशलता या सम्पन्नता के लिये न्यूनतम इच्छित स्तर प्राप्त करने में बाधाएँ महसूस करता है।

2. यह एक सामाजिक क्रिया है जो कि व्यक्तिगत लाभ के लिये न की जाकर किसी संगठन, चाहे वह सार्वजनिक अथवा निजी हो, द्वारा सम्पूर्ण समुदाय के लाभ के लिए की जाती है तथा उसके साथ सम्पन्न होती है जो सहायता के आकांक्षी होते हैं।

3. यह सम्पर्क स्थापित करने की क्रिया है जिसके द्वारा लाभान्वित न होने वाले व्यक्ति परिवार तथा समूह, असन्तुष्ट आवश्यकताओं को पूरा करनें के लिए समुदाय में उपलब्ध साधनों का उपयोग करते हैं।

सम्पूर्ण समाज कार्य व्यक्ति की सम्पूर्णता के प्रत्यय पर आधारित है। हम व्यक्ति की शारीरिक, सांवेगिक तथा मानसिक क्रियाओं को एक दूसरे से पूर्णरूपेण अलग-अलग नहीं कर सकते हैं। वह पर्यावरण से प्रभावित होता है तथा प्रत्युत्तर में पर्यावरण को प्रभावित करता है। समाज कार्य मानव सम्बन्धों में सहायक होता है। व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ता की सेवा उत्साह प्रदान करने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा आवश्यकताओं को जानने, उद्देश्यों को स्पष्ट करने तथा व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं को दूर करने में व्यक्ति, समूह या समुदाय की सहायता की जाती है।

इस प्रकार समाज कार्य निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करता है—

1. समाज कार्य व्यक्तियों, व्यक्ति समूहों तथा परिवारों की सहायता उन सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियों के सन्दर्भ में करता है जिनसे वे प्रभावित होते हैं।

2. यह स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मनोरंजन प्रदान करता है।

3. समाज कार्य एकीकरण का कार्य करता है जिसके लिए समाज में कोई दूसरी सेवा नहीं है। यह समाज को विभिन्न सामाजिक संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित करता है जिससे व्यक्ति, परिवार तथा समूह समुदाय में उपलब्ध समस्त सेवाओं से वैयक्तिक उन्नति तथा सामाजिक लाभ हेतु समुचित लाभ उठा सके।

4. समाज कार्य सामाजिक व्यवस्थापन तथा सामंजस्य में सहायता करता है। यह व्यक्तित्व के सभी पक्षों के सकारात्मक विकास के लिए उपाय ढूंढ़ता है।

5. समाज कार्य सामाजिक बुराइयों पर अपना ध्यान आकर्षित करता है तथा आवश्यक उपचारों एवं रोकथाम सम्बन्धी सेवाओं को उपलब्ध करता है तथा समाज कल्याणकारी सेवाओं में वृद्धि करता है। प्रशिक्षित समाज कार्यकर्ता एक सामाजिक निदान-कर्ता होता है। वह प्रत्येक सामाजिक समस्या का निदान करता है तथा उसके उपचारात्मक तरीकों को ढूँढ़ता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह व्यक्तियों की कठिनाइयों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करता है तथा पर्यावरण में परिवर्तन लाता है। इस प्रकार कार्यकर्ता की दोहरी भूमिका होती है—सुधारात्मक तथा चिकित्सात्मक।

सामूहिक कार्यकर्ता व्यक्तियों के समूह द्वारा मनोसामाजिक सामंजस्य प्राप्त करने तथा सामूहिक सम्बन्धों के निर्माण में सहायता करता है। इस सहायता का माध्यम समूह स्वयं होता है। इस प्रकार समाज कार्य के उद्देश्यों से ही सामूहिक कार्य के उद्देश्यों की उत्पत्ति होती है। सामूहिक कार्य के उद्देश्यों व्यक्ति के विकास तथा समाज के विकास से सम्बन्धित हैं। अन्तर केवल इतना है कि सामूहिक कार्य में व्यक्तित्व के विकास पर अधिक जोर दिया जाता है तथा सामाजिक अनुभव के सही निर्देशन के लिए उनका उपयोग किया जाता है।

VII. सामूहिक कार्य के उद्देश्यों का वर्गीकरण :

सामाजिक सामूहिक कार्य के उद्देश्यों को हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. कार्यकर्ता के उद्देश्य 2. संस्था के उद्देश्य और 3. समूह के उद्देश्य।

1. **कार्यकर्ता के उद्देश्य**—सामूहिक कार्यकर्ता सामूहिक अभिकरण का एक कर्मचारी होता है और वह सामूहिक कार्य की क्रियाओं को सम्पन्न कराते हुए अभिकरण के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायता करता है। इसलिए कार्यकर्ता के उद्देश्यों का स्पष्ट होना आवश्यक होता है ताकि वह उचित पथ पर चल सके। परन्तु इन उद्देश्यों के निर्धारण के पूर्व उसे कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है :—

1. वह अभिकरण के उद्देश्यों, कार्यों एवं नीतियों से अवगत हो।
2. सामूहिक कार्यकर्ता अभिकरण और समुदाय से अनभिज्ञ न हो।
3. वह समूह के विषय में जानकारी रखता हो।
4. वह अभिकरणों के कार्यक्रमों, समुदाय की आवश्यकताओं एवं सम्बन्ध की जानकारी रखता हो।

5. वह उस समुदाय की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा अन्य दशाओं से पूर्ण परिचित हो जिसमें उसे कार्य करना है।

6. उन साधनों के विषय में उसे जानकारी हो जिनका प्रयोग वह समूह के साथ कर सकता है।

7 उसे समूह की उन आवश्यकताओं का ज्ञान हो जिसके लिये उसे कार्य करना है तथा यह भी ज्ञात हो कि अभिकरण कहाँ तक उनकी पूर्ति करता है।

8. उसे समूह के साथ अपनी भूमिका का स्पष्ट ज्ञान हो।

9. समूह की शक्तियों और सीमाओं के बारे में जानकारी हो।

10. समूह के साथ सम्बन्धों को दृढ़ करने की क्षमता हो।

सामूहिक कार्यकर्ता में जब तक उपरिलिखित गुण नहीं होंगे तब तक वह अपने उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल नहीं हो सकेगा। साधारणतया सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—

1 **मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना**—प्रारम्भ में सामूहिक मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित था। वे ही क्रियाएँ न्यायोचित समझी जाती थीं जिनसे समूह की आर्थिक समस्या का समाधान होता था परन्तु धीरे-धीरे अनुभव किया जाने लगा कि अन्य आवश्यकताएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी पूर्ति भी उतनी ही आवश्यक है, जैसे प्रेम की आवश्यकता, सुरक्षित महसूस करने की आवश्यकता तथा प्रसन्नता प्राप्त करने की आवश्यकता आदि। सामूहिक कार्य का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में उस समय हुआ जब सामाजिक सुधार पर जोर दिया गया तथा श्रमिकों में जागृति उत्पन्न हुई। यह स्वीकार किया गया कि लोगों के लिए आर्थिक सहायता के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सेवाएँ भी आवश्यक है। अतः यंग मेन क्रिश्चियन एसोसिएशन, यंग वीमेन क्रिश्चियन एसोसिएशन गर्ल्स स्काउट इत्यादि की स्थापना हुई। आज बड़े-बड़े शहरों में लोग एक दूसरे को बिलकुल नहीं जानते और न कोई सम्बन्ध रखते हैं। सामूहिक कार्यकर्ता लोगों को समूह के रूप में एकत्रित करता है और उनमें किसी विशेष रुचि के कारण सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार उस एकाकीपन की समस्या का समाधान हो जाता है जो मनुष्य के लिए बहुत दुःखदायी है। समूह में लोग पारस्परिक स्थापित करते हैं जिससे सुरक्षा की भावना का विकास होता है तथा एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना बढ़ती है।

2. **एकान्तता की समस्या का समाधान करना**—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनुष्य एकान्त में रहना पसन्द नहीं करता। परन्तु वह इस प्रकार रहना तभी पसंद करता है जब उसमें यह विश्वास हो कि वह सभी के द्वारा स्वीकृत है। परन्तु अधिकांश व्यक्ति एकान्त पसन्द नहीं करते, यहाँ तक कि पशु पक्षी

भी समूह में रहते हैं। आज की परिस्थिति में जहाँ नगरीकरण इतना बढ़ रहा है, एकाकी जीवन एक समस्या बन गया है। कभी-कभी मनुष्य की बुरी आदतें भी बन जाती हैं। सामूहिक कार्यकर्ता समूह के माध्यम से इस समस्या का समाधान करता है।

3. **व्यक्ति को महत्त्व देना**—प्रत्येक मनुष्य की यह आन्तरिक इच्छा रहती है कि उसका कुछ महत्त्व हो और वह भी समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे। इच्छा की पूर्ति समूह में रहकर तथा सम्बन्धों के स्थापित होने पर ही संभव है। यह समस्या वृद्धावस्था में और भी जटिल हो जाती है। बच्चों के साथ भी यह समस्या रहती है। परिवार में उचित स्थान न पाने से बच्चे असामाजिक व्यवहार करने लगते हैं। सामूहिक कार्य द्वारा बच्चों की विरोधी शक्तियों, शंका और डर आदि की भावनाओं को स्पष्ट किया जाता है और इसके माध्यम से रचनात्मक भावनाओं का विकास किया जाता है। प्रत्येक सदस्य का कार्य अलग-अलग होता है। व्यक्ति में आत्मविश्वास की भावना जागृत होती है।

4. **स्वीकृति प्रदान करना**—प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसे समूह एवं समाज में स्वीकृत किया जाय, उसे उचित स्थान मिले और कार्य करने के लिए उचित अवसर देकर समाज उसे स्वीकार करे। जब समाज और समूह किसी व्यक्ति को स्वीकृति प्रदान नहीं करते तो वह अपना मानसिक संतुलन खो देता है जिससे वह समाज विरोधी गतिविधियों का शिकार हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह समाज की मान मर्यादा, कानून इत्यादि की परवाह किए बिना अपनी इच्छा पूर्ति के लिए अवैध और अनुचित ढंग अपनाता है। वह अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है। डा० नाथन ऐकमैन तथा मेरी जोहोडा ने मनोविश्लेषण तथा अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसे रोगियों में आत्म सम्मान की कमी होती है और वे एकान्तता से पीड़ित होते हैं। वे स्वयं अपने को अस्वीकृत करते और दूसरों से रूष्ट होते हैं।

सामूहिक कार्य में व्यक्ति को उचित स्थान प्रदान किया जाता है। समूह में सम्बन्ध स्थापित होते हैं और समूह के सदस्य परस्पर एक दूसरे को इसका आवश्यक अंग समझते हैं। इसीलिए उन रोगियों को समूह से अधिक लाभ होता है जो मानसिक समस्याओं से ग्रस्त होते हैं।

5. **आत्म विश्वास का विकास करना**—व्यक्ति में आत्मविश्वास का होना परम आवश्यक है। इसके बिना न तो वह स्वयं कोई कार्य कर सकता है और न जोखिम उठाने के लिए तैयार हो सकता है। सामूहिक कार्य द्वारा व्यक्तियों में इस गुण का विकास किया जाता है। जब समूह के प्रत्येक सदस्य को अलग-

अलग कार्य प्रदान किया जाता है तो उसे पूर्ण करने की क्षमता उसमें स्वतः विकसित होने लगती है और आत्मविश्वास पैदा होने लगता है। यह केवल अनुभव के द्वारा होता है।

6. **आत्मनिर्भरता विकसित करना**—आत्मनिर्भरता भी व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। जब तक वह स्वयं अपना कार्य नहीं कर सकेगा या उसके सम्पन्न होने के बारे में कोई निर्णय नहीं ले सकेगा तब तक वह अपना विकास नहीं कर सकता। सामूहिक कार्य में व्यक्ति को इस शक्ति के विकास के लिए उचित अवसर प्राप्त होता है। उसे अपना कार्य पाने से लेकर इसकी पूर्ति का निर्णय होने तक पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। समूह के लिए वह अपनी शक्तियों का खुलकर प्रयोग कर सकता है उनका विकास कर सकता है।

7. **सामंजस्य स्थापित करना**—व्यक्ति समूह में रहता है तथा उसी की इच्छानुसार कार्य करता है। अतः समाज के साथ सामंजस्य का होना नितान्त आवश्यक होता है। सामूहिक अनुभव के द्वारा व्यक्ति को सामंजस्य स्थापित करने की कुशलता प्राप्त होती है। सामूहिक कार्य द्वारा कार्यकर्ता व्यक्ति की उन कमियों का पता लगाता है, जिसके कारण वह सामंजस्य स्थापित करने में विफल होता है। ये कारण निम्न हो सकते हैं :—

(i) व्यक्ति में बहुत अधिक शासन करने की इच्छा होती है।
(ii) व्यक्ति का निष्क्रिय होना तथा अपनी स्थिति को अस्वीकार करना।
(iii) दूसरे पर निर्भर होने की प्रवृत्ति।
(iv) अपने उत्तरदायित्व को पूरा न कर पाना।
(v) प्रत्युत्तर का नकारात्मक होना।
(vi) दूसरों की सत्ता को स्वीकार न करना।
(vii) केवल अपने लिए ही साधनों का प्रयोग करना।
(viii) काल्पनिक लोक में विचरण करना।

सामूहिक कार्य द्वारा व्यक्ति की इन कमियों को दूर कर सामान्य गुणों का विकास किया जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता समूह के अनुभव एवं कार्यक्रमों द्वारा व्यक्ति का समूह के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और इस प्रकार व्यक्ति समाज में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होता है।

8. **निर्भरता को स्वीकार करना**—व्यक्ति में कभी-कभी विशेष परिस्थितियों के कारण स्थायी निर्भरता आ जाती है। वह समाज पर निर्भर रहकर ही अपना जीवन-यापन करता है। अपंग हो जाना, अंधा हो जाना इत्यादि ऐसी परिस्थितियाँ हैं। इन परिस्थितियों में व्यक्ति बहुत अधिक परेशान हो जाता है

जिससे वह अपनी जिन्दगी को अभिशाप समझने लगता है। सामूहिक कार्य के माध्यम से कार्यकर्ता उसमें ऐसी शक्तियों को उत्पन्न करता है जिससे वह कमी को स्वीकार करने में सफल होता है। वह समूह में व्यक्तियों को स्थान देकर उनमें ऐसी भावनाओं का विकास करता है जिससे वे शेष जिन्दगी को सुखमय बना सके। सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति में नवीन चेतना का विकास होता है और जिन्दगी में नई आशाएँ बँधती हैं।

9. **समग्र का भाग होने की इच्छा की पूर्ति करना**—व्यक्ति की सदैव यह इच्छा रहती है कि वह समाज का एक आवश्यक अंग बन सके और उसकी क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग ले सके। सामूहिक कार्य-अनुभव द्वारा वह इस समग्र भाग का पहले बनता है जिसका कि वह यह रूप है और धीरे-धीरे उसकी महत्ता प्राप्त करने की इच्छा की पूर्ति होती है।

10. **सामाजिक संबंधों को दृढ़ एवं मधुर बनाना**—समाज संबंधों का जाल है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से बँधा हुआ है। इसी संबंध के आधार पर समाज के कार्यों का संचालन होता है। परन्तु कभी-कभी सम्बन्ध इतने बिगड़ जाते हैं कि बहुत अप्रिय घटनाएँ तक घटित हो जाती है, आन्दोलन होते हैं और क्रान्ति तक हो जाती है। सामूहिक कार्य के द्वारा व्यक्तियों के असन्तोष के कारण का पता लगाकर उनके बीच उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों को दूर कर सम्बन्ध दृढ़ एवं मधुर बनाये जाते हैं।

11. **मनोसामाजिक समस्याओं को दूर करना**—सामूहिक कार्य का प्रयोग मानसिक रोगियों के साथ भी किया जाता है। समूह में केवल वे ही सदस्य भाग लेते हैं जो मनोसामाजिक समस्याओं से ग्रसित होते हैं, लोगों में मिल नहीं सकते तथा विमुख रहते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता उनमें मैत्रीपूर्ण सद्भावना का विकास करता है। परस्पर निर्भर क्रियाओं में रोगी अपने को सुरक्षित महसूस करता है। जब वह यह देखता है कि उससे भी अधिक लोग पीड़ित हैं तो उसे कुछ संतोष मिलता है। वह यह अनुभव करता है कि उसकी कठिनाइयाँ उसकी असफलताओं के कारण ही नहीं हैं। रोगी में ऐसी भावना उत्पन्न हो जाने पर उसमें समूह से सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा जागृत होती है तथा चिन्तायें कम होती है। उसमें तत्परता का विकास होता है और समस्याओं का बोझ हल्का हो जाता है।

12. **प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास करना**—प्रजातन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जन जीवन इससे कितना प्रभावित है। समानता, समान अवसर, स्वतंत्रता तथा उन्नति के समान अवसर प्रजातंत्र के मूलभूत

सिद्धान्त हैं । सामूहिक कार्य में इन सभी सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। समूह में सदस्यों को भाग लेने के समान अवसर मिलते हैं। स्वयं को निर्णय लेने का अधिकार होता है। कार्यक्रम को सम्पन्न करने की विधि की भी स्वतंत्रता होती है। विकास का मार्ग केवल समूह कार्यकर्ता द्वारा निर्देशित होता है।

13. **मनोरंजन प्रदान करना**—सामूहिक कार्य का शुभारम्भ मनोरंजन कार्यों से ही हुआ। लोग एक समूह के रूप में क्लब में एकत्र हुए और मनोरंजन के लिए इन्होंने विभिन्न कार्यों का आयोजन किया। सामूहिक कार्य द्वारा आज बच्चों, युवकों एवं वृद्धों को मनोरंजन भी प्रदान किया जाता है जो स्वस्थ विकास एवं उन्नति के लिए परमावश्यक है।

14 **व्यक्तित्व का विकास करना**—व्यक्तित्व पर पर्यावरण एवं वंशानुक्रमण दोनों का प्रभाव पड़ता है। जीवन के प्रारम्भिक समय में वंशानुक्रमण का प्रभाव अधिक पड़ता है परन्तु बाद में पर्यावरण ही व्यक्तित्व के विकास में अपना प्रभाव डालता है। सामूहिक कार्य का मूल उद्देश्य व्यक्ति के लिए अवसर प्रदान करना होता है जिससे उसके व्यक्तित्व का सर्वोत्तम सम्भव विकास हो सके।

2. संस्था के उद्देश्य :

1. यह सरकारी तथा व्यक्तिगत व्यक्तियों, संगठनों तथा अभिकरणों की अपूर्ण आवश्यकताओं के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं जो अपनी सेवाओं द्वारा इन आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं।

2. संस्था लोगों को अपनी आवश्यकताओं को पहचानने तथा समझने में सहायता करती है।

3. ऐसी सेवाएँ प्रदान करती है जो व्यक्ति की सहायता करती है, स्थान एवं सुविधायें प्रदान करती हैं, कर्मचारियों को सेवाओं में लगाती हैं, कार्यक्रमों का विज्ञापन करती हैं तथा लोगों की ऐसी सहायता करती हैं जिससे कि वे दूसरी उपयोगी संस्थाओं का उपयोग कर सकें।

4. यह अस्थायी सेवाओं के द्वारा अतृप्त आवश्यकताओं को प्रदर्शित करती है।

5. पड़ोसियों में स्वस्थ एवं मधुर संबंधों के लिए कार्य करती है

6. सामूहिक अनुभव द्वारा प्रजातान्त्रिक गुणों का विकास करती है।

7. संस्था उन लोगों के लिए समूह के उद्देश्यों को स्पष्ट करती है जो इससे लाभान्वित होना चाहते हैं।

8. उन सुविधाओं एवं कार्यक्रमों को समूह के लिए उपस्थित करती है जो आवश्यक होते हैं।

9. संस्था समूह के उन मूल्यों, धारणाओं एवं जीवन दर्शन का अनुभव कराती है जो वास्तविकता को दर्शाते हैं।

10. यह उन सिद्धान्तों को प्रस्तुत करती है जिससे सामूहिक संगठन में त्रुटि नहीं हो सकती।

3. समूह के उद्देश्य :

1. यह व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा अभिलाषाओं के स्तर में परिवर्तन करता है।

2. यह व्यक्तियों के स्वभाव, जीवन स्तर, कार्य करने के तरीकों इत्यादि में परिवर्तन लाता है।

3. समूह व्यक्तियों में आत्म-दर्शन तथा आत्म ज्ञान का विकास करता है।

4. प्रत्यक्षीकरण पर अपना प्रभाव डालता है।

5. समूह व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान करता है तथा सकारात्मक और नकारात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायक होता है।

6. व्यक्ति को अपने जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

7. व्यक्ति के विकल्पों के चुनाव में सहायता प्रदान करता है।

8. व्यक्ति की उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है।

9. व्यक्ति की असीमित आकांक्षाओं पर रोक लगाता है।

अध्याय 5

सामाजिक सामूहिक कार्य का दर्शन तथा मूल्य

दर्शन सामाजिक जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और धारणाओं की व्याख्या करता है। यह सामाजिक जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को प्रभावपूर्ण बनाता है तथा मनुष्य, समाज, सम्बन्ध आदि के आदर्शों तथा नैतिक व्यवहारों की व्याख्या करता है। दर्शन सामाजिक सम्बन्धों के सर्वोच्च आदर्श का निरूपण करता है। समाज-कार्य का अस्तित्व व्यक्ति की भलाई में निहित है। इसका मूल आधार ही मानवतावादी है। लेकिन मानवतावादी विचार सिद्धान्तों तथा तथ्यों पर आधारित है। अर्थात् समाज-कार्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग जन-कल्याण के लिए करता है। सामाजिक सामूहिक कार्य चूंकि समाज-कार्य की एक प्रणाली है ? अतः इसका भी मुख्य उद्देश्य सामाजिक सम्बन्धों में नवीनता, प्रगाढ़ता तथा घनिष्ठता लाना है। वे उद्देश्य निश्चित मूल्यों एवं दर्शन के आधार पर पूरे किये जाते हैं।

(1) दर्शन क्या है ?

लियोनार्ड के अनुसार 'दर्शन विश्व के विभिन्न दृष्टिकोणों की प्रत्ययात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ और है—आदर्शात्मक श्राप के अतिरिक्त यह मनुष्य मनुष्य के बीच तथा मनुष्य व सम्पूर्ण जगत् के बीच सम्बन्धों की मूल सत्यताओं का निरूपण करता है—मानव-विज्ञानों को वैज्ञानिक होने के लिए दार्शनिक होना होगा।[1]

---

1. "Philosophy is more than a conceptual expression of different world views……………apart from its ideological character, it also reveals fundamental truths concerning the relations of men with other men and of men with the universe………………human science will have to be philosophical in order to be scientific."

Leonard, P. Social work : Science or Mystique, lecture given at a study conference held under the a uspices of the National Institute of Social work (1969) U. S. A.

बूट्रायम के अनुसार समाज-कार्य को वास्तविक होने के लिए दार्शनिक होना आवश्यक है ।[2] विलियम जेम्स का मत है कि प्रत्येक प्राणी का एक दर्शन होता है, जो उसके जीवन का मार्गदर्शन करता है ।[3]

सामाजिक सामूहिक कार्य मानव-जीवन को अधिक सुखमय तथा कार्यात्मक बनाने का संकल्प रखता है । परन्तु यह संकल्प तभी पूरा हो सकता है जब उन विश्वासों पर आधारित हो, जो सुखमय जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं तथा जिनसे यह जीवन प्राप्त किया जा सकता है ताकि नैतिकता पर आधारित हो । इन्हीं संदर्भों को दृष्टि में रखकर हम सामूहिक कार्य के दर्शन का वर्णन करेंगे ।

(II) सामूहिक जोवन महत्त्वपूर्ण है (Group life is essential)

व्यक्ति समूह में जन्म लेता है, बढ़ता है तथा सामाजिक प्राणी बनता है । समूह से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है । व्यक्ति का वास्तविक जीवन सामूहिक जीवन है । सामूहिक संगठनों द्वारा ही वास्तविक मनुष्य की कल्पना की जा सकती है । व्यक्ति की अन्तःक्षमताएँ तब तक छिपी रहती हैं जब तक सामूहिक जोवन द्वारा बाह्यीकृत नहीं की जाती हैं । मनुष्य समूह के द्वारा ही अपनी प्रकृति को खोजता है तथा वास्तविक स्वतंत्रता को प्राप्त करता है ।[4] वह जन्म से दूसरों पर निर्भर होता है । जैसे-जैसे परिपक्व होता है, दूसरों के साथ रहने तथा भाग लेने की आवश्यकता बढ़ती जाती है । सामाजिक अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि बिना सामूहिक जीवन के व्यक्ति सामाजिक प्राणी अथवा अपना वास्तविक स्वरूप नहीं प्राप्त कर सकता है । इस सम्बन्ध में कास्पर हाउसर राजनैतिक कुचक्रों के कारण सामाजिक समूहों से अलग कर दिया गया था । 1828 में यह बालक 17 वर्ष की अवस्था में न्यूरेमवर्ग में

---

2. Bytrym, Zofia T : The Nature of Social Work, Macmillan Press; London, 1976, p. 42.
3. James, William : Pragmatism, Eurasia Publishing House, New Delhi, 1975, pp. 17–18.
4. "We find the true man only through group organization. The potentialities of the individual remain hidden until they are released by group life. Man discovers his true nature, gains his true freedom only through the group." Follett, Mary, P. : The New State Longmans, London, 1920 p. 6

पाया गया, उस समय वह मामूली बोल सकता था। उसका मस्तिष्क बालक के समान था तथा केवल एक-दो शब्दों का उच्चारण कर सकता था। 5 वर्ष बाद उसकी हत्या कर दी गयी। उसके शव-परीक्षण से यह पाया गया कि उसका मानसिक विकास बहुत ही निम्न कोटि का था। दूसरा अध्ययन 1920 में किया। दो हिन्दू बच्चे जिनको भेड़िया उठा ले गया था, उसकी माँद से प्राप्त हुए। छोटा बच्चा कुछ समय बाद मर गया परन्तु बड़ी बच्ची 1929 तक जीवित रही। उसका व्यवहार भेड़िया जैसा ही था। वह पशुओं से झिझकती थी। लगातार प्रशिक्षण के उपरान्त उसमे प्रारम्भिक सामाजिक गुणों का विकास हो पाया था।

तीसरा अध्ययन एक अन्ना नाय की अमरीकी अवैध सन्तान का किया गया। इस लड़की को 6 मास की अवस्था में ही एक कमरे में अकेले ही बन्द किया गया था और 5 वर्ष की अवस्था में 1938 में बाहर निकाला गया। उसको इस बीच दूध के अतिरिक्त कुछ भी खाने को नहीं दिया गया था। उसको सामाजिक सम्पत्ति से बिलकुल वंचित किया गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसमें कोई भी लक्षण 5 वर्ष बालक के समान नहीं थे।

सामूहिक जीवन व्यक्ति को वह पोषक तत्त्व प्रदान करता है जिसके द्वारा वह अपनी इच्छाओं को पूरा करता है तथा दूसरों को ऐसा करने का अवसर प्रदान करता है। समूह द्वारा ही व्यक्ति व्यक्तिगत तथा सामूहिक सन्तोष प्राप्त करता है। उसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रतिमान प्ररिवर्तित होते हैं तथा व्यावहारिक समायोजन होता है। विलसन तथा राइलैण्ड के अनुसार समूह वह साधन है जिसके द्वारा—(1) व्यक्ति सामाजिक तथा व्यक्तिगत सन्तोष एवं लक्ष्य प्राप्त करते हैं, (2) वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रतिमान परिवर्तित होते हैं, (3) समाज में नियंत्रण बना रहता है तथा (4) समाज रीति-रिवाज प्रतिमान एवं मूल्यों के द्वारा निर्देशित होता है।[5]

---

5. Groups of media through which (1) individuals achieve personal and social satisfactions and goals; (2) individual and social norms are changed; (3) controls in society are maintained; and (4) society passes on it customs, norms and values.

   Wilion, G. and Ryland G. : Social Group work practice; Houghton Mifflin Company, New York, 1949, p. 36

(2) सामूहिक अनुभव व्यक्ति की मौलिक आवश्यकता है :
(Group experience is a basic need)

मनुष्य केवल रोटी के लिए ही जीवित नहीं रहता है और न ही वह सुन्दरता, प्रेम, खेल या पूजा के लिए जीवित रहता है, बल्कि वह सम्पूर्ण आत्मा की संतुष्टि के लिए, जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनुसार प्रेम, सम्मान, खेल कार्य आदि आवश्यक है, के लिए जीवित रहता है।[6]

व्यक्ति के विकास में सामूहिक अनुभव अत्यन्त आवश्यक होता है। सीखने की गति, समझने की क्षमता आत्मसात् करने की योग्यता, समायोजन स्थापित करने की निपुणता तथा समस्याओं के समाधान करने की कला व्यक्ति सामूहिक अनुभव द्वारा ही प्राप्त करता है। अकेला व्यक्ति न तो कभी कुछ कर सकता है और न सोच सकता है तथा न ही सीख सकता है। उसके प्रयत्न समूह में ही सम्भव हैं।

सामूहिक अनुभव द्वारा ही व्यक्ति वास्तविकता को समझता है तथा समाधान करने के उपायों की खोज करता है। उसकी मनोवृत्ति का निर्माण अनुभव पर आधारित होता है। उसके अनुभव अभिलाषाओं तथा इच्छाओं के स्तर को परिवर्तित करते हैं। सामूहिक अनुभव व्यक्ति को रहने, काम करने तथा अन्य आदतों को निश्चित करने योग्य बनाता है तथा उसमें परिवर्तन लाता है। सामूहिक अनुभव द्वारा ही प्रत्यक्षीकरण का विकास होता है। इसी कारण व्यक्ति स्वयं सामूहिक अनुभव को महत्त्व देता है तथा उसे चाहता है।

3. अनुभव द्वारा व्यक्ति की सहायता विशेष लाभदायक होती है :
(Help is more effective through experience)

व्यक्ति अनुभव से अपनी वास्तविकता की खोज करता है तथा तथ्यों एवं परिणामों को स्वीकार करता है, जो वह उन्हें दूर करने के उपायों की खोज करता है। सामूहिक अनुभव एक समूह-संगठनों के माध्यम से ही वह प्रभावात्मक

---

6. Man does not live by bread alone; nor does he live by beauty, love play or worship alone; he lives by satisfying his whole self, which demands love, respect, play, work and so on, in proportions peculier to his individual personality.
Ibid, p. 17

क्रिया कर सकता है ।[7] सामाजिक कार्य में यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति की सहायता वास्तविक रूप में अनुभव प्रदान करके ही की जा सकती है। सामाजिक सामूहिक कार्य में अनेक कार्यक्रमों का आयोजन इसलिए नहीं किया जाता है कि सदस्यों को मनोरंजन प्रदान करना है; बल्कि इसलिए किया जाता है कि वे भिन्न-भिन्न अनुभव ग्रहण करें, जिनके द्वारा उनका विकास किया जा सके।

4. व्यक्तित्व का विकास समूह के द्वारा ही सम्भव है : (Personality Development of is possible only through group)

जब बालक पैदा होता है तो कुछ समय तक आत्म-संरक्षण (Self preservation) से शासित होता है। उसकी आवश्यकता भोजन, पानी, गरमी तथा अन्य सुविधाओं तक ही सीमित रहती है। उसका ध्यान अपने पर केन्द्रित रहता है, परन्तु वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं कर सकता है, इसलिए दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करता है। मीड (Mead) के अनुसार एकीकृत आत्मा का विकास खेल अवस्था से होता है। इस समय वह समूह-चेतना उत्पन्न करता है और समूह के दृष्टिकोण से भूमिका निभाना सीखता है। एक टीम का सदस्य होने के कारण अन्य सदस्यों की भूमिकाओं तथा अपनी भूमिका का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार वह दूसरों के व्यवहारों को समझता है, अपने व्यवहारों में भूमिका के आधार पर परिवर्तन लाता है तथा नियमों को सीखता है। उसके अन्तःकरण में व्यवहार का अर्थ, स्थिति का अर्थ, स्थिति के अनुरूप व्यवहार का रूप आदि स्थायी स्थान बना लेते हैं और बालक की आत्मा का स्वरूप निश्चित होता है। इस सन्दर्भ में कूले[8] का विचार है कि इसका तात्पर्य यह है कि समाज

---

7. "...every where and in every effective performance the individual can satisfy his interests or needs and carry out any and every effective action only within organized groups and through the organization of activities.
Malinowski, B. : A Scientific theory of culture and other Essays. University of North carolina press, chapel Hill, 1944. p. 46.

8. "Each to each a looking glass.
Reflects the other that doth pass."
Cooley, C. H : Human Nature and Social order, Charls Skinners and Sons. New York, 1902, p. 183.

एक देखने वाला शीशा है और बालक जिस आकृति की कल्पना करता है उसी प्रकार का सामाजिक गुण विकसित करता है। समूहों के विचार, धारणायें, भावनायें बालक की आत्मा का आइना ही तो है। इसी आइने में वह अपने को देखता है और जैसा दूसरे उसको समझते हैं वह वैसा ही व्यवहार ग्रहण करता है। मानिस[9] का विचार है कि व्यक्ति अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया के द्वारा मानवीय गुण प्राप्त करता है। मानव दूसरों के सम्पर्क द्वारा ही अपने विशेष स्वरूप को ग्रहण करते हैं। हम जन्म से मानव नहीं होते बल्कि मानव बनते हैं।

व्यक्ति समूह में ही व्यक्तिगत गुणों का विकास करता है, जो उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। जैसा समूह होता है वैसा ही उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है। व्यक्ति जिस प्रकार के समूह के साथ अपना अनुकूलन करता है वैसा ही उसका व्यक्तित्व बनता है। बालक जिस वातावरण में रहता है वह उसके लिए उतना ही आवश्यक है जितनी कि साँस लेने के लिए वायु। समूह उसके लिए आधार होता है, जिस पर उसका अस्तित्व निर्भर होता है।

5. प्रजातान्त्रिक आदर्शों में विश्वास (Faith in Democratic Ideals) :

सामाजिक सामूहिक कार्य प्रजातांत्रिक तरीकों पर आधारित है। सदस्य को पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह अपनी स्वेच्छा से भाग ले, अनुभव करे तथा अपनी भूमिका पूरी करे। समूह स्वतंत्र रूप से कार्य करता है, क्योंकि समूह-कार्य का दृढ़ विश्वास है कि व्यक्तित्व का विकास तथा सामाजिक उन्नति प्रजातांत्रिक मूल्यों में ही निहित है। इसीलिए विलसन व राइलैण्ड का विचार है कि सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रणाली है, जिसके द्वारा सामूहिक जीवन एक कार्यता द्वारा प्रभावित होता है और जो समूह की परस्पर सम्बन्धी प्रक्रिया को उद्देश्य प्राप्ति के लिए सचेत रूप से निवेशित करता है, जिससे प्रजातान्त्रिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।[10] समूह-कार्य में सदस्यों को भाग लेने के समान अवसर दिये जाते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि बिना योग्यता एवं क्षमता के अवसर उपलब्ध है। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति योग्यता को एवं

---

9. "The individual becomes humainized through interaction with other persons. Human beings become capable of distinctively human conduct only through association with others." Manis, J. G. and Meltzer, B. N. (Ed) Symbolic Interaction : A Reader in Social Psychology, Allyn and Bacon, Boston, 1978, p. 6.

10. Willson, G. and Ryland G. : op. cit p. 6

निपुणताओं का विकास करके उस अवसर से लाभ उठा सकता है, जो व्यक्ति दूसरों द्वारा लाभ के लिए उपयोग में लाया जाता है तथा दूसरों के उद्देश्यों का साधन बनता है, वह सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकता है ।

6. व्यक्ति स्वयं श्रेष्ठ है (Man himself has worth) :

सामाजिक सामूहिक कार्य का विश्वास है कि व्यक्ति किसी भी स्थिति में खराब नहीं होता है, केवल परिस्थितियाँ उसको अच्छा या बुरा बना देती है । यदि उनको ध्यान में न रखा जाय तो सभी व्यक्ति समान नजर आते हैं । इसीलिए यह कहावत प्रचलित है—'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं' (Hate the sin not the sinner) । व्यक्ति की महानता केवल इसलिए नहीं समझनी चाहिए कि वह धनी है, सम्पन्न है, बुद्धिमान है अथवा सत्ता में है; परन्तु इसलिए उसकी प्रतिष्ठा, इज्जत, मान, सम्मान करना चाहिए क्योंकि वह व्यक्ति है, मानव प्राणी है ।[11] सामूहिक कार्य का दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहें वह किसी वर्ग, स्थान, जाति, प्रजाति, धर्म का हो, आदर का पात्र है । जब तक उसे सम्मान नहीं प्राप्त होगा तब तक सामाजिक उत्पादन का कार्य उससे सुचारु रूप से नहीं हो सकेगा । अतः समूह में सदस्य को समान सम्मान दिया जाता है ।

7. व्यक्ति में समस्या समाधान करने की क्षमता होती है (Man has capacity to Solve problems) :

यद्यपि यह सही है कि व्यक्ति कभी-कभी ऐसी स्थिति में हो जाता है जहाँ पर वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं नहीं कर सकता, उसमें मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है, परन्तु यदि उसे जरा-सा अवसर दिया जाय एवं ज्ञान की वृद्धि की जाय तो वह इस दिशा में पूर्ण रूप से सफल हो सकता है । उसमें रचनात्मक शक्ति एवं क्षमता होती है । अतः उसको अधिकार होता है कि अपने द्वारा निश्चित एवं स्वीकृत मार्ग का अनुसरण अपनी स्थिति सुधारने में करे ।

---

11. A man deserves respect as a potential moral agent in terms of his transcedental characteristic, not, because of a particular conjuction of empirical qualities which he might possess. Traits of character might command admiration and other such responses, butu respect is owed to a man -irrespective of what he does, becuase he is a man."

    Plant R. Social and Moral Theory in Social Case Work, Routledge and Kegan Paul Ltd., London 1970, p. 12.

इसीलिए सामूहिक कार्य का उद्देश्य उस तरीके को बतलाता है जिस पर चलकर वह अपना खोया हुआ साहस प्राप्त कर ले। कार्यकर्ता समूह को सदैव निर्णय करने तथा कार्यक्रमों का चयन करने का अधिकार देता है। वह स्वयं केवल निर्णय-प्रक्रिया को इस तरह चलाता है जिससे समूह सही दिशा में निर्णय लेने में समर्थ हो सके।

8. उत्तरदायित्व सामाजिक योग्यता का विकास करता है :
(Responsibility develops social ability)

सामाजिक सामूहिक कार्य का विश्वास है कि व्यक्ति सबसे उत्तम तरीके से उस समय कार्य करता है जब उसको कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। इसका कारण प्रत्येक व्यक्ति में अपनी योग्यता तथा क्षमता का प्रदर्शन करने की भावना का होना है। वह सदैव अवसर की तलाश में रहता है कि किस प्रकार अपनी योग्यया एवं क्षमता की छाप दूसरों पर छोड़े। इसीलिए वह रचनात्मक कार्यों में रुचि रखता है।

9. व्यक्ति सम्पूर्ण है, अतः सर्वतोमुखी विकास आवश्यक है
(Man is whole and therefore needs all round development) :

व्यक्ति को समझने के लिए आवश्यक होता है कि उसका सम्पूर्णता में अध्ययन किया जाये। उस पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक, सांवेगिक, धार्मिक आदि सभी कारकों का प्रभाव पड़ता है। अतः उसको समझने के लिए इनका समझना आवश्यक होता है। उसकी सबसे बड़ी इच्छा सम्पूर्णता में रहने की होती है।[12] सामूहिक कार्य में कार्यक्रमों का चयन कार्यकर्ता समूह के सदस्यों के सर्वतोमुखी विकास के लिए करता है, क्योंकि विकास एक तरफा नहीं हो सकता है।

(III) सामाजिक सामूहिक कार्य के मूल (Basic Values of Group Wone) :

सामाजिक सामूहिक कार्य समाज-कार्य की प्रमुख एवं प्राथमिक प्रणाली होने के कारण उसके लगभग वे ही मूल्य है जो समाज-कार्य के हैं। सामूहिक कार्य-प्रणाली इन मूल्यों को अपने व्यवहार में सामूहिक विकास के लिए उपयोग में लाती है। ये मूल्य कहीं अन्यत्र से उत्पन्न नहीं हुए हैं बल्कि हमारी सभ्यता तथा विश्वास एवं दर्शन में निहित है।

---

12. "Man must be regarded as a whole; and he really has but one need, which is to live wholly aud completely." *Wilson, G. and Ryland C*, op. cit. p. 17.

फ्रीडलैंडर के अनुसार : "समाज-कार्य के प्राथमिक मूल्य जंगली फूलों की भाँति राह के किनारे नहीं उगते; अपितु ये उन गहन विश्वासों में निहित हैं जो सभ्यताओं का पोषण करती है।"

सामाजिक सामूहिक कार्य में प्रजातान्त्रिक मूल्यों में विश्वास किया जाता है तथा इनकी पूर्ति के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को अपनाया जाता है। स्वतन्त्रता, समानता तथा विकास करने की योग्यता सभी सामूहिक सदस्यों में पायी जाती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक सहायता प्राप्त करने का अधिकार है। उसकी सहायता दया के कारण नहीं बल्कि सामाजिक आवश्यकता के कारण की जाती है। यहाँ पर हम उन विशेष सामाजिक मूल्यों का वर्णन करेंगे जिनका सामूहिक कार्य-प्रणाली में समावेश होता है—

1. समूह-सदस्यों की योग्यता एवं महत्ता पर विश्वास—सामूहिक कार्य में यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक समूह-सदस्य महत्त्वपूर्ण है तथा उसमें ऐसी योग्यताएँ तथा गुण हैं जो कि समान रूप से सभी में नहीं हैं। प्रत्येक अवसर व समस्या से निपटने के लिए उसमें योग्यता है और यदि इस योग्यता को विकसित करने का अवसर दिया जाय तो निश्चय ही सामान्य व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। जब तक समूह-सदस्यों की योग्यता तथा महत्ता को नहीं समझा जायेगा, सामूहिक कार्य का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता तथा व्यक्ति व समूह सन्तोष नहीं प्राप्त कर सकते। सामूहिक कार्यकर्ता इसी आधार पर अपनी भूमिका निश्चित करता और कार्यक्रमों का संचालन व प्रशासन करता है।

2. आत्म-निर्णय का अधिकार--सामूहिक कार्य का यह दूसरा प्रमुख मूल्य है जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि यदि समूह स्वयं अपने पथ का निर्धारण करे तो उन्नति एवं विकास अधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण होगा। अतः कार्यक्रम की सफलता के लिए समूह-सदस्यों को स्वयं मार्ग अपनाना चाहिए। नेता या कार्यकर्ता केवल दिशा प्रदान करता है।

3. आत्म-पूर्णता—सामाजिक सामूहिक कार्य समूह के सदस्यों का पूर्ण विकास करना अपना उद्देश्य समझता है। इसके अन्तर्गत उन्हीं कार्यक्रमों को उपयोग में लाया जाता है जिनसे सदस्यों का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है।

4. विकास का मुख्य आधार-सम्बन्ध—व्यक्ति सामाजिक तथा सांवेगिक प्राणी है। उसके अपने दूसरों से सम्बन्ध उसके विकास तथा सम्पूर्ण समंजन को निश्चित करते हैं। व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास सकारात्मक सम्बन्धों पर आधारित होता है।

5. अल्पमत विचारों का महत्व—कार्यक्रमों के निर्धारण तथा संचालन में

विचारों के अन्तरों को ध्यान में रखा जाता है तथा उनका मान्यता एवं स्वीकृति प्रदान की जाती है। यदि मतों में भेद होने पर अधिक मत पक्ष में होते हैं तो भी अल्पमत को आवश्यक स्वीकृति प्रदान कर रचनात्मक रूप दिया जाता है। प्रत्येक समूह-सदस्य को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने मत एवं विचार को रखने का पूर्ण अधिकार और अवसर दिया जाता है तथा विचारों के स्पष्टीकरण का उसे मौका मिलता है।

6. **व्यक्तित्व अन्तरों की मान्यता एवं स्वीकृति**—प्रत्येक व्यक्ति विचारों, भावनाओं, चिन्तन तथा सामाजिक पृष्ठभूमि में भिन्न होता है। उसकी शक्तियों तथा योग्यताओं में भी भिन्नता होती है। सामूहिक कार्य में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उन योग्यताओं का उपयोग वे समूह के लिए करते हैं जो उनमें निहित है तथा उन योग्यताओं को उत्पन्न करते हैं जो उनमें नहीं हैं। विभिन्नताओं को कार्यक्रम के माध्यम से समूह-विकास के उपयोग में लाते हैं।

7. **समूह पर संस्कृति का प्रभाव**—व्यक्ति एवं समूह ऐसी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं जो समूह को किसी स्थिति में कार्य करने के तरीकों व लगन को प्रभावित करती है। समस्या-समाधान के लिए संस्कृति का अध्ययन आवश्यक होता है। व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं तथा आवश्यकताओं को समझने के लिए उनकी संस्कृति को समझना इसलिए आवश्यक होता है, क्योंकि ये उसी के अंग हैं। कार्यकर्ता अपनी भूमिका अदा करने में इस बात का ध्यान रखता है कि समूह-सदस्यों की संस्कृति में अधिक भिन्नता नहीं होनी चाहिए।

8. **व्यवहार विभिन्न कारकों का प्रतिफल**—प्राणिशास्त्र, भौतिक शास्त्र, सामाजिक शास्त्र तथा व्यावहारिक शास्त्रों से यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार का कोई एक कारण नहीं होता बल्कि वह अनेक कारणों का परिणाम होता है। इसी मूल्य को ध्यान में रखकर सामूहिक कार्यकर्ता समूह-सदस्यों के व्यवहार को विश्लेषित करते हैं। किसी भी समूह-सदस्य का व्यवहार असामान्य होने पर कार्यकर्ता अनेक सम्बन्धित तथ्यों का पता लगाता है तथा उनको दूर करने के लिए विभिन्न उपाय करता है।

9. **परिवर्तन का विरोध**—विकास के लिए परिवर्तन आवश्यक होता है और परिवर्तन का विरोध करना समूह के लिए स्वाभाविक होता है। कार्यकर्ता इस विरोध को असाधारण नहीं मानता बल्कि सामूहिक क्रियाओं द्वारा उनको दूर करने का प्रयत्न करता है।

10. **विकास के समान अवसर**—यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं परन्तु सभी व्यक्तियों को विकास एवं उन्नति के लिए समान

अवसर मिलना अनिवार्य होता है। समूह के सभी सदस्यों को समान रूप से कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर दिया जाता है। कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य को सहयोग तथा कार्यक्रमों को सम्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार कार्यकर्ता उनमें आत्मविश्वास, आत्मनिश्चय, आत्मसम्मान तथा आत्म-विकास उत्पन्न करता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य एक प्रक्रिया है, जो सम्बन्धों पर आधारित है। यह संबंध उन समूह-सदस्यों तथा कार्यकर्ता के मध्य स्थापित होता है जिनके साथ वह कार्य करता है। समूह के सदस्यों को व्यक्तिगत तथा सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यकर्ता अपने व्यावसायिक सम्बन्धों का उपयोग करता है। सामाजिक सामूहिक कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि कार्यकर्ता में समूह-सदस्यों के अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों का विकास करने तथा उपयोग करने की कितनी योग्यता, क्षमता, बुद्धि एवं निपुणता है। उद्देश्यपूर्ण एवं मधुर सम्बन्ध प्रेम द्वारा ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। यद्यपि मानवीय रूप से यह असंभव है कि कार्यकर्ता उन सबसे प्रेम करे या उनको पसन्द करे जिनके सम्पर्क में वह आता है तथा कार्य करता है, परन्तु उसको मानव के मौलिक मूल्यों से प्रेम करना आवश्यक होता है। वह उसी प्रकार सदस्यों से प्रेम करता है जैसे चिकित्सक रोगी से, अध्यापक विद्यार्थी से। जब तक कार्यकर्ता में व्यक्ति की सहायता करने की आन्तरिक भावना नहीं होगी, वह सफल नहीं होगा। समाज-कार्य व्यवसाय का मुख्य आधार मानव-प्रेम है। कार्यकर्ता द्वारा समूह-सदस्य स्वीकृत तथा प्यार किये जाते हैं। उनके व्यवहार को स्वीकृत न किये जाने पर भी इसमें कमी नहीं आती है। वह उनके व्यवहार को स्वीकृत न किये जाने पर भी इसमें कमी नहीं आती है। वह उनके व्यवहार को सामूहिक अनुभव के माध्यम से समूह-स्तर को बनाता है। यह उनकी आक्रमणकारी भावनाओं एवं प्रवृत्तियों को दूर करता है। वे किसी स्थान पर यह महसूस नहीं करते हैं कि कार्यकर्ता उनको पसन्द नहीं करता है या उपेक्षा करता है। वे कार्यकर्ता में अपने प्रति प्रेम का विश्वास रखते हैं, क्योंकि वह उनकी सहायता आवश्यकता पड़ने पर करता है तथा सम्बन्धों का उचित एवं अर्थपूर्ण ढंग से उपयोग करता है, सभी संस्कृतियों के सदस्यों को समान रूप से मानता है तथा भाग लेने के उन्हें समान अवसर देता है। सम्मान के कार्यों में सम्मान प्रदान करता है तथा परितोष भी देता है। कार्यकर्ता अपनी भूमिका में यह सदैव ध्यान रखता है कि उचित संवेगों तथा भावनाओं का विकास समूह में हो। ऐसी परिस्थितियाँ न आवे जो समूह-विकास में बाधक हों, या सदस्यों के विचारों में अंतर्द्वन्द्व कर दें, फलस्वरूप विकास अवरुद्ध हो जाय।

●

अध्याय 6

सामाजिक सामूहिक कार्य की मूल मान्यतायें

सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य समूह के माध्यम से समाज का कल्याण करना है। परन्तु यह कार्य तभी सम्भव हो सकता है जब उसके लिए ठोस स्तम्भ हो, जिन पर वह स्थिर रह सके। मान्यताओं के आधार पर ही किसी व्यवसाय का स्वरूप, प्रकृति, कार्यशैली तथा कार्यक्रम निश्चित किये जाते हैं। सामूहिक कार्य के लिए भी इस प्रकार की मौलिक मान्यताओं की आवश्यकता हुई जिनको आधार मानकर इसकी कार्य-विधि निश्चित की गयी। परन्तु सामाजिक सामूहिक कार्य की मौलिक मान्यतायें समझने से पहले समूह की मौलिक मान्यताओं को समझना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि सामूहिक कार्य समूह में तथा समूह द्वारा ही कार्य सम्पन्न किया जाता है। व्यक्ति अकेले अपनी आवश्यकताओं को किसी प्रकार तो पूरा कर सकता है परन्तु उन्नति, विकास, सामाजिकता इत्यादि बातें सामूहिक जीवन पर ही आधारित होती हैं। वह समूह का सदस्य चाहे ऐच्छिक रूप से न बने परन्तु परिस्थितियाँ उसको ऐसा करने के लिए बाध्य करती हैं। अतएव समूह की निम्नलिखित मान्यतायें हम मान सकते हैं—

1. समूह अनिवार्य तथा सर्वव्यापी है।

2. शक्तिशाली शक्तियों को समूह गतिशील बनाते हैं, जिससे उत्पन्न प्रभाव व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है।

3. समूह परिणाम उत्पन्न करता है, चाहे अच्छा हो या हानिकारक।

4. समूह की गतिशीलता का सही ज्ञान होने पर इच्छित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

I. मूल मान्यताओं से सम्बन्धित विचार :

टाम डगलस (Tom Douglas)[1] ने सामाजिक सामूहिक कार्य की निम्नलिखित मूल मान्यताओं का उल्लेख किया है :

1. सामूहिक अनुभव सार्वभौमिक है तथा मानव अस्तित्व का एक आवश्यक भाग है।

---

1. Douglas, Tom : Group Work Practice, International Universities Press, Inc. New York, 1976. pp. 28-29.

2. व्यक्तियों के व्यवहारों तथा मनोवृत्तियों में परिवर्तन को प्रभावित करने के लिए समूहों का उपयोग किया जा सकता है।

3. समूह अनुभव प्रदान करते हैं, इसे लाभकारी उद्देश्यों के परिवीक्षण किसी प्रकार से भी किया जा सकता है अथवा चुना जा सकता है। जीवन को समूह से पृथक् किसी भी प्रकार से उपेक्षित नहीं किया जाता है। सामूहिक स्थितियाँ यही मौज करती हैं।

4. समूह दूसरों के भागीकृत अनुभव प्रदान करते हैं, जिससे सम्बद्धता और साथ-साथ विकास की भावना से सभी लोग कुछ सामान्यताओं को प्राप्त कर सकें।

5. अन्य तरीकों से किये गये परिवर्तन से समूहों द्वारा उत्पन्न परिवर्तन अधिक स्थायी होता है। यह परिवर्तन अधिक शीघ्रता से हो जाता है।

6. विगत सीखने की प्रक्रिया से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने या उनमें कमी करने में समूह सहायता करते हैं।

7. दूसरों की सहायता के लिए यंत्रों के रूप में समूह कमी वाले स्रोतों जैसे निपुण कर्मी, समय, कार्य के उपयोग में अत्यव्यापी हो सकते हैं।

8. एक समूह अपने व्यवहार की परीक्षा कर सकता है और ऐसा करने में समूह व्यवहार (प्रक्रिया) के सामान्य तरीकों को सीखता है।

ग्रेस लांग वेल क्वायल (Grace Longwell Coyle) ने अपनी पुस्तक ग्रुप वर्क विद अमेरिकन यूथ (Group Work with American Youth) में सामाजिक सामूहिक कार्य की निम्नलिखित मान्यताएँ बतलाई हैं—

1. **शिक्षात्मक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाएँ मूल्यवान् हैं**—सामाजिक कार्य की यह मूल मान्यता है कि संस्था में समूह द्वारा व्यक्ति के लिए किये जाने वाले शिक्षात्मक एवं मनोरंजनात्मक कार्यक्रम सदैव मूल्यवान् होते हैं। ये कार्यक्रम व्यक्ति तथा समाज के विकास तथा उन्नति के लिए आवश्यक होते हैं, क्योंकि इनमें मानसिक तनाव दूर होकर नयी शक्ति एवं प्रेरणा मिलती है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान-चक्षुओं को खोलना होता है। इसका प्रभाव विकास पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है, जबकि मनोरंजन का प्रभाव अप्रत्यक्ष ढंग से होता है। इसके माध्यम से व्यक्तित्व का विकास होता है तथा समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है, इसी कारण प्रजातान्त्रिक मूल्यों में वृद्धि होती है। व्यक्ति प्रजातान्त्रिक ढंग से रहना सीखता है तथा उसको अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध होता है। उसका जीवन धनी होता है, मानसिक संघर्ष दूर होते हैं तथा प्रजातांत्रिक संस्कृति के विकास में सहायता मिलती है। इस प्रकार के कार्य तथा क्रियात्मक अनुभव शक्तियों में वृद्धि करते हैं तथा सुखद, रचनात्मक एवं मूल्यवान् ज्ञान अर्जित

करने में सहायता मिलती है । भविष्य में जीवन को सुखमय बनाने में रचनात्मक संघर्ष के तत्व व्यक्ति में जागृत होते हैं । संस्थाओं का उद्देश्य खाली समय की मनोरंजनात्मक क्रियाओं द्वारा समताओं (Potentialities) में वृद्धि करना होता है । कार्यकर्ता संस्था में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करता है । वह संस्था के उद्देश्यों से अवगत होता है तथा व्यक्तियों को कार्यक्रम में भाग लेने की पूर्ण छूट देता है । वह कार्यक्रम में निहित लाभों को स्पष्ट कर देता है तथा यह व्यक्ति का सदस्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह उसका उपयोग किसलिए करे ।

2. **कार्यकर्ता की अंतर्दृष्टि**—कार्यकर्ता में इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह अपनी भूमिका निभाने में किसी प्रकार की कठिनाई एवं बाधा न महसूस करे । साधारण रूप से वह दो दिशाओं में अपनी दृष्टि रखता है । पहले वह उन कार्यक्रमों, खेलों वार्तालापों, मीटिंगों (गोष्ठियों), ड्रामों या अन्य क्रियाओं पर ध्यान रखता है जो कि समूह के अन्तर्गत सम्पन्न होती हैं । वह सदैव यह देखता है कि कोई भी कार्यक्रम ऐसा न हो जो उद्देश्य से परे हो और सदस्यों पर विपरीत प्रभाव डालता हो । वह कार्यक्रम सदैव उन्नतिशील बनाता है । उसके गुणों को समझता है तथा समूह से सामंजस्य स्थापित कर सम्पन्न करता है। दूसरी ओर, वह उन सामाजिक संबंधों (Social Relationship) पर दृष्टि रखता है जो कि समूह को स्थिर रखते हैं तथा सामंजस्य बनाए रखते हैं । वह प्रतिक्रिया पर ध्यान रखता है । सामाजिक संबंध समूहों-सदस्यों की अर्न्तव्यक्तिगत (Inter-personal) प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है तथा सदस्य मानसिक तथा सांवेगिक रूप से एक दूसरे के नजदीक आते हैं । वह प्रेम (Affection) उग्रता (Hostility) प्रतिद्वन्दिता (Pivalry) तथा विनम्रता या सहिष्णुता (Submission) नेतृत्व तथा स्वामिभक्ति (Loyalty and Leadership) आदि को देखता है, क्योंकि ये ही कारक है जो सामूहिक अनुभव की विशेषताए॑ निश्चित करते हैं । सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान सामूहिक कार्यकर्ता को प्राप्त होना कोई अद्भुत उपलब्धि नहीं है । वह यहाँ पर तीव्र संवेदनशीलता (Sharpened Sensitivity) भाग लेता है जो कि शिक्षा, मनोरंजन आदि क्षेत्रों में बिलकुल भिन्न है ।

वर्तमान समय में सामाजिक अस्तव्यस्तता बढ़ती ही जा रही है । साधारण प्रक्रिया में सामाजिक निपुणता प्राप्त करने के अवसर कम होते हैं तथा संतोष-जनक व्यक्तिगत सम्बन्धों में कमी आ रही है । पहले स्थायित्व अधिक था परन्तु

अब ऐसा नहीं है पहले प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न आर्थिक क्रियाओं तथा सामाजिक कार्यों को तथा उनमें भाग लेने की प्रक्रिया को जानता था। परन्तु अब प्रौद्योगिकीकरण तथा नगरीकरण के कारण एवं निरन्तर परिवर्तन तथा गतिशीलता ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमें संचार (Communication) तथा सहयोग की सामाजिक निपुणता आसानी से नहीं प्राप्त होती, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में असंतोष तथा असमायोजन एवं सामूहिक तनाव बढ़ता जाता है। जब तक इन सामाजिक निपुणताओं की क्षति-पूर्ति नहीं होगी तब तक औद्योगिक सभ्यता सदैव भयभीत रहेगी। इस संकट के कारण सचेतन रूप से सामाजिक सम्बन्धों के विकास के लिए प्रत्येक स्थान पर जोर दिया जाने लगा है। शिक्षाशास्त्रियों ने सहयोगिक सामाजिक सम्बन्धों को सीखने पर काफी बल दिया है। परिवार में सामाजिक अस्तव्यस्तता के कारण परिवार-वैयक्तिक कार्य (Family Social Work) तथा परिवार-परामर्श (Family Counselling) का विकास हुआ है। सामूहिक चिकित्सा का प्रारम्भ भी सामाजिक विकास के कारण हुआ है। सामूहिक कार्यकर्ता के लिए सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को जानने की क्षमता तथा सम्पूर्ण सामूहिक क्रिया के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करता है। प्रत्येक सदस्य का सम्बन्ध सम्पूर्ण समूह के साथ सामूहिक पूर्णता (Entity) के रूप में देखना तथा अनुभव करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। उसको सरकारी ढाँचे का ज्ञान, जिसके द्वारा समूह को अधिकार प्राप्त होता है, तथा समूह-मनोबल का ज्ञान होना आवश्यक होता है। कार्यकर्ता को सदैव संबंधों की गति को समझने का ज्ञान होना आवश्यक होता है। कार्यकर्ता को सदैव संबंधों की गति को समझने का प्रयास करता रहता तथा उनकी दिशा का निर्देशन करता है।

3. **उपयोगी कार्यक्रम**—सामाजिक सामूहिक कार्य की यह मूल मान्यता है कि संस्था के अन्तर्गत समूह द्वारा प्रदत कार्यक्रम सदैव प्रभावकारी होते हैं और समूह सदस्य उन कार्यक्रमों को अपनाने, समझने एवं सम्पन्न करने में किसी प्रकार की कठिनाई महसूस नहीं करते। कार्यक्रम का मूल्यांकन सदैव तथा निरंतर होना आवश्यक होता है। उसमें यह देखना आवश्यक होता है कि ग्रहणीय योग्यताओं (Adaptive Abilitis) की दक्षता में कितना परिवर्तन आया है तथा समूह-सदस्य ने भाग लेकर किस प्रकार और कहाँ तक दक्षता या निपुणता ग्रहण कर ली है, उसको अयोग्य आदतों में कुछ परिवर्तन आया है या नहीं, कार्यक्रम ने इस दिशा में क्या प्रयास किया है, उसका प्रभाव समूह सदस्यों की कमियों को दूर करने में किस सीमा तक सफल हो रहा है, मनोवृत्तियों तथा ज्ञान में किस प्रकार परिवर्तन हो रहा है, इसके साथ ही सम्पूर्ण समूह की पद्धति, विचार,

काम करने के ढंग, पर्यावरण व दशाओं आदि में क्या अन्तर आ रहा है ? मुख्य रूप से कार्यक्रम के महत्त्व को समझने के लिए समूह का, समूह-सदस्य का व्यक्ति के रूप में तथा सदस्य का समूह में योगदान तीनों कारकों का मूल्यांकन करना होता है। समूह-मूल्यांकन में देखना होता है कि सदस्यों की उपस्थिति क्या होती है, समूह-संगठन कितना शक्तिशाली है, समूह का स्तर क्या है, कार्यक्रम का प्रभाव समूह पर किस प्रकार पड़ रहा है, समूह अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने में कहाँ तक सफल हो रहा है, संस्था कितना सहयोग दे रही है, संघर्षमयी स्थिति में समूह किस प्रकार कार्य कर रहा है, नेतृत्व की क्या स्थिति है, सहयोगिक नियोजन की क्या रूपरेखा है, समूह के विचार क्या हैं, समूह व्यक्ति का मनोबल किस प्रकार प्रकट कर रहा है, मतभेदों का निपटारा किस प्रकार होता है, इत्यादि। समूह-सदस्य का व्यक्ति के रूप में मूल्यांकन में उसकी कार्यक्रम में उपस्थिति, नवीन निपुणताओं तथा योग्यताओं को सीखने अथवा ग्रहण करने की क्षमता तथा गति, नवीन ज्ञान का विकास, समूह भक्ति, भाग लेने का स्तर, नेतृत्व, पूर्वाग्रहों में कमी, समूह में स्थिति, समायोजन की योग्यता, औद्योगिक विकास, शैक्षिक विकास आदि बातें जाननी आवश्यक होती हैं। सदस्य के रूप में वह समूह को क्या सहायता कर रहा है तथा उसका योगदान किस स्तर का है, यह जानना कार्यक्रम को समझने के लिए आवश्यक होता है। अतः कार्यकर्ता को अपना सम्बन्ध पहले समूह-सदस्य से, न कि क्रिया से स्थापित करना होगा। उसकी सफलता इस बात में निश्चित नहीं होती है कि खेल किस प्रकार का हो रहा है या क्रियाएँ सफलतापूर्वक हो रही हैं, बल्कि भाग लेने वालों के प्राप्त होने वाले अनुभव पर निश्चित होती है। उसका मुख्य और अंतिम उद्देश्य सम्बन्ध में वृद्धि करता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि कार्यक्रमों के गुणों की उपेक्षा की जाती है, बल्कि कार्यकर्ताओं का ध्यान सदस्यों पर विशेष रूप से रहता है।

4. कार्यस्थिति का ज्ञान—जिस संस्था में कार्यकर्ता कार्य कर रहा है उसको न केवल समूह-सदस्यों के सांवेगिक सामाजिक, शारीरिक तथा बौद्धिक तत्त्वों का ज्ञान होना चाहिए बल्कि उसको उनकी कार्य-स्थिति, पारिवारिक सम्बन्ध, सामुदायिक मनोवृत्ति इत्यादि को भी जानना चाहिए। वह न केवल सदस्यों को मनोरंजन प्रदान करता है बल्कि उसका ध्यान यह भी रहता है कि उनकी स्थिति में क्या परिवर्तन हो रहा है। समुदाय पर उसका क्या प्रभाव पड़ रहा है। व्यावसायिक गुणों का विकास तथा उद्देश्यों की पूर्ति समूह में किस प्रकार हो रही है ? उनमें किसी विशेष अन्तर के कारण प्रतिद्वन्द्विता तो नहीं हो रह है ?

प्रत्येक स्थिति का ध्यान रखकर वह कार्य करता है। उसको प्रत्येक सदस्य के विषय में पूर्ण जानकारी होती है।

5. **व्यवहार का ज्ञान**—यदि सामूहिक कार्यकर्ता को मनोरंजन एवं शिक्षा प्रदान करने के लिए समूह-सदस्यों की सहायता करनी है तो उसको व्यवहार का ज्ञान होना परमावश्यक होता है। अतः उसको व्यक्ति के सामाजिक विकास के स्तरों का ज्ञान होना चाहिए। उसको मनोविज्ञान का ज्ञान हो तथा व्यवहार को समझने की क्षमता हो। व्यवहार व्यक्ति की आन्तरिक एवं बाह्य क्रियाओं, दशाओं तथा स्थितियों को प्रकट करता है। व्यक्ति का व्यवहार यह निश्चित करता है कि वह किस स्तर का है तथा उसमें ग्रहण करने की कितनी क्षमता है, वह समूह अनुभव किस प्रकार का चाहता है, किस प्रकार के समूह में रहना चाहता है तथा किन दशाओं में वह भाग लेने के लिए प्रयत्नशील हो सकता है। व्यवहार पर न केवल आवश्यकताओं एवं चालकों का प्रभाव पड़ता है बल्कि सांस्कृतिक कारकों का भी प्रभाव होता है। हम जानते हैं कि सभी व्यक्तियों की कुछ मूल आवश्यकताएँ होती हैं और उनकी सन्तुष्टि न होने पर प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। संस्कृति निश्चित करती है कि स्थिति को किस प्रकार व्यक्ति समझता है तथा संघर्ष में किस प्रकार व्यवहार करता है, उसका समायोजन किस प्रकार का होता है। इसमें अन्तर इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक की स्थिति, पर्यावरण, रहन-सहन का स्तर, मानसिक संरचना भिन्न-भिन्न होती है। जब व्यक्ति किसी समूह में रहते हैं तो स्वीकृत रहन-सहन के तरीकों को स्वीकार करके व्यवहार में लाते हैं। संस्कृति वह पृष्ठ-भूमि तैयार करती है जिसमें लोग साथ-साथ रह पाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को उन व्यवहारों के तरीकों को सीखना आवश्यक होता है, जो दूसरे सदस्यों को स्वीकार हों। व्यवहार का जानना कार्यकर्ता के लिए इसलिए आवश्यक होता है कि इसके बिना व्यक्ति को समझा नहीं जा सकता है।

6. **व्यावसायिक रूप से कार्य करना**—समाज-कार्य एक व्यवसाय है अतः उसकी प्रणालियों का उपयोग भी व्यवसाय के रूप में होना चाहिए। कार्यकर्ता में व्यावसायिक गुणों का होना आवश्यक होता है। व्यवसाय एक ऐसा पौधा है जिसमें विशेष ज्ञान, गुण, मूल्य, आदर्श, निपुणताएँ इत्यादि निहित होती हैं तथा उनका व्यवहार में उपयोग किया जाता है।

व्यवसाय की साधारणतः निम्न विशेषताएँ होती हैं :—

1. एक विशेष ज्ञान,
2. प्रशिक्षण,
3. कार्यक्षेत्र में विशेष योग्यता एवं निपुणता,

4. व्यावसायिक संगठन,
5. व्यावसायिक नीति,
6. सामाजिक मान्यता।

सामूहिक कार्यकर्ता को सामूहिक कार्य-प्रणाली का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। वह समूह-व्यवहार से भली-भाँति परिचित हो तथा पूर्ण रूप से सामाजिक विकास का ज्ञान हो। अज्ञानता किसी भी प्रकार से लाभदायक नहीं है। उसके लिए यह अभिशाप है। जैसे-जैसे सामाजिक विज्ञान का ज्ञान बढ़ता जाता है, उसका उपयोग करना उन सभी व्यावसायिक कार्यकर्ताओं का उत्तरदायित्व हो जाता है, जो व्यक्तियों को सेवा प्रदान करते हैं। कार्यकर्ता को व्यावसायिक नीतियों (Professional Ethics) को ध्यान में रखकर कार्य करना होता है। उसको अन्तःसम्बन्धों का प्रयोग जान-बूझकर करना चाहिए।

सामूहिक कार्य दिनोंदिन व्यावसायिक रूप ग्रहण कर कार्य करने की नवीन शाखाएँ उत्पन्न कर रहा है, निपुणताओं का विकास हो रहा है तथा नवीन सिद्धान्तों की खोज की जा रही है। सामूहिक कार्यकर्ता उपलब्ध व्यावसायिक ज्ञान को अपने व्यवहार में लाता है तथा समूह अनुभव को श्रेष्ठतम बनाता है।

विलसन तथा राइलैण्ड (Wilson and Ryland) ने सामाजिक सामूहिक कार्य की मान्यताएँ निम्नलिखित बलताई हैं। कार्यकर्ता व्यक्तियों तथा समूहों की सहायता निम्न मान्यताओं के आधार पर करता है :—

1. वह व्यक्ति तथा उनके सामाजिक संगठनों का आदर करता है तथा उनको अपनी जीवन-पद्धति निर्धारण की स्वतंत्रता में विश्वास करता है।

2. वह व्यक्ति तथा समूह को मानता है तथा एक का दूसरे से भिन्न होने का अधिकार मानता है।

3. व्यक्तियों तथा समूहों की तरह अनुभव न करने पर भी उनके साथ अनुभव की योग्यता उसमें होती है।

4. उग्रता तथा आक्रमणकारी प्रवृत्ति की स्वीकृति की उसमें क्षमता होती है तथा प्रेम और वात्सल्य समूहों तथा व्यक्तियों को प्रदान करता है।

5. व्यवहार की भाषा को वह समझता है तथा अपने व्यवहार का उपयोग वह समूह तथा व्यक्ति के हित में करता है।

6. वह स्वीकार करता है कि प्रत्येक प्रकार का व्यवहार उद्देश्यीय होता है और समूह तथा व्यक्ति की क्रियायें उनके लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं, चाहे देखने वालों के लिए उनका तात्पर्य कुछ भी न हो।

7. उसमें व्यक्ति तथा समूहों को स्वीकार करने की क्षमता होती है, भले ही वह उनके व्यवहारों को अस्वीकृत करे।

8. उन व्यक्तियों तथा समूहों के साथ, जो सीमाओं की सुरक्षा तथा सीमित सीमा चाहते हैं, वह सत्ता के कार्य को स्वीकार करता है।

9. बिना निर्णय के शक्ति-प्रयोग करने की योग्यता उसमें होती है।

10. जहाँ पर व्यक्ति तथा समूह व्यक्तिगत तथा सामूहिक उत्तरदायित्व को ग्रहण करने में सहायता चाहते हैं वहाँ पर वह क्षितिज को विस्तृत करने तथा आज्ञा देने की योग्यता रखता है।

11. समस्या के समाधान को इंगित करने से दूर रहकर वह व्यक्तियों तथा समूहों को उनकी समस्याओं को समझने में सहायता देने की योग्यता रखता है।

12. व्यक्तियों तथा समूहों को अपना निर्णय लेने तथा उस पर अमल करने में सहायता देने की वह योग्यता रखता है।

13. समूह में सामूहिक संरचना के ज्ञान का प्रयोग करने की निपुणता तथा संगठन द्वारा सीमाओं को बताने की योग्यता होती है।

14. वह संस्था के उद्देश्यों तथा कार्यों को समझने की क्षमता रखता है, जिससे वह व्यक्ति समूह को सेवा प्रदान करने का अधिकार प्राप्त करता है।

15. वह संस्था के कार्यों की सीमाओं को स्वीकार करता है तथा सेवार्थियों या सदस्यों को उन सेवाओं के लिए, जो उस संस्था में उपलब्ध नहीं हैं, अन्य संस्थाओं से प्राप्त करने के लिए उत्साहित करता है।

16. समुदाय के सहयोगिक प्रयत्नों में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी संस्था का प्रतिनिधित्व करता है।

17. वह सेवार्थियों, समूह-सदस्यों, जिनके साथ कार्य कर रहा है या सम्पूर्ण समाज की रुचियों तथा आवश्यकताओं में सम्बन्धों को समझता है तथा संस्था के कर्मचारी के रूप में समाज-कार्य व्यवसाय के सदस्य के रूप में और उत्तरदायी नागरिक के रूप में अपूर्ण आवश्यकताओं के लिए सामाजिक क्रिया में भाग लेने का उत्तरदायित्व लेता है।

(ii) सामूहिक कार्य की मूल मान्यतायें :

सामान्य रूप से सामाजिक सामूहिक कार्य की निम्न मूल मान्यतायें हैं :—

1. **मनुष्य एक सामूहिक प्राणी है**—मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह में रहता है। उसकी भौतिक तथा मानवीय आवश्यकतायें समूह में ही रहकर पूरी हो सकती हैं। वह समूह में ही जन्म लेता है, बढ़ता है तथा सामाजिक प्राणी बनता है। समूह से पृथक् उसका कोई अस्तित्व नहीं है। सामूहिक जीवन ही उसका वास्तविक जीवन है। व्यक्ति का विकास सामूहिक अनुभव पर ही निर्भर करता है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि समुचित सामूहिक

जीवन के अभाव में मनुष्य-मनुष्य नहीं बन पाता है। वर्तमान समय में भौतिक-वादी युग के कारण सामूहिक जीवन का अस्तित्व अजीबोंगरीब हो गया है। व्यक्ति रहता तो लाखों के बीच हैं परन्तु अपने को उसका आवश्यक अंग नहीं समझ पा रहा है। वह अपने को मशीन समझने लगा है। नगरीकरण के परि-णाम स्वरूप कहीं भी आन्तरिक रूप से एकता देखने को नहीं मिलती है। सभी लोग अपने तक ही सीमित होकर रह गये हैं तथा पृथग्वाद की विचारधारा दिनोंदिन बढ़ रही है। इस विचारधारा के कारण वह अपने को कभी असहाय समझने लगता है। वह सदैव चिन्तातुर रहता है, जिससे मानसिक रोगों का शिकार हो रहा है। अतः सकारात्मक एवं रचनात्मक सामूहिक अनुभव उसकी न केवल भौतिक आवश्यकता पूरी करते हैं बल्कि मानसिक पोषण प्रदान करते हैं।

सामूहिक अनुभव द्वारा व्यक्ति सामंजस्य करना सीखता है। समूह में प्रत्येक सदस्य को अपनी-अपनी भूमिका पूरी करनी होती है। वह अपनी भूमिका तभी पूरी कर सकता है जब दूसरे सदस्य उसे अवसर प्रदान करें। इस प्रकार वह दूसरों के साथ रहना, काम करना तथा व्यवहार करना, सीखता है, जिससे परिणाम-स्वरूप वह अपने जीवन का रास्ता समायोजनात्मक बना लेता है। इसके अतिरिक्त समूह व्यक्ति की मौलिक इच्छा महत्ता की इच्छा को सन्तुष्ट करता है। समाज में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो यह न चाहता हो कि उसके कार्यों, व्यवहार तथा विचारों की मान्यता प्राप्त हो। लेकिन आज व्यक्ति का जीवन इतना संकटमय है कि वह स्वयं ही परेशान रहता है। उसका प्रयत्न सदैव अपने को अनुकूल बनाने में लगा रहता है। वास्तविक सामूहिक अनुभव से इस समस्या का समाधान होता है। उसकी समग्र होने की इच्छा पूरी होती है। सामूहिक अनुभव द्वारा सहयोग से कार्य करने तथा रहने के गुण का विकास होता है। सामूहिक अनुभव द्वारा प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास होता है। इसके द्वारा व्यक्ति की छिपी क्षमतायें तथा योग्यता में वास्तविक रूप प्राप्त करती हैं। जिससे वह अपना भविष्य का जीवन सुखमय बनाता है।

व्यक्ति के विकास के लिए सामूहिक अनुभव की आवश्यकता होती है। बालक के प्रारम्भिक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध व्यक्तित्व की रचना करते हैं। जो बालक जो सम्बन्ध अपने माता-पिता, भाई, बहन आदि से रखता है वे उसके चालकों व सवेगों को निश्चित करते हैं। वह मूल आवश्यकताओं के अतिरिक्त सामाजिक आवश्यकताओं को उसी के अनुरूप विकास करके सन्तुष्ट करता है। ये आवश्यकतायें मुख्यरूप से अहं के विकास से सम्बन्धित होती हैं। बालक में आत्म (Self) का विकास समूह-अनुभव द्वारा होता है। वह दूसरे की भूमि-

काओं को व्यवहार में लाकर उनके विचारों को सीखता है। इस प्रकार वह अपने में आत्मचेतना का विकास करता है, जिसके फलस्वरूप अहं का विकास होता है। मीड (Mead) के अनुसार आत्मविकास (Self development) की तीन अवस्थायें होती हैं :—अर्थहीन प्रयत्न एवं कार्य, क्रीड़ा स्तर, खेल स्तर। प्रथम अवस्था दूसरे वर्ष के लगभग प्रारम्भ होती है। बालक दूसरों का अनुकरण बिना किसी उद्देश्य के करता है। तीसरे वर्ष अपने खेतों में माता-पिता के समान भूमिका निभाना चाहता है। मीड के अनुसार एकीकृत आत्म (Unified Self) का विकास खेल स्तर में होता है जब बालक समूह के दृष्टिकोण से अपने कार्य का प्रारम्भ करता है। इस स्तर पर वह किसी एक व्यक्ति का अनुकरण नहीं करता है। रोम का सदस्य होने के नाते सभी सदस्यों का ध्यान रखता है। वह दूसरों के व्यवहारों से प्रभावित होता है तथा स्वयं ऐसा व्यवहार करता है जो दूसरों को मान्य होता है। इस प्रकार उसका व्यवहार सामान्यीकृत हो जाता है।

सामूहिक पर्यावरण का अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार व्यक्ति के विकास में आशाजनक या निराशाजनक प्रभाव डालता है। हम जो कहते हैं या करते हैं उसकी आकृति मस्तिष्क में समूह द्वारा पहले से ही निर्मित होती है, जिसे वाल्टर लिपमैन (Welter Lipman) ने हमारे मस्तिष्क की तस्वीर कहा है। जीवन के प्रारम्भिक अनुभव सांवेगिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। फान्ड (Frend) के विचार से व्यक्तित्व का सांवेगिक भाग कार्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ही परिपक्व होता है। 5-6 वर्षों में बालक का विकास उस सीमा तक हो जाता है जहाँ तक उसकी आवश्यकता होती है। अतः सामूहिक जीवन-दशायें उसके लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं।

कुर्त लेविन (Kurt Levin)[2] ने व्यक्तिगत विकास पर सामूहिक जीवन के प्रभाव के सम्बन्ध में जोर देकर कहा है कि बालक जिस सामाजिक जलवायु में रहता है, वह उसके लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि वायु साँस लेने के लिए। समूह, जिससे बालक सम्बन्धित होता है, उसके लिए जमीन या भूमि है जिस पर वह खड़ा होता है। समूह से उसके सम्बन्ध तथा इसमें उसकी सुरक्षा या असुरक्षात्मक भावनाओं के लिए आवश्यक कारक है। कोई आश्चर्य नहीं कि जिस प्रकार के समूह का व्यक्ति अंग होता है तथा संस्कृति, जिसमें वह रहता है, उसके व्यवहार व चरित्र को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित करते हैं।

2. **सामाजिक अंतःक्रिया सामूहिक जीवन का परिणाम है**—सामाजिक अन्तः-क्रिया एक मनोवैज्ञानिक अभिकरण है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि

2. Levin, Kurt : Resolving Social conflict, Harper, New York, 1948, p. 82

व्यक्ति की प्रतिक्रिया, हाव-भाव, शब्द या स्थूल शारीरिक गति दूसरे व्यक्ति को उत्तेजित करती है और वह दूसरा व्यक्ति अपने अवसर पर प्रथम व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करता है।[3] अनुसरण, निर्देश, सहानुभूति, तादात्म्य, विषयीकरण, प्रकोप, विस्थापन सामाजिक अन्तःक्रिया के माध्यम है। अन्तःक्रिया व्यक्ति के लिए आवश्यक है। बिना अन्तःक्रिया के व्यक्तित्व का विकास असम्भव है। यहाँ तक कि शरीर के सामान्य विकास के लिए भी सामूहिक जीवन की आवश्यकता होती है। सामाजिक अन्तःक्रिया तथा सामूहिक भागीकरण का पृथक् न तो कोई व्यक्तित्व है और न कोई व्यवहार। व्यक्ति का वर्तमान स्वरूप सामूहिक प्रभाव का परिणाम है। मानव-समूह के प्रभाव से व्यक्ति में आदर्श (Ideals), विश्वास (Faith), मनोवृत्ति, मूल्य आदि गुणों का विकास होता है।

सामाजिक अन्तःक्रिया में निम्नलिखित माध्यमों के द्वारा समूह व्यक्ति का विकास करता है :—

समूह निर्देश देता है, सुझाव देता है जिससे बालक तार्किक तथ्यों के अभाव में भी दूसरों के विचारों को अपनाना सीखता है तथा उसकी विचार-शक्ति स्थिर होती है। अनुकरण के द्वारा वह जानबूझ कर दूसरों की विशेषताओं को अपनाने का प्रयत्न करता है। यह कार्य उस समय होता है जब बालक दूसरे को अपने से श्रेष्ठ समझता है। यह प्रक्रिया बिना सामूहिक जीवन के सम्भव नहीं है। वह दूसरों से तादात्म्य स्थापित करके उसके गुण, कार्य तथा सफलताओं को अपने में स्थापित कर लेता है।

3. व्यक्ति की उपलब्धियों में वृद्धि, उसमें परिवर्तन तथा विकास समूह के माध्यम से किया जा सकता है—समूहों के माध्यम से व्यक्ति सामाजिक संतोष तथा उद्देश्यों को प्राप्त करता है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रतिमानों में परिवर्तन लाता है तथा समूह द्वारा निश्चित प्रतिमानों एवं मूल्यों पर चलता है। वह क्या है, इसको दूसरे मनुष्यों के व्यवहारों से स्पष्ट किया जा सकता है। जो कुछ वह सोचता है, वह दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं के प्रति निर्णय होता है। व्यक्ति का व्यवहार और ढंग समूह के पूर्ण जीवन-अनुभव का दर्पण है। समूह जैसा चाहे व्यक्ति को वैसा बना सकता है।

बालक जिस क्षण जन्म लेता है उस समय से ही वह अपने निकटतम लोगों की भावनाओं को समझने का प्रयत्न करने लगता है तथा सामाजिक मनोवृत्ति से प्रभावित होता है। आगे चलकर उसकी मनोवृत्तियों में स्थायित्व आ जाता है।

3. Young, Kimball : Hand book of social Psychology, Routledge and Kegan Paul Ltd, London, 1957, p. 1

समूह का प्रभाव ही व्यक्ति के विचारों तथा भावनाओं में अन्तर लाता है। प्रतिमान तथा मूल्य समूह में ही तथा समूह के कारण ही परिवर्तित होते हैं। जब विभिन्न जाति, राष्ट्र, देश, कार्य, भौगोलिक स्थिति तथा मानसिक स्तरों के व्यक्ति एक समूह में किसी विशेष कारण वश मिलते हैं तो विभिन्न मूल्यों तथा प्रतिमानों का समावेश होता है। मिश्रण के कारण नये मूल्यों तथा प्रतिमानों का विकास होता है। प्रत्येक सदस्य निर्णय-प्रक्रिया में अपने मूल्यों तथा प्रतिकारों के आधार पर भाग लेता है। उसके मूल्य तथा प्रतिमान दूसरे के मूल्यों तथा प्रतिमानों से प्रभावित होते हैं। अतः उसके नये मूल्यों एवं प्रतिमानों का विकास होता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में परिवर्तन आना स्वाभाविक हो जाता है। इस प्रकार सामूहिक अनुभव व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है।

4. समस्याओं के समाधान करने की क्षमता में वृद्धि सामूहिक अनुभव द्वारा की जा सकती है—व्यक्ति जिस प्रकार से सीखता है, उसकी सीखने की गति होती है, आत्मसात् करने की क्षमता होती है तथा जिस प्रकार से समस्याओं का समाधान करता है, अवश्य ही वे उस समूह से प्रभावित होते हैं, जिनका वह सदस्य होता है। समूह-क्रियाओं में भाग लेने की तेज गति से सीखने की गति तेज होती है। समस्याओं के समाधान करने की क्षमता बिना किसी सम्बन्ध तथा अन्तः-क्रियाओं के नहीं होती है। एक व्यक्ति न तो सभी कुछ सीख सकता है और न ही सोच सकता है। समूह में रहकर ही वास्तविकता को समझ सकता है या समाधान के उपायों की खोज कर सकता है।

5. सामूहिक अनुभव व्यक्ति को अभिलाषाओं तथा इच्छाओं का स्तर परिवर्तित करते हैं—व्यक्ति में जीवन लक्ष्य का निर्माण बहुत कुछ समूह स्तर पर निर्भर होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति इस बात पर निर्भर करती है कि समूह उस दिशा में क्या प्रयास कर रहा है। उसका रुख किस प्रकार का तथा कैसा है। व्यक्ति कभी-कभी निराश, हतोत्साहित तथा निष्क्रिय हो जाता है। इस स्थिति में केवल समूह ही उसको पुनः सामान्य स्थिति में ला सकता है। व्यक्ति किस कारण डरता है, समस्या को कैसे समझता है तथा कैसे सुलझाता है और दूर करता है इत्यादि समूह-अनुभव पर निश्चित होता है। समूह व्यक्ति को सामाजिक, मानसिक तथा सांवेगिक सुरक्षा प्रदान करता है। समूह की सदस्यता बदलने अथवा नये समूह के सदस्य होने से उसमें चतुर्दिश परिवर्तन होता है।

6. सामूहिक मनोरंजनात्मक क्रियायें व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए हितकर है—अनेक अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि मनोरंजनात्मक क्रियायें केवल मनोरंजन ही नहीं प्रदान करती है बल्कि उसकी कार्यात्मक क्षमता की वृद्धि

होती है एवं नये उत्साह का संचार होता है। प्रारम्भ में सामाजिक सामूहिक कार्य का स्वरूप केवल मनोरंजनात्मक ही था और इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप उनमें परिवर्तन होकर सामूहिक कार्य का रूप प्रकट हुआ। आज भी बहुत-सी संस्थायें पूर्णरूपेण मनोरंजन तथा शिक्षात्मक क्रियाओं को साथ-साथ सम्पन्न करती है। इनमें प्रौढ़-शिक्षा, विद्यालय तथा विश्वविद्यालय प्रसार-सेवायें, क्लब्स, कैम्पस, वाई० एम० सी० और वाई० डब्लू० सी० ए० प्रमुख है।

कार्यकर्ता सदैव मनोरंजनात्मक क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति की अन्तर-क्षमता में उन्नति एवं वृद्धि का प्रयास करता है। इसके द्वारा वह सदस्यों के जीवन को अधिक सुखमय एवं समायोजित बनाता है। सामूहिक अनुभव द्वारा प्रजातान्त्रिक संस्कृति की आधार-शिला पड़ती है एवं नींव मजबूत होती है। इन क्रियाओं द्वारा व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है। चरित्र निर्माण के लिए सामूहिक अनुभव ही सबसे महत्त्वपूर्ण यन्त्र है। मनोरंजन का उपयोग उपचार के रूप में भी किया जा सकता है। इन कार्यक्रमों को व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक व्याधियों से मुक्ति दिलाने या प्रभाव को कम करने के लिए व्यवहार में लाया जाता है। अपराधी प्रकृति के सुधार के लिए भी मनोरंजन का प्रयोग किया जा सकता है।

7. सामूहिक अनुभव स्थायी प्रभाव डालता है—मनुष्य का जीवन ही सामूहिक जीवन है। उसका अस्तित्व ही सामूहिक अनुभव का परिणाम है। इसी कारण समूह में जहाँ एक ओर सीखने की गति तेज होती है वहीं दूसरी ओर उसके अन्तःकरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सामूहिक प्रतिस्पर्धा से व्यक्ति एक ओर कार्य अधिक करता है वहीं दूसरी ओर सम्पूर्ण कार्य-रचना का स्पष्ट चित्रण करता है। समूह के माध्यम से सीखा हुआ व्यवहार अधिक स्थायी होता है। इसीलिए यदि किसी ऐसे व्यवहार की आदत पड़ जाती है जो समाज द्वारा मान्य नहीं है तो केवल समूह ही इस आदत से छुटकारा दिला सकता है। यही कारण है कि अपराधियों के साथ सामूहिक कार्य किये जाते हैं।

8. सामूहिक कार्य सदैव समूह में दो प्रकार की क्रियाओं पर विशेष ध्यान आकर्षित करता है—कार्यक्रम क्रियायें तथा समूह के सामाजिक सम्बन्ध—सामूहिक कार्य की मान्यता है कि समूह-कार्यक्रमों में कार्यकर्ता का मुख्य उद्देश्य अन्त-र्वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं को समझना तथा उन्हें प्रभावित करना है। कार्यकर्ता के लिए सामाजिक सम्बन्धों का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्तमान समय में अनेक औद्योगिक एवं गत्यात्मक कारकों के कारण सामाजिक सम्बन्धों में स्थिरता देखने को नहीं मिलती है। अतः कार्यकर्ता को सदैव सजग एवं सतर्क रहने की

आवश्यकता है। कार्यकर्ता के लिए समूह का संस्था से सम्बन्ध, समुदाय से सम्बन्ध, अन्य संस्थाओं से सम्बन्ध तथा सरकारी संगठनों से सम्बन्ध का ज्ञान होना चाहिए।

9. **सामूहिक कार्य सम्पूर्ण व्यक्ति के सिद्धान्त में विश्वास रखता है**—प्रत्येक व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक तत्त्वों पर ध्यान समान रूप से रखना चाहिये बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ये तीनों कारण विशिष्ट भूमिका निभाते हैं, अतः इन तीनों पर ही ध्यान रखना चाहिए। सामूहिक कार्यकर्ता जब समूह द्वारा व्यक्तियों के साथ कार्यकर्ता है तो वह व्यक्ति को खण्डित रूप में नहीं देखता है। उसका उद्देश्य किसी विशेष गुण का विकास करना नहीं होता है। सामूहिक कार्य से पूर्व जो भी विधियाँ समूह के साथ कार्य करने में लायी जाती थीं उनका उद्देश्य एकांकी था। व्यक्ति को टुकड़ों में विभाजित कर विकास का कार्य किया जाता था। उदाहरण के लिए शारीरिक विकास के लिए व्यायामशाला में प्रशिक्षण, कक्षा में मानसिक विकास आदि। समूह-कार्य का दृढ़ विश्वास है कि इस प्रकार से विभाजित करके व्यक्ति का सर्वोत्तम कल्याण नहीं किया जा सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि शरीर तथा मन को अलग-अलग नहीं समझा जा सकता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक कार्यकर्ता—शिक्षा, 'केसवर्कर', ग्रुपवकर, डाक्टर, सभी हों।

10. **कार्यक्रम-क्रियाओं का मूल्यांकन व्यक्तियों पर प्रभाव के रूप में होता है**—कार्यक्रम की सफलता उसकी प्रभावात्मकता पर निर्भर करती है। अतः कार्यकर्ता के सम्बन्ध क्रिया-केन्द्रित न होकर समूह-व्यक्ति केन्द्रित होते हैं। कार्यक्रम की सफलता इसमें नहीं है कि खेल में जीत हुई या हार, सूचना अभिग्रहण हुआ या नहीं, सीखना सम्भव हुआ या नहीं, बल्कि सफलता इस बात में है कि सहभागियों एवं भागीकृत व्यक्तियों के लिए सामूहिक अनुभव का क्या महत्त्व हुआ। कार्यकर्ता के सामने सदैव यह प्रश्न रहता है कि इस अनुभव का भाग लेने वाले सदस्यों के लिए क्या अर्थ है। क्या वे इस कार्यक्रम से संतोष प्राप्त कर रहे हैं?

11. **व्यक्ति सदस्य को सामूहिक कार्यों में भली-भाँति समझा सकता है तथा सहायता की जा सकती है**—समूह में व्यक्ति को अपनी सभी प्रकार की योग्यताओं एवं क्षमताओं के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। समूह प्रत्येक सदस्य को इसके लिए अवसर प्रदान करता है। लेकिन कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो भाग लेने में कठिनाई अनुभव करते हैं तथा भूमिका पूरी करने में असमर्थता प्रकट करते हैं। वे अपनी शर्मीली प्रकृति के कारण कार्यक्रम से आनन्द नहीं प्राप्त

कर पाते हैं। अथवा उग्रात्मक व्यवहार के कारण पारस्परिक सम्बन्धों को खण्डित कर देते हैं। सामूहिक कार्यकर्ता इस प्रकार के व्यवहार को समझ कर उनके मूल आधारों की खोज करता है। तदोपरान्त सामूहिक क्रियाओं के माध्यम से ही इन कमियों को दूर करता है। वह उनमें सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने की निपुणता विकसित करता है तथा सक्रिय एवं लाभप्रद भागीकरण के लिए प्रोत्साहित करता है।

12. **समूह के साथ कार्य करने के लिए सामाजिक विज्ञानों का ज्ञान आवश्यक है**—व्यक्ति समूह में अन्तःक्रिया करते हैं। इस अन्तःक्रिया की सफलता व असफलता समायोजन या असमायोजन उत्पन्न करती है। इन क्रियाओं के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र का ज्ञान होना चाहिए। सामाजिक तथा सामूहिक दशाओं का अध्ययन बिना समाजशास्त्र के नहीं किया जा सकता है। समूह-कार्य का उद्‌देश्य समूह के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाना है, जिससे वह विकास के सही अवसरों का उपयोग कर सके। इसके लिए व्यक्ति की चेतन व अचेतन इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों का अध्ययन करना होगा। अतः मनोविज्ञान का अध्ययन उसके लिए आवश्यक हो जाता है। समस्याओं को सुलझाने के लिए समझ, सीख, स्मृति, स्वभाव, क्षमता आदि का अध्ययन करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। ये सभी कारक मनोविज्ञान के क्षेत्र हैं।

13. **समूह के साथ कार्य करने के लिए व्यावसायिक ज्ञान एवं निपुणताएँ आवश्यक हैं**—व्यवसाय में सिद्धान्त, निपुणतायें, सामुदायिक अभिमिति तथा आचार-संहिता निहित होती है। कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि उसके पास व्यक्तिगत एवं समूह-व्यवहार, सामाजिक वातावरण तथा मानव व्यवहार में सम्बन्ध, मनोवैज्ञानक, सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों का महत्त्व तथा व्यवहार के सम्बन्ध में कार्य, वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का स्वरूप एवं गत्यात्मकता, अन्तर्वैयक्तिक एवं सामूहिक सम्बन्ध, सामान्य तथा असामान्य व्यावहारिक स्थितियाँ, मानव-विकास, शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक विचलन, सामाजिक विकास के सिद्धान्त आदि का ज्ञान हो। उसमें व्यक्तियों, समूहों तथा समुदायों से उद्‌देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता होनी चाहिए। उसे आत्मबोधन, प्रत्यक्षीकरण, समस्या-विश्लेषण, व्यावसायिक सम्बन्धों का प्रयोग, वैज्ञानिक तरीका, कार्य एवं व्यवहार में उपयोग करने में दक्ष होना चाहिए।

14. **व्यक्ति निरन्तर विकासशील मानव है**—यद्यपि जीवन के प्रारम्भिक वर्ष व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। उस समय सीखने एवं विकास करने की गति तेज होती है, परन्तु वह जीवनपर्यन्त अन्तःक्रिया के माध्यम से अपनी जीवन-

शैली तथा व्यवहार में परिवर्तन लाता रहता है। जिस प्रकार के अनुभव उसे होते हैं वह अचेतन रूप से उनसे प्रभावित होता है और कालान्तर में वे परिवर्तन उसके व्यवहार में स्पष्ट दिखलाई देने लगते हैं। वह न केवल स्वयं प्रभावित होता है बल्कि दूसरों को भी प्रभावित करता है। सामूहिक कार्य इस माध्यम के आधार पर प्रत्येक आयु के लोगों को सेवायें प्रदान करता है तथा अपनी सेवा के माध्यम से उनकी क्षमताओं में वृद्धि करता है।

15. **विकास सम्पूर्ण जीवन-चक्र में चलता रहता है**—विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। जैविकीय आवश्यकताओं के अतिरिक्त सम्बद्धता की आवश्यकता समान महत्त्व की होती है। इसके लिए वह निरन्तर विभिन्न समूह व संघों का सदस्य बनने का प्रयत्न करता है। वह छोटे-छोटे समूहों का निर्माण करता है तथा अपनी विशेषताओं के आधार पर वे विकास में योगदान देते हैं। जीवन के प्रत्येक स्तर पर उसे समूह का सदस्य बनना आवश्यक होता है, तभी वह अपने को शारीरिक तथा मानसिक रूप से एकीकृत रख सकता है। उसमें अपने असन्तोष एवं भग्नाशा से निपटने के लिए स्वयं में अनेक क्षमतायें होती हैं, जिनका विकास समूह के माध्यम से करता है।

●

अध्याय 7

सामाजिक सामूहिक कार्य का समाज-कार्य की अन्य प्रणालियों से सम्बन्ध

समाज की जटिलता के साथ-साथ समस्याओं में भी जटिलता बढ़ी है और इस जटिलता को समझना समाज-कल्याण कार्यकर्ताओं के लिए आवश्यक हो गया है। यद्यपि यह सत्य है कि भौतिक समस्याओं का निदान एवं उपचार भौतिक साधनों द्वारा तथा मनोसामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार मनोसामाजिक साधनों द्वारा ही सम्भव होता है, परन्तु आज किसी भी समस्या के निदान व उपचार में सभी पक्षों का ध्यान रखा जाता है। क्योंकि मनुष्य पर प्रत्येक कारक का अपना विशेष प्रभाव पड़ता है।

मनोसामाजिक समस्याओं के निदान व उपचार के वैज्ञानिक तरीके को समाज-कार्य कहते हैं। समाज-कार्य मनोसामाजिक समस्या के निदान और समाधान में सेवार्थी को उसकी परिस्थितियों से समंजित करने की चेष्टा करता है तथा परिवर्तन पर भी जोर देता है। प्रायः समाज-कार्य दो स्थितियों में व्यक्ति की सहायता करता है। प्रथम जब सेवार्थी या व्यक्ति सामान्य प्रतिमानों से सामंजस्य भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांवेगिक या अन्य कारणों से नहीं कर पाता और वह समाज के लिए घातक हो जाता है तथा निन्दा का पात्र बन जाता है। दूसरे समाज-कार्य व्यक्ति की उन्नति एवं विकास के लिए साधन प्रदान करता है। जिससे उसमें प्रजातान्त्रिक मूल्यों का विकास होता है।

फ्रीड लैण्डर के अनुसार "समाज-कार्य व्यावसायिक सेवा है, जिसका आधार वैज्ञानिक ज्ञान और मानव-सम्बन्धों में निपुणता पर है। वह व्यक्तियों को अकेले या समूह में सहायता करता है जिससे कि वे सामाजिक एवं वैयक्तिक सन्तुष्टि एवं स्वतन्त्रता प्राप्त कर सके।"[1]

इण्डियन कान्फ्रेन्स ऑफ सोशल वर्क के अनुसार "समाज-कार्य एक कल्याणकारी प्रक्रिया है, जिसका आधार मानवोचित दर्शन, वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्राविधिक निपुणताओं पर है और जिसका उद्देश्य व्यक्तियों, समूहों या समुदायों की सहायता करना है जिससे वे सुखी और सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।"

स्ट्रस्प के अनुसार "समाज-कार्य एक ऐसी कला है जिसमें विभिन्न साधनों का प्रयोग वैयक्तिक, सामूहिक एवं सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

---

1. Fried lander, W. A. Op. cit., p. 4.

किया जाता है और इसके लिए एक ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जिसमें लोगों की ऐसी सहायता की जाती है कि वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें।"[2]

आधुनिक समाज-कार्य का तात्पर्य एक प्रकार की व्यावसायिक सेवा है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह की सहायता की जाती है, जिससे वह सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित कर सके और इच्छाओं एवं क्षमताओं के अनुसार जीवन स्तर को प्राप्त कर सके।

समाज-कार्य व्यक्ति की सहायता अपनी विशेष प्रणालियों द्वारा करता है। ये 6 प्रणालियाँ या पद्धतियाँ हैं जिनमें से वैयक्तिक सेवा कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्यक्रम सामुदायिक संगठन प्राथमिक हैं और समाज कल्याण प्रशासन, सामाजिक अनुसंधान तथा सामाजिक क्रिया द्वितीयक हैं। व्यक्ति की सहायता प्रत्यक्ष रूप से प्रथम तीन पद्धतियों द्वारा की जाती है परन्तु इसी कार्य में द्वितीयक पद्धतियों की भी सहायता की जाती है। एक व्यक्ति के लिए आवश्यक नहीं है कि उसे केवल एक ही पद्धति की आवश्यकता हो, इसके साथ कई या अन्य सभी पद्धतियों का उपयोग आवश्यक हो सकता है। अतः एक स्थिति में सभी पद्धतियाँ अन्तःसम्बन्ध रखती हैं।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य :

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता यद्यपि एक व्यक्ति (सेवार्थी) के साथ कार्य करता है परन्तु उसका कार्य उसी तक सीमित नहीं रहता है। सेवार्थी पर बाह्य कारक प्रत्येक क्षण अपना प्रभाव डालते रहते हैं, इसलिए बाह्य कारकों के सम्बन्ध में भी कार्य करता है।

परिभाषा :

यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य की भिन्न परिभाषाएँ दी हैं परन्तु सभी परिभाषाएँ व्यक्तित्व विकास एवं सेवार्थी का सक्रिय सहयोग पर बल प्रदान करती हैं।

रिचमण्ड, मेरी (1915) :[3]

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य "विभिन्न व्यक्तियों के लिए उसके साथ

---

2. Stroup, H. H. : Social Work-An Introduction of the Field. American Book Co. New york, 1960, pp. 1-2.
3. Richmond, Mary : The Long View, The Russell Sage Foundation, New York, 1930, pp. 374-375.

मिलकर उनके सहयोग से विभिन्न प्रकार के कार्य करने की एक कला है, जिससे एक ही साथ स्वयं अपनी एवं समाज की उन्नति की जाती है।"

उपरलिखित परिभाषा के निम्न तत्व है :—

(1) सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक कला है।

(2) इसके माध्यम से व्यक्ति की समस्याएँ सुलझाई जाती हैं।

(3) समस्याओं की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

(4) सेवार्थी का सहयोग चिकित्सा-प्रक्रिया में आवश्यक होता है।

मेरी रिचमण्ड ने अपनी परिभाषा में यद्यपि समस्याओं का उल्लेख किया है परन्तु इस बात को स्पष्ट नहीं किया है कि किस प्रकार की समस्याओं का समाधान सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य द्वारा किया जाता है। इन कमियों को दूर करने के लिए सन् 1922 ई० को दूसरी परिभाषा प्रस्तुत की। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य में वे प्रक्रियाएँ आती है जो एक-एक करके व्यक्तियों एवं उनके सामाजिक पर्यावरण के बीच सचेतन रूप से समायोजन स्थापित करती हैं।

समायोजन सम्बन्धी समस्या पर बल देते हुए टैफ्ट ने वैयक्तिक सेवा कार्य की परिभाषा प्रस्तुत की।

टैफ्ट (1920)[4]

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य "समायोजन सहित व्यक्ति की सामाजिक चिकित्सा है जिसमें इस बात का प्रयास किया जाता है कि उसके व्यक्तित्व, व्यवहार एवं सामाजिक सम्बन्धों को समझा जाये और उसकी सहायता की जाये, जिससे कि वह एक उच्चतर सामाजिक एवं वैयक्तिक समायोजन प्राप्त कर सके।

टैफ्ट ने अपनी परिभाषा में निम्न तत्त्वों का उल्लेख किया है :—

(1) सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक सामाजिक चिकित्सा है। इसका अर्थ यह है कि इस प्रविधि द्वारा सामाजिक सन्तुलन को स्थिर रखा जाता है और यदि आवश्यकता हुई तो असन्तुलन उत्पन्न करने वाले कारकों को दूर करके व्यक्ति को सुखी बनाया जाता है।

(2) समायोजन रहित व्यक्ति की चिकित्सा की जाती है। अनेक ऐसी शक्तियाँ होती है जो व्यक्ति को झकझोर देती है और इस भँवर में पड़कर वह समायोजन रहित हो जाता है। ऐसी दशा में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य उसका सामाजिक सन्तुलन स्थापित करने में सहायता करता है।

---

4. Taft, The Family, Vol. I No. S, p. 1.

पर्लमैन (1957)[6] :

सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य एक प्रक्रिया है जिसका प्रयोग कुछ मानव-कल्याण संस्थाएँ करती हैं ताकि व्यक्तियों की सहायता की जाये कि वे सामाजिक कार्यात्मकता की समस्याओं का सामना उच्चतर प्रकार से कर सकें।

पर्लमैन ने सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य के 4 अंगों का उल्लेख अपनी परिभाषा में किया है :—(1) व्यक्ति, (2) समस्या, (3) स्थान तथा (4) प्रक्रिया।

व्यक्ति (Person)—सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य का मुख्य उद्देश्य समस्याग्रस्त व्यक्ति की सहायता करना है, जिससे वह आन्तरिक एवं बाह्य समायोजन स्थापित कर सके। व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक दो प्रकार की आवश्यकतायें होती हैं। वह इन आवश्यकताओं की पूर्ति अपनी क्षमता एवं साधन उपलब्धि के आधार पर करता है। परन्तु कभी-कभी वह पूर्ति करने में असफल रहता है अतः वैयक्तिक सहायता द्वारा उसको इस योग्य बनाया जाता है कि वह अपना कार्य-संचालन सुचारू रूप से कर सके। व्यक्ति की असफलता के कई कारण हो सकते हैं, जैसे—वह स्वयं सक्षम न हो, आवश्यकता पूर्ति के साधनों का ज्ञान न हो, आवश्यकता स्पष्ट न हो, सहायता प्रदान करने वाली संस्थाओं से अनभिज्ञ हो, संस्था में सहायता के पूर्ण साधन उपलब्ध न हों या उसकी आवश्यकतायें वास्तविक न हों। ऐसी स्थिति में व्यक्ति बाह्य सहायता के लिए संस्था में आता है, जहाँ पर उसके व्यक्तित्व एवं समस्या का अध्ययन कर सहायता की जाती है।

समस्या (Problem)—समस्या के कई रूप होते हैं परन्तु जो समस्यायें व्यक्ति के व्यक्तित्व से सम्बन्धित होती हैं और जिनमें व्यक्ति की सामाजिक क्रियाशीलता कम हो जाती है, वैयक्तिक सेवा कार्य के क्षेत्र में आती हैं। इस समस्या के कारण व्यक्ति अपने कार्यों को न तो सुचारू रूप से कर पाता है और न वास्तविकता को स्पष्ट रूप से देख पाता है। कभी-कभी समस्या की उत्पत्ति बाह्य कारकों से होती है। अतः वैयक्तिक कार्यकर्ता आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के कारकों पर अपना ध्यान आकर्षित करता है।

स्थान (Place)—सहायता प्रदान करने का स्थान एक संस्था होती है। कुछ

---

6. Perlman, H. H. : Social Case Work-A Problem Solving Process, The University of Chicago Press, Chicago, 1957, p. 4.

संस्थायें विशिष्ट प्रकार की सेवायें प्रदान करती हैं तथा कुछ संस्थायें सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति करती हैं। बाल निदेशन केन्द्र, मंत्रणा केन्द्र, परिवार कल्याण केन्द्र, व्यावसायिक मंत्रणा केन्द्र आदि विशिष्ट संस्थायें हैं। इनमें प्रशिक्षित कार्यकर्ता द्वारा समस्याग्रस्त व्यक्ति की सहायता की जाती है। द्वितीयक प्रकार की वे संस्थायें हैं जो समाज कार्य विधियों का उपयोग उद्देश्य प्राप्ति के लिए करती हैं और ये विधियाँ गौण स्थान रखती है। चिकित्सालय, विद्यालय, श्रम कल्याण सुधार गृह आदि इसके उदाहरण है। भारतवर्ष में अधिकांश सामान्य प्रकार की संस्थायें हैं।

प्रक्रिया (Process)—वैयक्तिक सेवा-कार्य की प्रक्रिया में कार्यकर्ता का सम्बन्ध मुख्यतः तीन कार्यों से रहता है :—

(1) सेवार्थी की समस्या के सम्बन्ध में आन्तरिक एवं बाह्य वातावरण से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन एवं अध्ययन।

(2) समस्या का वैयक्तिक विधियों द्वारा निदान।

(3) इस प्रकार प्रक्रिया के तीन अभिन्न अंग हैं :—(1) अध्ययन, (2) निदान एवं मूल्यांकन तथा (3) चिकित्सा। कार्यकर्ता समस्या का अध्ययन निरीक्षण, अन्वेषण तथा वैयक्तिक इतिहास के आधार पर करता है। निदान का कार्य भी अध्ययन के साथ ही चलता रहता है। कार्यकर्ता सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा समस्या के मूल्यांकन द्वारा यह देखता है कि उसकी समस्या क्या है। (4) उसकी समस्या का रूप क्या है, वास्तविकता तथा समस्या से क्या सम्बन्ध है। इसके पश्चात् वह निश्चित करता है कि सेवार्थी को किस प्रकार की सहायता की आवश्यकता है।

वैयक्तिक समाज-कार्य की मूल मान्यताएँ :

वैयक्तिक समाज-कार्य की निम्नलिखित मुख्य मान्यतायें हैं :—

(1) व्यक्ति और समाज में पारस्परिक निर्भरता है। इस कारण सेवार्थी की समस्या निराकरण के लिए सामाजिक दशाओं एवं स्थितियों का अवलोकन एवं मूल्यांकन करना आवश्यक होता है।

(2) सामाजिक शक्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार तथा दृष्टिकोण दोनों को प्रभावित करती हैं, जिससे उसके व्यक्तित्व एवं व्यवहार दोनों में अन्तर आ जाता है।

(3) व्यक्ति, व्यक्ति में अन्तर होता है और इस अन्तर की स्वीकृति होना आवश्यक होता है। वैयक्तिकरण की आवश्यकता अन्तर के कारण ही होती है।

(4) सेवार्थी की वैयक्तिक एवं अन्तर्वैयक्तिक समस्याओं को 'सम्बन्ध' द्वारा

ही सुलझाया जा सकता है। अतः सेवार्थी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक ऐसे पर्यावरण का निर्माण करना आवश्यक होता है, जिसमें सेवार्थी अपनत्व की भावना का विकास कर सके।

(5) कार्यकर्ता सेवार्थी से विषयात्मक तथा आत्मचेतनात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। विषयात्मक सम्बन्ध का तात्पर्य वास्तविक एवं व्यावसायिक सम्बन्ध से होता है। वह सेवार्थी को उसकी क्षमताओं, समस्या के सुलझने के उपायों एवं बाधाओं से अवगत कराकर अहं को शक्तिशाली बनाता है।

(6) व्यक्ति सम्पूर्ण इकाई है। अतः आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की शक्तियों का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। दोनों की सहायता से ही कार्यकर्ता सेवार्थी की समस्या सुलझाने में समर्थ हो सकता है।

वैयक्तिक सेवा-कार्य प्रक्रिया का विश्लेषण :

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता समस्या के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्र कर अपने ज्ञान एवं क्षमता द्वारा समस्या का निदान करता है। तत्पश्चात् उपचार कार्य प्रारंभ करता है। वह निम्न प्रविधियों को अपने उपयोग में लाता है :

(1) **अन्वेषण**—अन्वेषण द्वारा वह तत्त्वों का संकलन तथा उपचार कार्य दोनों करता है। वह वार्तालाप के माध्यम से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है और समस्या की तह में पहुँचता है।

(2) **आलम्बन**––आलम्बन के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी के अहं को दृढ़ बनाता है और आशा की किरण प्रज्ज्वलित करता है।

(3) **निर्देशन**––कार्यकर्ता सेवार्थी को उन विषयों पर निर्देश देता है जहाँ पर सेवार्थी स्वयं कोई निर्णय नहीं कर पाता है।

(4) **पुष्टीकरण**—वह यथार्थ विचारों की पुष्टीकरण करता है जिससे सेवार्थी में विश्वास उत्पन्न होता है।

(5) **व्याख्या**––व्याख्या द्वारा कार्यकर्ता सेवार्थी के भ्रमों को दूर करता है और उसका वास्तविकता से परिचय कराता है।

(6) **परिस्थितियों में सुधार एवं परिवर्तन**—कभी-कभी सेवार्थी बाह्य परिस्थितियों की जटिलता के कारण समायोजन नहीं कर पाता है। कार्यकर्ता इस विधि द्वारा उसके वातावरण में परिवर्तन लाता है तथा तनावपूर्ण स्थिति को कम करता है।

सामाजिक वैयक्तिक कार्यकर्ता दो प्रकार से उपचार साधनों का उपयोग करता है। पहले प्रकार के उपचार के अन्तर्गत वे क्रियायें आती हैं जिनके द्वारा कार्यकर्ता स्वयं प्रयास करके सेवार्थी के पर्यावरण से सुधार करता है। दूसरे

प्रकार के उपचार के अन्तर्गत वे मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ आती हैं जिन्हें साक्षात्कार के माध्यम से कार्यकर्ता सेवार्थी को अपने प्रयासों के द्वारा समस्या को हल करने में सहायता प्रदान करता है।

सामाजिक वैयक्तिक सेवा-कार्य की आवश्यकता :

सामाजिक अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप दो प्रकार की शक्तियाँ—संगठनात्मक तथा विघटनात्मक प्रकट होती हैं। इनका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। जब तक संगठनात्मक शक्तियों का प्रभुत्व उस पर रहता है तब तक सामान्य रूप से कार्य करता रहता है। परन्तु ऐसी भी स्थिति आती है जब संगठनात्मक शक्तियाँ कमजोर हो जाती हैं और वे व्यक्ति को सामान्य जीवन-यापन में रुकावट उत्पन्न कर देती हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति को बाह्य सहायता की आवश्यकता होती है। सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य व्यक्ति की सहायता वैयक्तिक एवं अन्तर्वैयक्तिक समस्याओं को सुलझाने में करता है।

व्यक्ति जन्म से निर्बल प्राणी है, उसमें आशा एवं विश्वास का संचार वैयक्तिक सहायता द्वारा ही किया जा सकता है। वह तभी अपनी छिपी हुई क्षमताओं एवं शक्तियों को रचनात्मक कार्य में लगा सकता है जब उनका सामान्य रूप से विकास सम्भव हो। यह तभी सम्भव हो सकता है जब व्यक्ति को आवश्यकतानुसार सहायता मिलती रहे। इस प्रकार व्यक्ति को जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक वैयक्तिक सहायता की आवश्यकता होतो है, क्योंकि प्रत्येक स्तर पर उसे समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक रूप से जब हम वैयक्तिक सेवा कार्य की आवश्यकता की ओर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इदं, अहं तथा पराहं में सन्तुलन बनाये रखने के लिए कभी-कभी मनोवैज्ञानिक आलम्बन की आवश्यकता होती है। जब इन शक्तियों में सामंजस्य नहीं रहता है और अहं कमजोर हो जाता है ऐसी स्थिति में व्यक्ति सामान्य कार्य नहीं कर पाता है। उसे मनोवैज्ञानिक सहायता देनी आवश्यक हो जाती है।

(II) सामूहिक कार्य :

मानव का विकास समूह के माध्यम से होता है। सभ्यता के प्रारम्भ से ही व्यक्ति समूहों में रहता चला आया है, क्योंकि इससे उसे भोजन के अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था भी प्राप्त होती है। विद्वानों ने विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति का समूह से परे कोई अस्तित्व नहीं है। परन्तु जहाँ पर सामूहिक जीवन से अस्तित्व सम्भव हुआ है वहीं पर दरिद्रता, निराश्रिता, निर्धनता, रोग, बेरोजगारी तथा अन्य समस्याओं का विकास हुआ

है । इन समस्याओं को प्रभावहीन करने के लिए तथा पुनःघटित न होने के लिए प्रत्येक समाज ने कुछ न कुछ उपाय किये हैं । समाज कार्य भी इसी प्रकार का प्रयास है जिसका जन्म यद्यपि धार्मिक प्रेरणाओं से हुआ परन्तु बाद में एक व्यवसाय का रूप धारण कर लिया । सामूहिक कार्य जो समाज-कार्य की प्रमुख प्रणाली है, सामाजिक जीवन को लाभप्रद बनाने का प्रयत्न करती है ।

समाज-कार्य एक व्यावसायिक सेवा है जिसका आधार मानव सम्बन्धों के ज्ञान और सम्बन्धों की निपुणता पर है और जिसका सम्बन्ध आभ्यन्तर वैयक्तिक अथवा आन्तर वैयक्तिक समायोजन सम्बन्धी समस्याओं से है, जो अपूर्ण वैयक्तिक, सामूहिक और सामुदायिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है । इसका उद्देश्य व्यक्ति समूह तथा समुदायों को विकसित, उन्नत एवं समृद्ध करना है ।

समाज-कार्य के उद्देश्य की पूर्ति उसकी विभिन्न प्रणालियों द्वारा की जाती है । इन प्रणालियों में सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य, सामाजिक सामूहिक कार्य, सामुदायिक संगठन प्रमुख प्रणाली है ।

सामूहिक कार्य—सामूहिक कार्य समाज-कार्य की एक प्रणाली के रूप में सामूहिक क्रियाओं द्वारा व्यक्तियों में रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता का विकास करता है । विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विकास ने यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्ति की सामूहिक जीवन सम्बन्धी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की संतुष्टि आवश्यक होती है । जहाँ एक ओर सामूहिक भागीकरण व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है वहीं दूसरी ओर भागीकरण से समुचित लाभ प्राप्त करने के लिए सामूहिक जीवन में भाग लेने, अपनत्व की भावना का अनुभव करने, अन्य व्यक्तियों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने, मतभेदों को निपटाने तथा अपने हितों एवं समूह के हितों को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजित एवं संचालित करने की योग्यता होनी चाहिए । सामूहिक कार्य द्वारा इन विशेषताओं एवं योग्यताओं का विकास किया जाता है ।

जब हम कहते हैं कि सामूहिक कार्य समाज-कार्य की एक प्रणाली है तो इसका तात्पर्य एक क्रमानुगत, व्यवस्थित तथा नियोजित रूप में समूह के साथ कार्य करने का तरीका है । बाह्य रूप में प्रणाली का अर्थ कोई कार्य करने का तरीका है परन्तु इसके अन्तर्गत हम सदैव ज्ञान को संगठित व्यवस्था, ग्रहण शक्ति, सूझ तथा सिद्धान्तों की खोज करते हैं ।[7]

(III) सामुदायिक संगठन

साधारण बोलचाल में इसका अभिप्राय किसी समुदाय की आवश्यकताओं

---

7. Trecker, H. B. op. cit, p. 3.

तथा साधनों के बीच समन्वय स्थापित कर समस्याओं का समाधान करने से है। सामुदायिक संगठन एक प्रक्रिया है। इस रूप में सामुदायिक संगठन का तात्पर्य किसी समुदाय या समूह में लोगों द्वारा आपस में मिलकर कल्याण कार्यों की योजना बनाना, उसके लिए उपाय तथा साधनों को निश्चित करना है। किसी समुदाय से सम्बन्धित प्रक्रियाएँ अनेक प्रकार की हो सकती हैं। अतः सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया का अभिप्राय केवल उस प्रक्रिया से है जिसमें समुदाय की शक्ति है और योग्यता का विकास एक इकाई के रूप में किया जाता है।

स्ट्रप[8] ने सामुदायिक संगठन का अर्थ बतलाते हुए इस प्रकार कहा है--प्रमुख रूप से इस शब्द के कम से कम तीन अर्थ है—प्रथम--इसका प्रयोग समाज-कार्य की उन प्रत्यक्ष एवं समाविष्ट प्रक्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है जिसकी आवश्यकता समाज-कल्याण के मौलिक उद्देश्यों के पूर्णतम प्रकटन के लिए होती है। द्वितीय—सामुदायिक संगठन का प्रयोग सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के लिए व्यावसायिक व्यक्तियों एवं सभ्य नागरिकों द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली क्रियाओं का बोध कराने के लिए किया जाता है। तृतीय—सामुदायिक संगठन का प्रयोग समाजशास्त्रियों द्वारा तथा समाज-वैज्ञानिकों द्वारा समुदाय की संरचना का बोध कराने के लिए किया जाता है।

रॉस[9] के अनुसार सामुदायिक संगठन-प्रक्रिया के दो पहलू हैं जिनमें एक का सम्बन्ध नियोजन तथा दूसरे का एकीकरण से है। ये दोनों अभिन्न तथा अन्योन्याश्रित हैं। नियोजन समस्या को पहचानने से लेकर इसके समाधान से सम्बन्धित क्रिया तक के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित है, जबकि एकीकरण, जिसे सामुदायिक मनोबल 'अथवा' 'सामुदायिक क्षमता' अथवा 'आध्यात्मिक समुदाय' भी कहा जाता है, एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सहयोगात्मक एवं संगठनात्मक मनोवृत्तियों, अवधारणाओं एवं क्रियाओं का प्रयोग समुदाय के साथ तादात्म्य, उनके कार्यों में अभिरुचि एवं सम्मिलन और इन मूल्यों के प्रकटन के लिए सामान्य मूल्यों एवं साधनों को अपनाये जाने को बढ़ाता है।

इस प्रकार सामुदायिक संगठन में चार विभिन्न प्रकार के विचार परिवर्तित होते हैं। 1. सहयोग संगठन और एकीकरण के विचार, 2. आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आवश्यकताओं एवं साधनों में सामंजस्य लाने का विचार, 3. वैयक्तिक

---

8. Stroup, H-H. Community Welfare Organization, Harper and Brothers, New york, 1952, pp. 140-142.
9. Ross, M. G. : Community Organization. Theory and Principles, Harper and Brothers, Newyork, 1955, pp. 50-51.

कार्य एवं सामूहिक कार्य की प्रत्यक्ष सेवा के प्रतिकूल सामुदायिक संगठन के 'कार्यक्रम' सम्बन्धों से सम्बन्धित होने का विचार, 4. प्रजातांत्रिक प्रक्रिया और विशेषीकरण के मध्य एक कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के रूप में सामुदायिक संगठन की स्थूल दार्शनिक अवधारणा के रूप में पाया है।

फ्रिडलैण्डर[10] के अनुसार समाज-कल्याण के सन्दर्भ में सामुदायिक संगठन की परिभाषा एक भौगोलिक क्षेत्र में समाज-कल्याण आवश्यकताओं तथा सामुदायिक कल्याण साधनों के बीच क्रमिक और अधिक सार्थक समायोजन उत्पन्न करने वाली समाज-कार्य की एक प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है।

उपरिलिखित परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामुदायिक संगठन में सेवार्थी समुदाय होता है। इसका प्रमुख उद्देश्य समुदाय की ऐसे सहायता करना है जिससे वह अपनी सहायता स्वयं करने में समर्थ हो सके। इसकी प्रक्रिया उद्देश्य-मूलक होती है। सामूहिक समाज-कार्य में व्यक्तियों के समूह को महत्त्व दिया जाता है। सामुदायिक संगठन में समाज के सम्पूर्ण ढाँचे को विशेष महत्त्व दिया जाता है। सामुदायिक संगठन की कार्यविधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से अधिक समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर अधिक निर्भर करती है।

सामुदायिक संगठन के उद्देश्य एवं लक्ष्य :—वायलेट एम० सीडर ने सामुदायिक संगठन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के विकास की पाँच स्थितियाँ बतलायी हैं :—

(1) पहली स्थिति में सेवाओं के सेवार्थियों द्वारा दुरुपयोग को रोकने के प्रयास किये गये।

(2) दूसरी स्थिति में सेवार्थियों को सेवा प्रदान करते हुए धन एवं प्रयासों के अपव्यय और पुनरावृत्ति को रोकने का प्रयास किया गया।

(3) तीसरी स्थिति में संस्थाओं के साधनों को व्यक्तियों की आवश्यकताओं के साथ सामंजस्य की स्थिति में ले जाने का प्रयास किया गया।

(4) चौथी स्थिति में सामुदायिक संगठन को समुदाय के अन्तर्गत कारणात्मक कारकों का पता लगाते हुए सामाजिक समस्याओं को रोकने पर जोर दिया गया।

(5) पाँचवीं स्थिति में सामुदायिक संगठन को समुदायों की एक प्रत्यक्ष सेवा के रूप में देखा गया।

राबर्ट पी० लेन[11] ने सामुदायिक संगठन का एक सामान्य उद्देश्य और

---

10. Fried lander, W. A. Op. Cit. p. 187.

11. Lane, Robert, P. : The Field of Community Organization quoted in Harper, E. Dunham (ed.) Community organization in Action Association Press, Newyork, 1959, p. 56.

कुछ द्वितीयक लक्ष्य बतलाये हैं। सामान्य उद्देश्य के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है—"सामुदायिक संगठन का एक सामान्य उद्देश्य समाज-कल्याण साधनों और समाज-कल्याण आवश्यकताओं में प्रगति की ओर उन्मुख अधिक प्रभावपूर्ण सामंजस्य लाने और इसे बनाये रखने से है। इसमें यह अन्तर्निहित है कि सामुदायिक संगठन का सम्बन्ध—(1) आवश्यकताओं के अन्वेषण और परिभाषा, (2) साधनों और आवश्यकताओं के संधियोजन और परिवर्तित होती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों के निरन्तर पुनःसामंजस्य से हैं।

द्वितीयक लक्ष्यों का वर्णन करते हुए लेन ने कहा है—ये लक्षण सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के साधन के रूप में हैं और 6 प्रकार के हैं :—(1) स्वस्थ नियोजन और क्रिया के लिए एक उपयुक्त वास्तविक आधार प्राप्त करना तथा बनाये रखना, (2) साधनों एवं आवश्यकताओं में अधिक अच्छा सामंजस्य प्राप्त करने के लिए कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों तथा सेवाओं को आरम्भ, विकसित और परिवर्तित करना, (3) समाज-कार्य के मानदण्डों को विकसित करना और व्यक्तिगत संस्थाओं की प्रभावशीलता को बढ़ाना, (4) पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार लाना, सुविधाएँ प्रदान करना तथा समाज-कल्याण कार्यक्रमों और सेवाओं से सम्बन्धित संगठनों, समूहों एवं व्यक्तियों में समन्वय की अभिवृद्धि करना, (5) कल्याण समस्याओं एवं आवश्यकताओं तथा समाज-कार्य के उद्देश्यों, कार्यक्रमों और ढंगों के विषय में जनता में अधिक अच्छे ज्ञान को विकसित करना और (6) समाज-कल्याण क्रियाओं के लिए जनता में सहयोग और सम्मिलन को विकसित करना।

सैण्डर्सन तथा पॉल्सन[12] के अनुसार इसके विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

1. सामुदायिक परिचय की चेतना प्राप्त करना।
2. सम्पूर्ण आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना।
3. समाजीकरण के साधन के रूप में सामाजिक सम्मिलन की प्राप्ति।
4. सामुदायिक आत्मा तथा भक्ति भावना द्वारा सामाजिक नियन्त्रण की प्राप्ति।
5. संघर्ष को रोकने तथा कुशलता एवं सहयोग की वृद्धि के लिए समूह और क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना।

---

12. Sanderson, D. and Palson, R. A. : Rural Community Organization, John Wiley and sons Newyork, 1947. p. 22.

6. समुदाय की अवाञ्छनीय प्रभावों अथवा परिस्थितियों से रक्षा करना।

7. सामान्य आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए अन्य संस्थाओं तथा समुदायों में सहयोग करना।

8. एकमतता प्राप्त करने के साधनों का विकास करना।

9. नेतृत्व को विकसित करना।

सामुदायिक संगठन की मौलिक मान्यताएँ—सामुदायिक संगठन की तीन मान्यताएँ हैं :—

1. मूल्य सम्बन्धी मान्यताएँ।

2. समस्या सम्बन्धी मान्यताएँ तथा

3. ढंग सम्बन्धी मान्यताएँ।

मूल्य सम्बन्धी मान्यताएँ :

1. व्यक्ति की आवश्यक गरिमा एवं उसके नैतिक गुण तथा व्यक्तित्व के प्रकटन के लिए स्वतंत्रता का महत्त्व होता है।

2. प्रत्येक सामाजिक प्राणी में अभिवृद्धि की महान् क्षमता होती है। अपने जीवन की व्यवस्था के लिए शक्तियों एवं साधनों का पाया जाना।

3. जीवन एवं पर्यावरण में सुधार लाने के लिए व्यक्ति द्वारा संघर्ष और प्रयास करने की आवश्यकता।

4. उन आवश्यक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, मकान) के प्रति व्यक्ति का अधिकार, जिनके बिना जीवन पूर्ण होने में बाधायें आती हैं।

5. आवश्यकता एवं संकट के समय व्यक्ति को सहायता प्राप्त करने का अधिकार।

6. एक ऐसे सामाजिक संगठन का महत्त्व जिसका व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है और जो स्वयं व्यक्ति की भावनाओं के प्रति उत्तरदायी होता है।

7. ऐसे पर्यावरण की आवश्यकता जो वैयक्तिक अभिवृद्धि एवं विकास को प्रोत्साहित करती है।

8. व्यक्ति का अपने समुदाय के कार्यों में भाग लेने का अधिकार तथा साथ ही साथ कर्त्तव्य भी होता है।

9. आत्म सहायता के किसी कार्यक्रम का आवश्यक आधार होता है। सामाजिक तथा वैधानिक समस्याओं के समाधान के रूप में विचार-विमर्श, गोष्ठी और सलाह लेने की प्रायोगिकता।

सामुदायिक समस्या से सम्बन्धित मान्यताएँ :

1. बृहद् उपसमूहों के पृथक् इकाइयों के रूप में दृढ़ता विकसित करने की

प्रवृत्ति समुदाय में सामाजिक तनाव उत्पन्न करती है जो उसके लिए अचेतन रूप से हानिकारक है।

2. सामाजिक परिवर्तन की दिशा में सक्रिय सम्मिलन को रोकने वाली बाधायें वैयक्तिक विकास को रोकती हैं।

3. प्रजातन्त्र उस अवस्था में और भी दुर्बल हो जाता है जब सहायता प्रदान करने वाली संस्थाओं को सहायता न प्रदान की जाय तथा नवीन संस्थाओं का विकास न किया जाय।

4. व्यक्तियों की समुदाय के प्रति अपनत्व की भावना को नगरीकरण की समस्या नें एकदम नष्ट कर दिया।

5. प्रौद्योगिक ही परिवर्तन की प्रमुख शक्ति हैं। प्रौद्योगीकरण से सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभावों पर बिना ध्यान दिये नगरीकरण तथा औद्योगीकरण पर जोर दे रही है।

6. औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के द्वारा सामान्य अथवा सम्मिलित मूल्यों को विकसित करने तथा बनाये रखने की समस्या को और कठिन बना दिया।

ढंग से सम्बन्धित मान्यताएँ :

1. व्यक्ति परिवर्तन चाहते हैं और परिवर्तन कर सकते हैं।

2. समुदाय अपनी समस्याओं के समाधान की क्षमता का विकास कर सकते हैं।

3. व्यक्ति को अपने समुदाय में परिवर्तन लाने उनके साथ सामंजस्य प्राप्त करने में भाग लेना चाहिए।

4. उन समस्याओं के साथ पूर्णतावादी ढंग सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है। जिनका आशावादी ढंग कदापि सामना नहीं कर सकता है।

5. प्रायः व्यक्ति के समुदाय अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए संगठित होने में ठीक उसी प्रकार सहायता का अनुभव करते हैं जिस प्रकार अनेक व्यक्ति अपनी समस्याओं का सामना करने के लिए सहायता चाहते हैं।

6. सामुदायिक जीवन में अपने आप लाये गये अथवा आत्म विकसित परिवर्तन एक अर्थ-स्थायित्व रखते हैं, जो जबरदस्ती लादे गये परिवर्तमों में नहीं होता है।

सामुदायिक संगठन के सिद्धान्त—आर्थर डनहम के मत में सामुदायिक संगठन के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं :—

1. समाज-कल्याण कार्यक्रमों की आवश्यकताओं पर आधारित तथा उनके प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

2. जहाँ तक सम्भव हो सके कार्यक्रमों द्वारा प्रभावित होने वाली सभी समूहों, इसके निर्धारण तथा निर्देशन में भाग लें।

3. ऐच्छिक सहयोग प्रभावपूर्ण सामुदायिक संगठन की कुंजी है।

4. कल्याण कार्यक्रमों को निरोध पर बल देना चाहिए।

एम० जी० रॉस ने सामुदायिक संगठन के निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाये हैं—

1. समुदाय की वर्तमान परिस्थितियों के प्रति असंतोष, संगठन के विकास के आरम्भ अथवा पोषण का आधार होना चाहिए।

2. असंतोष केन्द्रीभूत तथा विशिष्ट से सम्बन्धित संगठन, नियोजन एवं क्रिया में प्रवाहित होना चाहिए।

3. सामुदायिक संगठन को जन्म देने अथवा बनाये रखने असंतोष समुदाय में विस्तृत रूप से प्रविभाजित होना चाहिए।

4. संगठन के अन्तर्गत समुदाय के बड़े उपसमूहों द्वारा स्वीकृत और उनके साथ तादात्म्य की स्थिति में पाये जाने वाले नेताओं (औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों) को सम्मानित किया जाना चाहिए।

5. संगठन के लक्ष्य तथा कार्य रीतियों के ढंग उच्च स्वीकृति वाले होने चाहिए।

6. संगठन के कार्यक्रमों में संवेगात्मक सन्दर्भ वाली कुछ क्रियाओं को सम्मिलित करना चाहिए।

7. संगठन को समुदाय में पायी जाने वाली प्रकट तथा गुप्त सद्भावना के उपयोग का प्रयास करना चाहिए।

8. संगठन के अन्दर तथा संगठन एवं समुदाय के मध्य संचार-प्रक्रिया तथा प्रभावपूर्ण रेखाओं का विकास किया जाना चाहिए।

9. संगठन को उन समूहों को सहायता प्रदान करने एवं शक्तिशाली बनाने का प्रयास करना चाहिए जिन्हें यह कार्य के साथ लाता है।

10. संगठन की नियमित रूप से निर्णय लेने की दिनचर्या को बिना विच्छिन्न किये इसकी संगठनात्मक कार्य-रीतियों में लचीलापन होना चाहिए।

11. संगठन को अपनी कार्य की गति का विकास समुदाय की वर्तमान परिस्थितियों से सापेक्ष करना चाहिए।

12. संगठन को प्रभावपूर्ण नेतृत्व के विकास के लिए प्रयास करना चाहिए।

13. संगठन को समुदाय के अन्तर्गत शक्ति, स्थिरता एवं सम्मान का विकास करना चाहिए।

एम० जी० रॉस ने सामुदायिक संगठनकर्ता की भूमिका चार प्रकार की बतलायी है :—

(1) पथ-प्रदर्शक के रूप में, (2) सहायक के रूप में, (3) विशेषज्ञ के रूप में, (4) एक उपचारकर्ता के रूप में।

(1) **पथ-प्रदर्शक के रूप में**—कर्ता समुदाय को अपने उद्देश्यों और उनकी प्राप्ति के साधनों के निर्धारण में सहायता प्रदान करता है तथा समुदाय की बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से अपने कार्य की दिशा का चुनाव करने तथा चुनी गयी दिशा में चलते रहने में पथ-प्रदर्शन करता है।

(2) **सहायक के रूप में**—इस रूप में कर्ता सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया को सरल बनाता है। विशिष्ट रूप से इसका सम्बन्ध असन्तोष को केन्द्रित करने, संगठन को प्रोत्साहित करने, अच्छे अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करने और सामान्य लक्ष्यों पर बल देने से है। एक सहायक के रूप में कर्ता की भूमिका समुदाय को सहयोगात्मक कार्य में अपनी अन्तःशक्तियों एवं शक्तियों का अनुभव करने के लिए स्वतन्त्रता दिलाने की ओर निर्देशित होती है।

(3) **विशेषज्ञ के रूप में**—कर्ता अपने अधिकार के अनेक क्षेत्रों में तथ्यों का प्राविधान करता तथा प्रत्यक्ष सलाह देता है। कर्ता सामुदायिक विश्लेषण तथा निदान में अपनी सेवायें प्रदान करता है, अनुसंधान से सम्बन्धित निपुणताओं का प्रयोग करता है, ढंगों से सम्बन्ध में सलाह देता है, प्राविधिक सूचना प्रदान करता है और मूल्यांकन में सहायता प्रदान करता है।

(4) **सामाजिक उपचारक के रूप में**—कर्ता सम्पूर्ण समुदाय का निदान तथा उपचार करता है। सामाजिक उपचार अत्यधिक अन्तर्निहित तथा अचेतन शक्तियों के साथ कार्य करता है जो सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया के छिन्न-भिन्न करने की धमकी देता है।

अन्त में सामुदायिक संगठन में कर्ता का कार्य इस प्रक्रिया को सरल बनाता है और ऐसा वह समुदाय को अपनी कुछ समस्याओं पर आक्रमण करते हुए एकीकरण की सीमा की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने हेतु सहायता प्रदान करते हुए करता है।

सामुदायिक संगठनकर्ता अपनी भूमिकाओं को निभाने के लिए 6 उपकरणों का प्रयोग करता है :—(1) व्यक्तियों के साथ कार्य करने का प्राथमिक अनुभव, (2) समाज-कल्याण के क्षेत्र का स्वस्थ कार्यात्मक ज्ञान, (3) सामुदायिक संगठन के ज्ञान का बोध एवं प्रयोग, (4) सामुदायिक संगठन के प्रयोग में निपुणतायें, (5) व्यक्तिगत गुण तथा (6) सामुदायिक संगठन का स्वस्थ दर्शन।

सामुदायिक संगठन की प्रक्रिया में उचित भूमिका निभाने के लिए कार्य-कर्ताओं का विकास करने हेतु आर्थर डनहम के सुझावों से सहमति प्रकट करते

हुए हम यह कह सकते हैं कि—(1) सामुदायिक संगठन का अधिक प्रयोग किया जाय (2) कर्मचारियों की भर्ती की व्यवस्था में सुधार किया जाय, (3) सामुदायिक संगठन के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को कठोर बनाया जाय (4) सामुदायिक संगठन से सम्बन्धित प्राविधिक साहित्य का निर्माण किया जाय और (5) सामुदायिक संगठन के प्रयोग के स्तर को उन्नत बनाया जाय।

(iv) समाज-कल्याण प्रशासन

समाज-कार्य मुख्य रूप से सामाजिक संस्थाओं या विभागों या सम्बन्धित संगठनों जैसे चिकित्सालय, न्यायालय, विद्यालय, सुधार करने एवं दण्ड देने वाली संस्थाओं में किया जाता है। अतः कार्यकर्ता के लिए समाज-कल्याण प्रशासन का ज्ञान होना आवश्यक होता है। समाज-कल्याण प्रशासन सरकारी संस्थाओं में सामाजिक अधिनियम को कार्यान्वित करता है तथा लोगों की सेवा में कानूनों, नियमों तथा नियंत्रणों का रूपान्तर करता है। इसका तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसके द्वारा समाज-कल्याण क्षेत्र की सार्वजनिक तथा निजी संस्थाओं का प्रशासन एवं संगठन किया जाता है। इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियायें आती हैं जो किसी संस्था के कार्यक्रम का व्यावहारिक रूप देने में सहायता करती हैं। समाज-कल्याण प्रशासन का व्यावहारिक रूप सामान्य प्रशासन के समान है। परन्तु इसमें मानव समस्याओं के समाधान हेतु तथा मानव आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रयत्न किया जाता है। अतः प्रशासक के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसके लिए समाज कार्य तरीकों, सामाजिक निदान के ढंगों, समूह तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा उनके संस्था से सम्बन्ध इत्यादि का ज्ञान आवश्यक होता है।

परिभाषा : जान सी० किडनी[13] के अनुसार—"समाज-कल्याण प्रशासन सामाजिक नीति को सामाजिक संस्थाओं में बदलने तथा सामाजिक नीति को मूल्यांकित एवं संशोधित करने में अनुभव प्रयोग की एक प्रक्रिया है।"

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री[14] के अनुसार—'सामाजिक अभिकरण तथा सरकारी कल्याण कार्यक्रमों से सम्बन्धित प्रशासन को समाज-कल्याण प्रशासन कहते हैं। यद्यपि इसकी विधियाँ-प्रविधियाँ या तौर-तरीके इत्यादि भी लोक-प्रशासन या

---

13. Kidneigh, John. C. : "Social wone Administration" Social wone year Book, 1957, A A S W. p. 75.
14. Shastri, Raja Ram : Samaj Karya, Hindi Samiti, Information Department, U. P., Lucknow, 1970, p. 146.

व्यापार प्रशासन की ही भाँति होते हैं किन्तु इसमें एक बुनियादी भेद यह होता है कि इसमें सभी स्तरों पर मान्यता और जनतांत्रिक का अधिक-से-अधिक ध्यान करके ऐसे व्यक्तियों या वर्ग से सम्बन्धित प्रशासन किया जाता है जो कि बाधित होते हैं।

आर्थर डनहम[25] के अनुसार—'समाज-कल्याण प्रशासन से हमारा आशय उन सहायक एवं सुविधाजनक क्रिया-कलापों से है जो किसी सामाजिक संस्था द्वारा प्रत्यक्ष सेवा करने के लिए अनिवार्य है।

सामाजिक प्रशासन के उद्देश्य—सामाजिक प्रशासन के प्रमुख तीन उद्देश्य हैं :—प्रथम सामाजिक प्रशासन का कार्य राजकीय प्रशासन को एक विकासशील राष्ट्र का प्रमुख साधन बनाना है। राजकीय प्रशासन के तीन क्षेत्रों में सामाजिक प्रशासन अपना योगदान देता है।

(1) **राष्ट्र की सुरक्षा तथा न्याय और व्यवस्था**—राष्ट्र के आपातकाल में सामाजिक प्रशासन नागरिक सुरक्षा की व्यवस्था करने में सहायता करता है तथा जनता का उत्साह बढ़ाता है, जिससे चिन्ताजनक घटनाओं पर भी मानसिक संतुलन बना रहता है। सामाजिक प्रशासन शान्तिकाल में राष्ट्रीय एकता के लिए कार्य करता है, जिससे सामाजिक वैमनस्य तथा संकीर्ण क्षेत्रीय भावनाओं का ह्रास तथा एकत्व और समन्वयात्मक पूर्णत्व का विकास हो सके। न्याय और व्यवस्था का दीर्घकालीन हल निकालने में भी सामाजिक प्रशासन संलग्न रहता है, जिससे वयस्क, युवा और बाल अपराधों में कमी हो तथा इन अपराधियों के लिए मानवीय व्यवस्था की जाय और इन्हें समाज में फिर से अपना लिया जाय।

(2) **आर्थिक प्रशासन**—एक विकासशील देश में राज्य का प्रमुख कार्य आर्थिक विकास करना है। इसमें राजकीय क्षेत्र की उत्तरोत्तर वृद्धि तथा निजी क्षेत्र की व्यवस्था, प्रोत्साहन तथा नियन्त्रण आता है। सामाजिक प्रशासन का आर्थिक विकास में सहयोग आवश्यक है। इसे निम्न ढंगों में पूरा करता है :—

1. आकांक्षा के स्तर से साथ कार्यक्षमता में वृद्धि करता है।

2. औद्योगिक उत्पादकता में वृद्धि करना। इसके लिए प्रशासन उद्योगपतियों और प्रबन्धकों तथा श्रमिक वर्ग को पारस्परिक सुसम्बन्धों के लिए प्रोत्साहन, शिक्षा और तकनीक प्रशिक्षण, आवास तथा स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था करता है।

---

15. Dunham, A. : Administration of Social Agency, Social wone year Book, 1949, p. 15.

3. सामाजिक प्रशासन आर्थिक विकास खनिक आयों के सदुपयोग-प्रोत्साहन द्वारा रहन-सहन के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि को स्थायित्व प्रदान करता है, जिससे आय को व्यर्थ व्यय न किया जाय और पर्याप्त भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा कल्याण-सेवाओं आदि से जनसाधारण का वास्तविक कल्याण हो।

(3) **सामाजिक कल्याण**--सामाजिक प्रशासन का मुख्य उत्तरदायित्व है और इनकी रूपरेखा इस प्रकार से है—सामाजिक प्रशासन स्वयंसेवी संस्थाओं का आयोजन लोकतंत्रात्मक समाज का मूल द्योतक है। विलियम बेवरीज के अनुसार स्वयंसेवी कार्य दो मुख्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं--एक सामाजिक अन्तरात्मक, दूसरा सामाजिक चेतना। सामाजिक अन्तरात्मा वह दुःख की भावना है जो सुख से रहने वालों में दुःख से रहने वालों के प्रति होती है। सामाजिक अन्तरात्मा के आधार पर ही समाज के धनी वर्गों में से कुछ ही को दान देने या सामाजिक संस्थायें बनाने की प्रेरणा होती है। सामाजिक चेतना के जन्मदाता मध्यम वर्ग के बुद्धिजीवी होते हैं। इसका प्रतिपादन जनसाधारण में राजनीतिक दलों तथा सामाजिक शिक्षा द्वारा होता है। पारस्परिक सहयोग पर आधारित संस्थाओं का मूल स्रोत सामाजिक चेतना है। स्वयंसेवी कार्य का मूल आधार जनसाधारण का जागरण है, राजशक्ति पर नियंत्रण की तो बात दूर रही।

सामाजिक प्रशासन का स्वयंसेवी कार्य को प्रोत्साहन देने का प्रमुख उत्तरदायित्व है, जिसको निम्न ढंगों से प्रतिपादित करता है—

1. सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक प्रजातन्त्र में जनता को भागीदार बनाने के लिए प्रेरित करना तथा उसे कर्तव्य और अधिकार की पारस्परिकता को समझाना।

2. प्रगतिशील अधिनियमों के प्रति जनभावना का संवर्धन करना तथा नये विधेयकों की रूप-रेखा बनाना और जनता में प्रतिपादित करना।

3. जनता के लिए नयी सेवाओं का आयोजन करना, विशेषकर वहाँ जहाँ राज्य की ओर से विलम्ब हो।

4. स्वयंसेवी संस्थाओं की व्यवस्था करना तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन देना; जैसे श्रमिक संघ, सहकारी समिति, युवादल आदि।

राज्य तथा जनता के सहयोग के लिए सामाजिक प्रशासन विभिन्न स्तरों पर समन्वयात्मक प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन देता है। राज्य तथा जनता का विरोध पराधीन समाज में तो स्वाभाविक ही था परन्तु एक स्वाधीन राष्ट्र में लोकतन्त्रात्मक नियोजन की प्रगति दोनों में सहकार्य बिना सम्भव नहीं। एक विकासशील राष्ट्र में राज्यनीति पर दबाव गुटों का अधिक प्रभाव रहता है तथा जनता

के बहुसंख्यक होते हुए भी सत्ताहीन होने के कारण राज्यनीति को अपने हितों की ओर मोड़ने में प्रायः असमर्थ ही रहती है।

सामाजिक प्रशासन के राजकीय क्षेत्र में समस्त जनता के लिए सेवाओं का आयोजन, सामाजिक अधिनियमों को कार्यान्वित करना, सामाजिक सुरक्षा, संरक्षण तथा अपराधी कल्याण की सेवाओं की व्यवस्था तथा स्वयंसेवी संस्थाओं के पंजीकरण अनुदान नियंत्रण और प्रोत्साहन की एक राष्ट्रव्यापी व्यवस्था सम्मिलित है।

आवश्यकताओं तथा साधनों का समन्वयात्मक प्रक्रिया में वर्तमान सन्तुलन, निहित साधनों का अनुमान, अतृप्त आकांक्षाओं और पुनरावृत्त सेवाओं का सिंहावलोकन तथा दीर्घ, मध्यम और अल्पकालीन योजनाओं की रूपरेखा शामिल है।

यहाँ पर यह आशंका हो सकती है कि राज्य का नियन्त्रण स्वयंसेवी संस्थाओं पर शोभा नहीं देता है। यद्यपि वर्तमान स्वयंसेवी संस्थाओं के नेतृत्व तथा संचालन में भयंकर दोष आ गये हैं। राष्ट्र के हित के लिए राज्य का इस क्षेत्र में आना अत्यावश्यक हो गया है। विकसित देश में समन्वय की प्रक्रिया को मूर्तमान करने में स्वयंसेवी संस्थाओं की परिषद् तथा सामुदायिक कोष की व्यवस्था करती है और राजकीय कल्याण विभागों को समन्वयात्मक नियोजन के लिए आमन्त्रित करती है। विकासशील राष्ट्र में समन्वयात्मक उत्तरदायित्व भी राज्य पर ही आ पड़ता है, क्योंकि स्वयंसेवी संस्थाएँ साधन-सत्ताहीन ही नहीं, आपस के वैमनस्य, धर्म, संकीर्णता, जातीयता तथा कलहपूर्ण सम्बन्धों से परिपूर्ण है। राजकीय विभागों में हर स्तर पर समन्वय आवश्यक है।

सामाजिक प्रशासन के प्रमुख क्षेत्र—सामाजिक प्रशासन का समाज की प्रत्येक संस्था के सुचारु रूप से कार्य करने से सम्बन्ध है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा नैतिक विकास के लिए लोकतान्त्रिक नियोजन द्वारा कल्याणकारी समाज की स्थापना करना इसका मुख्य उद्देश्य है। सामाजिक प्रशासन विकास नीति के बनाने में उत्तम रूप में सहायता करता है। इसके साथ ही कई प्रमुख सेवाओं को समन्वित ढंग से नियोजित, व्यवस्थित, कार्यान्वित कर सकता है। इन सेवाओं में राजकीय तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का मिलकर कार्य करना शामिल है, यद्यपि प्रत्येक सेवा में इन दोनों का अनुपात भिन्न हो सकता है। इन सेवाओं को निम्न क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं :—

1. **सामाजिक सेवाएँ**—राष्ट्र में ये दो सेवाएँ समान रूप से सब व्यक्तियों को उपलब्ध की जानी चाहिए जो इस प्रकार है :—

(क) **शिक्षा**—इसके अन्तर्गत प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय, तकनीकी, व्यावसायिक, श्रमिक तथा सामाजिक शिक्षा का समावेश होता है। शिक्षा

का समन्वय जनशक्ति-नियोजन द्वारा होना चाहिए। शिक्षा मनुष्य में विनियोजित विचार-पद्धति द्वारा अपनायी जाने लगी है। यह प्रशंसनीय प्रगति है। परन्तु शिक्षा में सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक विकास पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है।

(ख) **स्वास्थ्य सेवाएँ एवं परिवार नियोजन**—स्वास्थ्य सेवाओं में चिकित्सा, निरोध तथा स्वास्थ्यवर्धक सेवाएँ आती हैं। परिवार नियोजन जन्म वृद्धि दर में विशेष कमी करने के लिए आवश्यक है। इस कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग नितान्त आवश्यक है। कृत्रिम साधनों के साथ संयम तथा नैतिक जीवन पर भी ध्यान देना चाहिए, जिससे पाश्चात्य देशों का अनुकरण मात्र ही न रह जाय।

(ग) **आवास**—निम्न आय वाले वर्ग के लिए अनुदान ऋण तथा मध्य वर्ग के लिए ऋण की व्यवस्था की गयी है, परन्तु साधन के अभाव के कारण आवास स्थिति में विशेष सुधार की आशा नहीं की जा सकती है। आवास सहकारी समितियों में वृद्धि सामाजिक चेतना के जागरण से ही हो सकती है। राज्य की ओर से भी कम मूल्य के आवास अधिक बनाये जा सकते हैं।

2. **सामाजिक सुरक्षा**—सामाजिक सुरक्षा को सुदृढ़ बनाने के लिए सामाजिक बीमा का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इन योजनाओं को एकीभूत करके अधिक व्यापी बनाया जा सकता है। इससे न्यून आय वर्ग से प्राप्त धनराशि से योजना-साधनों में वृद्धि की जा सकती है।

सामाजिक सहायता द्वारा वृद्धजनों, अबलाओं आदि को राज्य की ओर से आय का प्रबन्ध किया जाता है। धन के अभाव के कारण इस सेवा के प्रसारण में अभी कठिनाइयाँ हैं। स्वयंसेवी संस्थाएँ इस ओर ध्यान दें तो अधिक साधन जुटाये जा सकते हैं।

3. **सामुदायिक विकास**—सामुदायिक विकास ग्रामीण तथा नागरिक स्तर पर होता है। इन दोनों स्तरों को एकीभूत करके सामुदायिक विकास योजना की आवश्यकता है जिससे संतुलित विकास हो सके।

4. **श्रमिक सम्बन्ध**—श्रमिक संघों द्वारा श्रमिक वर्ग का नियोजन में श्रमिक नेताओं का सत्तारूढ़ होकर नियोजन में हाथ बँटाना आवश्यक है। राजकीय तथा निजी क्षेत्रों में प्रबन्धकों और श्रमिक वर्ग में सम्बन्धों को सुदृढ़ करना आवश्यक है जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।

5. **सामाजिक कल्याण**—विशेष जनसमूहों के लिए कल्याण-योजनाओं के स्थान पर परिवार कल्याण-योजना की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे कई अनेक चेष्टाओं का संतुलित रूप बन सके। इससे परिवार नियोजन जैसे महत्त्वपूर्ण

कार्य में भी तीव्र प्रगति हो सकती है। अल्पाधिकार वर्ग; जैसे—हरिजन, जन-जातियाँ तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए कल्याण-योजनायें, इन सेवाओं का प्रसारण निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए किया जाना चाहिए, जिससे इस वर्ग में भी एकीकरण हो सके। शारीरिक रूप से बाधित; जेसे—अंध, बधिर, अपाहिज आदि के लिए कल्याणकारी योजनाओं का निर्माण करती है। साथ ही इनके लिए प्रतिबन्धक सेवाओं का प्रसारण होना चाहिये। समाज में पुनःस्थापन को अधिक महत्त्व देना चाहिये। मानसिक रोगियों को जैसे निकालकर मानवीय समाज की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा एक राष्ट्रव्यापी मानव आरोग्यशास्त्र का विधिवत् प्रचार होना चाहिए। सामाजिक चेतना के रचनात्मक कार्यों से मानिसक स्वास्थ्य में वृद्धि हो सकती है।

सामाजिक सुरक्षा—वयस्क, युवा तथा बाल अपराधियों के लिए सुधार सम्बन्धी सेवाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसमें बंदीगृह, बालगृह, प्रोबेशन पुनर्वास आदि सेवायें आती हैं। व्यभिचार-व्यापार से पीड़ित लड़कियों तथा स्त्रियों के लिए नारी निकेतन आदि द्वारा व्यवस्थित की जाती है। संरक्षक सेवाओं में भिक्षु कल्याण की व्यवस्था शामिल होती है।

सामाजिक प्रशासक के घटक—राष्ट्रीय अथवा स्थानीय, सरकारी या गैर सरकारी किसी प्रकार के सामाजिक अभिकरण के प्रशासन के अनेक घटक होते हैं। प्रशासन के इन अंगों में पंजीकरण, नियमावली, संगठन, व्यक्ति कार्य विधि, आयव्ययक वार्षिक प्रतिवेदन, लेखा-जोखा, समन्वय, मूल्यांकन इत्यादि खास तौर से उल्लेखनीय हैं।

यदि अभिकरण सरकार अथवा मान्यता प्राप्त संगठनों से पंजीकृत करा लिये जाते हैं तो एक तो उनका नियन्त्रण होना ज्यादा स्वाभाविक हो जाता है। दूसरे ऐसे अभिकरण उन लाभों को भी प्राप्त कर सकते हैं जो कि सरकार ऐसे अभि-करणों को नियमानुसार देती है। जो अभिकरण पंजीकृत नहीं हैं वे इनसे वंचित रहते हैं। हर पंजीकरण के लिए कुछ नियम, शर्त और पद्धतियाँ होती हैं, जिनके अनुसार ही काम करके पंजीकरण कराया जा सकता है। यद्यपि ये नियम एवं पद्धतियाँ प्रकार भिन्नता के अनुसार थोड़ी बहुत भिन्न होती हैं किन्तु खास तौर से ये सब लगभग एक समान ही हुआ करती है। इनका अध्ययन और ज्ञान करके निश्चित प्रपत्र और शुल्क के साथ आवेदन करके अभिकरणों को पंजीकृत कराया जा सकता है। इसके लिए आमतौर से प्रपत्र प्रयुक्त होते हैं। उनमें लगभग पाँच, सात या दस तदर्थ समिति के सदस्यों के नाम, पता और कार्य का विवरण माँगने के साथ ही अभिकरण के अध्यक्ष, मन्त्री, कोषाध्यक्ष इत्यादि का नाम, पता तथा हस्ताक्षर आदि माँगा जाता है। संक्षेप में अभिकरण का परिचय

देना हो सकता है। प्रपत्र के साथ जो शुल्क जमा करना होता है, उसकी राशि नाम मात्र की हो अर्थात् 50 या 100 रुपये हुआ करती है। नियमावली में अभिकरण का नाम; उद्देश्य, कार्यक्रम, उत्तरदायित्व, आधार और सत्र, प्राधिकारी, अधिकारी तथा कर्मचारी इत्यादि के अधिकार एवं कर्त्तव्य का पूरा-पूरा विवरण होता है। इन विवरणों की एक विशेषता यह होती है कि किसी विशेष व्यक्ति, वर्ग या प्राधिकारी को ही मात्र यह समर्थन नहीं देते वरन् इनके जो अधिकार व कर्त्तव्य होते हैं, उनमें ऐसी व्यवस्था और सम्भावना होती है कि किसी का एकाधिपत्य न स्थापित हो सके और सबका सहकारी दायित्व प्रमुखता पा सके। अभिकरण जो पंजीकृत नहीं हो सकते और उपयुक्त शर्तों को पूरा नहीं करते उन अपंजीकृत अभिकरण को कई प्रशासनिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पंजीकरण, नियमावली निर्माण तथा स्पष्ट उद्देश्य निर्धारण में अभिकरण को एक तो सीमाओं का ज्ञान रहता है, दूसरे अन्य व्यक्तियों या समाज में विद्यमान अनेक अभिकरणों को स्वयं संगठन और कार्यक्रम निर्धारण संचालन में सुविधा होती है, दूसरे अन्य संगठनों को भी सहयोग और सहकार की सम्भावनाओं का ठीक-ठीक पता चलता है। पंजीकरण से नियन्त्रण को बल मिलता है। जिसके फलस्वरूप कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

प्रशासन में संगठन और इसके स्वरूप का बहुत महत्त्व होता है। जैसा संगठन का स्वरूप होगा उसी के अनुसार उसके कार्यकलाप के तौर-तरीके होंगे। सामाजिक अभिकरणों का प्रशासन चूँकि मानवता और जन-तान्त्रिकता पूर्ण होना चाहिए, इसलिए अभिकरणों का स्वयं भी ऐसा होना चाहिए जिसमें कि श्रेणी-क्रमानुसार श्रेष्ठता तो हो किन्तु साथ ही सभी स्तरों पर इस बात की संभावना रहे कि कोई भी अपनी बात नियन्त्रित तरीके से ही किन्तु पूर्णरूप से हर प्रभावकारी व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत कर सके। केवल आदेश-निर्देश ही न दिये जाये पर लोगों को उस पर अमल करने को भी मजबूर किया जाय। किसी अभिकरण में कुछ उच्च अधिकार युक्त मण्डल हो सकते हैं, इसके अलावा कुछ समितियाँ भी हो सकती हैं, इन समितियों की उपसमितियाँ भी हो सकती हैं। मंडल का एक अध्यक्ष और अनेक सदस्य होने चाहिए। इसके अलावा आवश्यकतानुसार संरक्षक, उपाध्यक्ष, मन्त्री, उपमंत्री आदि बनाये जा सकते हैं। समितियों में आमतौर से अर्थ सम्बन्धी समिति, प्रबन्ध समिति, भवन निर्माण समिति, चुनाव समिति, प्रबन्ध समिति, मूल्यांकन समिति तथा कानून सलाहकार समिति आदि हुआ करती है। इनमें अनेक समितियाँ स्थायी होती हैं परन्तु कुछ निर्माण विशेष अवसरों पर करके उसे बाद में समाप्त कर देते हैं। अधिकांशतः इसमें समाज के ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता एवं बुद्धिजीवी आते हैं जिनको कि

सामाजिक कार्यों में बने संगठनों या अभिकरणों में रुचि हुआ करती है। इस अभिकरण में कोषाध्यक्ष भी हुआ करते हैं। जिस पर संस्था की चल व अचल सम्पत्ति का सारा उत्तरदायित्व रहता है। संस्था की सम्पत्ति सम्बन्धी समृद्धि के लिए प्रयत्न में संलग्न रहना आवश्यक है। अभिकरण में प्रमण्डल के अध्यक्ष प्रायः ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको सामाजिक अभिकरण के कार्य-संचालन का ज्ञान होने के साथ-साथ उनमें प्रौढ़ता, ईमानदारी, निष्पक्षता तथा कार्य-कुशलता भी हो। वे सभी सदस्यों और समाज में अभिकरण के प्रति आस्था और प्रेम को बढ़ाते हुए कार्य कर सकते हैं। अध्यक्ष का काम प्रायः बैठकों की अध्यक्षता और उसका कार्य-संचालन करना है। बैठकों की विषय-सूची की भी स्वीकृति वही देता है। सभी सदस्यों को सलाह एवं सहयोग को प्रोत्साहन देना और उसका उपभोग करना भी उसी का काम हुआ करता है। अनेक प्रकार के सामाजिक अभिकरणों में अनेक प्रकार से सदस्यों का नामांकन किया जाता है। बहुत से सदस्य दानदाता होते हैं, उसी स्थान पर अनेक अपनी ख्याति के लिए रखे जाते हैं। अनेक सदस्य सदस्यता शुल्क देकर बनते हैं। दानदाताओं या ख्याति के लिए बने सदस्य सम्मानित होते हैं तथा जो चुनाव या शुल्क के आधार पर बनते हैं वे साधारण सदस्य होते हैं। अनेक संस्थाओं में यदि बहुत बड़ी मात्रा में धनराशि देने वाला सदस्य स्वयं तो रहता ही है, उसके बाद उसकी सदस्यता उत्तराधिकार के रूप में भी विद्यमान रहती है। आमतौर पर साधारण सदस्य साधारण सभा के सदस्य होते हैं। यह अधिकार इन्हें भी होता है कि अवधि विशेष पर संस्था के पदाधिकारियों का चुनाव करें तथा नियमावली में परिवर्तन एवं संशोधन के साथ ही साथ सामान्य रूप से संस्था के वार्षिक क्रिया-कलापों पर विचार करे। हर प्रमुख समितियों में सम्मानित सदस्य ही महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं।

समितियों तथा उपसमितियों की बैठकें नियमित रूप से पखवारे वार, महीने वार, द्वैमासिक त्रैमासिक आधारों पर हुआ करती है, जब कि साधारण सभा की बैठकें वर्ष, दो वर्ष या किसी विशेष स्थिति में होती है। साधारण सभा में संस्था के उद्देश्यों, हितों और संकल्प से सम्बन्धित उपलब्धियों के सन्दर्भ में विचार होता है। अभिकरण में उपाध्यक्ष अथवा उपमन्त्री का काम क्रमशः अध्यक्ष और मंत्री की अनुपस्थिति में उनके कर्त्तव्यों का पालन करना होता है। इस स्थिति में प्रायः यह ध्यान रखा जाता है कि अध्यक्ष या मन्त्री छोटी अवधि पर ही काम करे। ये कार्याधिकारी अध्यक्ष या मन्त्री कोई नीति विषयक सम्बन्धी कार्य नहीं करते हैं।

सामाजिक अभिकरण के प्रशासन में संगठन का अधिकारी जो कार्य करता

है उसे उस पर जबरदस्ती लादा नहीं जाता वरन् व्यक्तियों को भली प्रकार विचार आदान-प्रदान करके उनका विश्वास लेकर करता है, जो उनसे सम्बन्धित होते हैं। समितियों की बैठकों में हर व्यक्ति की इच्छा तथा भावनाओं का आदर किया जाता है। बिना किसी दलबन्दी के इस बात की चेष्टा की जाती है कि उचित परामर्श ली जाय। कार्यों में कोई अधिकारी ऐसे आदेश नहीं देता है जिसका भाव या भाषा ऐसी हो कि उससे सम्बन्धित व्यक्ति को मानसिक कष्ट पहुँचे या उसमें विघटनकारी प्रवृत्ति जाग्रत हो। व्यक्ति के किसी भी पहलू से सम्बन्धित मसले या वह सम्बन्ध या साक्षात्कार का सारी स्थितियों पर गौर करके ऐसी सम्भावना को बढ़ावा देना जो संस्था और व्यक्ति दोनों के विकास में सहायक हो। सामाजिक अभिकरण में कोई व्यक्ति किसी से मिलकर जाकर कोई बात कह सकता है और व्यवहार में ऊपर के अधिकारी नीचे के व्यक्तियों से स्तरीकरण नहीं करते वरन् उनका सारा आचार-विचार समानता सद्भावना के मानवीय गुणों से पूर्ण रहता है।

सामाजिक अभिकरण के कार्य करने वाले व्यक्तियों का अपना एक विशेष महत्त्व होता है। कार्यकर्ता ही संस्था के प्राण होते हैं। इनकी स्थिति पर ही संस्था की स्थिति निर्भर होती है। व्यक्तियों या कार्यकर्ताओं की ही सारे प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रशासनिक अंग का संस्था के अनुरूप होना अति आवश्यक होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि जो भी व्यक्ति रखे जायँ उनके सम्बन्ध में ठीक नीति रख ली जाय, भर्ती की प्रणाली का निरूपण और स्थिरीकरण कर लिया जाय और इसके अलावा उनकी सेवाओं की शर्तों और शिक्षण-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में सोच लिया जाय। सामाजिक अभिकरण की प्रबन्ध समितियाँ कार्यकर्ताओं के चुनाव के सन्दर्भ में नीतियाँ निर्धारण कर लें। कुछ कार्यकर्ता अधिकारी स्तर के हो सकते हैं। सबके सम्बन्ध में नियुक्ति सम्बन्धी नीतियाँ अलग-अलग हो सकती है परन्तु सबमें यह ध्यान रखा जाता है कि कार्य के आधार पर स्तरीकरण हो। किन्तु अन्य किसी आधार पर उनमें स्तरीकरण की सम्भावना न हो। सामाजिक अभिकरण में आने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित नीति को जनतांत्रिक मूल्यों से मुक्त होना चाहिए। उनमें जाति, धर्म, वर्ग या लिंग आदि के आधार पर कम से कम भेद की स्थिति होनी चाहिए। भर्ती की शर्त भी ऐसी हो कि उसमें कार्य और योग्यता के आधार पर भेद हो। जिन पदों पर भर्ती करना हो उनका नाम, सम्बन्धित योग्यता और प्रार्थना पत्र के प्रपत्र आदि तैयार कर लिये जाते हैं। पदों को समाचार पत्रों के माध्यम से विज्ञापित किया जाता है। सारे प्रार्थना पत्र को आमंत्रित करने की एक निश्चित तिथि होती है। इसके बाद प्राप्त प्रार्थना पत्र को व्यवस्थित करके चयन समिति

के सामने रखते हैं। चयन समिति उनकी भली प्रकार से जाँच-पड़ताल करती है तथा प्रेषकों से लिखित, मौखिक, चिकित्सकीय या अनेक परीक्षा के बाद सन्तुष्ट होकर उम्मीदवारों के चयन की संस्तुति करती है, जिस पर प्रबन्ध समिति विचार करके अगली कार्यवाही हेतु चुने व्यक्तियों को बुलाती है। इस प्रकार चुनाव की प्रक्रिया पूर्ण होती है। किसी-किसी स्थान पर नियमानुसार चयन समितियाँ एक ही पद के लिए प्राथमिकता क्रम से दो या तीन नाम की संस्तुति करती हैं जिनमें से किसी को किसी के पर ग्रहण से इन्कार करने पर नियुक्त किया जा सकता है। नियुक्तियों में यह ध्यान रखा जाता है कि नियुक्त व्यक्ति न सिर्फ बौद्धिक रूप से पद के उपयुक्त हो वरन् उसके बोलचाल का ढंग, शारीरिक गठन तथा मानसिक स्थिति भी ऐसी हो कि वह अन्य में आकर्षण पैदा करने के साथ-साथ विषम परिस्थितियों में भी स्वयं को ठीक रख सके। या अन्यान्य स्थितियाँ बाधक हुआ करती हैं और वे सामान्य अपेक्षाओं से कहीं अधिक मानवीय अपेक्षाओं से युक्त होते हैं, उनके साथ तदनुरूप व्यवहार न किया जाय तो उनकी समस्याओं में सहायता देने की बात तो दूर रही वे और भी बढ़ सकती हैं। सामाजिक अभिकरणों में नियुक्त व्यक्ति में समाज-सेवा की भावना होना आवश्यक है। उन्हें व्यक्तिगत-व्यवहार और मनोसामाजिक विज्ञान का ज्ञान हो। तथा उन्हें इनके साथ कार्य का अनुभव एवं प्रशिक्षण प्राप्त हो। संस्था में कार्यरत अधिकारियों तथा कर्मचारियों को कार्यानुरूप उस अवस्था में समय-समय पर प्रशिक्षण देते रहने की आवश्यकता होती है। अनेक बार ऐसा होता है कि जब व्यक्ति की नियुक्ति हो जाती है तो उससे लिये जाने वाले कार्य ऐसे नहीं होते हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि बहुत से विशेष प्रकार के कार्यों के लिए पहले से ही पूर्व प्रशिक्षित व्यक्ति प्राप्त नहीं होते हैं और इस अवस्था में जरूरी होता है कि कार्य-विशेष के अनुसार नियुक्ति उपरान्त व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जाय। प्रशिक्षण हेतु व्यक्तियों की समस्त क्षमताओं और साधनों की पूर्ण रूप से जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए। अच्छे उपकरण और प्रशिक्षण द्वारा कार्य के दौरान और उसी के माध्यम से किया गया प्रशिक्षण अभिकरण विशेष के कार्य-विशेष के लिए बहुत ही उपादेय होता है। कई बार इस तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाये जाते हैं जिनमें एक से कार्य करने के लिए अनेक अभिकरणों के कार्यकर्ता प्रशिक्षित होते हैं। अनेक प्रशिक्षण आर्थिक सहायता के साथ-साथ दिये जाते हैं, अनेक में कुछ दिया नहीं जाता है परन्तु कुछ शुल्क के रूप में लिया जाता है।

सामाजिक अभिकरणों को इसका ध्यान रखना चाहिए कि कर्मचारियों को बीच-बीच में प्रोत्साहन हेतु नियमित पदोन्नति के साथ-साथ विशेष पदोन्नति भी किया करे। मानवीय आधारों पर ठीक से काम न करने वालों को पदावनत

करते रहने से वैयक्तिक संगठन में मदद मिलती है। इससे आगे चलकर अभिकरण और कार्यकर्ता दोनों को लाभ पहुँचता है। प्रत्येक कर्मचारी को उपस्थित और अनुपस्थित कार्य तथा अवकाश सम्बन्धी शर्तों का ज्ञान होना चाहिए। ये शर्तें ऐसी हों जिनसे कि अभिकरण में अपने कर्तव्य-निर्वाह के साथ हर कार्यकर्ता अपने परिवार और समाज को संस्कृतिगत अपेक्षाओं को भी पूरा करते रहना चाहिए। बीच-बीच में कार्यकर्ताओं का मूल्यांकन होता रहना चाहिए और इसके अलावा उसका निरीक्षण भी होना चाहिए। हर कार्यकर्ता से सम्बन्धित एक विशेष अभिलेख रखा जाना चाहिए और बीच-बीच में उसका मूल्यांकन कर सही कार्यवाही करनी चाहिए। इन सब कार्यों में यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिकारी और कार्यकर्ता के बीच किसी आशंका, मनमुटाव या विचार-बन्धन की स्थिति न आने पाये।

सामाजिक अभिकरण के प्रशासन तभी अच्छे हो सकते हैं जब कि उनके संपूर्ण की अलग-अलग क्रिया-कलापों की नीतियाँ पूर्व निर्धारित हों। नीतियों में संस्था अथवा कार्यक्रम के ध्येय और उनके कार्यान्वियन के तौर-तरीकों का वर्णन होता है। सामाजिक अभिकरणों की नीतियाँ उनसे सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को ज्ञात होनी चाहिए तथा इस बात की कोशिश होनी चाहिए जो नीति निर्धारण की जाय वह एक तो संस्था के सदस्य से सम्बन्ध रखती हो, दूसरे जहाँ तक हो सके उनकी इच्छाओं और भावनाओं का आदर करते हुए उनकी राय से बने। नीतियाँ ऐसी हों कि संस्था के जिस परिवेश का अस्तित्व हो उससे उनका कोई सम्बन्ध न हो, यदि ऐसा होता है तो उस समुदाय में उपलब्ध साधनों का लाभ संस्था को नहीं मिल सकता है और समुदाय-विशेष के हितों और आवश्यकताओं को भी अपने कार्यक्रमों द्वारा पूरा नहीं कर सकते हैं। सर्वप्रथम एक ध्येय निश्चित कर लेना चाहिए। परीक्षा स्वस्थ कुछ लचर नीतियाँ बना ली जायँ, उसके बाद उनको व्यक्तियों के पास राय देने के लिए भेज दिया जाय जो इससे प्रभावित होने वाले हों। नीतियों का बार-बार निरीक्षण करके समयानुसार उनमें परिवर्तन भी करते रहना चाहिए। नीति के निर्धारण के समय संस्था के ध्येय और नीतियाँ, उसके भौतिक साधनों, उपलब्ध कार्यकर्ताओं और जरूरतों का ध्यान रखा जाता है। उनका विश्लेषण और संश्लेषण करना चाहिए। इसके बाद विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का अलग-अलग क्रम से नियोजन करना चाहिए। कार्यक्रम को लागू करने और मूल्यांकन करने का कार्य नियोजन का ही है। नियोजन ऊपर से न लादा गया हो वरन् इससे सम्बन्धित सभी पक्षों के निर्माण में सक्रिय हाथ हो, जिससे अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। नियोजन के समय बुनियादी तथ्यों को प्राप्त कर लेना जरूरी होता है। इसके मूल्यांकन के

लिए नये वैज्ञानिक तरीकों का ज्ञान एवं प्रयोग हो। सामाजिक अभिकरणों के कार्यक्रमों का नियोजन एक गत्यात्मक प्रक्रिया है न कि स्थैतिक। यह सदैव चलता रहता है। हर स्तर पर थोड़े-बहुत परिमार्जन की आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि एक बार जो नियोजन हो वही उसका अन्तिम रूप हो। मानवीय सन्दर्भों के अनुमानों की स्थिति प्रायः परिवर्तनशील होती है, इसलिए ऐसा करना उपयोगी है।

सामाजिक अभिकरणों के कार्यक्रमों के संचालक जो व्यक्ति होते हैं उनका गहन उत्तरदायित्व होता है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं में अनेक कार्यक्रम चलते हैं, उनके अलग-अलग संचालक होते हैं, जब कि छोटी संस्थाओं में एक ही ऐसे अधिकारी से काम चलता रहता है। यही अधिकारी उच्च समितियों एवं कार्यकर्ता के बीच की कड़ी होते हैं। एक ओर जहाँ ऊपर की समितियाँ इनसे जवाब-तलब करती हैं वहीं दूसरी ओर मातहत कार्यकर्ताओं की देख-रेख और उनकी अनुभूति तथा शक्तियों को जानने-समझने और समयानुकूल उनको नियोजित करने का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पर होता है। ये पद बहुत जिम्मेदारी के पद हैं। संस्थाओं के कार्य इन्हीं पर आधारित होते हैं। अतः आवश्यक है कि इन पदों पर ऐसे व्यक्ति हों जिनमें इन्सानियत तो हो ही साथ ही इतनी शक्ति भी हो कि समय-समय पर होने वाली परेशानियों का उचित समाधान निकाल सकें। इसके अलावा इन अधिकारियों को प्रशासन और संचालन की विधियों-प्रविधियों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए और यदि इस ज्ञान का मानवीय सन्दर्भों में प्रयोग करने का पूर्व अनुभव या प्रशिक्षण प्राप्त हो तो और भी अच्छा है। इन अधिकारियों को धैर्यवान्, साहसी और ईमानदार होना चाहिए। उन्हें समाज और राज्य के ऐसे नियम और कार्यक्रम ज्ञात होने चाहिए जिनका प्रयोग अपने कार्यक्रमों के लिए कर सके। सामाजिक अभिकरण के अधिकारियों का यह भी दायित्व है कि कार्य-कलाप निर्देशन, निरीक्षण एवं संचालन के अतिरिक्त अन्य कार्य तथा प्रतिवेदन, लेखन, मूल्यांकन, धन-संग्रह, लेखा-जोखा रखने तथा उचित परामर्श देते रहने का भी काम करे।

प्रशासन तभी लाभप्रद हो सकता है जब कि कार्यालय की कार्य-पद्धति ठीक हो। इसके लिए उसे अनेक पत्रिकाएँ, पत्र-सूचियाँ आदि रखनी पड़ती हैं। अलग-अलग तरीकों के प्रसंग के पत्रों को वर्गीकृत करके नियमित रूप से दैनिक ब्यौरेवार रखना चाहिए। पत्रों पर पत्रांक, तिथि एवं विषय का विवरण अवश्य होना चाहिए, जिससे खोजबीन की सुविधा होती है। विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए यदि पहले से प्रपत्र तैयार कर लिये जायँ तो भी आवश्यक जानकारी के लिए सुविधा रहती है। यदि प्रतिदिन का काम समाप्त कर दिया जायतो

कार्यक्षमता बनी रहती है। सम्बन्धित संस्थाओं और व्यक्तियों को भी सुविधा होती है। कोई भी पत्र-व्यवहार करते समय यह बराबर ध्यान रहे कि पत्र प्राप्त करने वाले की भावना का सबसे अधिक आदर हो सके। दफ्तरों में आम तौर पर पंजिकाएँ होती हैं, इनमें उपस्थित पंजिका, कार्य पजिका, अवकाश पंजिका, वेतन पंजिका, बैठक कार्यवाही पंजिका आदि आती हैं।

किसी भी अभिकरण में आय-व्ययक का निर्माण एक प्रमुख काम होता है। आय-व्यय में आय के समस्त स्रोत एक ओर और व्यय की समस्त मदें एक ओर दिखलायी गयी होती है। अन्त में बचत अथवा घाटे की रकम तथा अन्त में सन्तुलन स्पष्ट किया रहता है। इसी के आधार पर यह जाना जा सकता है कि संस्था की क्या स्थिति है और उनके कौन से कार्यक्रम कितने व्यापक और प्रभावकारी हो सकते हैं। आय-व्यय के द्वारा जाना जा सकता है कि संस्था को कहाँ-कहाँ से कितना धन प्राप्त हो सकता है तथा वह कार्यक्रम बनाये जिसमें कि उनके अनुरूप व्यवस्था हो। यदि आय के स्रोतों का ज्ञान होता है तो उनसे सम्पर्क करना सरल होता है तथा यह ठीक से तय किया जा सकता है कि उन स्रोतों से लाभ उठाने हेतु कौन-कौन से तरीके प्रयुक्त किये जायँ। आय-व्ययक के ज्ञान के आधार पर ही प्राधिकारी, अधिकारी, कार्यकर्ता अपने प्रयत्नों को उसके अनुसार अभियोजित करके कार्यक्रम की सफलता को बढ़ावा देते हैं। आम तौर से आय-व्यय का निर्माण करने की जिम्मेदारी कोषाध्यक्ष पर होती है। वह इस मामले में अपने मातहत कर्मचारियों, अन्य संस्था एवं समाज-कल्याण के व्यक्तियों तथा सरकारी विभागों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इसको बना लेने के बाद वह उसे वित्त समिति तथा प्रबन्ध समिति में उपस्थित करता है तथा उन समितियों के अनुमोदन के उपरान्त वह आय-व्यय स्वीकृत समझा जाता है। संस्था के विभिन्न अंगों, उपांगों, कार्यक्रमों, कर्मचारियों इत्यादि को ठीक-ठीक वित्तीय आवश्यकता को समझने के लिए वित्ताधिकारी प्रायः उन सबसे सम्पर्क करते हैं और उनसे तथ्य एकत्रित करके ही आय-व्यय की मदें इत्यादि बनाते हैं, क्योंकि इससे संस्था के कार्यों में सहभागिता की भावना बढ़ती है। इस प्रकार जनतांत्रिक मूल्यों को महत्त्व मिलता है। आय-व्यय के निर्माण के समय कुछ वर्षों का आय-व्यय और सरकारी आय-व्यय देख लेने से यह लाभ हो सकता है कि एक ओर जहाँ अपनी आवश्यकताओं और शक्तियों का पता चलता है वहीं सरकार से सम्पर्क सम्बन्धी सम्भावनाओं को भी अच्छी तरह से आँका जा सकता है। चेष्टा यह भी होनी चाहिए कि आय-व्यय सन्तुलित हो। यदि आय बहुत अधिक है और व्यय कम तो आम धारणा यह बन सकती है अभिकरण के लोग समाज-कल्याण कार्य में कम अभिरुचि रखते हैं और हो सकता है कि भविष्य में आय कम हो

जाय। यदि व्यय अधिक है और आय कम या इनमें काफी अन्तर होता है तो एक से अनेक कार्यक्रम चलाये नहीं जा सकते, दूसरे लोगों में यह भी धारणा हो सकती है कि अभिकरण के लोग अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी हैं। आय-व्यय एक वर्ष की होनी चाहिए। यदि यह वर्ष सरकार के वित्तीय वर्ष के साथ-साथ चले तो और भी सुविधा होती है। आय-व्ययक को वास्तविक आधारों पर तैयार करना चाहिए काल्पनिक नहीं। इसके अंग एवं संख्या स्पष्ट होने चाहिये। किन्हीं अंशों में इनमें कुछ नमनीयता हो तो भी अच्छा रहता है। आपत्तिकालीन स्थिति में इसमें थोड़ा परिवर्तन किया जाना अपेक्षित हो तो ऐसा किया जा सकता है। व्यय की मदें एवं राशियाँ ऐसी नहीं होनी चाहिए कि कार्यक्रम पर तो कम प्रशासन पर अधिक व्यय हो। इनका अनुपात उचित होना चाहिये। कार्यकर्ताओं का वेतन सरकारी कर्मचारियों के आधार पर ही तय होना चाहिये। आय और व्यय में बहुत से मद स्थायी रूप से चलने वाले होते हैं तथा बहुत से कार्य-विशेष के लिए होते हैं। सरकारी अनुदानों से प्रायः जो राशि मिलती है वह संस्था की स्वयं की राशि के अनुपात में आंशिक रूप से हुआ करती है। इसके पीछे सिद्धान्त यह होता है कि एक तो संस्था को कुछ अपनी आर्थिक क्षमता रखनी चाहिए, दूसरे कालान्तर में जब सरकारी अनुदान बन्द हो जाय तो वह अपने बल पर पनप सके।

सभी संस्थाओं को अपने खर्चे का हिसाब रखना पड़ता है। जितना अच्छा हिसाब रखना होगा उतने ही नये-नये तरीकों को अपनाना चाहिये। अच्छे लेखा जोखा से कार्य-संचालन में सुविधा होती है। इससे जिम्मेदारी तथा विश्वास की भावना दृढ़ होती है। यदि लेखा-जोखा वैज्ञानिक तौर पर गठित तथा सांख्यिकी के सिद्धांतों के अनुसार सरल और व्यापक तथा सूक्ष्म स्थितियों को स्पष्ट करने वाला हो तो अच्छा रहता है। लेखा-जोखा रखने के लिए नगद पुस्तिका, लाभ पुस्तिका, दान पुस्तिका, आय-व्ययक की प्रति, संक्षिप्ति, पत्राचार, सम्पत्ति, पंजिका, स्वैच्छिक सेवाओं की पंजिका, वेतन पंजिका इत्यादि बनाना और रखना पड़ता है। इस कार्य में निपुण प्रशिक्षित व्यक्ति ही भली प्रकार लेखा-जोखा कर सकता है। इसमें जरा-सी गड़बड़ी होने से संस्था में नाना प्रकार की शंकायें उठने लगती हैं।

आय-व्यय के निर्माण और तदनुरूप आय और व्यय करने तथा उसका लेखा-जोखा रखने के साथ ही यह भी आवश्यक होता है कि हर लेखे-जोखे को बीच में संपरीक्षित भी किया जाता रहे। इसमें लेखे-जोखे में जो भूलें रही हों उनको सुधारने का मौका मिल जाता है। दूसरे उनमें संलग्न व्यक्तियों की हरकतों का भी ज्ञान होता रहता है। इसका प्रमुख कार्य यही होता है कि लेखा-जोखा

रखने के ठीक तौर-तरीकों को बतलाया जा सके और उनका पालन किया जा सके। संपरीक्षण से लोगों में विश्वास बढ़ता है और लोग आर्थिक रूप से सहायता करने के अधिक इच्छुक होते हैं। संपरीक्षण कार्य एक तो एक ही वर्ष में बीच-बीच में कई बार होता है, दूसरे वर्ष के अन्त में एक बार होता है। इनमें दोनों को क्रमशः आंशिक तथा सम्पूण संपरीक्षण कहा जाता है। अनेक अभिकरण अपने लेखा-जोखा विभाग में ही आवश्यकतानुसार एक या दो संपरीक्षक रख लेते हैं। ये ही लेखा-जोखा का संपरीक्षण करते रहते हैं। कभी-कभी कानून से बाध्य होकर या अपने में लोगों का विश्वास पैदा करने के लिए संस्थाएँ ऐसा भी करती हैं। सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त पंजीकृत संपरीक्षकों से संपरीक्षण का कार्य कराती हैं। इन दोनों ही प्रकार के संपरीक्षकों से वर्ष में कई बार या वर्ष के अन्त में एक बार संपरीक्षण कराया जाता है। जब सरकारी अनुदान का लाभ कोई संस्था उठाती है तो उसके लेखा-जोखा को सरकारी संपरीक्षक भी जाँच कर सकते हैं। संपरीक्षक लोग सम्पूर्ण लेखा-जोखा का परीक्षण करके एक प्रतिवेदन पत्र तैयार करते हैं, जिसमें आय एवं व्यय के ब्योरे के साथ-साथ लेखा-जोखा के तरीकों और मदों पर उनके सुझाव आदि होते हैं। वे समस्त लेखा-जोखा को प्रमाणित भी करते हैं। संपरीक्षक द्वारा प्रमाणित प्रतिवेदन को संस्था के विभिन्न समितियों के सम्मुख विचार के आदान-प्रदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। इन प्रतिवेदनों को सरकार के पास भी भेजना होता है, जिसने संस्था को किसी प्रकार का दान इत्यादि दिया है। चूँकि सामाजिक अभिकरण सार्वजनिक संस्थायें हैं इसलिये इन्हें नाम मात्र के मूल्य पर कार्य करने के लिये रखा जाता है। अनेक बार ऐसा पाया जाता है कि सामाजिक अभिकरणों में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता यद्यपि आय और व्यय तो करते हैं परन्तु इन्हें इसके हिसाब रखने का ठीक तरीका ज्ञात नहीं होता। ऐसी स्थिति में संपरीक्षक उनको उनके द्वारा रखे जाने वाले लेखे-जोखे में राय भी देते हैं, जिससे वे सही लेखा तैयार कर सकें।

प्रशासन में मूल्यांकन का बहुत महत्व होता है। मूल्यांकन के द्वारा ही हम संस्था के प्रशासन की कमियों व उनको दूर करने के तरीकों तथा इसी के आधार पर नियोजन किया जाता है। संस्था में अनेक कार्यक्रम चलते हैं, उनमें अनेक साधन और सामाजिक कार्यकर्ता संलग्न रहते हैं। इन सबकी उपलब्धियों और आवश्यकताओं को हर स्तर पर जानना अवश्यक होता है। यह ज्ञान बीच-बीच में मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव हो सकता है। बिना मूल्यांकन के शक्ति और उपादेयता का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है। वैसे तो मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है, किन्तु लक्ष्यों और चेष्टाओं का भली प्रकार से मूल्यांकन कुछ

लम्बी अवधि के बाद ही किया जा सकता है, जिसमें कि वे स्पष्टतया जाने तथा समझे जा सकें। प्रायः ऐसा किया जाता है कि कार्यक्रम की समाप्ति पर या वर्ष के अन्त में मूल्यांकन का कार्य किया जाता है। मूल्यांकन संस्था के अधिकारी स्वयं ही करते हैं। कभी-कभी बाहर के विशेषज्ञों की नियुक्ति इसीलिए की जाती है। मूल्यांकन के लिए संस्था के कागजात, पत्र या पत्रिकाओं को देखा जाता है। साथ ही अवलोकन, साक्षात्कार एवं लिखित एवं अभिलिखित प्रश्नों की भी सहायता ली जाती है। जो भी मूल्यांकन किया जाय उसमें निष्पक्षता और ईमानदारी का समावेश हो। एक पक्षपाती मूल्यांकन द्वारा वह लाभ नहीं मिल पाता है जो एक सामाजिक अभिकरण से अपेक्षित होता है। मूल्यांकन के दरम्यान हर स्तर के सम्बन्धित व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करते हुए यह प्रयास करना चाहिए कि किसी को यह अनुभव न हो कि वह अपनी स्थिति की ठीक-ठीक उपस्थिति नहीं कर पा रहे हैं। सामाजिक अभिकरणों के क्रिया-कलापों के मूल्यांकन में आर्थिक दृष्टिकोण को ही महत्त्व नहीं देना चाहिए वरन् कोशिश करनी चाहिए कि सामाजिक और मानवीय दृष्टि से उपलब्धियों का मूल्यांकन हो। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो मूल्यांकन की प्रणाली अधिक खर्चीली नहीं होनी चाहिए परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि धनाभाव में मूल्यांकन में कमी न पायी जाय।

संस्थाओं के कार्यों एवं क्रमों का आन्तरिक और बाह्य रूप से समन्वय होना नितान्त आवश्यक है। ऐसा होने पर यह सम्भव होता है कि एक तो हमें संस्था से अधिक से अधिक लाभ मिल सकता है, दूसरे वे एक दूसरे के लिए अधिकाधिक लाभदायी हो सकते हैं। समन्वय और सहकार के लिए आवश्यक है कि संस्थाओं और कार्यक्रमों के मामले में लोगों की समान सद्भावना हो, वे एक दूसरे के बारे में अच्छी चेष्टाएँ रखते हों। हर पक्ष किन्हीं-न-किन्हीं कर्तव्यों के लिए स्वयं जिम्मेदार समझे। समन्वय और सहकार एकपक्षीय प्रयत्नों के आधार पर कभी सम्भव नहीं होते हैं। समुचित समन्वय के लिए समुचित संचार परम आवश्यक है। सभी को एक दूसरे की क्रिया-कलाप की विधियों, समय और शक्ति का भरपूर अन्दाजा होना चाहिए। सहकार और समन्वय प्रशासन के वे तत्त्व हैं जिनसे कि समानता और भागीदारी के जनतान्त्रिक मूल्य शक्ति पाते हैं और इन्हीं के द्वारा सामाजिक अभिकरणों से लाभ प्राप्त करने वाले किन्हीं रूपों में बाधित सेवार्थी अपने को अधिक सन्तुष्टि देने में असमर्थ हो पाते हैं। मूल्यांकन एवं शोध द्वारा सहकार और समन्वय की स्थिति का अनुमान लगाना चाहिए और इनके ऐसे तरीके विकसित करने चाहिए जो कि मानवीय होने के साथ-साथ

संस्था में मूल अभीष्ट की ओर अग्रसर करते हैं। आजकल सहकार और समन्वय का कार्य स्थानीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक होने लगा है।

प्रशासन को अधिकाधिक संगठित और प्रभावशाली बनाने के लिए संस्था सम्बन्धी अनेक प्रकार के आँकड़ों एवं तथ्यों का संकलन करना और विभिन्न दशाओं या आवश्यकताओं सम्बन्धी सर्वेक्षण और शोध करना बहुत जरूरी है। हर अभिकरण बीच-बीच में ऐसे कार्य किया करे। यह ध्यान रखना चाहिए कि इनमें व्यय कम हो, स्पष्ट हो, सरल एवं निष्पक्ष हो। सामाजिक अभिकरणों को ऐसी साज-सज्जा, उपकरणों, भवनों एवं जमीन से मुक्त होना चाहिए जिनसे मानसिक सन्तुष्टि मिलती हो, प्रशासनिक कार्य-संचालन एवं संस्था की सामग्रियों का ठीक प्रकार से रख-रखाव हो सके। प्रत्येक सामाजिक अभिकरण को अपना वार्षिक प्रतिवेदन तैयार करना चाहिए। कोई भी अभिकरण मात्र प्रशासन हेतु नहीं होता वरन् वह कथित कार्य करने हेतु होता है। परन्तु उसके ये कार्य बिना प्रशासित हुए नहीं हो सकते हैं, वे उतने ही अधिक उपादेय होते हैं जितना अच्छा प्रशासन होता है।

सामाजिक प्रशासन के सिद्धान्त :

सामाजिक प्रशासन के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

1. सामाजिक प्रशासन का प्रमुख कार्य मानवीय तथा भौतिक साधनों को जनता की सेवा के रूप में परिणत करना है। एक ग्रामीण रूढ़िग्रस्त सामन्तवादी समाज को औद्योगिक प्रगतिशील लोकतन्त्रात्मक समाजवादी समाज का रूप देना इसका प्रमुख लक्ष्य है। इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सामाजिक प्रशासन तो एक साधन मात्र है, इसे स्वयं एक ध्येय बनाकर नहीं रह जाना है।

2. सामाजिक प्रशासन के लिए राजकीय विभाग, स्वायत्तता प्राप्त मण्डल, परामर्श समिति, स्वयंसेवी संस्था तथा परिषद् आदि मुख्य संस्थाएँ हैं। और प्रत्येक कार्य के लिए कौन-सी संस्था उपयुक्त रहेगी इसका पूर्व निश्चय नहीं किया जा सकता।

3. सामाजिक प्रशासन में उद्देश्य, प्रशासन-नीति तथा कार्यक्रमों में पारस्परिक और प्रगतिशील सामञ्जस्य होना चाहिए। उद्देश्यों के यथार्थ, दीर्घ, मध्य एवं अल्पकालीन उद्देश्यों में सर्वदा आदान-प्रदान होता रहना चाहिए।

उद्देश्यों तथा कार्यक्रमों के बीच की कड़ी प्रशासन नीति है। नीति के द्वारा साधनों की पर्याप्तता, कार्य-नियम तथा प्रणाली व्यवस्था का साँचा आदि बनाये जाते हैं। नीति की पूर्णता का आभास कार्यक्रम के संचालन से ही होता है और नीति परिवर्तन की आवश्यकता होती है। उद्देश्यों, साधनों तथा कार्यक्रमों के

परिवर्तनानुसार नीति परिवर्तन आवश्यक हो जाता है, नहीं तो प्रशासन में शिथिलता आ जाती है।

लोकतंत्रात्मक राज्य में मन्त्री के लिए प्रशासक की नीति परामर्श अपने अनुभव तथा संविधान के अनुसार साहसपूर्वक देना चाहिए। नीति के विभिन्न विकल्पों पर विचार करने के साथ प्रत्येक निर्णय के भावी परिणाम तथा व्यक्तिगत तर्कसंगत परामर्श देना चाहिए तथा दबाव गुटों के तर्कों का विधिवत् विश्लेषण करना चाहिए। मंत्री के निर्णय के बाद उसका पालन उत्साहपूर्वक करना चाहिए, चाहे वह स्वयं ठीक लगे या न लगे।

स्वयंसेवी संस्था में प्रबन्ध मण्डल का प्रमुख कार्य एक योग्य प्रशासक की नियुक्ति करके उसे संस्था के संचालन का भार सौंप देना है तथा दिन-प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न ही प्रशासक और कर्मचारियों को निर्देश दे। प्रबन्ध मण्डल का क्षेत्र संस्था के मूल उद्देश्यों तथा नीतियों का निर्णय करना, जनता की विशेष आवश्यकताओं का अध्ययन करना, जनसम्पर्क बनाना, अल्प सामाजिक संस्थाओं के साथ मिलकर समन्वयात्मक नियोजन करना, राजकीय विभाग के प्रशासकों को संस्था की आर्थिक स्थिति से अवगत कराना और अधिनियमों के पालन की व्यवस्था करना, नये साधन जुटाना तथा संस्था के दीर्घकालीन हितों की रक्षा करना है।

प्रशासक का कर्तव्य नीतियों का अध्ययन और नीति परिवर्तन के सुझाव देना, निर्णयात्मक नीतियों की परिधि में साधनों के अनुरूप सेवाओं की व्यवस्था करना, कर्मचारियों की नियुक्ति में प्रबन्ध मण्डल या उसकी कार्यवाहक समिति के साथ मिलकर कार्य करना, कार्य-विभाजन तथा प्रशासन सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना, कर्मचारियों के हितों का ध्यान रखना तथा प्रशासन मण्डल द्वारा वेतन-नीति आदि निर्धारित करना, कर्मचारियों के कार्य की देख-रेख करना, वार्षिक आय-व्यय पर नियन्त्रण रखना तथा दिन-प्रतिदिन के व्यय पर नियन्त्रण रखना, व्यय लेखा व्यवस्था तथा निर्धारित समय पर अधिनियम के अनुसार जाँच कराकर प्रबन्ध मण्डल को ब्यौरा देना, अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर समन्वयात्मक नियोजन करना, जनसम्पर्क स्थापित करना, संस्था के नये कार्यों की रूपरेखा तथा प्रबन्ध मण्डल के समक्ष स्वीकृति के लिए रखना, प्रबन्ध मण्डल संस्था के कार्य का मूल्यांकन करने में मदद देता है आदि अनेक प्रगतिशील कार्यों में संलग्न रहता है। निर्णय तो दिन-प्रतिदिन स्वयं ही करना चाहिए तथा कर्मचारियों को निर्णय-क्षमता को भी प्रोत्साहन देना चाहिए, परन्तु गम्भीर निर्णय प्रबन्ध मण्डल के अध्यक्ष की अनुमति से या समयाभाव होने पर स्वयं निर्णय करके अध्यक्ष को शीघ्र ही परिचित कराना चाहिए, क्योंकि संस्था के

सुचारु रूप से कार्य करते रहने का पूर्ण दायित्व जनता के समक्ष प्रबन्ध मण्डल पारस्परिक सद्भाव, विश्वास तथा प्रेम के होने चाहिए। इन सम्बन्धों के आधार पर ही एक योग्य प्रशासक अपने व्यक्तित्व का सर्वस्व संस्था पर न्योछावर कर सकता है।

4. स्थानीय स्तर पर कर्मचारियों को उद्देश्यों और प्रशासनिक नीतियों से पूर्णतः अवगत कराना चाहिए। उनके अनुभव और समस्याओं को उच्चस्तरीय प्रशासकों तथा नीति-निर्माताओं तक पहुँचने का सुयोग्य वातावरण ही नहीं वरन् विचार-संचार की निश्चित प्रणाली होनी चाहिए। विचार-अवरुद्धता प्रगतिशील प्रशासन में बाधक ही नहीं अपितु विष का भी काम करती है।

मध्यवर्ती प्रशासकों का कर्तव्य है कि नीति को कार्यान्वित करने के लिए समय-सूची बनाये, साधनों की वितरण व्यवस्था करे, कार्य-विभाजन करें, जिससे समन्वित कार्य संचालन हो सके। कर्मचारियों की समस्याओं तथा सुझावों का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन करें तथा अपने निर्णय सहित उच्चस्तरीय प्रशासकों को नीति परिवर्तन के सुझाव दें। इन प्रशासकों का भी कर्तव्य है कि इस प्रक्रिया का संवर्धन तथा स्वागत करे। इससे प्रशासनिक सम्बन्ध सुदृढ़ होते हैं तथा सभी स्तरों के कर्मचारियों में अपनी कर्तव्यनिष्ठा तथा मिलजुल कर कार्य करने की भावना जाग्रत तथा सबल होती है।

(5) सुचारू रूप से कार्य-संचालन के लिए विशिष्ट नियोजन, व्यवस्था तथा कार्य-प्रणाली की आवश्यकता है। कार्य नियोजन में प्राथमिक सर्वेक्षण, मानवीय तथा भौतिक साधनों का मूल्यांकन, प्राथमिकताओं का निर्णय करना तथा वार्षिक कार्यक्रम बनाना शामिल है। कार्यप्रणाली में लोच, ब्यौरा देने में दायित्व का निर्धारण, देखभाल तथा सहानुभूतिपूर्वक निरीक्षण शामिल है। कार्य नियोजन में प्राथमिक सर्वेक्षण, मानवीय तथा भौतिक साधनों का मूल्यांकन, प्राथमिकताओं का निर्णय करना तथा वार्षिक कार्यक्रम बनाना आता है।

(6) प्रशासनिक ढाँचे का स्तर पर कार्य-क्षेत्र, साधन तथा सत्ता सन्तुलन होना चाहिए। निर्णय-सत्ता का विभिन्न स्तरों पर विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। उच्च स्तर के प्रशासक के पास निर्णय हेतु छोटी-बड़ी सभी प्रकार की समस्याएँ आयेगी तो उसका अधिकांश समय छोटे निर्णय लेने में ही बीत जायेगा। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण बातें छूट जायेंगी। सत्ता के साथ ही साथ उत्तर-दायित्व का भी विकेन्द्रीकरण होता है। परन्तु उत्तरदायित्व का भार काफी सीमा तक प्रशासक पर रहता है। अतः विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ पारस्परिक विश्वास और सम्बन्धों में वृद्धि के अलावा ब्यौरा शास्त्र तथा परामर्श की परिस्थितियाँ

विकसित होनी चाहिए। विभिन्न स्तरों पर कार्य-क्षेत्र, साधन तथा सत्ता के साथ ही साथ राजकीय स्वयंसेवी कार्य का सामाजिक प्रशासन में सन्तुलन रहे।

(7) प्रशासनिक ढाँचे में आन्तरिक लोकतन्त्रीकरण होना चाहिए। समाज में लोकतंत्रीकरण होना चाहिए। अखिल लोक समाज लोकतंत्र स्थापन तथा विकास के लिए कार्य करने वाली संस्थाओं में भी वे सामाजिक मूल्य होने चाहिए। प्रशासनिक निर्णय करने में विचारों का अधिक से अधिक आदान-प्रदान होना चाहिए तथा प्रत्येक विचार की मौलिकता का आदर होना चाहिए। चाहे वह विचार उद्गम किसी स्तर पर हो। सत्ता-परिपूर्ण व्यवस्था में केवल उच्चस्तरीय प्रशासकों के विचारों का ही मान होता है। तथा निम्नस्तरीय कर्मचारी भय या उदासीन के कारण अपने विचार में हिचकिचाते हैं या उच्च-स्तरीय प्रशासकों के कोप का पात्र होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि बहुमत सर्वदा मान्य रहे। कई बार बहुमत का खंडन भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उच्चस्तरीय प्रशासक एक दीर्घकालीन तथा उच्चस्तरीय दृष्टि से एक निर्णय के सभी पहलुओं पर विचार करने की क्षमता रखता है परन्तु खंडन के साथ निर्णय की व्याख्या आवश्यक है। समयाभाव में व्याख्या की भी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। परन्तु अधिकांश निर्णयों में बहुमत का स्वागत और आदर किया जाय तो जिन निर्णयों में खंडन होता है चाहे उनकी व्याख्या की गयी हो या न की गयी हो कर्मचारियों का निर्णय-पालन उत्साहपूर्वक ही होगा, क्योंकि उनमें प्रशासक की कार्य-क्षमता का विश्वास निरपेक्षता और सद्भावना का आन्तरिक आदर जाग्रत हो जाता है।

नेता तथा जनता के बहुमत का सम्बन्ध बहुत कुछ उपयुक्त सिद्धान्त या लोकतांत्रिक समाज में भी आधारित होते हैं। विशेषकर एक विकासशील देश में जनता का बहुमत अल्पकालीन समस्याओं से प्रभावित हो जाता है तथा राष्ट्र के हितों का निरपेक्ष विश्लेषण कठिन हो जाता है।

प्रशासनिक आन्तरिक लोकतंत्रीकरण का यह भी अर्थ है कि प्रशासक एक लोकतंत्रात्मक नेता का रूप ग्रहण करें परन्तु यह व्यर्थ और अवमूल्यित प्रशंसा का पात्र बनने का प्रयत्न न करे। सत्ता का दुरुपयोग उतना ही अवांछनीय है जितना सत्ता का निरस्त्रीकरण। अधिकांश कर्मचारियों के साथ सद्भावना तथा सहानुभूति का व्यवहार होना चाहिए। कुशल तथा सदाचारी कर्मचारियों को नवीन कार्य के लिए नियुक्त करना, उनके क्रम से भी ऊपर पदोन्नति के लिए उच्चाधिकारियों को परामर्श देना, अनेक आर्थिक तथा अवैतनिक पुरस्कार आदि देना चाहिए। अकुशल परन्तु सदाचारी कर्मचारी को शिक्षा देना तथा उसकी

निर्बलताओं से परिचित कराना चाहिए। यदि उनमें विकास की सामर्थ्य ही न हो तो पदोन्नति से दूर रखना चाहिए। कुशल किन्तु गलत व्यवहार वाले कर्मचारियों को मानवीय सुसम्बन्धों की शिक्षा देनी चाहिए तथा उसकी कुशलता की सराहना करते हुए उसके व्यवहार के सम्बन्ध में परामर्श देना चाहिए। सत्ता का उपयोग अयोग्य, निर्लज्ज, दुर्व्यवहारी कर्मचारी के प्रति करना प्रशासक का संस्था की कुशलता के लिए आवश्यक हो जाता है, जिससे अनुशासन तथा जनता की सेवा ढंग से हो, कठोर दण्ड की आवश्यकता प्रथम तो होनी ही नहीं चाहिए परन्तु जब भी परिस्थिति की माँग हो तो उस समय बिना हिचकिचाहट के तथा निर्भीक होकर कर्तव्य का पालन करना चाहिए। कर्मचारियों की क्षमता बढ़ाने के लिए समय-समय पर प्रशिक्षण तथा विचार-गोष्ठी आदि में भाग लेने का अवसर भी देना चाहिए।

(8) सामाजिक प्रशासन में विभाग के भीतर अन्तर्विभागीय और राजकीय तथा स्वयंसेवी संस्थाओं में समन्वय विभिन्न स्तरों पर होना चाहिए। सुसमन्वय के लिए बौद्धिक, भावनात्मक, व्यवस्थात्मक तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण एवं आगामी समस्याओं का पूर्वानुमान आवश्यक है। जनसाधारण को कार्य-नियोजन, व्यवस्था तथा प्रणाली में सहयोग देने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए। जन-शिक्षा तथा जन-सम्पर्क द्वारा कार्यभार सम्भालने के लिए योग्य नेताओं का चयन और संवर्धन सामाजिक प्रशासन का प्रमुख कार्य है। प्रशासक का क्षेत्र अन्तर्नेतृत्व तक सीमित है तथा उसे जननेता स्वयं नहीं बनना है। जननेता से प्रतिस्पर्द्धा की बातें तो दूर रही उसे तो जननेता के उदय का स्वागत तथा संवर्धन करना चाहिए।

वार्षिक आय-व्यय का अनुमान केवल धनराशि का ही नहीं वरन् मानवीय तथा भौतिक साधनों का भी होना चाहिए, साथ-ही-साथ एक अमूल्य साधन अर्थात् समय का भी निश्चित ब्यौरा होना चाहिए। सामुदायिक कोष की व्यवस्था स्वयंसेवी संघ को करनी चाहिए। जनता के सम्भावित साधनों का पूर्ण रूप से संवर्धन हो सके। अनुभव से देखा गया है कि कुशलता तथा सच्चरित्रता पूर्व कार्यों के लिए धन का अभाव नहीं रहता। प्रगतिशील स्वयंसेवी संस्था में धन का अभाव निरन्तर रहना प्रशंसनीय बात है, क्योंकि ऐसी संस्था जनता की सेवा के नवीन क्षेत्र निरन्तर ढूँढ़ती रहती हैं तथा वर्तमान सेवाओं के स्तर की वृद्धि तथा कर्मचारियों की कल्याण-योजनाएँ बनाती रहती है।

(9) सामाजिक प्रशासन के लिए सर्वेक्षण, मूल्यांकन तथा अनुसन्धान की नितान्त आवश्यकता है। कार्य-संचालन के हर चरण पर विशिष्ट ब्यौरा मिलता

रहना चाहिए। अन्तर्मूल्यांकन तो प्रक्रिया में ही निहित है परन्तु मूल्यांकन का भार एक बाह्य संस्था को भी सौंपना चाहिए, जिससे अदृश्य क्षमताओं एवं त्रुटियों में वैज्ञानिक ढंग से उद्देश्य, नीति तथा कार्य-संचालन में आवश्यक सुधार लाये जा सकें। मूल्यांकन में जनता का सहयोग प्राप्त करना चाहिए, विशेषतया उन जनसमुदायों का जो संस्था को आर्थिक या अवैतनिक स्वयं सेवा द्वारा सहायता देते हों तथा उनका भी जिनको संस्था की सेवाएँ दी जाती हों।

सामाजिक अनुसन्धान का कार्यक्षेत्र और अधिक गहराई तक जाता है, जिससे दीर्घकालीन परिवर्तन का पूर्ण रूप से अध्ययन हो सके और नीति-निर्माताओं तथा प्रशासकों को इसका स्वागत तथा संवर्धन करना चाहिए। सामाजिक अनुसन्धान तथा संस्थाओं का समन्वित कार्य-संचालन हो सके तथा विकास के हर क्षेत्र पर सन्तुलित मूल्यांकन तथा मार्गदर्शन हो सके।

(v) समाज-कार्य अनुसंधान :

समाज-कार्य एक ऐसा व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अधिकाधिक सहायता तथा विकास एवं उन्नति करने का प्रयत्न किया जाता है। इसके अन्तर्गत सिद्धान्तों, तरीकों, ढंगों, निपुणताओं एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है, अतः इन क्षेत्रों में दिनोंदिन नवीनीकरण एवं परिवर्तन की आवश्यकता होती है। क्योंकि व्यक्ति स्वयं एक परिवर्तनशील एवं विकासशील प्राणी है। समाज कार्य अनुसंधान इस आवश्यकता को पूरा करता है। वह नये-नये तरीकों की खोज करता है, सिद्धान्तों का सत्यापन एवं पुनःस्थापन करता है तथा नवीन ज्ञान की खोज करता है। आवश्यकतानुसार कार्य-कारण में सम्बन्ध भी स्पष्ट करता है। एक बात यहाँ पर ध्यान देने की है कि चूँकि समाज-कार्य का व्यक्ति की समस्याओं से सम्बन्ध होता है अतः समाज-कार्य अनुसंधान में भी इनसे सम्बन्धित सिद्धान्तों, अवधारणाओं, प्रविधियों तथा निपुणताओं इत्यादि के विषय में खोज की जाती है। सारांश में इसके अन्तर्गत उपचार तथा सेवा प्रदान करने की विविध प्रणालियों, उनकी आवश्यकताओं तथा उनसे सम्बन्धित नये सिद्धान्तों की खोज की जाती है।

अनुसन्धान का उद्देश्य सभी वैज्ञानिक क्षेत्रों में ज्ञान का विकास एवं वृद्धि करना है। समाज-कार्य अनुसंधान एक ऐसा स्रोत है जिनके द्वारा समाज-कार्य को नवीन ज्ञान प्राप्त होता है। प्रारम्भ में समाज-कार्य सामाजिक विद्वानों के अनुसन्धान के तरीकों को अपनाने में हिचकिचाता था। अतः समाज-कार्य अनुसन्धान में वैज्ञानिक तरीकों को प्रमाणित नहीं किया गया। प्रारम्भिक सामुदायिक अध्ययन समाज-कार्यकर्ता द्वारा सामाजिक समस्याओं, संस्थागत कार्यक्रमों, संरचना, कार्य-पद्धति तथा समाज-कार्य का इतिहास, भौतिक तथा उप-

चारात्मक अवलोकन आदि खोजों ने केवल नयी सामाजिक सेवाओं पर बल दिया। इस प्रकार के अध्ययन ने सामुदायिक समाज-योजना को सरल बनाया, परन्तु मानव प्रकृति, व्यवहार तथा सम्बन्धों के वैज्ञानिक ज्ञान को गहन नहीं बनाया। इन अध्ययनों ने समाज-कार्य के तरीकों की आवश्यकता को गहन नहीं बनाया। इन अध्ययनों ने समाज-कार्य के तरीकों की आवश्यकता को सिद्ध किया।

नये ज्ञान एवं तरीकों के विकास के साथ-साथ अनुसन्धान का क्षेत्र भी बढ़ता है, परन्तु सामाजिक अनुसन्धान तथा समाज-कार्य अनुसन्धान में अन्तर है, क्योंकि सामाजिक अनुसन्धान सामाजिक मूल्यों, अवधारणाओं तथा कार्य-कारण के संबंधों को निरपेक्ष भाव से देखता है। इसके लिये आवश्यक नहीं है कि प्राप्त निष्कर्षों का व्यावहारिक परिणामों से सम्बन्ध हो ही। अतः ऐसा अनुसन्धान विशुद्ध अनुसन्धान होता है। परन्तु समाज-कार्य अनुसन्धान सामाजिक शक्तियों का अध्ययन व्यक्ति के सन्दर्भ में करता है। उसका उद्देश्य व्यक्ति की सामाजिक समस्याओं का समाधान करना है। यह देखना है कि नये अनुसन्धान किस प्रकार सेवार्थी (व्यक्ति, समूह तथा सम्पूर्ण समुदाय) की सेवाओं में सुधार ला सके।

समाज-कार्य अनुसंधान की परिभाषा—समाज-कार्य अनुसन्धान एक ऐसी खोज है जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करके ऐसे उपायों की खोज की जाती है, जिससे सेवन सेवार्थी (व्यक्ति, समूह, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज) को अधिक अच्छे ढंग से सेवा प्रदान की जा सके तथा समस्याओं का समाधान एवं व्यक्ति का सर्वोन्मुखी विकास सम्भव हो सके।

फ्रीड लैण्डर[16] के अनुसार—'समाज-कार्य' शोध का अर्थ है—समाज-कार्य के संगठन, कार्य एवं प्रवृत्तियों की वैधता का आलोचनात्मक अन्वेषण और वैज्ञानिक जाँच, जिससे उन्हें प्रमाणित किया जा सके, उनका सामान्यीकरण किया जा सके और समाज-कार्य के ज्ञान और निपुणता में वृद्धि की जा सके।

वेवस्टर के शब्द कोश के अनुसार—'सामाजिक शोध एक अध्ययन-परायण अन्वेषण है, जो सामान्यतः आलोचनात्मक और अत्यन्त विस्तृत जाँच या परीक्षण के रूप में होता है और जिसका उद्देश्य स्वीकृति प्राप्त परिणामों के विषय में नवीन सूचनाओं के आधार पर पुर्नविचार करना है।

विशेषताएँ :

1. यह समाज-कार्य का एक सहायक तरीका है, क्योंकि इसके द्वारा सेवार्थी की सहायता प्रत्यक्ष रूप से नहीं की जाती है।

---

16. Friedlander, W. A., op. cit. p. 191.

2. यह वैज्ञानिक तरीकों को अपने कार्यक्रम के अन्तर्गत उपयोग में लाता है। इसमें निम्नलिखित चरणों का उपयोग किया जाता है :—

(क) समस्या के क्षेत्र के विषय का चुनाव,

(ख) समस्या का परिसीमन,

(ग) उपलब्ध सामग्री का अध्ययन,

(घ) उपकल्पना का निर्माण,

(ङ) प्रश्नावली का निर्माण,

(च) प्रारम्भिक परीक्षा, तथ्यों का संकलन तथा तथ्यों का विश्लेषण एवं प्रतिवेदन निर्माण इत्यादि।

3. सेवार्थी को अधिक वैज्ञानिक ढंग से सेवा प्रदान करने के लिए नये तरीकों की खोज की जाती है।

4. इसके द्वारा कार्यकर्ता को नवीन ज्ञान, प्रविधि, निपुणता तथा कौशल प्राप्त होती है।

5. उपलब्ध ज्ञान को प्रमाणित किया जाता है।

6. सामाजिक घटना के कारण सम्बन्धी कारकों की खोज की जाती है।

7. पुरानी उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है।

समाज-कार्य अनुसंधान के प्रकार—समाज-कार्य शोधकर्ता का मुख्य कार्य विभिन्न सेवाओं के लिए आवश्यकता को निश्चित करना है। वह वर्तमान सेवाओं की उपयुक्तता, उपयोगिता एवं प्रभावकारिता के मूल्यांकन से भी सम्बद्ध है। उसकी अभिरुचि केवल उन सेवाओं से प्राप्त फल में नहीं होती है वरन् सहायक प्रक्रिया में सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग की गयी प्रक्रिया एवं कौशल में रुचि रखता है। व्यावसायिक समाज-कार्य की नींव को सुदृढ़ बनाने के लिए समाज-कार्य के दर्शन एवं मूल्यों में रुचि रखता है। इन शोध आवश्यकताओं की पृष्ठ-भूमि निम्न प्रकार से हो सकती है :—

1. **अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध**—इसका मुख्य ध्येय किसी घटना को समझना अथवा उससे सम्बन्धित नई सूझ विकसित करना है, जो संपूर्ण शोध-समस्या के निरूपण में सहायता देता है। इस प्रकार के अध्ययन निरन्तर शोध-प्रक्रिया के प्रथम चरण में आते हैं। जिसका उद्देश्य समस्या-निरूपण, अवधारणा एवं सिद्धान्त विकास है। एक ओर असंरचित प्रारम्भिक सर्वेक्षण का प्रयोग-संगत अवधारणाओं, समस्याओं के निरूपण तथा समस्याओं के चयन में किया जाता है, दूसरी ओर चयन किये क्षेत्र में उपकल्पना के विकास में किन्हीं सामग्री की तुलनात्मक समीक्षा के लिए संक्षिप्त सांख्यिकीय अध्ययन किये जाते हैं।

2. **निदानात्मक अथवा विवेचनात्मक शोध**—इन अध्ययनों का उद्देश्य किसी प्रक्रिया का गत्यात्मक चित्रण अन्तःक्रिया का प्रतिमान अथवा किसी वृत्तान्त का वस्तुगत अथवा सही विवेचन प्राप्त करना है। किसी परिस्थिति में संस्था के कार्यक्रम इस प्रकार की व्याख्या से सम्बन्धित होते हैं जो संख्यात्मक अथवा गुणात्मक अथवा दोनों हो सकते हैं। इस महत्त्व नोति-निर्धारण नियोजन तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन के लिए होता है। इस प्रकार के शोध में निरूपणात्मक शोध की तुलना में यह मान लेते हैं कि अध्ययन वाली समस्या से सम्बन्धित ज्ञान का पूर्व ज्ञान है। यह अध्ययन एक ही प्रकार के तथ्यों के संकलन-पद्धति पर निर्भर नहीं होता वरन् प्रायः प्रश्नावली, साक्षात्कार, व्यवस्थित प्रत्यक्ष अवलोकन, समुदाय सम्बन्धी प्रत्ययों का विश्लेषण तथा सहभागी अवलोकन में वृहद् रूप से उपयोग पर निर्भर होता है। तथ्य-विश्लेषण के लिए तथ्यों का विभक्तीकरण उपयोग में लाया जाता है।

3. **प्रयोगात्मक**—इसका उपयोग कारकीय परिकल्पना परीक्षक करने, मूलभूत सैद्धान्तिक ज्ञानवर्धन, किसी विशिष्ट पद्धति का प्रभावकारिता के अध्ययन के लिए होता है। इसमें दो प्रकार के प्रत्यय स्वतन्त्र एवं निर्भर तथा कारण प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रयोग में समन्वित तकनीक में प्रत्यय का वास्तविक अथवा सांकेतिक अभिप्रेरणा किया जाता है, जिससे वैकल्पिक स्पष्टीकरण अथवा सम्बन्ध पूरे किये जा सकें और किसी उपकल्पना को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत किया जा सके, क्योंकि समाज-कार्य शोधकर्ता अपने प्रयोगों को प्रयोगशालाओं में करने में असमर्थ होता है, जहाँ उन तथ्यों एवं परिस्थितियों पर नियन्त्रण किया जा सकता है, जो उसके प्रयोग को प्रभावित कर सकते हैं। अतः उसे अपने प्रयोगों को करने में अभिकल्पना का प्रयोग वास्तविक या प्रतीकात्मक अभिप्रेरणा के लिए करने से होता है, जिससे समुचित नियन्त्रण सम्भव हो। फलस्वरूप अनिश्चितताओं की सम्भावना भी कम हो सके।

4. **क्रियात्मक शोध**—इसके क्षेत्र में नियोजित रूप से कार्यक्रम चलाकर उसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार के क्षेत्र में विभिन्न समस्याओं के हल अथवा किसी भी उपकल्पना का परीक्षण भी सम्भव हो पाता है। जिस प्रकार प्रयोगशाला में किये गये प्रयोग द्वारा क्षेत्र में बृहद् स्तर पर कार्य करने की रूपरेखा परिमार्जित की जाती है उसी प्रकार इन अध्ययनों में भी होता है। उदाहरणार्थ समाज-विज्ञान विद्यालय निर्मला निकेतन बम्बई, द्वारा अमेरिकन के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं कल्याण विभाग के तत्त्वावधान में इस प्रकार का शोध-कार्य क्रियान्वित किया गया है। इसका उद्देश्य सामुदायिक कार्यकर्ताओं के कार्यों के परिणामस्वरूप समुदाय में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों का मूल्यांकन

करना है, साथ ही यह भी स्पष्ट करना है, कि किस प्रकार सामुदायिक कार्य की प्रक्रिया विषमांग समुदाय में स्थानीय सेवाएँ विकसित करने में सहायता प्रदान करती है।

शोध के चरण—सम्पूर्ण शोध के कार्यक्रम को प्रमुख दस चरणों में विभाजित कर सकते हैं, या इस तरह से कह सकते हैं कि शोध सम्पूर्ण प्रक्रिया क्षेत्र के चुनाव से लेकर अन्तिम प्रतिवेदन तैयार करने तक क्रमशः निम्न प्रमुख दस चरणों में से गुजरती है—

(1) समस्या, क्षेत्र के विषय का चुनाव,
(2) समस्या क्षेत्र या विषय का परिमार्जन,
(3) चयन किये गये विषय पर उपलब्ध सामग्री का प्रारम्भिक अध्ययन,
(4) अभ्युपगम या उपकल्पना का निर्माण,
(5) अध्ययन की योजना का निर्माण,
(6) प्रश्नावली और सारणी आदि की प्रारम्भिक परीक्षा और संशोधन,
(7) तथ्यों का संकलन,
(8) तथ्यों का विश्लेषण और उनकी व्याख्या,
(9) प्रतिवेदन का प्रारम्भिक प्रारूप तैयार करना,
(10) प्रारूप का संशोधन और अन्तिम प्रतिवेदन तैयार करना है।

शोधकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह अपने शोध की समस्या, उसका क्षेत्र व विषय सर्वप्रथम निश्चित कर ले। समाज-कार्य के शोध की समस्या ऐसी कोई भी समस्या हो सकती है जो व्यक्ति या समाज के मनोसामाजिक गठन से संबंधित है। व्यक्ति और समाज के गठन से सम्बन्धित समस्या का क्षेत्र और स्वरूप बहुत विशाल हो सकता है। समाज का निर्माण करने वाली तथा उसकी संरचना पर प्रभाव रखने वाली कोई भी शक्ति इसमें आ सकती है। वह भी अनेक परिस्थितियाँ इसकी समस्या का क्षेत्र हो सकती है, जो कि व्यक्ति पर किसी रूप में प्रभाव डालती हों। समाज का निर्माण करने वाली या उसकी संरचना पर प्रभाव रखने वाली कोई भी ताकत इसमें आ सकती है। वे परिस्थितियाँ भी इसका क्षेत्र हो सकती हैं, जो व्यक्ति पर किन्हीं रूपों में प्रभाव डालती हैं। समाज-कार्य के शोध की समस्या का क्षेत्र व्यक्तिगत व्यक्तित्व के अलावा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक इत्यादि संरचनाओं तक होता है। इन रचनाओं के स्थूल, मूर्त या अमूर्त किन्हीं भी पहलुओं को समाज-कार्य का शोध अपनी समस्या क्षेत्र में रख सकता है।

समाज-कार्य के अध्ययन में क्षेत्र का तात्पर्य यह है कि शोधकर्ता यह निश्चय

करता है कि वह किस भौगोलिक दायरे में समस्या का अध्ययन करेगा। यद्यपि मानवीय समस्याओं की प्रकृति सार्वभौम हो सकती है परन्तु भौगोलिक भिन्नता से समस्याओं की प्रकृति का बाह्य रूप बदल जाता है। इसके कारण शोध को अधिक उपादेय और सही बनाने के लिए आवश्यक हो जाता है कि भौगोलिक क्षेत्र निश्चित कर लिया जाय। यह हो सकता है कि समाज-कार्य का शोध सामूहिक कार्य-संगठन का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव जानना चाहिए। हर समाज की अपनी एक भौगोलिकता और उसके आधार पर अनेक समाजों में भिन्नता होती है। अतः शोधकर्ता को अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए समस्या के चुनाव के साथ ही साथ यह भी निश्चय कर लेना पड़ता है कि वह उस समस्या को किस क्षेत्र में देखेगा या अध्ययन करेगा।

प्रत्येक शोधकर्ता को समस्या और उसके क्षेत्र के साथ ही अपने विषय का चुनाव भी शुरू में ही कर लेना चाहिए। समस्या कोई भी मानवीय समस्या चाहे वह आर्थिक, राजनैतिक या धार्मिक हो सकती है। क्षेत्र भी इसी प्रकार संसार का कोई भी भौगोलिक क्षेत्र अलग-अलग या एक हो सकता है। विषय के चुनाव का अर्थ यह है कि किसी क्षेत्र में समाज के किसी विशेष अंश का निर्धारण होना चाहिए। शोधकर्ता को शुरू में यही नहीं तय कर लेना होता है कि वह मानवीय पहलुओं के किस पक्ष का अध्ययन करे वरन् उसे उस पहलू विशेष के किसी अंग विशेष का भी चयन कर लेना पड़ता है। यदि शोध की समस्या सामाजिक समस्या है तो उसे प्रारम्भ से ही तय कर लेना है कि वह इसमें अस्पृश्यता, नशाबन्दी, व्यभिचार अथवा पारिवारिक विघटन की समस्याओं में से किसी खास सामाजिक समस्या का अध्ययन करेगा। इसी प्रकार आर्थिक समस्या का निश्चय करने में उसे प्रारम्भ में ही माँग पूर्ति की समस्या, मँहगाई-भत्ते की समस्या, मजदूरी की समस्या, कार्य करने की दशाओं की समस्या आदि में से एक को चुन लेना चाहिए। इसी प्रकार धार्मिक, सांस्कृतिक या राजनैतिक समस्याओं से सम्बन्धित अध्ययनों में शोधकर्ता के लिए जरूरी है कि वह उनकी किसी एक विशेष समस्या का चुनाव कर ले। इस प्रकार शोध की समस्या उस समस्या के खास क्षेत्र और समस्या के विषय का समुचित निश्चय कर ले। ऐसा करने के बाद ही वे शोध के आगामी चरण की ओर अग्रसर हो सकते हैं। हर शोधकर्ता की रुचि, अनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षण, साधन आदि भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। यहाँ शोधकर्ता का तात्पर्य व्यक्ति मात्र से ही न होकर उन राजकीय और गैर राजकीय संगठनों से है, जो शोधकार्य करते या करवाते हैं। शोधकर्ता को अपनी इच्छा शक्ति के अनुसार शोध की समस्या, विषय-क्षेत्र का चुनाव और निर्धारण करना चाहिए। ऐसा करने से शोध के अच्छे परिणाम सामने आते हैं। शोधकर्ता अथवा संगठन अपने

हितपूरक समस्या और विषय पर ही शोध करते कराते हैं और व्यापक अर्थों में मानवीय हित के अनेक शोधकार्य जैसे तैसे रह जाते हैं। विविध विषयों पर समस्याओं के अंग-प्रत्यंगों पर शोध कराये जायें ऐसा प्रयत्न होना चाहिए, जिससे कि शोधकर्ता अधिकाधिक व्यापकता प्राप्त कर सके।

बहुत से शोध ऐसे होते हैं जिनमें कि उत्तरदाता या जिनसे तथ्य संकलन करना है वे जल्दी भयभीत होते हैं या उपलब्ध नहीं होते या जिनके बारे में अच्छा ज्ञान और साहित्य नहीं प्राप्त होता। शोध की समस्या, क्षेत्र और विषय के चुनाव के समय इन परिस्थितियों से आने वाली बाधाएँ कम-से-कम हों।

शोध का दूसरा चरण चुनी गयी समस्या, उसका क्षेत्र और विषय को परिसीमित करना होता है। व्यक्तिगत अथवा सामाजिक पहलुओं से सम्बन्धित कोई भी समस्या हो प्रायः उस पर शोध की आवश्यकता इसलिए महसूस होती है कि उसकी व्यापकता होती है। कोई भी समस्या व्यक्तिगत हो या अत्यन्त छोटे समूह की हो तो उस समस्या पर शोध करना आवश्यक नहीं समझा जाता है। परन्तु इन पर भी शोध किये जा सकते हैं। व्यापकता रखने वाली समस्याओं का ही चयन करने से शोध की उपादेयता भी व्यापक होती है। परन्तु यदि इस स्तर पर सारे क्षेत्र को शोध का क्षेत्र बनाकर शोध करने में बहुत अधिक खर्च, जन तथा समय लगने की सम्भावना होती है तथा साथ ही परिवर्तनों की आवश्यकता को नियन्त्रित और एकरूपता की दशा में रखना असम्भव होता है। ऐसे स्तर के शोधों के लिए या तो शोध को कई भागों में बाँटकर भिन्न-भिन्न देशों में किया जाता है या देश के कुछ भूखण्डों को इसलिए चुन लिया जाता है। इस प्रकार क्षेत्र को परिसीमित करके उनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर सिद्धान्त, ज्ञान या कार्यक्रम सुलभ किये जाते हैं और इनका लोचपूर्ण उपयोग व्यापक क्षेत्र में किया जाता है।

शोध के तीसरे चरण में शोधकर्ता को समस्या, विषय और क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए समस्त ऐसी सामग्रियों का अध्ययन करना हितकारी होता है जो कि उससे सम्बन्धित हो और प्राप्त की जा सके। इन सामग्रियों के अध्ययन के बाद ही वह अध्ययन या शोध की दिशा और साधन आदि का ठीक-ठीक निर्धारण कर सकता है। सामग्री के अध्ययन के आधार पर वह विषय और क्षेत्र की प्रकृति ठीक-ठीक समझ पाता है और उसमें उचित परिसीमन कर सकता है। अध्ययनोपरान्त वह शोध के अभ्युगम का निर्माण करता है और उसी के अनुसार सारे शोध की प्ररचना को तैयार और निश्चित करता है। बिना अध्ययन के उसे एक तो इन कार्यों को करने में बड़ी कठिनाई होती है, दूसरे वह अपने अभीष्ट और कर्तव्य से विमुख हो जाता है। फलस्वरूप वह इच्छित शोध

नहीं कर पाता है। शोध के इस चरण में उन तमाम सामग्रियों का अध्ययन आता है जो कि या तो सहज या कठिनाई से उपलब्ध है अथवा विशेषज्ञों से कर्ता के द्वारा समझी जा सकती है। अनेक बार शोध हो चुके हों या उस शोध की उपादेयता न हो। नमूनों की प्रकृति को ज्ञान और चुनाव के लिए भी इस अध्ययन का बड़ा महत्त्व है। इसी से शोध की प्रविधि का चुनाव और शोधकर्ता के शिक्षा प्रशिक्षण की आवश्यकता तथा प्रकृति को समझने जानने की सुविधा रहती है।

अभ्युपगम शोध के प्रारम्भ में की गयी वे कल्पनायें हैं जो कि शोध के बाद प्राप्त होने वाले निष्कर्षों से मिलती है। ये शोध के बाद स्थिर होने वाला वह सत्य है जो कि शोध के पूर्व ही कल्पित कर लिया जाता है। यह शोध समस्या पर शोध पूर्व हल है। शोधकर्ता शोध सम्पन्न करने के लिए ऐसी बातों का निश्चय कर लेता है जो कि शोध के बाद ज्ञात हों। इस निश्चय से उसे अपने शोध की दिशा, उसकी प्ररचना, उसकी प्रविधि और अन्य सहायकों का अनुमान और निर्धारण में सुविधा होती है। इससे इधर-उधर जाकर कार्य सुविधा से सम्पन्न होता है। इसके द्वारा शोधोपरान्त परीक्षण करता है, फिर उसमें सुधार कर अन्तिम सत्य की स्थापना करता है। प्रायः निरूपणात्मक शोधों में अभ्युपगम का निर्माण किया ही नहीं जाता है या वह अधिक लोचपूर्ण होते हैं। व्याख्यात्मक और प्रयोगात्मक शोधों में अभ्युपगम अवश्य बनाये जाते हैं। इन शोधों के अभ्युपगम सत्य के काफी पास होते हैं या लोचपूर्ण होते हैं। शोध के अभ्युपगम में कई विकल्प रखने पड़ सकते हैं। एक समस्या के कई पूर्व उत्तर होने से शोध की प्ररचना और प्रविधि के निर्माण में सुविधा होती है। परिकल्पना को बनाते समय ध्यान रहे कि वह स्पष्ट, सरल तथा संक्षिप्त हो, ऐसी भाषा न हो कि उसके कई अर्थ निकलते हों। जो भी बात कही जा रही हो छोटी और सरल वाक्यों में होनी चाहिए। अभ्युपगम का सम्बन्ध सीधे समस्या से होना चाहिए। यह ऐसा हो कि इसे शोध के द्वारा जाँचा जा सके, शोध में अभ्युपगम की स्पष्टता और संक्षिप्तता का यह अर्थ नहीं है कि शोधकर्ता अपने पूर्व उत्तरों को किन्हीं दशाओं में अभिव्यक्त ही न कर सके। बात यह है कि वह जो कुछ कहे उसे अन्य भी आसानी से उसी अर्थ में समझ सके।

शोध का अगला चरण प्ररचना का निर्माण करना होता है। इसमें पुस्तकों की सूची तैयार करना, प्रश्नावली, अध्ययन-विधि और यदि आवश्यक हो तो साक्षात्कार का चित्र बनाना, मूल्यांकन के लिए उपयुक्त अनुमापक, स्थिर या निर्माण करना, उदाहरण या नमूने की विधि तथा आबादी निश्चित करना तथा विश्लेषण के प्रभावों का प्रारम्भिक नियोजन करना एवं कुछ सारणी आदि बना लेना होता है।

समाज-कार्य अनुसंधान के विषय :

1. उन कारकों का व्यवस्थापन तथा मापन हो जो सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करते हैं तथा सामाजिक सेवाओं की आवश्यकता बतलाते हैं।

2. दान देने वाली संस्थाओं के इतिहास, समाज-कल्याण अधिनियम, समाज-कल्याण कार्यक्रम तथा समाज की आवश्यकता का अध्ययन।

3. आशाओं का प्रत्यक्षीकरण तथा समाज के कार्यकर्ताओं की स्थितियों के मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।

4. सामाजिक कार्यकर्ताओं के लक्ष्य निश्चित तथा आत्मचित्र का अध्ययन।

5. समाज-कार्यकर्ताओं की आशाओं का निश्चय तथा क्रियाओं में सम्बन्धों का अध्ययन।

6. समाज की विविध प्रक्रियाओं का अध्ययन।

7. उपलब्ध सामाजिक सेवाओं का व्यक्ति, समूह तथा समुदाय की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उपयोगिता का अध्ययन।

8. समाज-कार्य क्रिया के प्रभावों के परीक्षण, मापन तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन तथा समाज-कार्य व्यवहार के लिए वांछित योग्यताओं की खोज।

9. सेवार्थी की आशाओं, उद्देश्यों, प्रत्यक्षीकरण तथा मूल्यांकन सम्बन्धी अध्ययन।

10. समाज-कार्य के सम्बन्ध में सेवार्थी के व्यवहार की प्रतिक्रिया का अध्ययन।

11. सामाजिक संस्था के अन्तर्गत अनौपचारिक तथा औपचारिक समाज-कार्यकर्ताओं की भूमिका की परिभाषा, उसके अन्तःसम्बन्धों में सहयोग की दशाओं का अध्ययन।

12. समुदाय में सामाजिक समूहों के मूल्यों तथा वरीयता का अध्ययन करके स्वयं के ऊपर समाज-कार्य के व्यावहारिक रूप को समर्थन तथा सहयोग के लिए निर्भर होना पड़ता है।

13. सामाजिक संस्थाओं के विभिन्न इकाइयों में अन्तर्सम्बन्ध तथा उनका सेवार्थी तथा संस्था के स्टाफ पर प्रभाव का अध्ययन।

14. समाज-कार्य अनुसंधान की पद्धति का अध्ययन।

(VI) सामाजिक क्रिया :

समाज-कार्य के वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूप को ऐतिहासिक विकास पर अवलोकन करें तो यह मानना पड़ेगा कि 1922 में ही मेरी रिचमण्ड ने इसका उल्लेख समाज-कार्य की चार प्रमुख प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया के रूप में किया

है। 1940 में जॉन फिच ने एक कान्फ्रेन्स में सामाजिक क्रिया की प्रकृति के ऊपर एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किया। एक वर्ष बाद उन्होंने 'सोशल वर्क इयर बुक' में सामाजिक आन्दोलन पर निबन्ध लिखा। उसके कुछ ही दिनों बाद सामाजिक क्रिया की व्यापक चर्चा समाज-कार्य के क्षेत्र में चल पड़ी। 1945 में केनिथ एलियम प्रे ने 'सोशल वर्क एण्ड सोशल एक्शन' नामक एक लेख में लिखा और उसके अनुसार यह माना जाने लगा कि सामाजिक क्रिया सामुदायिक संगठन का ही एक अंग है अथवा उससे सम्बन्धित समाज-कार्य को एक अलग विधि है। परन्तु बाद में चलकर यह बात और भी स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाने लगी कि सामुदायिक संगठन के अन्तर्गत कार्य एक सीमित क्षेत्र में किया जाता है किन्तु सामाजिक क्रिया में बड़े पैमाने पर कार्य होता है।

सामान्यतः कार्यकर्ता की सहायता से लोगों को संगठित करके किसी आवश्यकता-विशेष की पूर्ति करने अथवा अफवाहों के निवारण की दशा में कार्य किया जाता है, जबकि सामाजिक क्रिया में आवश्यकतानुसार सामाजिक परिस्थितियों में ही परिवर्तन लाकर वातावरण उत्पन्न किया जाता है, जिसमें व्यक्ति अधिकतम सुख और सन्तोष का जीवन व्यतीत कर सके। समाज-कार्य का सम्बन्ध केवल व्यक्ति और उसकी समस्याओं से ही नहीं होता है वरन् इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण सामाजिक संगठन, सामाजिक नीतियों तथा संस्थाओं का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, साथ ही साथ किस प्रकार व्यक्ति तथा समाज दोनों में परिवर्तन लाकर दोनों को एक-दूसरे के अनुकूल बनाया जाता है। इस प्रक्रिया का भी अध्ययन करते हैं। समाज-सेवक के रूप में कर्ता का यह कर्तव्य होता है कि संस्था के द्वारा जिस प्रकार की सेवा प्रदान करने का दायित्व उसे सौंपा गया है उसे सफलतापूर्वक निभाये, यही उसका कर्तव्य होता है। वह अपने ज्ञान, कौशल तथा अनुभव के द्वारा समुदाय की रचनात्मक रूप से इस प्रकार सहायता करे कि वह अपनी संस्थाओं, सेवाओं तथा अन्य व्यवस्थाओं को अपने सदस्यों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुरूप बना सके। सामाजिक कार्यकर्ता को अपने उत्तरदायित्व को पूरा करते हुए मुख्यतः तीन प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करने पड़ते हैं :—

(1) कार्यकर्ता का सेवार्थी से सम्बन्ध, (2) संस्था से सम्बन्ध तथा (3) अपने व्यवसाय के अन्य सदस्यों से सम्बन्ध।

प्रथम दो अवस्थाओं में उसके सम्बन्ध अतिसीमित व विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु स्थापित हुए रहते हैं, परन्तु तीसरी अवस्था यानी व्यावसायिक संघ के सदस्य होने के नाते सामाजिक कार्यकर्ताओं का यह कर्तव्य होता है कि पारस्परिक सहयोग, ज्ञान, अनुभव और कुशलताओं के द्वारा समाज के ढाँचे में परिवर्तन

और पुनर्निर्माण कर ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण करे जिसमें समाज-कार्य के उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से हो सके तथा इस व्यवसाय के विकसित होने का अधिक अवसर प्राप्त हो सके। यह कार्य सामाजिक क्रिया द्वारा ही सम्भव है, जिसमें कार्य-व्यवसाय में लगे अधिक से अधिक लोगों को भाग लेना पड़े।

ग्रेस एल क्वायल[17] के अनुसार—'समाज-कार्य के अंग के रूप में सामाजिक क्रिया एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा सामाजिक वातावरण में इस प्रकार परिवर्तन लाया जाता है जिससे जीवन को अधिक सन्तोषप्रद बनाया जा सकता है। इसका उद्देश्य केवल व्यक्ति-विशेष को ही नहीं बल्कि सामाजिक संस्थाओं, नियमों, रीतियों एवं समुदायों को प्रभावित करता है'।

केनिथ एल० एम० प्रे[18], 'हम लोग सामाजिक क्रिया को एक व्यवस्थित और चेतना प्रयास के रूप में परिभाषित करेंगे, जो प्रत्यक्ष रूप से उन आधारभूत सामाजिक दशाओं और नीतियों को प्रभावित करती है, जिनके द्वारा सामाजिक समायोजन एवं असमायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और जिनकी ओर हमारी सेवाएँ एक सामाजिक कर्ता के रूप में उन्मुख होती हैं'।

जॉन एल० हिल[19] के अनुसार—'सामाजिक क्रिया एक सामूहिक संगठित प्रयास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य विशाल जनसमुदाय की सामाजिक समस्याओं को हल करना अथवा आधारभूत सामाजिक और आर्थिक दशाओं तथा व्यवहारों को प्रभावित करते हुए सामाजिक दृष्टि से अभीष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति करना है'।

सामाजिक क्रिया की अवधारणा में निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश होता है :–

1. सामाजिक क्रिया समाज-कार्य का ही एक अंग है। इसमें भी समाज-कार्य के सिद्धान्त, मान्यताओं तथा ज्ञान और कौशल का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः इसका प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः इसका प्रयोग सामाजिक कार्यकर्ताओं के व्यावसायिक संघ द्वारा किया जाता है।

2. सामाजिक क्रिया का उद्देश्य सही अर्थ में सामाजिक न्याय और समाज कल्याण की प्राप्ति है। इसके द्वारा एक ऐसे समाज का निर्माण सम्भव होता है जिससे व्यक्ति के अधिकतम कल्याण की प्राप्ति हो सके।

---

17. quoted by Harper and Dunham, op. cit, p. 282.
18. Pray, Kenneth, L. N. Social Wone and Social Action, in Harper and Dunham, op. cit. p. 292.
19. Hill, John L. : Social Action, Social Wone year Book, 1951, p. 455.

3. इस प्रक्रिया में आवश्यकतानुसार सामाजिक संस्थाओं, परिस्थितियों तथा समाज-व्यवस्था में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है और साथ ही साथ आवश्यकतानुसार अनापेक्षित सामाजिक परिवर्तन को रोकने का भी प्रयास किया जाता है। समाज के सदस्यों को इस योग्य बना दिया जाय कि वे आत्मानुशासित होकर अपनी परिस्थितियों को स्वयं ही व्यवस्थित करना इसका लक्ष्य होता है।

4. सामाजिक क्रिया में हिंसात्मक ढंग से कार्य किया जाता है।

5. सामाजिक क्रिया में एक व्यक्ति के द्वारा भी कार्य आरम्भ किया जाता है परन्तु बाद में इसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सामूहिक सहयोग अपेक्षित होता है।

6. इसमें कार्य जनतांत्रिक मूल्यों और संविधान में दिये गये नागरिक अधिकारों में एक ही आन्दोलन के रूप में होता है। आन्दोलन के प्रारम्भ से पूर्व पूरे जनसमुदाय की सहमति अपेक्षित होती है और इस जन-सहमति से ही आन्दोलन की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

सामाजिक क्रिया के आधारभूत तत्त्व :—इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक क्रिया समाज-कार्य की एक सहायक प्रणाली है, जिसका उद्देश्य सामाजिक नीतियों तथा सामाजिक विधानों में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करना है। इसमें निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश होता है—

1. **समूह अथवा समुदाय की सक्रियता** :—सामाजिक क्रिया तभी सफल हो सकती है जब समूह अथवा समुदाय सक्रिय हों। समुदाय की सक्रियता नियोजित, संगठित और निरूपित होनी चाहिए। इसके सदस्यों में प्रगति तथा परिवर्तन के लिए दृढ़ आकांक्षा होनी चाहिए।

2. **लोकतांत्रिक नेतृत्व** :—सामाजिक क्रिया में नेतृत्व का विकास करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि नेतृत्व सम्बन्धी समाज की सहमति से उद्भूत हो।

3. **जनतांत्रिक कार्य-प्रणाली** :—सामाजिक क्रिया के लिए आवश्यक है कि इनमें जो भी तरीका अपनाया जाय वह जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित हो, क्योंकि समाज-कार्य का दर्शन तथा व्यवहार जनतांत्रिक आदर्शों पर निर्भर है।

4. **साधनों की व्यवस्था** :—सामाजिक क्रिया को आरम्भ करने के पूर्व सम्बन्धित समूह अथवा समुदाय के सभी मौलिक तथा अमौलिक साधनों पर भलीभाँति विचार किया जाय। साधनों का प्रयोग करते समय उनके प्रत्यक्ष एवं दूरगामी प्रभावों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

5. **साधनों और समस्याओं में समन्वय** :—साधनों का सही अनुमान लगाने के बाद ही समस्या का चुनाव किया जाना चाहिए। इसके लिए सामाजिक

क्रिया को आरम्भ करने से पूर्व समस्या से सम्बन्धित साहित्यों का अध्ययन करना चाहिए।

6. **स्वस्थ जनमत :**—सामाजिक क्रिया के लिए स्वस्थ जनमत को भी आवश्यक माना गया है। स्वस्थ जनमत के विकास हेतु समाचार पत्रों, रेडियों, प्रसारण, टेलीविजन तथा सार्वजनिक सभाओं का उपयोग किया जाता है।

7. **समुदाय के सदस्यों का सहयोग :**—कोई भी सामाजिक क्रिया तभी सम्पन्न हो सकती है जब उससे सम्बन्धित समुदाय के सदस्य समस्या के साथ अपना तादात्म्यीकरण करे तथा कार्यक्रम के निर्माण में स्वयं भाग ले। इसके अलावा सामाजिक क्रिया में संलग्न व्यक्तियों को ऐसे निर्देशन की सुविधा प्राप्त हो ताकि उन्हें समय-समय पर उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हल करने के लिए सक्षम बनाया जा सके।

सामाजिक क्रिया के उद्देश्य

1. स्वास्थ्य एवं कल्याण के क्षेत्र में स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर किये जाने वाले कार्य।
2. सामाजिक नीतियों के निर्माण में सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार करना।
3. सामाजिक आँकड़ों को एकत्र करना तथा सूचनाओं का विश्लेषण करना।
4. अविकसित समूहों के लिए माँग करना।
5. सामाजिक समस्याओं के लिए ठोस सुझाव तथा प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
6. नये सामाजिक स्रोतों की खोज करना।
7. सामाजिक समस्याओं के प्रति जनता में जागरूकता लाना
8. जनता का सहयोग प्राप्त करना।
9. सरकारी यंत्र को अपने उद्देश्यों में योग देने के लिए तैयार करना।
10. नीति-निर्धारण करने वाली सत्ता से प्रस्ताव स्वीकृत करवाना।

सामाजिक क्रिया का महत्त्व :

हर समाज में कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं, अनेक प्रकार की समस्याओं को व्यापक पैमाने पर अनुभव किया जाता है। इन आवश्यकताओं के समाधान हेतु आवश्यक परिस्थितियों को उत्पन्न करना सामाजिक क्रिया का कार्य है। समाज-कार्य की इस सहायक पद्धति का उपयोग जनतांत्रिक मूल्यों तथा आदर्शों के प्रसारण के लिए किया जाता है। इस प्रकार संक्षेप में सामाजिक क्रिया के महत्त्व को निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं :—

1. **सामाजिक समस्याओं का निराकरण :**—भारतीय समाज में सामाजिक क्रिया के लिए व्यापक कार्य मौजूद हैं। भारतीय समाज के समक्ष अनेक प्रकार

की समस्याएँ हैं। ऊँच-नीच के आधार पर भेदभाव, स्त्रियों और पुरुषों के बीच भेदभाव आदि अनेक समस्याएँ हैं जिनका समाधान जनतांत्रिक आदर्शों के अनुसार बहुत आवश्यक है। इसके अलावा हरिजन, जनजातियों, श्रमिक महिला, अशिक्षित, विधवा आदि अनेक वर्ग हैं जिनका समाज में समन्वय होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अशिक्षा, अन्धविश्वास, न्यूनतम जीवन स्तर का अभाव आदि अनेक समस्याओं का समाधान आवश्यक है।

2. **वैयक्तिक तथा पारिवारिक मूल्यों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान**—समस्याओं के समाधान की दिशा में सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इन प्रयत्नों के बावजूद समस्याओं का रूप अत्यधिक व्यापक है। साथ ही वैयक्तिक तथा पारिवारिक मूल्यों से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। इनके समाधान हेतु चाहे कानून का सहारा ले, चाहे समूहों या समुदायों में चेतना जाग्रत करे, दोनों ही स्थितियों में सामाजिक क्रिया की पद्धति अत्यन्त उपयोगी है। इन समस्याओं को जनतांत्रिक आदर्शों के अनुकूल सामाजिक क्रिया की मदद से हल किया जा सकता है।

3. **लोकतांत्रिक मूल्य और लोक-चेतना का प्रसार**—समाज-कार्य जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। न्याय, समानता व स्वतंत्रता जनतंत्र के मूलभूत आधार हैं। ये आदर्श सभी को व्यवहार में सुलभ हों इसलिए समाज के मौजूदा स्वरूप में काफी परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जाती है। इसलिए सामाजिक क्रिया को आधार बनाया जा सकता है। सामाजिक क्रिया जन-चेतना के उद्दीपन के लिए अत्यधिक लाभप्रद है।

4. **संघटनात्मक प्रक्रियाओं में प्रोत्साहन**—समाज में प्रायः विभिन्न व्यक्तियों तथा वर्गों द्वारा अनेक प्रकार की सामाजिक प्रक्रियाओं का एक साथ प्रयोग होता है। ये प्रक्रियाएँ विधायी भी होती है और विघटनकारी भी। विधायी प्रक्रियाओं की मदद लेकर सामाजिक क्रिया की गति को तीव्र क्रिया जा सकता है, साथ ही विघटनकारी प्रक्रियाओं से बचाव के उपाय करना भी आवश्यक होता है।

5. इसके द्वारा सामाजिक विधान में सुधार किया जाता है। इसके अलावा सामाजिक प्रगति तथा सामाजिक दशाओं में सुधार करना भी इसका एक उद्देश्य है। सामान्य आर्थिक दशाओं से उत्पन्न निर्धनता तथा व्याधियों जैसी अनेक समस्याओं को सामाजिक एजेन्सियाँ हल नहीं कर पातीं। इन्हें सामाजिक क्रिया द्वारा हल किया जा सकता है।

(vii) समाज-कार्य प्रणालियों में अन्तर्सम्बन्ध

1. **उद्देश्य के आधार पर सम्बन्ध**—समाज-कार्य की सभी विधियों का

उद्देश्य लगभग समान है। सभी विधयों का उद्देश्य व्यक्ति की अधिक से अधिक सहायता करना है, जिससे वह अपनी समस्याओं का समाधान करके तथा विकास की गति में वृद्धि ला सके। वैयक्तिक सेवा-कार्य का उद्देश्य सेवार्थी या एक व्यक्ति की इस प्रकार से सहायता करना होता है जिससे स्वयं सहायता करने की शक्ति का विकास हो सके और बिना विशेष बाह्य सहायता के वह अपनी समस्या के निराकरण के लिए कदम उठा सके। सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से करता है। समूह की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास वह अपनी निपुणता एवं योग्यता के आधार पर करके समस्या को स्पष्ट करता है तथा उन्हीं के माध्यम से लक्ष्य तक पहुँचने के कार्यक्रम का नियोजन करता है। व्यक्ति में सामूहिक कार्य के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि गुणों का विकास करता है। यद्यपि सामूहिक कार्य में केन्द्रबिन्दु समूह होता है परन्तु व्यक्ति के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर वैयक्तिक सेवा-कार्य की सहायता ली जाती है। सामुदायिक संगठन का उद्देश्य भी समुदाय की सहायता करना है, जिससे वह स्वयं विकास एवं उन्नति कर सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्ततोगत्वा इन विधियों का उद्देश्य व्यक्ति की इस प्रकार सहायता करना है जिससे वह स्वयं समर्थ हो सके। कार्यकर्ता तो केवल उसकी आवश्यकता के अनुकूल सहायता करता है परन्तु उद्देश्य में अधिक घनिष्ठता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ हैं। वैयक्तिक सेवा कार्य में व्यक्ति की समस्याओं के निदान व उपचार पर जोर दिया जाता है। व्यक्ति या सेवार्थी स्वयं अपनी समस्या को लेकर कार्यकर्ता के पास जाता है और वह अपनी प्रविधियों द्वारा ग्रसित समस्याओं से सम्बन्धित उपचार करता है, समस्या का उपचार इसके उद्देश्य का केन्द्रबिन्दु होता है। सामूहिक कार्य में 'समूह' व्यक्ति के स्थान पर प्रधान होता है। व्यक्ति गौण हो जाता है। समूह का हित व्यक्ति के हित के ऊपर होता है। समूह का विकास एवं समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना समूह-कार्य का उद्देश्य होता है। कार्यक्रम इसका माध्यम होता है और इन्हीं परिवर्तनों के आधार पर समूह में परिवर्तन तथा विकास आता है और लक्ष्यों की पूर्ति होती है। अतः इसका उद्देश्य समूह-सदस्यों की शिक्षा, विकास और सांस्कृतिक प्राप्ति पर जोर देता है। सामुदायिक संगठन का उद्देश्य समुदाय की विभिन्न समस्याओं को हल करने में समुदाय को क्रियाशील बनाना होता है। व्यक्ति तथा समूह का महत्त्व कम हो जाता है। सामुदायिक संगठन में कार्य व्यक्ति या समूह की मनोसामाजिक संरचना के आधार पर नहीं वरन् सामाजिक संस्थाओं, रीति-रिवाजों, मान्यताओं, सांस्कृतिक स्तर प्रतिमान आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है।

2. सिद्धांत के आधार पर संबंध—समाज-कार्य की प्रणालियों में लगभग समान सिद्धान्तों का उपयोग होता है। मूलरूप में इनमें मानवतावादी सिद्धान्त कार्य करता है। वैयक्तिक कार्य में सेवार्थी सामान्य व्यक्ति होता है। वह किसी प्रकार की हीन भावना से नहीं देखा जाता है। कार्यकर्ता उसे आदर एवं प्रतिष्ठा देता है और आत्मसम्मान का बोध कराता है। वह सम्बन्ध स्थापन पर जोर देता है और उसी के माध्यम से उपचार-योजना तैयार करता है। वह सेवार्थी की मनोदशा के अनुरूप कार्य करता है। वह सेवार्थी के स्तर से उपचार करता है। वह उसके गुणों को स्पष्ट करता है तथा स्वावलम्बन का विकास करता है। सेवार्थी स्वयं समस्या के उपचार में कार्यरत रहता है। सामूहिक कार्य में भी समूह की इच्छा से कार्य किया जाता है। समूह-सदस्य प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक महत्त्वपूर्ण होते हैं। समूह में होने वाली समस्त अन्तःक्रियाएँ; जैसे—समूह निर्माण, उद्देश्यों का निर्धारण, कार्य-प्रणाली, कार्यक्रम नियोजन एवं निर्धारण, संचालन, नेतृत्व तथा निर्णय आदि सदस्यों द्वारा ही प्रेरित होते हैं। समूह में निहित क्षमताओं को प्रकट करने का प्रयास किया जाता है। कार्यकर्ता समूह के सम्बन्ध को महत्त्व देता है। यदि सम्बन्ध उचित नहीं हैं तो कार्यकर्ता समूह के साथ कार्य कर नहीं सकता है और न ही सामूहिक कार्यकर्ता को स्वीकृति प्रदान करता है। सामूहिक संगठन में भी लगभग इन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है, जो कि वैयक्तिक सेवा-कार्य तथा सामूहिक कार्य में महत्त्वपूर्ण हैं। व्यक्ति और समूह की तरह समुदाय को उसी स्थिति में स्वीकार किया जाता है जिस स्थिति में वह होता है। समुदाय की उपयुक्तता के साथ-साथ कार्य किया जाता है। वह स्वयं जब कार्य करने का इच्छुक होता है तभी कार्यकर्ता कोई कार्य करता है। अतः पहले कार्यकर्ता उसमें असन्तोष की भावना का विकास करता है और फिर सकारात्मक मोड़ देता है। सहायता-कार्य इस आधार पर होता है कि समुदाय स्वयं अपनी समस्या हल करने में समर्थ हो सके। वह लोगों में सामुदायिक भावना का विकास करता है। इस उद्देश्य से वह विभिन्न समूहों में पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ बनाने में प्रयत्नशील रहता है, फलस्वरूप अन्तःक्रिया का संचार होता है, कार्यों व विचारों का आदान-प्रदान होता है।

3. प्रक्रिया के आधार पर सम्बन्ध—वैयक्तिक सेवा-कार्य सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन प्रणालियों में यह प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति, समूह तथा समुदाय स्वयं अपनी समस्याओं के निराकरण में समर्थ हो सके आत्मविश्वास की भावना का विकास हो तथा शक्ति में वृद्धि हो। परन्तु इनकी प्रक्रिया में अन्तर है। वैयक्तिक कार्य मे व्यक्ति-विशेष पर बल दिया जाता है। सेवार्थी

स्वयं कार्यकर्ता के पास आता है और अपनी परेशानियों को उसके सामने स्पष्ट करता है तथा सहायता की इच्छा प्रकट करता है। कार्यकर्ता वार्तालाप के माध्यम से समस्या के कारणों को ढूँढ़ता है तथा निदान करता है। इसके साथ ही साथ उपचार-क्रिया भी चलती है अर्थात् वैयक्तिक सेवा-कार्य में प्रक्रिया आवश्यकता-मूलक व रोग-निवारक होती है। सेवार्थी में अहम् शक्ति का विकास होता है और वह समस्या का अपनी बुद्धि एवं क्षमता द्वारा समाधान की चेष्टा करता है। सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता या तो समूह का निर्माण स्वयं करता है या पूर्व संगठित समूह के साथ कार्य करता है। समूह का उद्‌देश्य उन्नति एवं विकास करना या समस्या का समाधान करना होता है। वह समूह को पूर्ण अधिकार देता है कि वही कार्यक्रम का क्रियान्वयन करे तथा अभीष्ट उद्‌देश्य प्राप्त करे। वह केवल अन्तःक्रिया का निर्देशन तथा मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता सामंजस्य सम्बन्धी समस्याओं को भी हल करता है। सामुदायिक संगठन में पूरे सदस्य के हित के लिए कार्य करता है। व्यक्ति उसमें गौण होता है। समुदाय की इच्छा सर्वोपरि होती है और उसका कल्याण करना मुख्य कार्य होता है। कार्यकर्ता मनोवैज्ञानिक आधार के स्थान पर समाजशास्त्रीय आधार को अधिक महत्त्व देता है। समुदाय को समझने के लिए सामाजिक संस्थाओं के रीति-रिवाजों, मान्यताओं आदि का अध्ययन किया जाता है। कार्यकर्ता का उद्‌देश्य समुदाय में परिवर्तन लाना होता है। पूरा समुदाय उसका कार्यक्षेत्र होता है तथा वह सामुदायिक संरचना में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

4. **प्रत्यय के आधार पर सम्बन्ध**—वैयक्तिक सेवा-कार्य तथा सामुदायिक संगठन में लगभग समान प्रत्यय होते हैं। कार्यकर्ता इन विधियों में विभिन्न रूपों से कार्य करता है। जब वह देखता है कि व्यक्ति, समूह या समुदाय स्वयं उचित कदम नहीं उठा सकते तो वह अधिनायक या सत्तावादी हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह आदेश देता है और अन्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। कभी-कभी वह स्वयं आदर्श बन जाता है और व्यक्ति साधनों को पहचान नहीं पाते। वह समर्थकारी तरीका भी अपनाता है। वह समूह में भाग लेने तथा कुशलताओं एवं अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करता है तथा सामंजस्य स्थापित करने में सहयोग प्रदान करता है। समूह या समुदाय के साथ कार्य करते हुए वैयक्तिक सम्पर्क भी बनाये रखता है। वह उसी स्तर से कार्य करता है जहाँ से सम्पर्क भी बनाये रखता है। वह उसी स्तर से कार्य करता है जहाँ से व्यक्ति आसानी से कार्य करते हैं।

5. **व्यक्ति के ज्ञान के आधार पर सम्बन्ध**—समाज-कार्य के सिद्धान्तों में व्यक्ति के ज्ञान पर विशेष बल दिया जाता है। सबसे पहले उसके विषय में सम्पूर्ण

इतिहास प्राप्त किया जाता है तथा समस्या का निदान वैयक्तिक अध्ययन के आधार पर किया जाता है। वैयक्तिक सेवा-कार्य में कार्यकर्ता सेवार्थी के जीवन से सम्बद्ध समस्त घटनाओं का अभिलेखन करता है। वह कभी भी एक परिस्थिति में दो सेवार्थियों को समान नहीं मानता, बल्कि प्रत्येक का अलग-अलग ज्ञान प्राप्त करता है और उसके अनुरूप उपचार-प्रक्रिया बनाता है। सामूहिक कार्य में यद्यपि कार्यकर्ता का ध्यान समूह पर केन्द्रित होता है परन्तु वह वैयक्तीकरण का सिद्धान्त अवश्य अपनाता है। प्रत्येक सदस्य की आदतों, रुचियों, मनोवृत्तियों आदि का ज्ञान रखता है। सामुदायिक संगठन में व्यक्ति-विशेष के विषय में ज्ञान रखना सम्भव नहीं होता है परन्तु कार्यकर्ता समूह के माध्यम से प्रयत्न करता है। वह समुदाय की आवश्यकता का पता लगाता है। आवश्यक साधनों की खोज करता है, उन समूहों का पता लगाता है जिनका समुदाय में विशेष महत्त्व होता है और जिन्हें अपनी समस्याओं के विषय में ज्ञान रहता है तथा उन्हें हल करने के लिए उत्सुक रहता है। वह वैयक्तिक सम्पर्क भी रखता है।

6. **कार्य की रूपरेखा निश्चित करने के आधार पर संबंध**—समाज-कार्य की तरह इसमें यह विशेषता है कि कोई भी कार्य सेवार्थी पर दबाव डाल कर नहीं कराया जाता। वे जिस प्रकार और जैसा कार्य करने के लिए इच्छा करते हैं वैसे ही कार्य किया जाता है। वैयक्तिक सेवा-कार्य में सेवार्थी को अपना रास्ता, उपाय या उपचार के तरीकों का चुनाव करने की पूरी छूट होती है। यद्यपि कार्यकर्ता सम्पूर्ण विवरण तथा उपचार-प्रक्रिया प्रस्तुत करता है, परन्तु यह सेवार्थी की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह उसको माने या न माने। सामूहिक कार्यकर्ता में भो समूह-सदस्य स्वयं कार्यक्रम का चुनाव करते तथा निर्णय में भाग लेते हैं। सामुदायिक संगठन में कार्यकर्ता केवल छिपी समस्याओं को प्रस्तुत करता और सम्भव उपायों को स्पष्ट करता है। वह इसे समुदाय की इच्छा पर छोड़ देता है कि कौन-सा तरीका समस्या को सुलझाने का उसे पसन्द है।

7. **कार्यक्रम के विकास के आधार पर संबंध**—समाज-कार्य में कोई भी कार्यक्रम पहले से निश्चित नहीं किया जाता है। जब समूह में अन्तःक्रिया का संचार होता है तो कार्यक्रम स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। वैयक्तिक सेवा-कार्य में कार्यकर्ता और सेवार्थी के बीच पहले मानसिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं, फिर अन्तःक्रिया का संचार होता है और तब कार्यात्मक उपचार का पथ निर्धारित होता है। सामूहिक कार्य में जब कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है तब कार्यक्रम का विकास होता है।

अध्याय 8

सामाजिक सामूहिक कार्य के प्रत्यय

प्रत्यय (Concept) एक विचारधारा, मत अथवा मूल विचार होता है जो किसी एक वर्ग के पदार्थों, घटनाओं एवं विचारों को दर्शाता है। वे व्यक्तियों एवं विशिष्ट घटनाओं के स्थान पर भावात्मक प्रतिनिधित्व करते हैं।[1] इडवार्ड सपीर (Edward Sapir)[2] ने वे 4 भावात्मक स्तरों में अन्तर किया है तथा निम्न प्रकार के प्रत्ययों का उल्लेख किया है :—

(1) मूलभूत या साकार प्रत्यय—जैसे पदार्थ, क्रियायें या गुण, जो प्रायः स्वतन्त्र शब्दावली द्वारा स्पष्ट किये जाते हैं अथवा इनमें आमूल (Radical) तत्त्व होता है।

(2) शब्द साधनात्मक (derivational) प्रत्यय—ये कम साकार होते हैं तथा जिनका प्रगटन आमूल तत्त्वों के द्वारा आमूल तत्त्वों का होता है अथवा आन्तरिक परिवर्तन द्वारा होता है।

(3) साकार सम्बन्ध के प्रत्यय।

(4) शुद्ध सम्बन्ध के प्रत्यय, जो विशुद्ध रूप से गणित तथा न्यायशास्त्र की तरह सूक्ष्म हैं।

समाज-कार्य के अभ्यास के सिद्धान्तों का निरूपण इन्हीं प्रत्ययों के आधार पर किया गया है, क्योंकि प्रत्यय प्रमुख विचार हैं जिनको ध्यान में रखकर कार्यकर्ता अपनी भूमिका का निष्पादन करता है।

---

1. A concept is a thought, an opinion, or a fundamental idea. Concepts are general terms which usually provide a name for a class of objects and events as well as ideas. They represent abstractians rather than individual and concrete cases.

   Abrahamson, A. C.; Group Methods in Supervision and Staff Development. Harper and Row, Newyork, 1959, p. 18.

2. Sapir, Edward : Language Harcourt, Brace and Company, Newyark, 1921, p. 106-107.

प्रत्यय एवं सिद्धान्त दो ऐसे शब्द हैं जिनका उल्लेख एक-दूसरे के स्थान पर किया जाता है। लेकिन दोनों में भिन्नता है। प्रत्यय का तात्पर्य महत्त्वपूर्ण एवं मूल विचारों से होता है। व्यक्तियों, समूहों या समाज के प्रति हमारे ये विचार सामाजिक, जैविकीय तथा मानविकी (Numanities) से उत्पन्न हुए हैं तथा समाज-कार्य अभ्यास के मूलभूत आधार हैं। इसके विपरीत सिद्धान्त निर्देशनात्मक अभिकथन (guiding assertions) या कथन (statements) होते हैं, जो अनुभव तथा अनुसंधान द्वारा किये गये हैं।

सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्न प्रत्यय महत्त्वपूर्ण हैं :—

1. सामर्थ्य का प्रत्यय (**The Concept of Enablement**)।
2. भागीकरण का प्रत्यय (**The Concept of Participation**)।
3. सम्बन्ध का प्रत्यय (**The Concept of Relationship**)।
4. वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रत्यय (**The Concept of individual Differences**)।
5. संस्कृति का प्रत्यय (**The Concept of culture**)
6. बहुकारणात्मक व्यवहार का प्रत्यय (**The Concept of Mutticausation Behaviour**)।
7. परिवर्तन में अवरोध का प्रत्यय (**Concept of Resistence to change**)।
8. मनोवृत्ति का प्रत्यय (**The Concept of Attitues**)।
9. भूमिका का प्रत्यय (**The Concept of Role**)।

सामाजिक सामूहिक कार्य एक सहायक प्रक्रिया है, जो व्यक्तियों के साथ एक समूह के सदस्यों के रूप में आचरण करती है। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता समूह के सदस्यों के मध्य तथा सदस्यों और स्वयं के बीच के सम्बन्धों के साथ सम्बद्ध होता है। वह समूह के व्यक्तियों की अन्योन्याश्रित प्रक्रिया में भाग लेने के द्वारा ही प्रमुखतया कार्य करता है। कार्यकर्ता के कार्यों का दिग्दर्शन सामूहिक जीवन के उसके व्यावसायिक ज्ञान द्वारा और व्यक्तिगत सदस्यों को उसकी सहायता की आवश्यकता द्वारा होता है। ऐसा ज्ञान समूह-कार्यकर्ता को इस योग्य कर देता है कि वह समूह को सम्पूर्ण रूप से और समूह के प्रत्येक सदस्य को व्यावसायिक सेवा प्रदान कर सके। वह निम्न प्रत्ययों को अपने व्यवहार का आधार बनाता है—

(1) **सामर्थ्य का प्रत्यय**—सामूहिक कार्यकर्ता सदस्यों को सामूहिक जीवन में जिम्मेदारी के साथ भाग लेने में, उसके नियोजन तथा कार्यक्रम निर्माण में

अपने विचारों, कुशलताओं तथा व्यक्तिगत अभिवृत्तियों के विकास में और समूह के उद्देश्यों तथा कार्यों के सम्बन्ध में अपने निर्णय स्वयं करने में सहायता पहुँचाता है।[3] सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता इसी प्रत्यय को अपने व्यवहार में लाता है और वह इसे आधार मानकर समूह के साथ कार्य करता है। वह सामर्थ्यदाता के रूप में निम्न कार्य करता है :—

(1) सदस्यों को अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने में सहयोग करता है। वह इनका विवरण इस प्रकार से प्रस्तुत करता है जिससे सदस्य यह अनुभव करने लगते हैं कि उनकी समस्या गम्भीर है तथा उन्हें इनसे निपटने के लिए कोई न कोई उपाय करना चाहिये।

(2) वह सदस्यों में वर्तमान स्थितियों के प्रति असंतोष पैदा करता है। क्योंकि जब तक व्यक्ति अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहेगा तब तक उसके सुधार में प्रयत्न की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं करेगा।

(3) वह सदस्यों को सहयोगिक सम्बन्ध स्थापित करने के अवसर प्रदान करता है। कार्यक्रमों का आयोजन इस प्रकार से करता है जिससे उनमें पारस्परिक मेल-मिलाप बढ़ता है और वे एक-दूसरे के मानसिक रूप से निकट आते हैं।

(4) कार्यकर्ता सदस्यों को क्रिया करने के लिए उत्साहित करता है। वह उन्हें अपने कार्यक्रमों को स्वयं संचालित करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

(5) वह सदस्यों को सामुदायिक स्रोतों के विषय में अवगत कराता है तथा उसके उपयोग की विधि बतलाता है।

(6) समुदाय की विघटनकारी शक्तियों के विषय में समूह को अवगत कराता है।

(7) परिवर्तन की इच्छा को सुदृढ़ करता है।

(8) कार्यकर्ता समूह के सदस्यों को दूसरे समूहों के साथ ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्साहित करता है जो उत्तरदायी नागरिकता, समुदाय के सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक या अन्य सामाजिक समूहों के बीच परस्पर ग्रहण

---

3. "In the enabling method, the members are helped to learn new ideas, develop new skills, change attitudes, and deepen their personalities through participation in a social process where in they make decisions and take the social action necessory to accomplih the purposes of the group." W. Lian, G and Ryland G, Social Group work practice, Honghton Mifflin, Company, Newyork 1949, p. 61.

शक्ति और प्रजातान्त्रिक उद्देश्यों की ओर अपने समाज की निरन्तर प्रगति में एक भागीदारी लाने में योगदान कर सकें।

(9) कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को नियोजन तथा कार्यक्रम बनाने की योग्यता सामूहिक अनुभव द्वारा उत्पन्न करता है।

(10) कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को उन मनोवृत्तियों के परिवर्तन के अवसर देता है जो विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं।

सामाजिक सामूहिक कार्य इस विधि को अपनाकर व्यक्तिगत सदस्यों को सम्पूर्ण के एक अंग के रूप में स्वीकृति होने की संतुष्टि प्राप्त करने, अपने को व्यक्त करने और समूह के सामूहिक कार्यों में हिस्सा लेने में सहायता मिलती है। समाजकार्य इस तरीके को ही रचनात्मक सामूहिक जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वांछित उपाय समझता है।

(2) **भागीकरण का प्रत्यय**—सामूहिक कार्यों की सफलता के लिए सदस्यों का भागीकरण अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप समूह-सदस्यों में समूह-कार्यक्रमों के प्रति लगाव की भावना उत्पन्न होती है और इन कार्यक्रमों का अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यान्वयन सम्भव हो जाता है। सहभागिता जन सम्मिलन युक्त प्रजातन्त्र की एक अनिवार्य आवश्यकता है। सदस्य सहभागिता या भागीकरण से तात्पर्य इस स्थिति से होता है जिसमें सदस्यों को नीति निर्धारण एवं नियोजन से लेकर कार्यक्रमों के कार्यान्वियन, मूल्यांकन एवं नीति के पुनर्निर्धारण तक के सभी चरणों में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अधिक से अधिक अवसर प्राप्त हो।

सामाजिक सामूहिक कार्य का दृढ़ विश्वास है कि भागीकरण की सीमा सामूहिक कार्यों की उपलब्धि की कसौटी है। इसकी वृद्धि के लिए कार्यकर्ता सदैव तत्पर रहता है। वह सदस्यों को पर्याप्त एवं विषयात्मक सूचना देता है तथा उन्हें विभिन्न विकल्पों एवं सीमाओं की जानकारी देता है। वह सदस्यों की अभिरुचियों एवं सामाजिक संरचना में संघर्षों को उत्पन्न करने उनकी सामूहिक कार्यक्रमों में सहभागिता को प्रोत्साहित करता है। वह मानव-संसाधनों का विकास करते हुये उनमें इस बात की योग्यता एवं क्षमता विकसित करता है कि वे स्वयं विभिन्न विकास-कार्यक्रमों की जानकारी प्राप्त करने और इनसे लाभान्वित होने के लिए आगे आयें।

सामूहिक कार्य व्यक्ति तथा समूह का बौद्धिक मूल्य एवं व्यक्तिगत महत्ता को स्वीकार करता है, जिससे समस्याओं एवं अन्य मुद्दों पर निर्णय लेने में सक्रिय भागीकरण सम्भव होता है। कार्यकर्ता का मुख्य उद्देश्य ही सदस्यों को स्वावलम्बन प्रदान करना होता है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका सक्रिय भागी-

करण आवश्यक होता है। सामूहिक भागीकरण का मूलाधार सामूहिक क्रिया है, जो स्वयं अनेक कारकों पर निर्भर है। पारस्परिक अन्तःसम्बन्ध सामूहिक क्रिया को प्रभावित करते हैं। उपलब्ध स्रोत, साधन, शक्ति-विभाजन, सामाजिक प्रतिमान तथा संहितायें, बाह्य संस्थाओं से सम्बन्ध, स्रोतों तथा सुविधाओं का उपयोग आदि सामूहिक भागीकरण को प्रभावित करते हैं।

3. सम्बन्ध का प्रत्यय

प्रत्येक जोव के विकास के लिए दो दशाओं का होना आवश्यक होता है—पोषण तथा जन्मजात शक्तियों का उपयोग।[4] साधारण से साधारण पेड़-पौधों, जीव-जन्तुओं तथा पशुओं के लिए भी यह कथन सत्य है। परन्तु वे इन दोनों दशाओं का समायोजन साधारण प्रकार से करते हैं। मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक जटिलता के कारण उसका पोषण एवं जन्मजात शक्तियों का उपयोग अत्यधिक जटिल है। मानवोचित गुणों के विकास के लिए उसको न केवल शारीरिक बल्कि मनोवैज्ञानिक पोषण की भी आवश्यकता होती है। वह अपनी शक्तियों का उपयोग विकास तथा समायोजन के संघर्ष में न केवल शरीर बल्कि मस्तिष्क द्वारा करता है और जिसके सम्मिलन होने पर मनोवैज्ञानिक व्यवहार प्रदर्शित होता है, जिसे हम व्यक्तित्व कहते हैं।[5] मानव-व्यक्तित्व के विकास के लिए पोषण संवेगात्मक सम्बन्धों की आवश्यकता होती है। यह परमावश्यक सम्बन्ध अपनी माता से स्थापित होता है। धीरे-धीरे सम्बन्धों के विस्तार में तीव्रता एवं जटिलता आती है और सम्बन्धों का स्वरूप दो प्रकार का हो जाता है :—दीर्घकालीन एवं विस्तृत तथा लघुकालीन एवं सूक्ष्म।

सम्बन्ध एक प्रत्यय है, जो मौखिक अथवा लिखित वार्तालापों में प्रकट होता है, जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति कुछ लघुकालीन, दीर्घकालीन, स्थायी अथवा अस्थायी सामान्य सम्बन्धों एवं भावनाओं के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। ऐसा प्रायः सोचा जाता है कि केवल एक साथ एक स्थान पर एकत्र होने से या सुखदायी अन्तःसंचार से या दो व्यक्तियों में दीर्घकालीन सामीप्य या जान-पहचान से सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। मनुष्यों के बीच परमावश्यक सम्बन्ध भागीकृत एवं संवेगात्मक परिस्थितियों से उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य सामाजिक एवं सांवेगिक प्राणी होने के नाते उसके दूसरों से सम्बन्ध

---

4. Perlman, H. H. : Social Case Work–A Problem Solving Process the University of chicago Press, chicago, 1957, p. 64.
5. Ibid, p. 64.

उसकी वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करते हैं। इसके साथ ही साथ उसका सम्पूर्ण समायोजन भी इसकी परिधि क्षेत्र में आ जाता है। सभी सामाजिक कार्यकर्ता इस बात में विश्वास करते हैं कि जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी सामान्य उद्देश्य के लिए एकत्रित होते हैं तो उसका चरित्र तथा परिणाम पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव अवश्य पड़ता है। यही सम्बन्ध का प्रभाव है।

बीस्टेक (Biestek)[6] ने सम्बन्ध के 9 तत्वों का उल्लेख किया है :—

1. भावनाओं का उद्देश्यपूर्ण जागरण,
2. नियंत्रित सांवेगिक भागीकरण,
3. स्वीकृति,
4. वैयक्तीकरण,
5. अनिर्णायिक मनोवृत्ति,
6. आत्मनिश्चयकार्य,
7. गोपनीयता।

समाजकार्य इस कथन में विश्वास रखता है कि सेवार्थी चाहे एक व्यक्ति हो अथवा समूह, उसे अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही भावनाओं को प्रकट करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये। कार्यकर्ता सदस्यों की भावनाओं की न तो प्रशंसा करता है और न ही उसकी निन्दा करता है, वह केवल उद्देश्यपूर्ण ढंग से उनकी बातों को सुनता रहता है तथा सभी प्रकार की आवश्यक बातों को प्रकट करने के लिए उत्साहित करता है। इससे जहाँ एक ओर सदस्यों को आन्तरिक संतोष एवं शान्ति प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है।

कार्यकर्ता समूह के साथ कार्य करते समय सदैव अपनी सांवेगिक भावनाओं पर नियंत्रण रखता है। यद्यपि वह समूह के प्रति प्रेम, सहयोग, स्नेह तथा लगाव प्रदर्शित करता है परन्तु इस प्रकार के व्यवहार का उद्देश्य व्यावसायिक होता है। वह सदैव इस प्रकार के व्यवहार से सामूहिक कार्यक्रमों को सफल बनाने का प्रयत्न करता है। कार्यकर्ता सदस्यों की विशेषताओं, भावनाओं, विचारों तथा वैयक्तिक गुणों को उचित स्थान प्रदान करता है। उनको इस बात

---

6. Biestek, S. J. : The case work Relationship Loyola University press, Newyork, 1957.

का विश्वास दिलाता है कि उनके आत्म का विलयन किसी भी स्थिति में नहीं होगा। कार्यकर्ता सदस्यों की शक्तियों और दुर्बलताओं, उनके अनुकूल एवं प्रतिकूल गुणों, उनकी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं तथा मनोवृत्तियों के अनुसार ही व्यवहार करता है। सम्बन्ध घनिष्ठ बनाने का चौथा आधार वैयक्तीकरण है, जिसका उपयोग कार्यकर्ता सामूहिक कार्य में करता है। वह प्रत्येक सदस्य के विषय में जानकारी रखता है तथा उनकी रुचियों के अनुरूप ही कार्यक्रम चलाता है। प्रत्येक सदस्य को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिए अपनी रुचि के अनुसार कार्यक्रम उपयोग करने का अधिकार दिया जाता है। समूह के सम्बन्ध में कार्यकर्ता की मनोवृत्ति अनिर्णायक होने से वह किसी प्रकार अच्छी या बुरी धारणा नहीं बनाता है। समूह को स्वयं निर्णय लेने का अधिकार रहता है। उसे अपने कार्यक्रमों को निश्चित करने, क्रियान्वयन करने तथा उपयोग करने की स्वतन्त्रता होती है। कार्यकर्ता केवल दिशा निर्देशन करता है। सदस्यों द्वारा बतलायी गयी बातों को गुप्त रखकर सम्बन्ध को और अधिक घनिष्ठ बनाता है।

4. **वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रत्यय**—वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) को प्रत्यय का विकास सर्वप्रथम 1796 ई० में हुआ, जब एक प्रयोगशाला-सहायक किनेब्रूक (Kinnebrook) नौकर था, जो ग्रीनविच की रवायल आब्जरवेटरी में नौकर था, को नौकरी से निकाल दिया गया, क्योंकि उसके द्वारा नक्षत्रों के सम्बन्ध में अवलोकन एस्ट्रोनोमर रवायल से 8/10 सेकेण्ड विलम्ब दर्शाते थे। इस भिन्नता का आधार टेकनीशियन की अयोग्यता मानी गयी। लेकिन कुछ ही वर्षों बाद यह स्पष्ट रूप से पाया गया कि यह अन्तर व्यवित की प्रतिक्रिया के लिए लिये गये समय पर निर्भर होता है। अर्थात् व्यक्ति व्यक्ति में प्रतिक्रिया करने का समय भिन्न-भिन्न होता है। इस खोज ने मानव-व्यवहार के अध्ययन को आवश्यक सहयोग प्रदान किया।

प्रत्येक व्यक्ति की आदतें, इच्छायें, आवश्यकतायें, निपुणतायें, प्रविधियाँ, समस्या समाधान करने की क्षमता, व्यवहार का ढंग, प्रत्यक्षीकरण, मनोवृत्ति आदि भिन्न-भिन्न होती हैं। इस भिन्नता का आधार वंशानुक्रम तथा पर्यावरण है। अतः कार्यकर्ता व्यक्ति का व्यक्तिगत अध्ययन करता है तथा उसके वंशानुक्रम का इतिहास ज्ञात करता है। पर्यावरण के सभी प्रकारों, नैतिक, जैविकीय, सामाजिक तथा उनके प्रभावों को ज्ञात करता है। वह प्रत्येक की संस्कृति का अध्ययन करता है, क्योंकि व्यक्ति का व्यवहार संस्कृति को परिलक्षित करता है। सामूहिक कार्यकर्ता अपने कार्यों को इस प्रकार से करता है जिससे वैयक्तिक भिन्नता रहते

हुये भी सभी सदस्य समान रूप से भाग लेने में समर्थ होते हैं। इस प्रत्यय को मानकर ही वह वैयक्तीकरण सिद्धान्त का उपयोग करता है।

5. संस्कृति का प्रत्यय—व्यक्ति, समूह तथा समुदाय ये तीनों संस्कृति के अभिन्न अंग हैं, जो न केवल व्यक्ति व समूह की प्रतिक्रियात्मक क्षमता को प्रभावित करती है बल्कि समाधान करने के तरीकों को भी बतलाती है। उसमें उत्तरदायित्व की भावना, नैतिकता का स्वरूप, सहनशीलता, कष्ट सहने की क्षमता, आदर-सम्मान प्रदर्शन, मनोवृत्तियों, व्यवहार प्रतिमान आदि संस्कृति के द्वारा ही निर्मित किये जाते हैं। जन्म से बालक न तो सामाजिक होता है और न ही समाज विरोधी, बल्कि उसमें केवल सामाजिक बनने के गुण विद्यमान होते हैं। संस्कृति ही वह तत्त्व है जो जैविकीय प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करती है। 'संस्कृति वह जटिल सम्पूर्णता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा इसी प्रकार की ऐसी सभी क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है.' ।[7] संस्कृति को उस व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें हम सामाजिक रूप से प्राप्त और आगामी पीढ़ियों को संचारित कर दिये जाते वाले निर्णयों, विश्वासों, आचरणों तथा व्यवहार के परम्परागत प्रतिमानों से उत्पन्न होने वाले प्रतीकात्मक और भौतिक तत्त्व को सम्मिलित करते हैं।[8] संस्कृति के **3** तत्त्व **हैं**—क्रिया व्यवस्था, आदर्शात्मक व्यवस्था, प्रतीकात्मक तथा भौतिक तत्त्वों की व्यवस्था। क्रिया-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रथाओं, जनरीतियों और कार्य-पद्धतियों को सम्मिलित करते हैं। ये व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। आदर्शात्मक व्यवस्था क्रियाओं के रूप तथा अधिकार व कर्तव्य निर्धारित करती है। प्रतीकात्मक व्यवस्था अन्तःक्रियाओं का रूप निश्चित करती है। सामाजिक कार्यकर्ता के लिए यह आवश्यक होता है कि वह सभी सदस्यों की सांस्कृतिक विशेषताओं का गहन अध्ययन करे तथा सांस्कृतिक भिन्नताओं के तत्त्वों को सदैव ध्यान में रखे। समूह

---

7. "Culture is that complex whole which includes Knowledge beliefs, arts, morals, law, customs, and any other capabileties and habits acquired by man as a member of society. Tylor, B. B Primitine culture, p. 1.

8. Culture may be defined as a system of socially acquired and transferred standard of judgement, belief and conduct, as well as the symbolic and material products of the resulting conventional patterns of behaviour. Lundberg." Sociology, 1968, p. 172.

के सदस्य अपनी संस्कृति के अनुरूप ही विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं तथा व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। संस्कृति ही व्यक्तित्व की वास्तविक अभिव्यक्ति है।

क्लूरवौन और मूरे[9] का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ सीमा तक—(1) अन्य सभी व्यक्तियों की तरह होता है, (2) अन्य कुछ व्यक्तियों की तरह होता है, (3) दूसरे किसी भी व्यक्ति की तरह नहीं होता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि जैविकीय योग में सभी व्यक्ति एक-दूसरे के समान होते हैं, क्योंकि सभी व्यक्तियों की जैविकीय आवश्यकतायें और उनको प्रभावित करने वाले जैविकीय नियम समान प्रकृति के होते हैं। सामाजिक क्षेत्र में एक व्यक्ति कुछ व्यक्तियों के समान होता है। सांस्कृतिक प्राणी के रूप में व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के समान नहीं होता है। संस्कृति को ग्रहण करने की मात्रा के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य आ जाता है। संस्कृति द्वारा उत्पन्न व्यवहार की इस भिन्नता का ही परिणाम है कि किन्हीं भी दो व्यक्तियों का व्यक्तित्व एक-दूसरे के बिलकुल समान नहीं होता है। सामूहिक कार्यकर्ता सांस्कृतिक भिन्नता को ध्यान में रखकर समूह के साथ कार्य करता है।

6. **बहुकारणात्मक व्यवहार का प्रत्यय**—व्यक्ति का व्यवहार अनेक कारकों से प्रभावित होता है। इस कथन को जैविकीय, भौतिक, सामाजिक तथा व्यवहार विज्ञानों ने अपने अनुसन्धानों के द्वारा सिद्ध कर दिया है। किसी भी प्रकार के व्यवहार चाहे वह सामान्य हो अथवा असामान्य, कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं होता है बल्कि अनेक कारकों का पुञ्ज प्रभावकारिता में भिन्नता रखते हुये व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं। व्यवहार की भिन्नता के साथ-साथ इसके कारणों में भी भिन्नता आ जाती है। अतः किसी एक कारक को अन्य कारकों के पुञ्ज से पृथक् करके उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। लक्षण के आधार पर भी व्यवहार के कारण को निश्चित करना असम्भव होता है, क्योंकि एक प्रकार का लक्षण अनेकों कारकों से उत्पन्न होता है। सामूहिक कार्यकर्ता समूह सदस्यों के व्यवहार का विश्लेषण इसी प्रत्यय के आधार पर करता है। वह सदस्यों की आन्तरिक एवं बाह्य दशाओं का अध्ययन करता है तथा उन स्थितियों का आंकलन करता है जो समूह-कार्य को सकारात्मक सहयोग प्रदान करते हैं। वह उन कारकों की भी खोज करता है जो सामूहिक क्रिया में बाधक होते हैं। चारलोटे टावले (Charlotte Towle)[10] ने इन कारकों का वर्णन व्यावसायिक

9. Kluckholm, Murray, (ed) : Personality, p. 5ɔ.
10. Towle, Charlotte : The learner in Education for the Professions : As seen in Education for Social work, University of chicago Press, Chicago, 1954, pp. 27-52.

शिक्षा के अन्तर्गत किया है। नाथेनियल कैन्टर (Nathaniel cantor)[11] ने भी व्यवहार-गत्यात्मकता का वर्णन समूह के सीखने के सन्दर्भ में किया है। सामूहिक कार्यकर्ता सदैव व्यवहार के उत्तरदायी कारकों के पुंज के रूप में अध्ययन करता है।

7. **परिवर्तन में अवरोध का प्रत्यय**—व्यक्ति, समूह तथा समुदाय में परिवर्तन एवं विकास लाने में सदैव अवरोधों का सामना करना होता है। क्योंकि सामाजिक शक्तियाँ जहाँ एक ओर सहायता देती हैं वहीं दूसरी ओर बाधा भी उत्पन्न करती हैं। समाज-कार्यकर्ताओं ने समाज-सुधार आन्दोलन के दौरान इस समस्या का सामना विशेष रूप से किया है।

अहं मनोविज्ञान ने अवरोध समझने के ज्ञान का विकास किया है। अवरोध का तात्पर्य विभिन्न सुरक्षात्मक यन्त्रों द्वारा चिकित्सा का विरोध करना है। जिस व्यक्ति में सम्प्रेरणा शक्ति कमजोर होती है वह सहायता लेने में हिचकिचाहट महसूस करता है। अवरोध का होना या न होना प्रायः सहायता के रूप पर निर्भर करता है। यदि व्यक्ति में स्वयं परिवर्तन करना होता है तो सम्भवतः अवरोध अधिक नहीं होता है। इसके अतिरिक्त जब व्यक्ति स्वयं सहायता के लिए प्रार्थना नहीं करता है तब विरोध अधिक होता है। समस्या की विशेषता पर भी अवरोध का होना या न होना निर्भर करता है। यदि समस्या का सम्बन्ध सांस्कृतिक मूल्यों से होता है तो अवरोध अधिक होता है। कार्यकर्ता का कार्य अहं-कार्यात्मकता का ज्ञान प्राप्त करना तथा उसके आधार पर अवरोधों को दूर करने का प्रयत्न करना होता है। उसे अवरोधों का ज्ञान होना आवश्यक होता है, क्योंकि बिना अवरोधों को ज्ञात किये व्यक्तित्व का विकास नहीं किया जा सकता है। वह अवरोध को कार्य में बाधक न समझकर सहायक समझता है। यह इसकी अपने लिए ऐसी कोई चुनौती नहीं समझता है जिसके लिए किसी योजना को तैयार करना है बल्कि वह इसे चालक शक्ति समझता है। वह समझता है कि परिवर्तन में अवरोध उत्पन्न करने का कारण समस्या समाधान के लिए सदस्य को अच्छे से अच्छे तरीकों को प्राप्त करना है।

8. **मनोवृत्ति का प्रत्यय**—मनोवृत्ति मानसिक दशा की द्योतक है जिसके अनुसार व्यक्ति कार्य करता है। इसका व्यक्ति के व्यवहार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्यक्ति की जैसी मनोवृत्ति होती है, वह उसी प्रकार का व्यवहार करता है। मनोवृति एक मानसिक और स्नायुतिक तत्परता है जो अनुभवों द्वारा

---

11. Cantor, Nathaniel : The Dynamics of Learning, Foster and Stewart Corporation Newyork, 1946.

संगठित होती है, जो व्यक्ति के प्रत्युत्तर का निर्दिष्ट गतिगामी प्रयत्न, उन सब वस्तुओं एवं स्थितियों के प्रति करती है, जिनसे वह सम्बन्धित है।[12] "मनोवृत्ति को स्थायी प्रेरणाओं, संवेगों, प्रत्यक्षीकरण तथा ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के उस संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो कि वैयक्तिक संसार के कुछ पहलुओं से सम्बन्धित है।[13] इससे स्पष्ट होता है कि मनोवृत्ति व्यक्ति के कार्य करने की एक प्रवृति है, जो किसी वातावरण सम्बन्धो तत्त्वों के पक्ष में होती है अथवा विपक्ष में। इसी कारण मनोवृत्ति का सकारात्मक तथा नकारात्मक मूल्य होता है। इसके द्वारा वह अपने परिवेश की वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करता है, उनके बारे में कुछ विचारों तथा संकेतों का अनुभव करता है और उसी के अनुरूप एक विशेष प्रकार की क्रिया करता है। मनोवृत्तियाँ किसी करण, व्यक्ति, आदर्श आदि न पक्ष तथा विपक्ष दोनों में अभिव्यक्त होती है। इस कारण मनोवृत्ति में रुचि, अरुचि, अच्छा-बुरा, अनुकूल-प्रतिकूल सभी प्रकार के भावों का समावेश होता है। ये व्यवहार की दिशा निश्चित करती है। विशिष्ट परिस्थितियों में व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा, यह उसकी मनोवृत्ति पर निर्भर होता है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस प्रत्यय को प्रारम्भ से ही अधिक महत्त्व दिया है क्योंकि व्यक्ति में परिवर्तन तभी किया जा सकता है जब उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाया जाय। कार्यकर्ता सदस्यों को मनोवृत्तियों का मूल्यांकन तथा उनके सामाजिक अवरोधों एवं दबावों को 4 प्रकार से समझने का प्रयत्न करता है— सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, समुदाय तथा समूह की विशेषतायें, परिवार तथा व्यक्ति सदस्य, सामाजिक कार्यकर्ता की विशेषतायें। सामाजिक कार्यकर्ता को समायोजन के लिए इन मनोवृत्तियों को समझना होता है। स्थितियों में मनोवृत्ति को समझना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक समझा जाता है :—

1. वित्तीय सुरक्षा,
2. निर्भरता तथा आत्मनिर्भरता,

---

12. An attitude is a mental and neural set of readiness organized through experience, exerting a directive or dynamic influence upon the individual's response to all objects and situations with which it is related.
    Allport, G. : A Handbook up Social Psychology, p. 792.
13. Krech and Crutch field : Theory and Problem of Social Psychology, p. 152.

3. परिवार में भूमिका तथा स्थिति,
4. विवाह तथा तलाक,
5. परिवार से बाहर प्राधिकरण (authority),
6. बालकों की देखरेख तथा प्रशिक्षण,
7. अवैधता (illegitimacy),
8. व्यावसायिक भिन्नता,
9. कार्य,
10. विशेष रूप,
11. असामाजिक व्यवहार,
12. संस्कृति,
13. राजनैतिक विश्वास ।

इन सभी कारकों को सही अर्थ में समझकर ही कार्यकर्ता समूह के साथ अपनी वास्तविक भूमिका निभा सकता है । जब कार्यकर्ता और समूह-सदस्यों की मनोवृत्ति समान होती है तो समूह की उपलब्धि अत्यधिक होती है । समूह-सदस्य अपनी मनोवृत्ति के आधार पर ही सामूहिक सेवाओं की उपयोगिता को समझते हैं तथा उनका उपयोग करते हैं । समुदाय में उपलब्ध साधनों के उपयोग की सीमा भी इसी पर निर्भर है । अधिकांश कठिनाइयों का कारण व्यक्ति की असहयोगिक मनोवृत्ति होती है । अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि समूह-सदस्यों की मनोवृत्तियों का उचित मापक करे तथा उसी के अनुरूप कार्यक्रमों के निर्धारण एवं कार्यान्वियन के लिए सलाह दे ।

भूमिका का प्रत्यय :

भूमिका शब्द का प्रयोग किसी स्थिति से संबंधित सांस्कृतिक प्रतिमान की समग्रता के लिए किया जाता है । इसके अन्तर्गत सभी मनोवृत्तियों, मूल्यों तथा व्यवहारों को सम्मिलित करते हैं जिन्हें कि समाज एक स्थिति-विशेष पर आसीन प्रत्येक एक सभी व्यक्तियों के लिए निर्धारित करता है । अपनी स्थिति का औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति को कुछ करना होता है, उसी को भूमिका कहा जाता है । सार्जेण्ट के अनुसार 'किसी व्यक्ति की भूमिका सामाजिक व्यवहार का वह प्रतिमान अथवा प्रकार है जो कि उसे एक परिस्थिति-विशेष में अपने सलाह की सदस्यों की माँगों एवं प्रत्याशाओं के अनुरूप प्रतीत होता है ।[14]

14. Serjent, S. S. Conception of Role and Ego in contemporary Psychology, in Sherif, et, Social Psychology At the cross Roods 1951, p. 360.

जब बहुत से अन्तः सम्बन्धित व्यवहार प्रतिमान एक सामाजिक प्रकार्य के चारों ओर एकत्रित हो जाते हैं तो उसी सम्मिलन को भूमिका कहा जाता है।[15]

जब व्यक्ति की प्रेरणायें एवं क्षमतायें उसकी अपेक्षित भूमिका के अनुकूल नहीं होती है तो वह असंतोषप्रद अप्रभावकारी तथा अस्वीकारात्मक अनुकूलन का विकास भूमिका के सम्बन्ध में करता है। कभी-कभी व्यक्ति इस प्रकार की समस्या के समाधान के लिए वह समूह द्वारा उसकी भूमिका की की गयी परिभाषा में संशोधन करता है। किन्हीं-किन्हीं सामूहिक स्थिति में यह कार्य व्यक्तिगत सम्प्रेरणा तथा सामाजिक माँग में संतुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक होता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में इस प्रकार का भूमिका-समायोजन समूह को स्वीकृत नहीं होता है। इस स्थिति में व्यक्ति परिभाषित भूमिका के अनुसार कार्य करने का प्रयत्न तो करता है परन्तु इससे उसे बहुत तनाव महसूस होता है।

जिस प्रकार अहं का प्रत्यय व्यक्तित्व-संरचना का बोध कराता है उसी प्रकार भूमिका का प्रत्यय सामाजिक कार्यात्मकता का बोध कराता है। भूमिका के तत्त्वों को समझना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। एक दी हुई स्थिति में भूमिका के अन्तर्गत कुछ निश्चित क्रियायें तथा व्यवहार होते हैं। कार्यकर्ता को ज्ञात करना होता है कि सदस्य अपनी भूमिकाओं तथा क्रियाओं को किस प्रकार पूरा करते हैं। कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि यदि कोई सदस्य भूमिका सम्बन्धी समस्या से पीड़ित है तो उसकी सम्पूर्ण सामाजिक अन्तःक्रिया की विवेचना करें। भूमिका को समझने के लिए उसे अन्य सदस्यों का अध्ययन करना होगा तभी समस्या को समझा जा सकता है तथा समाधान की ओर प्रयास हो सकता है।

भूमिका में सामाजिक प्रत्याशा तथा सामाजिक प्रक्रिया प्रतिमान होते हैं। जहाँ सदस्य को एक ओर समूह में स्थिति प्राप्त होती है वहीं दूसरी ओर उस स्थिति से सम्बन्धित भूमिका को पूरा करने की प्रत्याशायें भी समूह को होती है। उसकी भूमिका पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों का प्रभाव पड़ता है। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह इन प्रतिमानों का अध्ययन करे, तभी व्यक्ति सदस्य को समझ सकता है।

भूमिका में सांवेगिक मूल्य तथा भावनायें निहित होती हैं। ये प्रायः दो प्रकार के होते हैं :—वे जो संस्कृति द्वारा मान्य होते हैं तथा दूसरे व्यक्तिगत भूमिका सम्बन्धी विचार एवं संवेग। कार्यकर्ता का सम्बन्ध प्रायः दूसरे प्रकार से अधिक होता है। कार्यकर्ता समस्याग्रस्त सदस्य की समस्या का अध्ययन, निदान एवं उपचार करता है। लेकिन यह कार्य तभी सम्भव हो पाता है जब वह सम्बन्धित सदस्य का अध्ययन गहनता से करता है।

15. Fitcher, J. H. : Sociology,
The University of Chicago Press, chicago 1957. p. 120.

अध्याय 9

सामाजिक सामूहिक कार्य के सिद्धान्त

सिद्धान्त अर्थात् सामान्य नियम या कानून, प्रत्यय, मूलभूत सत्यतायें, सामान्य रूप से माने गये मत—वे साधन हैं जिनके द्वारा हम एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति की ओर बढ़ते हैं।[1] सामाजिक सामूहिक कार्य के अभ्यास का एक लम्बा इतिहास है और इस अभ्यास के दौरान जिन नियमों को आवश्यक समझा गया उन्हें सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित कर दिया गया। लियोनार्ड डी ह्वाइट (Leonard D. white) का मत है कि एक सिद्धान्त अवश्य ही उपकल्पना समझी जानी चाहिये, जिसका इस प्रकार से निरीक्षण और अथवा प्रयोग करके परीक्षण किया गया है कि जिसकी बुद्धिमत्तापूर्वक क्रिया के पथ-प्रदर्शक के रूप में या ज्ञान के साधन के रूप में रखा जा सकता है।[2]

सामाजिक सामूहिक कार्य समाजकार्य की एक पद्धति है, इसीलिए समाजकार्य की भाँति इसके भी कुछ सिद्धान्त हैं, जिनको पालन करना सामाजिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। इन सिद्धान्तों का अनुपालन ऐच्छिक नहीं होता, क्योंकि इन सिद्धान्तों को प्रयोग में लाये बिना लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

---

1. Principles–that is, general rules or laws, concepts, fundamental truths, generally accepted tenets—are the means by which we proceed from one situation to another. Barr, A. S. Burton, W. H., and Brucckner, LJ. : Supervision–Principles and practices in the improvement of Instructions. Appletion–Century Craft, Newyork, 1938, pp. 32-33.
2. A principle must be understood to mean a hypothesis so adeouately tested by observation and / or experiment that it may intelligently put forword as a guide to action, or as a means of understanding."

   White, Leonard D. : The Foontiers of Public Administration, University of Chicago Press, Chicago, 1936, p. 21.

सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्त हैं—

1. **नियोजन का सिद्धांत** (Principle of Planning) :—नियोजन लक्ष्यों का आरोपण, उनकी पूर्ति के लिए साधनों की व्यवस्था और क्रियाओं के व्यवस्थित रूपों, जो सामान्य सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न है, का प्रयोग है। नियोजन के अन्तर्गत विद्यमान स्थितियों तथा सम्भावित परिवर्तनों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है, जिससे भविष्य के परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियंत्रित, निर्देशित तथा संशोधित किया जा सके। सामाजिक सामूहिक कार्य में समूह ही आधारभूत साधन होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति की सहायता की जाती है, परिणामस्वरूप संस्था एवं कार्यकर्ता, जिनका समूहों के निर्माण अथवा संस्था में पूर्व निर्मित समूहों को स्वीकार करने का उत्तरदायित्व होता है, उन्हें सामूहिक स्थितियों के अन्तर्भूत कारकों का ज्ञान होना चाहिये, जो व्यक्ति-विकास एवं निर्धारित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह को सकारात्मक शक्ति प्रदान करते हैं।[3]

सामूहिक कार्यकर्ता समूह-निर्माण का कार्य सुनियोजित ढंग से करने से ही लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है। उसे निम्न कार्य करने आवश्यक हैं :—

1. विकास के लक्ष्यों एवं मूल्यों का निर्धारण,
2. परिस्थिति विश्लेषण,
3. वर्तमान सेवाओं में गुणात्मक एवं मात्रात्मक अभावों का ज्ञान,
4. विशिष्ट उद्देश्यों तथा रणनीति का निर्धारण,
5. आगत, लक्ष्य; क्षेत्र, साधन आदि का निर्धारण,
6. प्रशिक्षण तथा संचार-प्रक्रिया की सीमा,
7. क्रिया-नियोजन तथा कार्यों की लिपिबद्धता,
8. कार्यंयंत्र रचना का निर्धारण,
9. सम्भावित साधनों की उपलब्धता,

---

3. In Social Group Work, the group is the basic unit through which service is provided to the individual; consequently the agency and workers responsible for the formation of groups or the acceptance into the agency of already formed groups must be aware of the factors inherent in the group situation that make the given group a positive potential for individual growth and for meeting recognizable needs,

Trecker H. B. op. cit. p. 260.

10. शक्ति के स्रोतों का निर्धारण,

11. सदस्य-संख्या का निर्धारण

12. सदस्यों की समान मान्यताओं, क्षमताओं, ज्ञान, आयु, अनुभव, जीवन स्तर की खोज।

कार्यकर्ता को समूह का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सदस्य-संख्या, साधन, शक्ति के स्रोत, उद्देश्य तथा लक्ष्यों के बीच संतुलन अवश्य हो। समूह के नियोजित होने पर यह भलीभाँति तथा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि समूह के उद्देश्य एवं लक्ष्य किस प्रकार तथा किस सीमा तक प्राप्त किये जाते हैं।

2. **लक्ष्यों की स्पष्टता का सिद्धान्त** (**Principles of clarification of the objectives**) :—सामूहिक कार्यकर्ता के लिए स्पष्ट लक्ष्यों का ज्ञान कार्य पूर्णता के लिए आवश्यक होता है, क्योंकि लक्ष्य क्रिया के लिए सम्प्रेरक शक्ति है, जिनके आधार पर समूह आगे बढ़ता है तथा विकास की गति प्राप्त करता है। लक्ष्यों की स्पष्टता निम्न कारणों से महत्त्वपूर्ण है :—

1. लक्ष्य ही कार्यकर्ता का मार्गदर्शन करते हैं तथा अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं।

2. लक्ष्यों की स्पष्टता उपलब्ध साधनों का समुचित उपयोग करने पर बल देती है।

3. लक्ष्यों पर ही कार्यक्रम निर्भर होते हैं। यदि वे स्पष्ट हैं तो कार्यक्रमों के चयन में परेशानी नहीं होती है।

4. कार्य का प्रारम्भ, उसका स्वरूप तथा प्रकृति उद्देश्यों पर निर्भर होने के कारण लक्ष्यों को स्पष्ट होना आवश्यक होता है।

5. लक्ष्यों की स्पष्टता से संस्था के लिए आवश्यक यन्त्रों, साधनों तथा कोष को निश्चित करने में सहायता मिलती है।

6. लक्ष्य स्पष्ट होने से समूह का नियन्त्रण तथा उसका निर्देशन अच्छा होता है।

7. समूह-सदस्यों की अन्तःक्रियायें एक विशेष दिशा में संचालित होती हैं।

8. समूह-सदस्यों का भागीकरण यथोचित होता है।

9. मूल्यांकन की प्रक्रिया का आधार लक्ष्य ही होते हैं।

अतः कार्यकर्ता, समूह तथा संस्था तीनों के लक्ष्य स्पष्ट हो तभी मूल्यांकन की प्रक्रिया अपना कार्य कर सकती है। सामाजिक सामूहिक कार्य में व्यक्ति तथा समूह विकास के विशिष्ट लक्ष्यों का निर्धारण समूह की इच्छाओं एवं

क्षमताओं तथा संस्था के कार्यों को ध्यान में रखकर कार्यकर्ता को करना चाहिये।[4]

कार्यकर्ता के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि सामूहिक अनुभव से सदस्य को क्या प्राप्त करना चाहिये और क्या प्राप्त करने तथा उनमें किस प्रकार के अनुभव को प्राप्त करने की क्षमता है। इसे समूह के सदस्यों की कमजोरियों एवं शक्तियों का विश्लेषण करना चाहिये तथा साथ ही साथ समय, अनुभव व अभिकरण की अनुकूलता का ध्यान रखकर समूह के उद्देश्यों को निश्चित करना चाहिये। उदाहरण के लिए—यदि सामूहिक कार्यकर्ता किसी विशेष स्थान पर समूह-कार्य द्वारा स्वास्थ्य सुधार सम्बन्धी कार्यक्रम चलाना चाहता है तो सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि समूह-सदस्य स्वयं यह अनुभव करें कि उन्हें इस दिशा में अवश्य प्रयत्न करना चाहिये, अन्यथा कार्यक्रम सफल नहीं होगा। जब समूह का प्रत्येक सदस्य यह महसूस करेगा कि 'यही मैं चाहता हूँ और सम्पूर्ण समूह भी तो यह महसूस करेगा कि यही हम चाहते हैं तथा कार्यकर्ता व संस्था भी इसे स्वीकार करेगी, तो सामान्यतः कार्य में कोई बाधा नहीं आयेगी। कार्यकर्ता अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में अधिक सुविधा अनुभव करेगा और उद्देश्यों की प्राप्ति सरलता से होगी।

3. सोद्देश्य संबंध का सिद्धांत (The Principle of Purposeful Relationship):—जीवन का आधार सम्बन्ध है। व्यक्ति सम्बन्ध स्थापित करके ही पशु स्तर की क्रियाओं से लेकर अति बुद्धिमत्ता की क्रियायें करता है। वह आवश्यकताओं की सन्तुष्टि सम्बन्ध के माध्यम से करता है। अतः प्रत्येक सामाजिक स्थिति में सम्बन्धों का विशेष महत्त्व है। सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता तथा समूह के बीच सम्बन्धों की घनिष्ठता होनी चाहिये तथा वे सम्बन्ध निश्चित उद्देश्यों पर आधारित हों। समूह के जो उद्देश्य निश्चित किये जाय उन्हीं के आधार पर संबंधों की स्थापना एवं विश्लेषण हो। कार्यकर्ता-समूह के बीच संबंध तभी घनिष्ठ होंगे जब कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को जैसे है वैसे ही स्वीकार करे तथा समूह-कार्यकर्ता को अपना हितैषी माने। सामान्यतः सोद्देश्य सम्बन्ध के निम्न लक्षण हैं :—

1. कार्यकर्ता की समूह द्वारा स्वीकृति,

---

4. In Social group work, specific objectives of individual and group development must be consciously formulated by the worker in harmony with group wishes and capacities and in keeping with agency function. Ibid, p. 262.

2. समूह की कार्यकर्ता द्वारा स्वीकृति,
3. स्नेह एवं आत्मसंचार की पूर्णता,
4. समस्या सुलझाने की इच्छा का विकास,
5. समूह-सदस्यों का भागीकरण तथा कार्यकर्ता द्वारा व्यावसायिक ज्ञान का उपयोग,
6. सदस्यों की इच्छा सर्वोपरि तथा उन्हें आत्मनिश्चय का अधिकार,
7. सदस्यों को आत्मनिर्णय का अधिकार,
8. सामूहिक रुचि तथा भागीकरण में निरन्तर वृद्धि,

घनिष्ठ सम्बन्ध के 3 प्रमुख आधार हैं :—

1. कार्यकर्ता को सदस्यों के प्रति सहिष्णुता तथा लगाव प्रदर्शित करते हुये उनकी शिकायतों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। जब उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि कार्यकर्ता उनमें रुचि ले रहा है तो वे स्वयं अपना उत्तरदायित्व समझने लगते हैं।

2. कार्यकर्ता को सदस्यों की संस्कृति का ज्ञान होना चाहिये, क्योंकि सांस्कृतिक कारक व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखते हैं। कार्यकर्ता को संस्कृति के अनुरूप ही कार्यक्रम चलाने चाहिये।

3. कार्यकर्ता को उसी बौद्धिक स्तर से बातचीत करनी चाहिये, जिस बौद्धिक स्तर का सेवार्थी हो, क्योंकि यदि सदस्यों को कार्यकर्ता की बात समझ में नहीं आयेगी तो वह सहयोग नहीं करेंगे, जिससे कार्यकर्ता उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

4. सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाने के लिए वैयक्तिक अध्ययन आवश्यक होता है। इससे कार्यकर्ता को प्रत्येक सदस्य के विषय में जानकारी चाहिए तथा उनकी समस्याओं से अवगत होना उन्हें वैयक्तिक सहायता देनी चाहिये।

सामाजिक सामूहिक कार्य में सम्बन्ध स्थापन सहायता का आधार होता है, क्योंकि सम्बन्धों के आधार पर ही कार्यकर्ता कार्यक्रमों के माध्यम से सामूहिक सदस्यों के व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। सामूहिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध जितना ही प्रगाढ़ एवं शक्तिशाली होगा, समूह अपनी क्षमताओं का प्रयोग उतना ही अधिक कर सकेगा।

4. निरंतर वैयक्तीकरण का सिद्धांत (Principle of continuaus individualization):—सामाजिक सामूहिक कार्य की यह मान्यता है कि समूह अनेक प्रकार के होते हैं और व्यक्ति उनका उपयोग विभिन्न तरीकों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करता है। परिणामस्वरूप कार्यकर्ता द्वारा वैयक्तीकरण

का निरन्तर उपयोग करना आवश्यक होता है। समूह तथा समूहों में व्यक्तियों को विकास तथा परिवर्तन के रूप में सदैव समझा जाना चाहिए।[5]

प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम, पर्यावरण, अन्तर्भूत ज्ञानात्मक क्षमताओं, योग्यताओं आदि में भिन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न-भिन्न अनुभव होते हैं तथा भिन्न-भिन्न आन्तरिक बाह्य उत्तेजक होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति अपनी शक्तियों को विशिष्ट प्रकार से निर्देशित करता है, जिससे वे दूसरे व्यक्ति की प्रकृति से भिन्न हो जाते हैं। अतः कार्यकर्ता का कर्तव्य होता है कि वह उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापन के साथ ही साथ सदस्यों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी रखे। वैयक्तीकरण करने के लिए कार्यकर्ता में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये :—

1 अभिमत तथा पूर्वाग्रहों से स्वतंत्र

2. मानव-व्यवहार का ज्ञान

3. सुनने तथा अवलोकन करने की क्षमता

4. सेवार्थी की भावनाओं को समझने की योग्यता

5. परिप्रेक्ष्य को बनाये रखने की योग्यता

6. सेवार्थी में आत्मीयता की भावना उत्पन्न करने की योग्यता

7. समस्या के अध्ययन, निदान तथा चिकित्सा में सेवार्थी का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता।

वैयक्तीकरण के निम्न साधन हैं :—

1. विस्तृत विचार-विमर्श से वैयक्तीकरण प्रकट होता है।

2. साक्षात्कार की गोपनीयता महत्त्वपूर्ण होती है। तभी सेवार्थी में विश्वास उत्पन्न होता है।

3. साक्षात्कार के समय की पाबन्दी हो।

4. सेवार्थी को सहायता-प्रक्रिया में सम्मिलित करना आवश्यक होता है।

5. कार्य-पद्धति में नमनीयता हो।

कार्यकर्ता प्रत्येक सामूहिक सदस्य की कठिनाइयों को ध्यान में रखता है तथा

---

5. In Social group work, it is recognized that groups are different and that individuals utilize group experiences in a variety of ways to meet their differing needs; consequently, continuous individualization must be practiced by the worker, Groups and the individuals in the groups must be understood as developing and changing. Ibid. p. 264.

सम्मिलन के आधार पर उनको प्रोत्साहित करता है। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी समूह-सदस्य होते हैं जो समूह से अपना सामञ्जस्य अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों के कारण नहीं कर पाते हैं तथा समूह की गतिविधियों एवं कार्यक्रमों के साथ अपनी पद्धति को बदल नहीं सकते। इसलिए ऐसे सदस्यों के साथ निरन्तर वैयक्तीकरण कर सामूहिक कार्यक्रमों में यथोचित तथा क्षमतानुसार भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता रहता है।

कार्यकर्ता जब देखता है कि समूह के अन्तर्गत विभिन्न सदस्यों में परिवर्तन और उन्नति की दर भिन्न-भिन्न है तो वह स्वेच्छाचार का दमन कर समूह की इच्छा की सन्तुष्टि करने का प्रयत्न करता है। वैयक्तीकरण सिद्धान्त के उपयोग से सामूहिक संगठन को शक्तिशाली बनाने में सहायता मिलती है तथा विघटन-कारी इच्छाओं में निरन्तर कमी आती रहती है।

5. निर्देशित सामूहिक अंत:क्रिया का सिद्धांत (The Principle of guided group Interaction) :—सामाजिक सामूहिक कार्य में प्राथमिक शक्ति का स्रोत जो समूह की निपुणताओं में वृद्धि करती है तो व्यक्तियों को परिवर्तित है अन्तःक्रिया या पारस्परिक प्रत्युत्तर ही है। सामूहिक कार्यकर्ता अपने भागीकरण द्वारा अन्तःक्रिया-प्रक्रिया को प्रभावित करता है, जिससे सदस्यों के व्यवहारों, विचारों एवं कार्य-विधियों में अन्तर आता है।

जब समूह में व्यक्ति एकत्र होते हैं तो अन्तःक्रिया का होना स्वाभाविक हो जाता है। उनमें पारस्परिक प्रत्युत्तर होते हैं। इन प्रत्युत्तरों की चाहे जो कार्य-रचना अथवा विधि हो और उनकी गहनता चाहे कम हो या अधिक लेकिन वे व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं। सामूहिक कार्य में इस अन्तःक्रिया-प्रक्रिया को एक निश्चित दिशा की ओर चलने के लिए निर्देशित किया जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता सामाजिक प्रक्रिया को सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रक्रिया में अन्तःक्रिया को प्रभावित एवं निर्देशित करके बदल देता है। कार्यकर्ता इस सिद्धान्त को मानता है कि उसका कार्य अन्तःक्रिया की क्षमता में वृद्धि करना तथा सभी सदस्यों को भागीकरण के लिए उत्साहित करना है। वह समूह को न तो यह बतलाता है कि उसे क्या करना है और न ही समूह के लिए कोई निर्णय लेता है बल्कि वह समूह की अन्तःक्रियात्मक क्षमता को बढ़ाने का प्रयत्न सदस्यों को अपनी भूमिका पूरी करने में सहायता के माध्यम से करता है।

अन्तःक्रिया की दिशा निर्देशित होने पर ही सामूहिक उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। अतः कार्यकर्ता के लिए नितान्त आवश्यक है कि समूह में होने

वाली अन्तक्रिया को सही दिशा प्रदान करे, क्योंकि समूह के कार्य एवं उद्देश्य समूह में होने वाली अन्तःक्रिया पर निर्भर होने हैं। अन्तःक्रियाओं का स्वरूप तथा इनको दिशा समूह के सदस्यों तथा कार्यकर्ता की क्षमताओं, इच्छाओं, आशाओं तथा कार्य करने के ढंग पर निर्भर होती है। अतः कार्यकर्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि समूह के आपसी सम्बन्ध सकारात्मक बने रहें तथा अन्तःक्रिया का प्रभाव एक दिशा में हो, अन्यथा सदस्य अहितकारी अन्तःक्रिया को उत्पन्न कर सकते हैं। अन्तःक्रिया के निर्देशित होने से सदस्य समूह के कार्यों के विभाजन, उनकी कार्यविधियों, सम्मिलन, सक्रियता आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उनमें आत्म-विश्वास की भावना जाग्रत होती है। अन्तःक्रियाओं की तीव्रता और मन्दता कार्यकर्ता निर्धारित करता है। वह सदैव इस बात का प्रयत्न करता है कि समूह के कारकों के मध्य विवाद उत्पन्न न हो और यदि ऐसा होता है तो शीघ्रातिशीघ्र उसे सुलझाने का प्रयत्न करता है।

6. **जनतंत्रीय सामूहिक आत्मनिश्चयीकरण का सिद्धान्त** (**The Principle of democratic group self determination**) :—सामाजिक सामूहिक कार्य में समूहों को अपना निर्णय लेने तथा क्रियाओं को निश्चित करने में सहायता करनी चाहिये। उसे अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप अधिकतम उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए तैयार करना कार्यकर्ता का कर्तव्य है। सामूहिक क्रियाओं के नियन्त्रण का मूल स्रोत समूह स्वयं है। यह सिद्धान्त इस तथ्य पर आधारित है कि समूह तथा व्यक्ति सामाजिक उत्तरदायित्वों का विकास तभी कर सकते हैं, जब उन्हें उत्तरदायित्व ग्रहण करने के अवसर उपलब्ध कराये जाये। लेकिन उत्तरदायित्व कितना और किस विधि से उन्हें दिया जाय यह निश्चित करना कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है।

सामूहिक कार्य में समूह-निर्णय के प्रथम चरण से लेकर अन्तिम चरण तक होने वाली क्रियायें जनतंत्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित हैं। समूह-सदस्य स्वयं ही अपना पथ निर्धारित करते तथा पूरा करते हैं। कार्यकर्ता का कार्य केवल सही दिशा प्रदान करना तथा सकारात्मक रूप से समूह की अन्तःक्रिया को निर्देशित करना होता है। समूह की समस्त क्रियायें समूह के सदस्यों द्वारा स्वतः प्रेरित होती हैं। कार्यकर्ता का कार्य सदस्यों में सामाजिक वास्तविकता का सही ज्ञान कराना तथा उसकी सुषुप्त शक्तियों को सही दिशा प्रदान करना है। प्रो० राजाराम शास्त्री के शब्दों में :—

"समूह अथवा समूह के सदस्य स्वयं से, स्वयं के बारे में और स्वयं के लिए जो कुछ भी, जब कभी भी करें, वह इस प्रकार होना चाहिये कि उनमें से प्रत्येक की भावना को कम से कम आघात पहुँचाते हुए तथा उन्नत समाजगत स्वीकृत

मूल्यों तथा प्रेम, सौहार्द, शालीनता, सज्जनता से युक्त होकर करें, अर्थात् आपस में शिष्ट आचार-विचार के माध्यम से प्रकृतिगत विकृतियों के दमन और सद्-वृत्तियों के विकास द्वारा करें । जब कार्य में भी इस अपेक्षित स्थिति में कमजोरी के लक्षण दिखें तो सामूहिक कार्यकर्ता को भी कथित जनतान्त्रिक तरीकों से ही समग्र सेवार्थियों अथवा सदस्यों के ज्ञान-धरातल को उन्नत कर या परिवेशगत परिमार्जन द्वारा अन्तःक्रियाओं की स्थिति एवं स्वरूप को ऐसी दिशा देनी चाहिये जो अधिकाधिक अधिकारी हो ।

7. **लोचदार कार्यात्मक संगठन का सिद्धान्त** (The Principle of flexible fúnctional organization) :—सामूहिक कार्य में कार्यकर्ता समूह का निर्देशन समूह संगठन के माध्यम से करता है । पहले वह समूह को संगठित करता है तदुपरान्त उस संगठन के माध्यम से कार्यक्रम सम्पादित करता है । लेकिन उसका औपचारिक संगठन दूसरे प्रकार के समूह-संगठनों से भिन्न होता है । कार्यकर्ता औपचारिकता को उतना ही महत्त्व देता है जिससे आवश्यकताओं की पूर्ति/होती है और कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती । अर्थात् उसके संगठन में लचीलापन होता है, जिससे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना सम्भव होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार समूह का औपचारिक संगठन अनुकूलनात्मक होना चाहिये और समूह-परिवर्तन के साथ उसमें परिवर्तन होना चाहिये ।

सामूहिक कार्य में समूह का निर्माण एक विशेष उद्देश्य के लिए किया जाता है, परिणामस्वरूप इसके उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुछ न कुछ 'औपचारिक संगठन की आवश्यकता होती है । क्योंकि इसके माध्यम से समूह-सदस्यों की शक्तियाँ एक दिशा में प्रवाहित होती है । साथ ही साथ सामूहिक जीवन में स्थायित्व आता है । समूहों में भिन्नता होती है, अतः वे एक विशेष प्रकार का संगठन चाहते हैं तथा संगठनात्मक स्तर में भी भिन्नता की आवश्यकता होती है । समयानुसार प्राथमिकतायें बदलती हैं, समूह-सदस्यों की रुचियों एवं सामवर्षों में अन्तर आता है, आवश्यकतायें बदलती हैं तथा नवीन रुचियों का विकास होता है । अतः संगठन की रचना में लचीलापन आवश्यक होता है ।

8. **प्रगतिशील कार्यक्रम अनुभवों का सिद्धान्त** (The Principle of progressive Programme experince) :—सामाजिक सामूहिक-कार्य में कार्यक्रम अनुभव उसी स्तर से प्रारम्भ होने चाहिये जिस स्तर की सदस्यों की रुचियाँ, आवश्यकतायें, अनुभव-निपुणता तथा दक्षता है । जैसे-जैसे इन शक्तियों में विकास हो वैसे-वैसे कार्यक्रमों में भी परिवर्तन लाना चाहिये तथा उसका रुख विकासात्मक हो । इस सिद्धान्त के अनुसार समूह-कार्य में कार्यक्रम प्रारूप प्रारम्भ

करने का एक बिन्दु होता है और उस बिन्दु को परिभाषित करना महत्त्वपूर्ण होता है। समूहों की रुचियों, आवश्यकताओं तथा योग्यताओं में भिन्नतायें कार्यक्रम विकास-प्रक्रिया के प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक होती हैं। कार्यकर्ता समूह के स्तर के अनुरूप ही कार्यक्रमों को संगठित करने की सलाह देता है। वह समूह की सहायता कार्यक्रम नियोजन तथा कार्यान्वियन में करता है। मूल्यांकन के द्वारा वह कार्यक्रम अनुभवों में जटिलता लाता है। अर्थात् जैसे-जैसे सदस्यों की कुशलतायें एवं अनुभव बढ़ते हैं वैसे-वैसे वह नवीन जटिल कार्यक्रमों का सुझाव समूह में रखता है। सफलता में वृद्धि कार्यक्रम को उत्साहित करता है। समूह को विकासात्मक कार्यक्रमों को संगठित करने के लिए निरन्तर प्रोत्साहित किया जाता है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि कार्यक्रम अनुभवों में प्रगति समूह की इच्छा तथा कार्यकर्ता की योग्यता पर निर्भर होती है।

9. साधनों के उपयोग का सिद्धान्त (**The Principle of Resource utilization**) :—सामाजिक सामूहिक-कार्य में संस्था तथा समुदाय का सम्पूर्ण वातावरण साधनों पर निर्भर होता है। अतः साधनों का उपयोग सामूहिक अनुभवों में वृद्धि करने के लिए कुशलतापूर्वक करना चाहिये। कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि उसे संस्था व समुदाय के विभिन्न साधनों का ज्ञान हो, जिससे समूह के उद्देश्यों को पूरा कर सके। साधनों में व्यक्ति, सामाजिक संस्थायें, उपकरण, सेवायें, स्थान आदि आते हैं। समूह को जब जिस साधन की आवश्यकता हो तब कार्यकर्ता को इनसे लाभ उठाने में पूर्ण समर्थ होना चाहिए। संस्था एवं समुदाय में उपस्थित साधनों के उपयोग से समूह अनुभव को न केवल बढ़ाया जा सकता है, वरन् यह सभी समूह-सदस्यों के विकास में सहायक होता है। चूँकि समूह सामाजिक संगठन का एक भाग होता है अतः उसकी आवश्यकताओं को संस्था एवं समुदाय के द्वारा ही सन्तुष्ट किया जा सकता है। कार्यकर्ता की भूमिका न केवल समूह में होती है बल्कि समूह से बाहर भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। वह समुदाय से सम्बन्धित समस्त जानकारी प्राप्त करता है तथा इस जानकारी को समूह-सदस्यों को हस्तान्तरित करता है। वह एक प्रकार से समूह व समुदाय के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है और आवश्यकता पड़ने पर समूह को उपलब्ध साधनों के उपयोग के लिए प्रेरित करता है।

10. मूल्यांकन का सिद्धान्त (**The Principle of evaluation**) :—मूल्यांकन एक निर्णय करने वाली प्रक्रिया है, जो निश्चित करती है कि समूह, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, उनको पूरा करने की कितनी

से समूह में होने वाली अन्तःक्रिया, प्रक्रिया तथा क्रिया का स्पष्टीकरण होता है। इसके द्वारा समूह की स्थिति, सदस्यों के अनुभव एवं उनकी क्षमतायें तथा कमियाँ ज्ञात होती हैं। सामूहिक कार्यकर्ता निम्न स्थितियों का मूल्यांकन करता है :—

1. कार्यक्रम का मूल्यांकन,
2. सदस्यों के भागीकरण तथा अनुभव का मूल्यांकन,
3 कार्यकर्ता स्वयं अपनी भूमिका का मूल्यांकन,

कार्यकर्ता मूल्यांकन द्वारा समूह की शक्तियों का समुचित नियन्त्रण एवं निर्देशन करता है। इससे वह अपनी भूमिका को समझता है तथा उसकी सफलता, असफलता की आलोचना करता है। मूल्यांकन द्वारा कार्यक्रम के महत्त्व का ज्ञान होता है, सदस्यों की मनोवृत्तियों, रुचियों एवं अनुभवों का पता चलता है, अवरोधों एवं बाधाओं का ज्ञान होता है, सदस्यों की इच्छाओं का पता चलता है तथा उनकी क्षमताओं, शक्तियों, निपुणताओं, सम्बन्धों, साथ ही साथ कमियों, अक्षमताओं, दोषों तथा संघर्षों को जाना जाता है। इससे कार्यकर्ता को स्वयं में परिवर्तन, कार्यक्रम में परिवर्तन तथा क्रियात्मक विधियों में परिवर्तन करने के लिए अवसर प्राप्त होता है।

कोनोष्का (**Konopka**) ने सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाये हैं :—

1. सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता का कार्य सहायता प्रदान करने व समर्थ बनाने का कार्य है। इसका उद्देश्य समूह के सदस्यों की सहायता करना और पूरे समूह को अधिक स्वतन्त्रता व आत्मसहायता की क्षमता के विकास की ओर अग्रसर करना है।

2. सामूहिक कार्यकर्ता अपने सहायता के कार्यों को निश्चित करने में वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग करता है—अर्थात् वह व्यक्ति, समूह एवं सामाजिक पर्यावरण के सन्दर्भ में संकलन, विश्लेषण एवं निदान करता है।

3. कार्यकर्ता समूह के सदस्यों तथा सम्पूर्ण समूह के साथ उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा रखता है—वह

4. उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों की प्राप्ति के लिए कार्यकर्ता चेतन रूप से आत्म-प्रयोग, आत्मज्ञान और आत्म-अनुशासन का प्रयोग करते हुए सम्बन्धों को स्नेहपूर्ण बनाता है।

5. लोगों के समस्त व्यवहार की स्वीकृति का सिद्धान्त—कार्यकर्ता व्यक्तियों के लिए आदर और प्रेम रखता है। वह उनकी कमजोरी तथा शक्तियों का आदर करता है।

6. समूह जहाँ पर है वहीं से प्रारम्भ—सामूहिक कार्यकर्ता समूह के साथ उसी स्थिति से कार्य करना प्रारम्भ करता है जहाँ पर वह है।

7. सीमाओं का रचनात्मक प्रयोग—कार्यकर्ता मुख्य रूप से स्वयं कार्यक्रम सामग्री, समूह की अन्तःक्रिया और अन्तर्दृष्टि का प्रयोग करता है।

8. वैयक्तीकरण।

9. अन्तःक्रिया-प्रक्रिया का प्रयोग।

10. लिखित कार्यक्रम तथा मौखिक विषय-वस्तु का चेतन रूप से प्रयोग एवं ज्ञान।

टेरेन्स जे० कुक (Terence J. Cooke) ने सामाजिक सामूहिक कार्य के निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्त बतलाये हैं :—

1. सभी व्यक्तियों की कुछ सामान्य आवश्यकताएँ होती हैं जो समूह में ही सन्तुष्ट होती हैं।

2. सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य समूह के द्वारा व्यक्ति का विकास करना है। उसकी कुछ आवश्यकताओं की सन्तुष्टि इसके द्वारा होती है।

3. सामाजिक सामूहिक कार्य में सामूहिक प्रक्रिया तथा समूह के सदस्यों, कार्यकर्ता तथा समूह में गतिशील अन्तःक्रिया, व्यक्तित्व-विकास, वृद्धि एवं परिवर्तन के साधन हैं।

4. सामूहिक कार्यक्रम व्यक्ति तथा समूह के विकास का एक साधन या यन्त्र है, इसे समूह की मूल आवश्यकताओं तथा रुचियों के अनुरूप होना चाहिए।

5. अच्छे सामूहिक कार्य के लिए ऐच्छिक उपस्थिति आवश्यक है।

6. चूँकि सामाजिक सामूहिक कार्य एक संस्था में सम्पन्न किया जाता है अतः सामूहिक प्रक्रिया के लिए सामूहिक कार्य आवश्यक है।

7. समूह को आत्म-निश्चय करने का अधिकार होता है। कार्यकर्ता को समूह की सहायता अपने निर्णय लेने के उत्तरदायित्व तथा अपनी क्षमता व परिपक्वता के अनुसार करनी चाहिए।

8. व्यक्ति-निर्देशन सामूहिक कार्यकर्ता का एक मुख्य उत्तरदायित्व है।

सामूहिक कार्य में संस्कृति एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। यह समूह के निर्माण से लेकर उद्देश्य प्राप्त होने तक क्रियाशील रहती है। अतः कार्यकर्ता के लिए अपनी, समूह की तथा संस्कृति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक होता है। इस सन्दर्भ में एलन एफ० क्लीन (Alen F. Klein) ने कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्त सामूहिक कार्यकर्ता के लिए अपनी भूमिका की दृष्टि से मूल्यवान् है—

1. कार्यकर्ता को परिपक्व एवं स्वीकृत होना चाहिए तथा अपने अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों में सांस्कृतिक पक्षपात को अवश्य दूर रखने में समर्थ होना चाहिए।

2. कार्यकर्ता को अपनी तथा सदस्यों की, जिनके साथ वह कार्य कर रहा है, संस्कृति के अर्थ का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

3. कार्यकर्ता के लिए परिवार, समुदाय तथा सामाजिक वर्गों की उपसंस्कृतियों का ज्ञान आवश्यक होना चाहिए।

4. उचित ज्ञान प्राप्त करने तथा भाषा सीखने के लिए गृह-सम्पर्क तथा समुदाय का सम्मिलन अवश्य होता है।

5. कार्यकर्ता को अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा उसमें निरपेक्ष रूप से देखने की क्षमता भी होनी चाहिए।

6. कार्यकर्ता को अपने तथा अपनी संस्था के उद्देश्यों के प्रति, मुख्य रूप से सांस्कृतिक परिवर्तन से सम्बन्धित उद्देश्यों के प्रति जागरूक होना चाहिए।

7. उसमें बच्चों के लिए उचित पुरस्कार निर्धारित करने की क्षमता होनी चाहिए।

8. उसे लोगों के साथ वहीं से कार्य प्रारम्भ करना चाहिए जहाँ पर वे होते हैं।

9. उसे व्यक्तिगत सुरक्षा तथा आन्तरिक एवं संवेगात्मक स्रोतों को प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों की सहायता करनी चाहिए।

10. व्यवहार औचित्य के सिद्धान्त को लोगों को समझाने में उसे सहायता करनी चाहिए।

11. उसे भविष्य में उद्देश्य निश्चित करने में सहायता करनी चाहिए, उसको समाज में उपलब्ध अवसरों से अवगत कराना चाहिए।

12. उसे सदस्यों के वास्तविक उद्देश्य के चुनाव में सहायता करनी चाहिए।

13. उसे सदस्यों को यह जानने में सहायता करनी चाहिए कि सम्पूर्ण संस्कृति व्यक्ति द्वारा निर्मित है तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तनशील है।

व्यावसायिक नीति सम्बन्धी सिद्धान्त

एल० के० हाल (L. K. Hall) ने व्यावसायिक नीति के सम्बन्ध के निम्नलिखित सिद्धान्त बतलाये हैं :—

1. सामूहिक कार्यकर्ता उन व्यक्तियों का जिनके साथ वह कार्य करता है प्रत्येक समय तथा प्रत्येक ढंग से आदर करने के लिए बाध्य है। नकारात्मक रूप से इसका तात्पर्य यह है कि वह ऐसा कोई साधन उपयोग में नहीं लायेगा जिससे किसी भी सदस्य की सुरक्षा तथा आत्म-सम्मान को खतरा होगा और न ही उसकी योग्यता की सीमा के अनुसार प्रगति करने में अवरोध उत्पन्न करेगा। वह दूसरे व्यक्तियों को भी, चाहे वे समूह के व्यक्ति हों या बाहर के हों, ऐसा नहीं करने देगा। प्रत्येक सम्भव साधन का उपयोग समूह की सहायता के लिए करेगा, उसको समूह का विश्वासपात्र होना पड़ेगा।

2. सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता सामूहिक प्रक्रिया का प्रत्येक परिस्थिति में आदर करता है। उद्देश्यों को निश्चित करने में, योजनाओं को बनाने तथा उसके क्रियान्वयन में एवं अपने अनुभव को मूल्यांकित करने में वह इस प्रक्रिया का उपयोग अवश्य करता है। यह उसका उत्तरदायित्व है कि वह सदस्यों की योग्यताओं, क्षमताओं, गुणों तथा निपुणताओं के अनुरूप भाग लेने के अवसर उन्हें उपलब्ध करायें तथा भावनाओं को व्यक्त करने की सुविधा प्रदान करें।

3. सामूहिक कार्य प्रजातान्त्रिक समाज के सन्दर्भ में किया जाता है। कार्यकर्ता अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का ध्यान रखता है। वह समूह को सदैव सामाजिक उत्तरदायित्व से अवगत कराता रहता है। उसको आवश्यकता का अनुभव व्यक्ति की आन्तरिक आवश्यकताओं से नहीं बल्कि प्रजातान्त्रिक समाज में अपनी भूमिका के कारण होती है। वह प्रजातान्त्रिक उद्देश्यों को स्वीकार करेगा तथा प्रजातान्त्रिक तरीकों का उपयोग समूह के विकास के लिए करेगा।

4. अधिकांश सामूहिक कार्य संस्था के माध्यम से किया जाता है, जिसके कुछ सामान्य तथा कुछ विशेष उद्देश्य होते हैं।

5. वह सदस्यों के माता-पिता के साथ नैतिकतापूर्ण सम्बन्ध रखता है, क्योंकि माता-पिता का सहयोग आवश्यक है। पारिवारिक सम्बन्ध बनाये रखना समूह की सफलता के लिए आवश्यक है।

6. कार्यकर्ता में सामाजिक सामूहिक कार्य के ज्ञान, निपुणता सिद्धान्त तथा दर्शन का समावेश होना चाहिए। उसको वर्तमान ज्ञान प्राप्त करने का सदैव प्रयास करना चाहिए।

7. कार्यकर्ता के अपने मूल्य स्वतन्त्र निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

विलसन तथा राइलैण्ड ने सामाजिक सामूहिक कार्य के चार क्षेत्र बतलाये हैं। अतः कार्यक्षेत्र के अनुसार सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न है। प्रथम क्षेत्र के सिद्धान्तों

का वर्णन ऊपर हो चुका है। अब शेष तीन क्षेत्रों के सिद्धान्तों का वर्णन आगे करेंगे।

अधीक्षण (Supervision) के सिद्धान्त :

1. वैध तथा प्राप्त होने योग्य उद्देश्यों का निर्माण होना चाहिए।

2. समय का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उद्देश्यों की प्राप्ति समय पर होनी चाहिए। कार्य का समयानुसार सम्पन्न होना आवश्यक होता है। उसको समय की गति के अनुसार कार्य करना चाहिए।

3. मुख्य आकर्षण का विषय वह होना चाहिए जो संस्था से सेवा प्राप्त कर रहा है। अर्थात् समूह के सदस्य पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

4. कार्यकर्ता के सकारात्मक रूप से समूह-सदस्यों की व्यक्त भावनाओं के प्रत्युत्तर प्रदान करने चाहिए तथा सम्मेलन के दौरान प्रस्तुत की गयी सामग्री के प्रति जिज्ञासा रखनी चाहिए।

5. कार्यकर्ता समूह में प्रत्येक व्यक्ति तथा सम्पूर्ण समूह की भावनाओं एवं विचारों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तथा उसे उनके बीच अन्तर अवश्य व्यक्त करना चाहिए।

6. अल्पमत विचारों को ध्यान में रखना चाहिए। असहमति के प्रश्न को समझना चाहिए। सदस्यों को अपनी भावनाओं को सम्मेलन में व्यक्त करने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए।

7. व्यक्ति तथा समूह के प्रति अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं का ज्ञान होना चाहिए। उसको वह समझ-बूझकर नियन्त्रित करे, जिससे किसी को हानि न होने पाये।

8. जब और जहाँ सम्भव हो कार्यकर्ता को समूह के हित के लिए अधिक से अधिक स्रोतों को बतलाना चाहिए तथा उनके उपयोग की विधि से भी अवगत कराना चाहिए। कार्यकर्ता को उसे बाह्य स्रोतों का भी ज्ञान कराना उचित होगा।

9. वार्तालाप के लिए विषय-चयन में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों का उपयोग करना अधीक्षक के लिए आवश्यक होता है।

10. कान्फरेन्स में कार्यकर्ताओं के कार्यों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

प्रशासन के सिद्धान्त :

निम्न सिद्धान्त एक प्रशासक को उसके उद्देश्य को पूरा करने में सहायता पहुँचाते हैं :—

1. यदि समूह के साथ कार्य करना है तो उसके लिए समूह की संरचना तथा पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि उसे समूह के व्यक्तियों के विषय में ज्ञान होना चाहिए।

2. उसे अन्य समूहों के सन्दर्भ में समूह के उद्देश्यों तथा कार्यों को सदस्यों के द्वारा पारिभाषित करने तथा इनकी जानकारी प्राप्त करने में सहायता करनी चाहिए। उसे उन्हें कार्यभार से भी अवगत कराना चाहिए।

3. उसे अनेकों समूहों में एकीकरण लाना चाहिए, जिससे संस्था के उद्देश्य के लिए प्रत्येक समूह एक-दूसरे की सहायता करे तथा उनमें सामंजस्य बना रहे।

4. कार्यात्मक समानता को ध्यान में रखकर तथा इन समूहों के साथ समय तथा व्यय का अनुमान लगाते हुए उसे व्यक्तिगत सन्तुलन प्राप्त करना चाहिए, अर्थात् उसको सदैव कार्यक्रम का मूल्यांकन करते रहना चाहिए।

5. उसे समूह की सहायता संगठन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में करनी चाहिए, जिससे उसे उत्तरदायित्व का विवरण तथा ग्रहण विस्तृत रूप से हो, केवल कुछ लोगों में ही नहीं।

6. उसे समूह के नेताओं के लिए शैक्षिक कार्यक्रम का प्रबन्ध करना चाहिए। समूह की मीटिंग हो, जिससे समूह के सदस्यों को सन्तोष प्राप्त हो सके।

7. उसे समूह को अपने उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अपने कार्य का मूल्यांकन करने में सहायता करनी चाहिए। संस्था के उद्देश्यों के संदर्भ में भी मूल्यांकन होना अनिवार्य होता है।

नियोजन के सिद्धान्त :

1. उन व्यक्तियों की रुचियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन होना चाहिए, जो संस्था के मूलभूत सदस्य हैं।

2. जो प्रत्यक्ष रूप से नियोजन से प्रभावित होते हैं उनको योजना बनाने में भाग लेने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

3. नियोजन तथ्यों पर आधारित होना चाहिए।

4. नियोजन में छोटी-छोटी समितियों को लेकर बड़ी-बड़ी समितियों तक को सम्मिलित करना चाहिए तथा उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए।

5. नियोजन की प्रक्रिया वैयक्तीकृत या विशेषीकृत होनी चाहिए, क्योंकि स्थितियों में अन्तर होता है।

6. नियोजन में व्यावसायिक नेतृत्व की आवश्यकता होती है।

7. नियोजन में व्यावसायिक लोगों के प्रयत्नों के साथ-साथ ऐच्छिक,

अव्यावसायिक तथा सामुदायिक नेतृत्व द्वारा किये गये प्रयत्नों की भी आवश्यकता होती है।

8. नियोजन में अभिलेख होना अनिवार्य होता है जिससे भविष्य में सहायता मिलती है।

9. नियोजन सीमित साधनों के अन्तर्गत होना चाहिए।

10. नियोजन विचार (Thinking) पर आश्रित है।

उपरलिखित सामाजिक सामूहिक कार्य के सिद्धान्त ऐसे कठोर नियम नहीं हैं जिन पर न चलना कानून के प्रतिकूल हो। परन्तु ये ऐसी दशाएँ हैं जो सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता को अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। कार्यकर्ता इन सिद्धान्तों पर चलकर समूह के साथ सफलतापूर्वक कार्य सम्पन्न करने में सफल होता है। ये कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं, वरन् परिवर्तनशील है। अनुभव, ज्ञान, निपुणता तथा प्रविधियों में वृद्धि होने के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन आता है तथा ये समयानुसार बदलते रहते हैं। परन्तु इनकी उपस्थिति सामाजिक सामूहिक कार्य के लिए एक आवश्यक शर्त है।

●

अध्याय–10

सामाजिक सामूहिक कार्य-निपुणतायें

(Social Group work skills)

मनुष्य एक सामूहिक प्राणी है। उसका अस्तित्व समूह से ही तथा समूह में ही है। जिस प्रकार से कोषाणु द्वारा जीवन सम्भव होता है उसी प्रकार से सामाजिक स्वरूप केवल समूह द्वारा ही वह प्राप्त करता है।[1] बाइविल के अनुसार—'हम लोग न केवल लाक्षणिक रूप में बल्कि अति वास्तविक तथा महत्त्वपूर्ण स्तर पर एक-दूसरे के लिए सदस्य हैं'।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्यों में अन्तर्निर्भरता पायी जाती है और सहयोग का मूल्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अन्तर्निर्भरता के कारण अपनी भूमिका निर्वाह के लिए उसे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिससे वह उन निपुणताओं एवं कौशल का विकास कर सके, जिसके द्वारा अपनी उपयोगिता का प्रमाण दे सके व अपने कार्यों का सम्पादन करने में सफल हो।[3] मानव जीवन की सभी समस्यायें दो प्रकार से ही सुलझायी जा सकती हैं—सहयोग तथा समस्या समाधान की योग्यता या निपुणता। यही सामाजिक जीवन के दृष्टिगोचर लक्षण हैं।[4]

(i) **निपुणता की प्रकृति** (Nature of Skill)—किसी भी व्यवसाय के लिए निपुणताओं का होना उसके स्वरूप व महत्त्व को स्पष्ट करता है। समाज-कार्य की उन्नति एवं विकास में निपुणताओं का एक विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह मानव-व्यवहार की समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित है और वे समस्यायें तब तक समाधान नहीं की जा सकती हैं जब तक उसमें विशेष योग्यता एवं कौशल का विकास नहीं होगा। फ्लेक्सनर के विचार से उत्कृष्ट व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा शिक्षार्थी में संचार शक्ति (communication power)

---

1. Montague, MFA : On Being Human, Henry Schuman, Newyork, 1950, p. 30.
2. Cherbonnier, E. L. : Hardness of Heart, Doubleday, Newyork, 1955, p. 126.
3. Linton, Ralph : The Tree of culture, Knopt, Newyork, 1955
4. Adler, Alfred : Social Interest : A challange to Mankind. Faber and Faber, London, 1938, pp. 283-284.

का विकास प्रमुख उद्देश्य होता है ।[5] सामाजिक कार्यकर्ता में निपुणताओं का होना ही यह निश्चित करता है कि वह अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हो सकेगा । समाज-कार्यवेत्ताओं तथा शिक्षकों की यह अवधारणा है कि सभी समाज-कार्यप्रणालियों में एक सामान्य प्रक्रिया है । लेकिन प्रत्येक प्रणाली में कुछ विशेष प्रक्रियायें, तरीके, कौशल एवं प्रविधियाँ होती हैं ।[6]

(ii) **निपुणता का अर्थ**—सामान्य अर्थ में निपुणता का अर्थ कार्य करने की क्षमता से है । वेबस्टर (webster) शब्दकोष के अनुसार निपुणता का तात्पर्य कार्य के क्रियान्वयन व उसे पूर्ण करने के ज्ञान एवं दक्षता से है । ट्रेकर के अनुसार निपुणता कार्यकर्ता की विशेष परिस्थितियों में ज्ञान एवं समय के उपयोग की क्षमता है । विरजाइना राबिन्सन के अनुसार निपुणता का अर्थ विशिष्ट वस्तु का नियन्त्रण तथा कार्य रूप में परिणत करने की क्षमता है जिससे वस्तु में होने वाला परिवर्तन, उसकी उपयोगिता तथा गुण उसकी क्षमता से प्रभावित होता है ।[7]

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति निपुणताओं की प्राप्ति ज्ञान वृद्धि एवं कार्य अनुभव से करता है । जब वह किसी कार्य में सतत लगा रहता है तो निपुणतायें स्वतः आ जाती हैं । यदि कार्यकर्ता अपने समूह की सहायता प्रभावकारी ढंग से करना चाहता है तो उसे मानव समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों का ज्ञान होना आवश्यक है तथा इन प्रत्ययों को समूह में

5. Flexner, A : Is social work a Profession ? Proceedings of the National conference of charities and corrections, XLII, 1915, p. 580.
6. "Skill is the worker's capacity to apply knowledge and understanding to a given situation" Trecker, H. B. : op. cit. p. 35.
7. "The capacity to set in motion and control a process of change in specific material in such a way that the change that takes place in the material is effected with the greatest degree of consideration for and utilization of the quality and capacity of the material."
   Robinson, Virginia p. "The Meaning of Skill" Training for skill in Social case work. University of Peunsylvania Press, Philadelphia, 1942, p. 11-12.

किस प्रकार उपयोग में लावे, इसका ज्ञान होना भी आवश्यक होता है। उसमें समूह-संवेदना को जानने की क्षमता होनी चाहिये। साथ ही साथ समूह-प्रक्रिया को प्रारम्भ करने, आगे बढ़ाने तथा नियन्त्रण करने की क्षमता भी होनी आवश्यक है। निपुणता के 3 प्रमुख अंग हैं—ज्ञान, भावना एवं क्रिया (Knowledge, Feeling and Acting)। कार्यकर्ता को सामूहिक प्रणाली तथा निपुणता को प्रायः समान समझा जाता है। परन्तु ऐसा नहीं है। प्रणाली एक क्रमानुसार व्यवस्थित तथा नियोजित काम करने का तरीका है। प्रणाली उद्देश्य प्राप्त करने का चेतन तरीका तथा अभिकल्पित साधन है। साधारण अर्थ में प्रणाली कोई भी कार्य करने के तरीके को कहते हैं। परन्तु इसके अन्तर्गत सदैव ज्ञान की संगठित व्यवस्था, ग्रहण-शक्ति, समझ तथा सिद्धान्तों की खोज करते हैं। इस प्रकार प्रणाली का तात्पर्य ज्ञान और सिद्धान्तों के आधार पर उद्देश्यपूर्ण ढंग से अन्तर्दृष्टि तथा सामान्य का उपयोग है। निपुणता ज्ञान और समझ को विशिष्ट परिस्थिति में उपयोग करने की क्षमता है : प्रणाली प्रक्रिया का उपयोग है जबकि निपुणता इसके उपयोग की क्षमता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य की निपुणतायें विभिन्न विज्ञानों से प्राप्त हुई हैं, क्योंकि समाज-कार्य में अधिकाधिक विज्ञानों का अध्ययन किया जाता है। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह अपने में उन निपुणताओं का विकास करे जो सामूहिक कार्य करने के लिए आवश्यक होती हैं। उसे समूह-कार्य के सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिये। समूह के विचारों एवं अनुभवों को समझने तथा उनसे निपटने की क्षमता होनी चाहिये। वह समूह-सदस्यों के विचारों एवं अनुभवों को समझने तथा स्पष्ट करने में समर्थ हो तथा उसी के अनुरूप कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की क्षमता रखता हो।[8] इन गुणों के होने पर ही कोई कार्यकर्ता निपुण कहा जायेगा। उस संस्था, जिसके अन्तर्गत वह कार्य करता है, उसके विषय में तथा समुदाय, जिसके लिए वह काम करता है, उसके विषय में सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिये।

(iii) **सामूहिक कार्य की आवश्यक निपुणतायें**—ट्रेकर (Trecker)[9] ने सामूहिक कार्य की निम्नलिखित निपुणताओं का उल्लेख किया है—

1. **उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता (Skill in Establishing Purposeful relationship) :**

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह की स्वीकृति प्राप्त करने और समूह से

8. Trecker, H. B. op. cit. p. 3.
9. Ibid, pp. 56-57.

एक सकारात्मक व्यावसायिक आधार पर सम्बन्ध स्थापित करने में अवश्य निपुण होना चाहिये।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के सदस्यों को एक-दूसरे को स्वीकार करने और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति में समूह के साथ सहयोग करने में अवश्य ही निपुण होना चाहिये।

2. समूह-परिस्थिति विश्लेषण की निपुणता (Skill in Analysing Group Situation) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता में समूह का स्तर, उसकी आवश्यकतायें तथा उसकी गतिशीलता को जानने के लिए समूह के विकासात्मक स्तर को समझने की निपुणता अवश्य होनी चाहिए। यह समूह के प्रत्यक्ष अवलोकन की निपुणता है जिसके आधार पर विश्लेषण तथा निर्णय सम्भव होता है।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता में इस बात की निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह को अपने विचारों को व्यक्त करने, उद्देश्यों को निश्चित करने, आवश्यक (immediate) लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करने और समूह के रूप में अपनी शक्तियों एवं सीमाओं को समझने में सहायता कर सके।

3. समूह के साथ भाग लेने में निपुणता (Skill in Participation with the Group) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के प्रति अपने भूमिका निर्धारित करने, उसकी व्याख्या करने, उसे ग्रहण करने और उसे परिवर्तित करने में अवश्य ही निपुणता होनी चाहिए।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के सदस्यों को भाग लेने, अपने बीच में से नेतृत्व को ढूंढ़ने और अपनी क्रियाओं के विषय में उत्तरदायित्व स्वीकार करने में सहायता देने में अवश्य ही निपुण होना चाहिये।

4. समूह की भावनाओं से निपटने में निपुणता (Skill in Dealing with Group Feelings) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के प्रति अपनी भावनाओं को नियन्त्रित करने में अवश्य ही निपुण होना चाहिये और उसे प्रत्येक नवीन परिस्थिति को उच्चकोटि की विषयनिष्ठता (objectivity) से अध्ययन करना चाहिये।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह को अपनी सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार की भावनाओं को व्यक्त करने में सहायता देने में अवश्य निपुण होना चाहिये। उसे समूह द्वारा सामूहिक एवं आन्तरिक संघर्ष की परिस्थिति का विश्लेषण करने में सहायता देने में अवश्य निपुण होना चाहिए।

5. कार्यक्रम के विकास में निपुणता (Skill in Programme Development) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को सामूहिक चिन्तन (Group Thinking) का मार्ग निर्देशित करने में अवश्य निपुण होना चाहिए, जिससे उनकी अभिरुचियों और आवश्यकतायें प्रकट हो सके और समझी जा सके ।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को समूहों की ऐसे विकास-कार्यक्रमों का विकास करने में अवश्य निपुण होना चाहिये जिनके माध्यम से समूह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते हैं ।

6. संस्था और सामुदायिक साधनों के उपयोग में निपुणता (Skill in Using Agency and Community Resourses) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को विभिन्न सामुदायिक सहायक साधनों का पता लगाने और उनके विषय में समूह को जानकारी कराने में अवश्य निपुण होना चाहिए, जिनका उपयोग कार्यक्रम-उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है ।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के कुछ उन सदस्यों को जिनकी आवश्यकतायें समूह के माध्यम से पूरी नहीं हुई हैं, विशिष्ट सेवाओं के लिए सन्दर्भित करने में अवश्य ही निपुण होना चाहिए ।

7. मूल्यांकन में निपुणता (Skill in Evaluation) :

(अ) सामूहिक कार्यकर्ता को समूह के साथ कार्य करते समय विकास सम्बन्धी प्रक्रिया को अभिलिखित (Recording) करने में अवश्य ही निपुण होना चाहिए ।

(ब) सामूहिक कार्यकर्ता को अपने अभिलेखों का प्रयोग करने और समूह की उन्नति के लिए उसके अपने अनुभवों की समीक्षा करने में सहायता देने में अवश्य ही निपुण होना चाहिए ।

4. फिलिप्स (Phillips)[10] ने सामूहिक कार्य की 4 प्रमुख निपुणताओं का उल्लेख किया है :—

(अ) संस्था के कार्यों के प्रयोग की निपुणता (Skill in Using Agency Function) ।

(ब) भावनाओं के संचार की निपुणता (Skill in Communication of Feeling)

---

10. Phillips, Helen, U, : Essentials of Social Group Work Skill, Association Press, Newyork, 1957, pp. 51-155.

(स) वर्तमान की वास्तविकता के प्रयोग की निपुणता (Skill in Using Reality of the Present) ।

(द) सामूहिक सम्बन्धों को उत्तेजित करने तथा उपयोग करने में निपुणता (Skill in stimulating and Using group Relation)।

(अ) **संस्था के कार्यों के उपयोग की निपुणता**—सामूहिक कार्य संस्था के माध्यम से सम्भव होता है। सामूहिक कार्य का विकास सामाजिक संस्थाओं द्वारा हुआ है। इन संस्थाओं के स्वरूप अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु उद्देश्य लगभग समान होते हैं। इससे पहले कि कार्यकर्ता अपने कार्यों को समझे उसको यह अवश्य समझना चाहिये कि सम्बन्धित संस्था क्या करने का प्रयत्न कर रही है। सामूहिक कार्यकर्ता के लिए संस्था के कार्य के सकारात्मक क्षेत्र हैं जिनका उपयोग वह समूहों के साथ अपने कार्य में करता है। इससे उसको कार्य का स्पष्ट ज्ञान होता है और अन्य अवयवों व इकाइयों की जानकारी होती है। जिससे वह समूह एवं समुदाय को लाभान्वित कराता है।

ट्रेकर ने संस्था के कार्यों को कार्यकर्ता के लिए सकारात्मक यन्त्र (Tools) बतलाया है, जिनका उपयोग वह समूह के साथ कर सकता है। समूह को संस्था में उपलब्ध अवसरों व सीमाओं का ज्ञान कराना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। इतना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि कार्यकर्ता को समूह की इस प्रकार सहायता करनी चाहिये जिससे वह इन अवसरों की सीमाओं को समझ सके तथा स्वीकार कर सके। कार्यकर्ता संस्था का प्रतिनिधि होने के नाते वह निरन्तर संस्था के कार्यों की व्याख्या एवं पुनर्व्याख्या करता है तथा उसके सन्दर्भ में अपनी भूमिका का भी विश्लेषण करता है।[11] अतः कार्यकर्ता को संस्था के कार्यों के उपयोग में निपुण होना चाहिये। सामूहिक कार्यकर्ता में संस्था के कार्यों के उपयोग के लिए निम्न निपुणतायें आवश्यक हैं :—

1. अन्तर्ग्राही निपुणता

सामूहिक कार्यकर्ता में यह निपुणता होनी चाहिये कि वह सदस्यों की समूह

---

11. As a representative of the agency, the group worker is constantly called upon to interpret and reinterpret agency function and has own job in relation to it. Without the understanding which emerges from such a process, it is doubtful whether or not groups can relate satisfactorily to the agency for very long time. Trecker, H. B. op. cit. pp. 50-51.

में सम्मिलित होने की इच्छा को सन्तुष्ट करे। जब कोई व्यक्ति किसी संस्था में आता है और समूह का सदस्य बनना चाहता है तो पहले संस्था के विषय में जानकारी चाहता है तथा पूछताछ करता है। कार्यकर्ता को चाहिये कि पहले वह उसकी इच्छा को समझे तथा वह किस प्रकार समूह से लाभ उठा सकता है, यह उसे समझ ले, जिससे वह समूह की सदस्यता प्राप्त कर लाभ उठा सके।

सदस्यों की आन्तरिक सम्प्रेरणायें भिन्न-भिन्न होती हैं। अभ्यर्थी संस्था पर समूह से लाभ उठाने के लिए अपने मित्र के साथ आ सकता है या उसके बतलाने से आ सकता है अतः वह यह जानने की अभिलाषा रखता है कि समूह में क्या होता है। संस्था में आने के लिए कुछ भी सम्प्रेरणायें रही हो परन्तु वह कुछ न कुछ इससे अपने लिए प्राप्त करना चाहता है। कार्यकर्ता जो अभ्यर्थी से मिलता है, उसको संस्था के विषय में बतलाता है, उसके कार्यों का वर्णन करता है तथा स्पष्ट करता है कि उसके लिए क्या हो सकता है। वह यह भी बतलाता है कि सदस्यों के उत्तरदायित्व और विशेषाधिकार क्या है। अतः उसे संस्था के कार्यों की पूरी जानकारी होनी चाहिये।

2. **समूह का संस्था से सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता**—कार्यकर्ता जब अभिकरण के विषय में पूर्ण जानकारी रखेगा तथा समूह को उसके अनुसार आगे बढ़ायेगा तो वह स्वतः समूह को अभिकरण के उद्देश्यों के निकट ले जायगा। कार्यकर्ता का यह कर्त्तव्य है कि वह समूह के उद्देश्यों को संस्था के उद्देश्यों के अनुरूप रखे तथा समूह और संस्था में सम्बन्ध प्रगाढ़ करने में निपुण हो। कार्यकर्ता ऐसे सुअवसर खोजने का प्रयत्न करता है कि उसके सम्बन्धों को मधुर बनाया जा सकता है। वह विभिन्न आयोजनों व कार्यक्रमों का निर्धारण करता है तथा समूह को समय-समय पर संस्था की क्रियाओं में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है। कार्यकर्ता यदि इस सम्बन्ध को स्थायी रखने में असमर्थ है तो यह असम्भव है कि वह संस्था तथा समूह-कार्य के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल होगा। संस्था समूह को सहायता नहीं देगा। फलतः समूह कोई भी कार्य नहीं कर सकेगा। चूंकि सामाजिक कार्यकर्ता संस्था का एक अंग होता है अतः उसमें यह निपुणता होनी चाहिए कि वह समूह की रुचियों एवं अभिलाषाओं को संस्था के अनुरूप निर्धारित कर सके।

3. **समूह-कार्य प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति की सहायता की निपुणता**—समूह का निर्माण व्यक्ति मिलकर करते हैं परन्तु उनकी अपनी भी कुछ इच्छाएँ तथा अभिलाषाएँ होती हैं जिनको वे पूरा करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त सभी सदस्य एक स्तर के नहीं होते। उनमें विभिन्नता होती है। समाज-कार्य की यह प्रमुख धारणा है कि व्यक्ति व्यक्ति में अन्तर होता है। एक-सी समस्याएँ होने

पर भी दृष्टिकोण अलग-अलग होते हैं। सदस्य अपने-अपने दृष्टिकोण से कार्यक्रमों से लाभ उठाते हैं। अतः कार्यकर्ता समूह पर तो अवश्य ध्यान रखे परन्तु व्यक्ति को भी महत्त्व देता रहे, क्योंकि कार्यक्रम का उद्देश्य सभी सदस्यों को लाभ पहुँचाना है। कार्यकर्ता को अपना ध्यान सभी सदस्यों पर समान रूप से रखना चाहिए। अगर आवश्यक हो तो वह किसी सदस्य की समूह से बाहर भी सहायता कर सकता है। परन्तु समूह द्वारा व्यक्ति-विशेष की सहायता करने में वह निपुण अवश्य हो।

अतः स्पष्ट है कि व्यक्ति की सहायता समूह के माध्यम से की जाती है और कार्यकर्ता की सफलता व्यक्ति को सहायता प्रदान करने में है।

4. **सामूहिक क्रियाओं के अतिरिक्त या बाहर व्यक्ति को समझने तथा सहायता करने की निपुणता**—सामाजिक सामूहिक कार्य में व्यक्ति की सहायता न केवल समूह के माध्यम से की जाती है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर विशेष सहायता भी प्रदान की जाती है। कार्यकर्ता वैयक्तीकरण द्वारा व्यक्ति-विशेष की समस्याओं का अध्ययन करता है और समूह-अनुभव का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए समूह से बाहर भी सहायता करता है।

5. **सन्दर्भित करने की निपुणता** (Referral)—समूह विभिन्न समस्याओं का सामना करता है। सदस्यों की भिन्न-भिन्न समस्याएँ होती हैं, जिनका समाधान कार्यकर्ता पूर्ण रूप से नहीं कर सकता। अतः वह किसी भी संस्था या व्यक्ति को उस विशेष समस्या के लिए संदर्भित कर देता है। अतः उसमें इतनी कुशलता होनी चाहिए कि वह समूह के सभी सदस्यों की समस्याओं का निदान कर सके और उसके अनुकूल उन्हें सन्दर्भित कर सके।

(ब) भावनाओं के संचार की निपुणता—दूसरों से सम्बद्धता स्थापित करने की मानव की सार्वभौमिक सम्प्रेरणा है। यह सम्बद्धता तभी वास्तविक रूप लेती है जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों में पारस्परिक विचारों का आदान-प्रदान हो, क्रियायें सम्पन्न हो, निर्णय लिये जाँय, सहमति तथा असहमति हो एवं संबंध का कोई न कोई रूप प्रकट हो। इन सभी कृत्यों में भावनाओं की विशेष भूमिका होती है। अतः यदि किसी स्थिति के विषय में दूसरे को बतलाना है तो उससे सम्बन्धित भावनायें भी स्पष्ट करनी होती है। संचार-प्रक्रिया के आधार पर ही सम्बन्ध स्थापित होते हैं। सामूहिक कार्यकर्ता के लिए अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने तथा समूह की भावनाओं को समझने एवं लाभकारी उपयोग करने की निपुणता आवश्यक होती है।

1. **कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं को समझने, नियंत्रण रखने तथा उपयोग करने की निपुणता**—कार्यक्रम के अन्तर्गत बहुत-सी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ

पर कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं पर नियंत्रण रखना पड़ता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है तो असामञ्जस्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अतः सामूहिक कार्यकर्ता में आत्मनियन्त्रण की क्षमता होनी चाहिये। ऐसी परिस्थितियाँ नहीं आनी चाहिये जहाँ पर वह स्वयं अपनी ही भावनाओं और अभिप्रेरणाओं से घिर जाय और समूह को उपेक्षित कर दे। लेकिन अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण वह तभी कर सकता है जब उनकी उपस्थिति का उसे एहसास हो। भावनाओं के दो पक्ष होते हैं—सकारात्मक तथा नकारात्मक। लेकिन बिरले ही कोई विशुद्ध रूप में इन भावनाओं का अनुभव करता है। दोनों ही रूप सम्मिलित रूप से बने रहते हैं। केवल उनकी प्रभावपूर्णता में अन्तर आता जाता है। कभी सकारात्मक भावना का प्रभाव बढ़ जाता है और कभी नकारात्मक भावना प्रभावकारी हो जाती है। यदि इन पक्षों में से किसी पक्ष को अस्वीकार करते हैं तो इसका तात्पर्य हम वास्तविकता को नहीं मानते हैं। अतः यदि कार्यकर्ता अपनी भावनाओं का समूह के साथ सम्बन्धों में रचनात्मक उपयोग करना चाहता है तो उसे अपनी भावनाओं का सामना करना होगा, समझना होगा तथा स्वीकार करना होगा।

यद्यपि भावनाओं को स्पष्ट करने में शब्द महत्त्वपूर्ण होते हैं लेकिन उस व्यक्ति की भावभंगिमा, मुखाकृति, बात करने का ढंग तथा संवेग अति महत्त्वपूर्ण होते हैं। अतः कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण तथा उचित अवसर पर स्पष्ट करने को ही निपुण होना चाहिये बल्कि उसे अपने शारीरिक एवं व्यावहारिक क्रियाओं पर भी नियंत्रण रखना चाहिए।

सामाजिक सामूहिक कार्य में संचार-प्रक्रिया (Communication Process) के प्रारम्भ करने का उत्तरदायित्व कार्यकर्ता पर होता है। अतः उसे यहाँ पर सबसे पहले अपनी भावनाओं को समझने तथा समूह-सदस्यों को समझने की संवेदना आवश्यक होती है। उसे शब्दों और क्रियाओं के अर्थों को समझने की कला अवश्य आनी चाहिये। क्योंकि प्रारम्भ में समूह के सदस्य जो कहते हैं वह उनका वास्तविक मतलब नहीं होता है। अतः कार्यकर्ता को इस अन्तर को समझने की योग्यता अवश्य विकसित करनी चाहिये।

कार्यकर्ता की दूसरी अनुभूति प्राप्त करने की निपुणता आवश्यक निपुणताओं में से एक है। शायद यह समाज-कार्य के विकास में सबसे महान् कारक रहा होगा, क्योंकि जब तक मनुष्य सेवार्थी के अनुरूप अनुभव नहीं करेगा वे सहायता लेने के लिए तैयार नहीं होंगे। अतः कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह समूह के सदस्यों की भावनाओं का ध्यान रखे। वह इस बात का भी प्रयत्न करता है कि समूह के सदस्य उसकी भावनाओं को समझे। वह अपने अनुभवों को समूह के

समक्ष रखता है और यदि वे स्वीकृत नहीं होते हैं तो उन पर नियंत्रण रखने की क्षमता रखता है।

2. **समूह-सदस्यों की भावनाओं को समझने तथा उनसे निपटने की निपुणता**—कार्यकर्ता के लिए समूह की भावनाओं के प्रति संवेदनशील होना ही पर्याप्त नहीं है और न ही सदस्यों को भावनाओं के प्रत्युत्तर सहायक होते हैं, जबकि सदस्यों को इन भावनाओं को समझने तथा उनके प्रति उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए न प्रोत्साहित किया जाय। सदस्यों की सकारात्मक भावनायें तो मौखिक रूप से व्यय हो जाती हैं परन्तु समस्याग्रस्त भावनायें तोड़-मरोड़ कर अव्यक्त अमौखिक तरीके से व्यक्त होती हैं। कार्यकर्ता के लिए सबसे पहले यह आवश्यक होता है कि वह सदस्यों को इन सकारात्मक भावनाओं को अनुभव करने तथा विकास के लिए उचित अवसर पर उपयोग करने की सलाह दें। इस प्रकार की सहायता से सदस्य समूह को अपना समूह समझने लगते हैं और विकास-कार्यक्रम सही दिशा में आगे बढ़ते हैं। लेकिन कार्यकर्ता के लिए यह भी उतना ही आवश्यक है कि वह नकारात्मक भावनाओं को उतना ही महत्त्व दें। नकारात्मक भावनायें प्रायः संस्था की नीति, संरचना के प्रति अथवा सदस्यों में आपस के विरोधाभास के कारण, अथवा कार्यक्रम के प्रति निराशा, नये अनुभवों में कठिनाई या कार्यकर्ता से शिकायत के कारण व्यक्त होती है। परन्तु ये भावनायें सदैव शब्दों के माध्यम से या उग्रात्मक व्यवहार द्वारा ही नहीं प्रगट होती है बल्कि सदस्य अनुपस्थित रहकर कार्यक्रमों में भाग न लेकर अथवा उसे उदासीनता दिखलाकर स्पष्ट करते हैं। अतः कार्यकर्ता को इन व्यवहारों को समझने तथा उनके अर्थ का विश्लेषण करने की निपुणता अवश्य होनी चाहिए तभी समूह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।

3. **सामूहिक भावनाओं के संचार की निपुणता**—कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं के साथ ही साथ समूह की भी भावनाओं का ज्ञान होना चाहिए और उसे रचनात्मक रूप से उनका उपयोग करने में निपुण होना चाहिए। वह समूह को अपनी भावनाओं को समझने, स्वीकार करने तथा व्यक्त करने में सहायता करता है। समूह की भावनाओं के प्रति केवल संवेदनशील होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे भावनाओं को व्यक्त करने में भी सहायता करनी चाहिए और उन पर नियन्त्रण इस प्रकार से रखना चाहिए जिससे समूह-सदस्य नियन्त्रण का अनुभव न करें।

समूह की भावनाओं के दो पक्ष हो सकते हैं—या तो अति सकारात्मक या अति उग्र कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह सकारात्मक भाव को अधिक व्यक्त करने का अवसर दे, जिससे विकास हो तथा आत्म-दृढ़ता विकसित हो।

उदाहरण के लिए—किसी परियोजना के पूरा होने में विभिन्न सदस्यों ने भाग लिया है, एक-दूसरे को प्रोत्साहित किया है, एक साथ कार्य किया है, पारस्परिक समस्याओं को सुलझाने में भाग लिया है। यह कार्यक्रम का रचनात्मक पहलू है तथा भावनाओं का सकारात्मक रूप है। कार्यकर्ता इन भावनाओं एवं संवेगों को मान्यता देता है तथा सदस्यों को अपने संवेगों को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित करता है, उनमें अनुभवों को दृढ़ करता है और इस प्रकार पूरे समूह का विकास करता है।

(स) वर्तमान वास्तविकता के उपयोग की निपुणता—सामूहिक कार्यकर्ता में यह निपुणता होनी चाहिए कि वह सदस्यों को वास्तविक स्थिति से अवगत करा सके तथा उसके अनुरूप चलने के लिए निर्देश दे सके। उदाहरण के लिए—समूह संस्था से यदि ऐसी सहायता चाहता है जो वर्तमान समय में सम्भव नहीं है तो कार्यकर्ता का यह कर्तव्य है कि समूह की ऐसी माँग को रोक सके और समूह की इच्छा को भी कुण्ठित न होने दे। इस भूमिका के निष्पादन के लिए कार्यकर्ता में निम्न निपुणतायें होनी चाहिये—

1. सामूहिक रुचि का उद्देश्यीय क्रियाओं के लिए उपयोग करने की निपुणता—कार्यकर्ता को चाहिए कि समूह की रुचियों को जान लेने के पश्चात् उनको इस प्रकार से निर्देशित करे जिससे कार्यक्रमों की पूर्ति हो और उसी के अनुरूप क्रियाएँ सम्पन्न हों। रुचियों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता यद्यपि सभी सदस्यों को होती है परन्तु समूह की रुचि सर्वोपरि है। कार्यकर्ता सदस्यों की रुचियों को समूह की रुचि में परिवर्तित करता है। परन्तु वह यह भी ध्यान रखता है कि किसी भी सदस्य की इच्छा कुण्ठित न होने पायें। वह समूह के कार्यक्रमों को समूह की रुचि के अनुसार क्रियान्वित करता है। वह समूह-विकास के स्तर को समझने में निपुण होता है। विकास की क्या स्थिति है, समूह क्या चाहता है तथा समूह में किस प्रकार परिवर्तन लाया जा सकता है, यह कार्यकर्ता को ज्ञात होना आवश्यक होता है। उसे समूह के विचारों को व्यक्त करने, उद्देश्यों को निर्मित करने और तात्कालिक उद्देश्यों को स्पष्ट करने में निपुण होना चाहिए।

2. समूह को उत्तरदायी निर्णय लेने में सहायता देने की निपुणता—समूह-सदस्यों के व्यवहार एवं मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उनको एकाएक परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इस कार्य के लिए कार्यकर्ता में एक विशेष प्रकार की निपुणता की आवश्यकता होती है। वह सबसे पहले सभी सदस्यों की मनोवृत्तियों का विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण करता है। जिस वस्तु या स्थिति

पर निर्णय लेना होता है वह उसके सभी पक्षों को स्पष्ट करता है और उससे प्रभावित होने वाली परिस्थितियों से सदस्यों को अवगत कराता है। अपनी बुद्धि, ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर वह यह जानने का प्रयास करता है कि समूह में उस स्थिति के विषय में विभिन्नताएँ तो नहीं हैं। यदि ऐसी स्थिति होती है तो वह तुरन्त उसे दूर करने का प्रयास करता है। वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है जिसमें समूह-सदस्य एकमत होकर निर्णय ले सकते हैं। यद्यपि निर्णय के सन्दर्भ में वह प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त को महत्त्व देता है, परन्तु एकमत होने पर विशेष जोर देता है।

(व) समूह-सम्बन्धों को उत्तेजित करने तथा उनके उपयोग करने की निपुणता—समाज-कार्य में सम्बन्ध ऐसा सम्बोधन है जिसका विशेष महत्त्व है। समस्त कार्यक्रमों की सफलता व असफलता सम्बन्ध पर ही निश्चित होती है। सदस्यों के बीच सम्बन्ध अवश्य मधुर होने चाहिये, क्योंकि समूह अनेक लोगों के मिलने से बनता है। अतः कार्यकर्ता में इन सम्बन्धों को समझने की निपुणता होनी चाहिये। साथ ही साथ यदि कोई अन्तर उत्पन्न हो गया है तो वह समूह को सही दिशा में निर्देशित कर सके। उसे समूह-सम्बन्धों को उत्तेजित करने तथा उसके माध्यम से लक्ष्य प्राप्त करने में भी निपुण होना आवश्यक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यकर्ता में निम्न निपुणतायें आवश्यक होती हैं :—

1. सामूहिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने के लिए कार्यक्रमों के उपयोग की कुशलता—कार्यकर्ता को समूह के लिए कार्यक्रम इस प्रकार से नियोजित करना चाहिए जिससे समूह-सदस्य अपने अनुभवों को प्रगाढ़ एवं उच्च बना सके। वह उन कार्यक्रमों का चयन करे जिससे सदस्यों का शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव हो तथा संवेगों की अभिव्यक्ति समूह-क्रियाओं द्वारा हो। ऐसी क्रियायें हों जिससे प्रेम, सौहार्द, भिन्नतायें एवं मनोभावों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हो। सामूहिक कार्यकर्ता को कार्यक्रम चलाने के लिए एक कलाकार जैसा होना चाहिए। एक अच्छे सलाहकार की भाँति वह उन यन्त्रों तथा विषयों से पूर्ण अवगत हो जिससे वह कार्य करता है। कार्यक्रम में समूह-सदस्यों की आवश्यकताओं एवं रुचियों को पूरा करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिये।

जन-समूह के सदस्य एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो क्रियाओं की एक लम्बी सूची तैयार करते हैं परन्तु कभी-कभी ये क्रियायें वास्तविक रूप से परे होती हैं या उद्देश्य से उनका नाममात्र का सम्बन्ध होता है। प्रभावकारी सदस्य क्रियाओं को निश्चित करने में अपने प्रभाव का उपयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता के लिए आवश्यक हो जाता है कि उन्हीं क्रियाओं को सम्पन्न कराने में अपनी योग्यता का परिचय दे जो समूह के हित में हो।

2. **सदस्यों की अन्तर्निहित शक्तियों को समझने तथा उनके उपयोग करने की निपुणता**—समूह के प्रत्येक सदस्य में विकास के लिए क्षमतायें होती हैं। यदि बाह्य पर्यावरण इन क्षमताओं के प्रगटन का अवसर देता है तो उसका व्यक्तित्व विकसित होता है और नयी योग्यतायें आती हैं। कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह इन क्षमताओं के लिए बाह्यीकृत के लिए अवसरों की खोज करे तथा समयानुसार सदस्यों को भूमिका ग्रहण के लिए प्रोत्साहित करे।

●

अध्याय 11

सामाजिक सामूहिक कार्य में समूह

सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली समूह के माध्यम से सेवार्थियों को सेवा प्रदान करती है। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता तथा संस्था दोनों के लिए समूह एक आवश्यक साधन तथा यंत्र होता है, जिसको उपयोग में लाकर वे अपने-अपने उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। सामाजिक संस्था के अन्तर्गत अनेक समूह होते हैं जो सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग अपनी कार्य-पद्धति में करते हैं। कार्यकर्ता के लिए इन समूहों का ज्ञान आवश्यक होता है। कुछ समूह तो स्थायी रूप से संस्था के अंग होते हैं तथा कुछ अस्थायी रूप से संगठित किये जाते हैं। कुछ समूह आकार में काफी छोटे होते हैं, उनकी सदस्य-संख्या सात-आठ या बारह होती है; तथा दूसरे आकार में बड़े होते हैं, उनके सदस्यों की संख्या पचास तक भी होती है। कुछ समूह बहुत संगठित होते हैं, उनके तौर-तरीके तथा नियम निश्चित होते हैं तथा दूसरे इतने संगठित नहीं होते एवं उनका संगठन औपचारिकता पर ज्यादा निर्भर रहता है। कुछ समूहों के कार्यक्रम बिलकुल निश्चित होते हैं तथा कुछ समूहों में अधिकांश कार्यक्रम सामान्य होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी प्रकार के समूह सामाजिक सामूहिक कार्य के समूह हैं ? सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का विकास करनेवालों ने सामूहिक कार्य को एक विशेष प्रकार के समूह के साथ, जिसका आकार छोटा, घनिष्ठ संबंध तथा जिसमें एक उम्र व योग्यता के सदस्य होते हैं, कार्य करना बतलाया है। उनका यह विचार इस तथ्य पर आधारित है कि लघु, घनिष्ठ, परिचयपूर्ण तथा मित्र-भाव पर आधारित समूह व्यक्तित्व-विकास में अधिक प्रभावकारी होते हैं। यह कथन सत्य है, परन्तु केवल लघु समूह ही ऐसा समूह नहीं है जिसके साथ सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है।

सामाजिक संस्थाओं में उन समूहों के साथ सामूहिक कार्य के तरीके का उपयोग किया जा सकता है जो व्यक्तियों की मान्य आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए संगठित किये जाते हैं और वे इस प्रकार से संगठित होते हैं जिससे उनके सदस्य अपने उत्तरदायित्व को अधिकाधिक स्वीकार करते हैं तथा उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए मानसिक, सांवेगिक तथा शारीरिक रूप से तत्पर होते हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य केवल समूह की विशेषताओं पर ही निर्भर नहीं होता है, कार्यकर्ता तथा संस्था भी आवश्यक कारक हैं। प्रारम्भिक अवस्था में समूह

के लिए संगठन बहुत ही सरल तथा औपचारिक होना चाहिए। समूह की संरचना सदस्यों की आवश्यकताओं तथा रुचियों पर आधारित होनी चाहिए तभी वे समूह के साथ अपनापन महसूस करेंगे तथा कार्यक्रम को अपना कार्यक्रम समझेंगे। धीरे-धीरे संगठन जटिल होता जायेगा तथा सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग बढ़ता जायेगा। कार्यकर्ता प्रारंभिक अवस्था में समूह-सदस्यों को केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर समूह को समझने में सहायता करता है। मुख्य रूप से यदि संस्था तथा कार्यकर्ताओं का उद्देश्य समूह को आत्म-कार्यात्मक (Self-Operative) बनने में सहायता करना है तो सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य के समूह की विशेषताएँ

सामूहिक कार्य में समूह को उसकी विशेषताओं के आधार पर भलीभाँति समझ सकते हैं। समूह की निम्न विशेषताएँ हैं :—

(1) समूह आकार में छोटा होना चाहिए जिससे समूह-सदस्य एक-दूसरे को भलीभाँति समझ सकें तथा सामूहिक कार्य-प्रणाली में अपनी भूमिका समझने तथा पूरी करने में समर्थ हो सकें। समूह इतना छोटा हो जिससे सामूहिक कार्यकर्ता सदस्यों को व्यक्ति के रूप में समझ सकें और सदस्य भी कार्यकर्ता को पूर्णरूपेण जान सकें। अब प्रश्न यह उठता है कि समूह को कितना लघु होना चाहिए? इसका उत्तर कार्य-स्थिति पर निर्भर होता है। सदस्यों की मनोसामाजिक विशेषताएँ भी समूह के आकार को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कुछ व्यक्तियों को तो चार या पाँच सदस्यों के समूह में वास्तविक रूप से भाग लेने में कठिनाई महसूस होती है, परन्तु 15 या 20 सदस्यों के समूह में वे भली प्रकार से प्रभावात्मक तथा कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं और अपनी भूमिका निभाने में पूर्ण रूप से सफल होते हैं। दूसरी तरफ कुछ व्यक्ति इतने बड़े समूहों के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते हैं तथा समूह में अपनापन नहीं जोड़ सकते हैं। वे छोटे समूह में क्रियात्मक अनुभव प्राप्त करने में रुचि रखते हैं तथा मानसिक एवं सांवेगिक सुरक्षा का अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त कार्यकर्ता की कार्यात्मक शक्तियों में अन्तर होता है। उनमें अनुभव, ज्ञान, निपुणता तथा प्रविधियों में अन्तर होता है। जो कार्यकर्ता अधिक अनुभवी एवं कुशल होता है वह अधिक बड़े समूह के साथ भी कार्य कर सकता है परन्तु एक नया कार्यकर्ता इस स्थिति में कार्य नहीं कर सकता। उसके लिए छोटा समूह अधिक उपयुक्त होता

है । अतः समूह का आकार इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर निश्चित करना चाहिए ।

(2) सामूहिक कार्य के समूह में घनिष्ठता का होना अनिवार्य समझा जाता है । समूह सदस्यों में एक निश्चित शर्त अवश्य होनी चाहिए जिससे वे एक निश्चित समय के लिए एक साथ बँधे रहें । अर्थात् समूह के कार्य करने की अवधि अवश्य ही निश्चित हो, क्रियाओं की रूपरेखा का विवरण हो तथा नवीन व विभिन्न ज्ञान प्राप्त करने की स्थितियों का स्पष्टीकरण हो। जिस कार्य के लिए समूह संगठित हुआ है उसका स्पष्ट अर्थ सदस्यों को मालूम होना चाहिए । चाहे उद्देश्य किसी समस्या के निवारण के लिए हो अथवा नवीन अनुभव प्राप्त करने के लिए हो, अवधि अवश्य ही निश्चित होनी चाहिए ।

(3) सामाजिक सामूहिक कार्य-समूह में कुछ औपचारिक अथवा अनौपचारिक संगठन अवश्य हो जिससे सदस्य उद्देश्यों तथा कर्तव्यों के पालन में एक मत हो सकें तथा प्रणालीबद्ध नियम के आधार पर कार्य कर सकें । इसके साथ ही साथ संगठन सामूहिक निर्णय के उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए भी आवश्यक होता है । यदि समूह-सदस्य उत्तरदायित्व चाहते हैं, इसके लिए समर्थ हैं और अपनापन महसूस करते हैं तो वह समूह सामूहिक समूह होता है ।

(4) समूह में सदस्यों के प्रवेश व चयन की एक निश्चित पद्धति होती है । समूह-सदस्य इन शर्तों को मानते हैं जिसके कारण सामाजिक नियंत्रण की उत्पत्ति होती है तथा समूह अपने आचरण के उत्तरदायित्व को ग्रहण करता है अर्थात् समूह पर सर्वमान्य नियंत्रण लगता है जिसको वे दबाव नहीं मानते । प्रवेश-नियमों तथा कानूनों का निर्धारण संस्था की सहायता व अनुमति से होना चाहिए तथा संस्था की नीतियों का ध्यान रखना चाहिए । समूह की सीमाएँ अवश्य निश्चित होनी चाहिए तथा उन सीमाओं से सदस्य भली-भाँति परिचित होने चाहिए ।

(5) सामाजिक सामूहिक कार्य में समूह संस्था तथा कार्यकर्ता को स्वीकार करने के लिए योग्य तथा इच्छुक हो । समूह-सदस्य ऐसे कार्यकर्ता की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं जो संस्था के साथ कार्य करने के लिए स्वतः इच्छुक हों और इन आवश्यक घटकों के साथ सहयोग तथा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तैयार हों । इस सम्बन्ध के आधार पर वे संस्था के दीर्घ उद्देश्यों का समर्थन प्रदान करते हैं तथा कार्यक्रम के कार्यान्वियन में सहायता करते हैं संस्था ही वास्तव में समूह को कार्य करने की पृष्ठभूमि तथा पर्यावरण प्रदान

करती है जिसके अन्तर्गत वह अपने सदस्यों को सेवा प्रदान करती है इसका यह तात्पर्य नहीं है कि समूह को अपना कार्यक्रम तथा क्रियाएँ संस्था की इमारत में ही करनी चाहिए। परन्तु वह इतनी दूर भी न हो जिससे संस्था को कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई हो। समूह को संस्था के निकट ही रहना चाहिए तथा कार्य करना चाहिए।

सामाजिक सामूहिक कार्य के समूहों के ऊपर वर्णित विशेषताएँ एक दूसरे से अन्तःसम्बन्धित हैं। किसी भी विशेषता को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। वे एक सम्पूर्ण में कार्य करती हैं, न कि अलग-अलग। समूह के साथ सामूहिक कार्य प्रणाली किसी निश्चित नियम या कानून के आधार पर कार्य नहीं करती। उनमें समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। समूह की प्रकृति तथा स्थिति, जिसमें वह कार्य करता है, बहुत कुछ सामूहिक कार्य-प्रणाली के तत्त्वों के उपयोग को निश्चित करती हैं। अर्थात् समूह में सामूहिक कार्यकर्ता की निपुणता उसकी योग्यता, कार्य-स्थिति तथा सामुदायिक पर्यावरण पर निर्भर होता है।

विकास की इकाई के रूप में समूह का ज्ञान

समूहों तथा व्यक्तियों में अन्तर होता है। व्यक्ति तथा समूह एक दूसरे से भिन्न होते हैं। व्यक्तियों से समूह का निर्माण होता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है। परन्तु वे एक दूसरे से सम्बन्धित भी होते हैं और एक साथ कार्य करते हैं। समूह में वैयक्तिक व्यक्तित्व की जटिलता पायी जाती है। इनकी उपस्थिति में वह कार्य करता है जब कई व्यक्ति एक साथ कार्य करने के लिए समूह का निर्माण करते हैं तो इस एकत्रता का क्या तात्पर्य होता है, इसको जानना आवश्यक होता है। साधारण रूप में समूह अति जटिल संगठन है जिसमें परिवर्तन तथा विकास इसलिए होता है व्यक्ति व समूह में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

आकस्मिक निरीक्षक समूह की केवल बाह्य विशेषताओं को जान सकता है। उदाहरण के लिए वह संख्या, औसत, उम्र तथा शारीरिक बनावट आदि का वर्णन कर सकता है। वह कार्य करने की स्थिति से अवगत हो सकता है, सदस्यों की स्थिति तथा उनकी एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रिया को जान सकता है। सारांश में वह यह जान सकता है कि समूह किस प्रकार और क्या क्रियाएँ करता है। यद्यपि वे बातें जानना रुचिकर है तथा अन्य बातें जानने का पथ निर्धारित करती हैं। परन्तु वे समूह से सम्बन्धित अधिक ज्ञान प्रदान नहीं करती हैं।

समूह की गतिशील विशेषताओं को जानना यद्यपि कठिन है परन्तु दूसरी तरफ आवश्यक भी है। समूह-विकास के इन कारकों को कार्यकर्ता के लिए जानना

आवश्यक होता है जिससे वह अपनी भूमिका का मूल्यांकन उचित प्रकार से कर सके तथा समूह-सदस्यों का विकासात्मक इकाई के रूप में ज्ञान प्राप्त कर सके। उसके लिए यह जानना आवश्यक होता है कि किन-किन कारणों से समूह-सदस्य समूह को चाहते हैं, समूह का क्या उपयोग करते हैं, सामूहिक कार्य में किस सीमा तक भाग लेते हैं, समूह के विषय में व्यक्ति क्या कहते हैं तथा वे अपनी मनोवृत्ति को किस प्रकार प्रकट करते हैं। कार्यकर्ता को स्वीकृति व अन्तरों को जानना चाहिए तथा सदस्यों की स्थिति से अवगत होना चाहिए। कुछ सदस्य समूह के जीवन के लिए आवश्यक तथा आधार होते हैं तथा दूसरे कम आवश्यक होते हैं, कुछ दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करने की कम क्षमता रखते हैं तथा सम्बन्धों के विकास में सहायता चाहते हैं; कुछ अधिक अवसर चाहते हैं तथा उन्हें दूसरों को अवसर देने की इच्छा रहती है, कुछ अनावश्यक रूप से कार्यकर्ता की सहायता चाहते हैं। इन सभी बातों का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। सदस्यों को समूह-स्वीकृति के लिए उन्हीं बातों को मानना चाहिए जो समूह के लिए हितकर हैं तथा जिन्हें समूह मान्यता प्रदान करता है। यदि वे ऐसा नहीं करते तो समूह की शक्ति में अन्तर आयेगा और अन्ततोगत्वा ऐसे सदस्यों को वह अस्वीकृत कर देगा।

कार्यकर्ता को समूह से अवगत होने के लिए व्यक्तियों (सदस्यों) के अन्तः-सम्बन्धों का ज्ञान आवश्यक होता है। अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों के गुण एवं उसकी विशेषताएँ समूह के लिए आवश्यक नियम एवं आधार प्रस्तुत करती हैं जिनसे वह बँधा होता है। कार्यकर्ता समूह की रुचि एवं उद्देश्य के प्रत्यय को समझने का प्रयास करता है। उसके लिए समूह के उद्देश्य, जैसे समूह द्वारा परिभाषित होते हैं, जानना आवश्यक होता है तथा उसको जानने के लिए वह भरसक प्रयत्न करता है। वह समूह के प्रवेश तथा निष्कासन के नियमों से परिचित होता है। सामूहिक चेतना के स्तरों का ज्ञान उसके लिए उपयुक्त होता है क्योंकि इनमें साधारण से जटिल की ओर प्रवाह होता है। एकता, शक्ति, कार्य करने की क्षमता, मनोबल तथा ज्ञान-स्तर का अध्ययन करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। समूह के प्रकार तथा संगठन की विशेषता तथा उसके नियम, निर्णय करने की विधि एवं कार्यान्वियन की शर्तें आदि बातों का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है।

समूह, जिससे कार्यकर्ता सम्बन्धित होता है, के अतिरिक्त अन्य समूह उस संस्था के अन्तर्गत तथा बाहर कार्यरत होते हैं। इसके अतिरिक्त सदस्यों का सम्पर्क अन्य विशेष सामाजिक संगठनों से भी होता है। इन सभी बातों एवं

कारकों का प्रभाव सम्पूर्ण समूह पर पड़ता है। संस्था में समूहों का एक दूसरे से सम्बन्ध तथा समुदाय में उनकी स्थिति महत्वपूर्ण होती है क्योंकि बहुत से सदस्य कई भूमिकाएँ निभाते हैं तथा उनके सम्बन्धों में विभिन्नता होती है। कार्यकर्ता भी यह जानने में रुचि रखता है कि समूह किस गति से विकास कर रहा है, मजबूत एवं शक्तिशाली हो रहा है या उसमें विघटन हो रहा है। इस विघटन एवं संगठन की प्रक्रिया को एक निश्चित अवधि के अध्ययन से पश्चात् ही समझा जा सकता है। कार्यकर्ता इसको जानने का प्रयास करता रहता है। वह यह भी जानना चाहता है कि समूह उसकी उपस्थिति को कैसा अनुभव कर रहे हैं। वह समूह के रुचिकर कार्यक्रमों से अवगत होता है तथा उसकी अन्य विशेषताओं का धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त करता है। वह समूह की शक्तियों, क्षमताओं तथा कमियों का भी ध्यान रखता है।

सामूहिक कार्य में समूह के अध्ययन के लिए बहुत से प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ना आवश्यक होता है। नीचे कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं जिनका उत्तर कार्यकर्ता के लिए समूह को समझने में काफी सहायता प्रदान करेगा।

समूह के अध्ययन के लिए एक निर्देशिका

ट्रेकर[1] ने समूह को समझने के लिए एक निर्देशिका का निर्माण किया है। उसका विवरण हम निम्न प्रकार दे रहे हैं—

(अ) समूह का इतिहास

(1) समूह ने कब कार्य करना प्रारम्भ किया ?

(2) किसलिए, किसके द्वारा तथा किन कारणों से समूह का प्रारंभ किया गया ?

(3) भूतकाल में किन संस्थाओं ने समूह के साथ कार्य किया ?

(4) यह किस प्रकार का समूह है—कल्याणकारी समूह, कक्षा, क्लब या अन्य प्रकार का ?

(ब) समूह की विशेषताएँ

(1) सदस्यों की आयु की सीमा क्या है ?

(2) समूह सदस्यों का लिंग क्या है ?

(3) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या है अथवा वे किस राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं ?

(4) समूह सदस्य किस प्रकार समय का उपयोग करते हैं—स्कूल में, काम में या अन्य किसी प्रकार से ?

(5) वर्तमान समय में उसका संगठन किस प्रकार का है ?

---

1. ट्रेकर, एच० वी०, सोशल ग्रुपवर्क प्रिन्सिपल्स ऐन्ड प्रैक्टिसेज, ऐसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1955, पृ० 89-92.

(6) सदस्यों में सम्बन्धों की क्या विशेषताएँ हैं ?
(7) समूह क्या कोई प्रमुख छोटा समूह भी रखता है ?
(8) समूह में सामाजिक नियन्त्रण प्रक्रिया का क्या कोई प्रमाण है ?
(9) संस्था और समुदाय में समूह की क्या स्थिति है ?
(10) समूह का भूतकालीन अनुभव क्या रहा है तथा समूह-सदस्य किस प्रकार इसका मूल्यांकन करते हैं ?
(11) क्या समूह-सदस्यों में भाग लेने में समानता एवं सन्तुलन है ?
(12) समूह विकास कर रहा है या विघटित हो रहा है ?
(13) समूह किस प्रकार नये सदस्यों का प्रवेश करता है ?
(14) समूह किस प्रकार अपने कार्यक्रम व व्यवसाय को चलाता है ?

(स) समूह में व्यक्ति

(1) प्रत्येक सदस्य की उम्र, लिंग, प्रजाति तथा शिक्षात्मक पृष्ठभूमि क्या है ?
(2) समूह में व्यक्ति का क्या स्थान है ? संस्था में क्या स्थान है ? तथा समुदाय में क्या स्थिति है ?
(3) व्यक्ति किस प्रकार अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है ? उसके मित्र कौन-कौन से हैं ? किन व्यक्तियों के साथ आसानी से, वह भाग लेता है ।
(4) व्यक्ति की रुचियाँ तथा योग्यताएँ क्या हैं ?
(5) समूहों में व्यक्ति का पूर्व-अनुभव कैसा रहा है ?
(6) किस प्रकार के घर से तथा सामुदायिक वातावरण से वह आया है ?
(7) समूह की क्रियाओं में किस सीमा तक सदस्य भाग ले रहा है ?
(8) समूह के कार्यों में कितना उत्तरदायित्व ग्रहण करता है तथा प्रोत्साहन देता है ?
(9) वह व्यक्ति में कोई स्थान (Status) ग्रहण करता है, क्या चेयरमैन या अन्य उत्तरदायित्व ग्रहण करता है ?
(10) व्यक्ति किन अन्य संस्था और समुदाय के समूहों में सक्रिय है ?

(द) समूह-कार्यकर्ता सम्बन्ध

(1) वर्तमान कार्यकर्ता से पहले समूह के कार्यकर्ता कौन-कौन थे तथा उनका समूह से कैसा सम्बन्ध था ? समूह-सदस्य उनके विषय में क्या कहते हैं ?
(2) वर्तमान कार्यकर्ता का समूह से कैसा सम्बन्ध है ? समूह कार्यकर्ता से क्या अभिलाषा रखता है ?
(3) कार्यकर्ता का वर्तमान सम्बन्ध सदस्यों के साथ कैसा है ?

(4) वर्तमान कार्यकर्ता अपनी भूमिका को किस प्रकार समूह के साथ परिभाषित करता है ?

(5) अन्य कार्यकर्ताओं का उपयोग समूह किस प्रकार करेगा—साधन के रूप में या कार्यक्रम में सहायक सामग्री के रूप में ?

(य) कार्यक्रम

(1) कार्यक्रम के तरीके में समूह ने क्या किया है तथा वर्तमान रूढ़ियाँ क्या हैं ?

(2) कार्यक्रम किस प्रकार नियोजित किया गया है तथा भूतकाल में किस प्रकार चलाया गया है ? कार्य के कार्यान्वयन का वर्तमान तरीका क्या है ?

(3) कार्यक्रम किस सीमा तक समूह की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में समर्थ हो पा रहा है ?

(4) किस सीमा तक कार्यक्रम साधारण क्रियाओं से जटिल क्रियाओं की ओर अग्रसर हुआ है ?

(5) समूह की आवश्यकताओं एवं रुचियों को पूरा करने के लिए क्या साधन तथा स्रोत उपलब्ध हैं ?

(7) क्या संबंध संस्था के उद्देश्यों के अनुकूल है ?

(र) व्यक्ति तथा सामूहिक उद्देश्य

(1) व्यक्तियों को आवश्यकताएँ क्या हैं तथा समूह किस सीमा तक इनकी संतुष्टि कर सकता है ?

(2) समूह के वर्तमान तथा दीर्घकालीन उद्देश्य क्या हैं ?

(3) कौन से व्यक्ति समूह तथा कार्यकर्ता से विशेष सहायता चाहते हैं ?

(4) भूतकाल में समूह ने किस सीमा तक सफल अनुभव प्राप्त किया है ?

(ल) समूह-विकास का स्तर

(1) समूह विकास के स्तर में वर्तमान समय में समूह किस स्थान पर है ?

सामूहिक विकास के स्तर

समूह एक गतिशील इकाई है। इसमें परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं। कार्यकर्ता समूह-सदस्यों की इच्छाओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करता है जिससे वे उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में प्रयास करते हैं। अतः समूह कई स्तरों से गुजरता है। कार्यकर्ता समूह के साथ वर्तमान विकास के स्तर से कार्य प्रारम्भ करता है तथा समूह की इच्छाओं व योग्यताओं के मधुर संबंधों के साथ तीव्र गति से आगे बढ़ता है। इस सिद्धान्त के आधार पर अब यह प्रश्न उठता है कि हम किस प्रकार समझें कि समूह विकास के किस स्तर पर कार्य कर रहा है ? हम किस प्रकार जानें कि वर्तमान समय में समूह क्या कार्य

करने के लिए उपयुक्त है ? हम किस प्रकार समझें कि समूह आगे बढ़ने के लिए तैयार है ? कार्यकर्ता के लिए ये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ?

अनुभवी सामूहिक कार्यकर्ता समूह-विकास के उन कई स्तरों को नामांकित कर सकता है जिससे सामूहिक कार्य-समूह गुजरता है । प्रारंभिक अवस्था में समूह अधिकांशतः व्यक्तियों को एकत्रित होने के गुणों का प्रदर्शन करता है, न कि समूह जैसे गुण का प्रदर्शन । अतः इस स्तर को 'पूर्व समूह' स्थिति या स्तर कह सकते हैं । यद्यपि इसका यह प्रमाण है कि ये व्यक्ति कुछ समय में समूह की विशेषताओं को ग्रहण कर लेंगे लेकिन इस स्तर पर सामूहिक चेतना (Group Consciousness) बहुत ही निम्न होती है । व्यक्ति अपनी-अपनी बातों में रुचि लेते हैं । परन्तु कार्यकर्ता उन सदस्यों या व्यक्तियों में एक इच्छा (Wish) को उत्पन्न करता है और यही समूह होने की प्रथम विशेषता है । जैसे-जैसे एक उद्देश्य, एक इच्छा या एक आवश्यकता की उत्पत्ति होती है वैसे-वैसे सामूहिक भावना बढ़ती जाती है । बाद के स्तरों में समूह घनिष्ठ सामूहिक भावना उत्पन्न करता है । यह सामूहिक भावना समूह की दशाओं पर निर्भर होती है । जिन स्थितियों तथा परिस्थितियों में समूह कार्य करता है । उसी में सामूहिक भावनाएँ फूलती-फलती हैं । एक निश्चित अवधि के पश्चात् अधिकांश समूह धीरे-धीरे विघटित हो जाते हैं । कार्यकर्ता यदि समूह के साथ स्वस्थ तरीके से कार्य करना चाहता है तो उसको इन स्तरों का अध्ययन निरन्तर करते रहना चाहिए । समूह के जीवन में कार्यकर्ता एक आवश्यक अंग है । वह चेतन या अचेतन स्तर पर समूह-विकास के स्तरों का निर्णय करता रहता है, अतः उसको आवश्यक रूप से इन स्तरों का ज्ञान होना आवश्यक होता है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि कार्यकर्ता के पास कौन से ऐसे यन्त्र या साधन हैं जिनके द्वारा वह समूह-विकास के स्तरों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है या किन विधियों से समूह-विकास के स्तरों का सही निर्णय कर सकता है । इसका केवल एक ही तरीका है जिसके द्वारा वह समूह-विकास के स्तर का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । वह तरीका है समूह-सदस्यों के व्यावहारिक प्रत्युत्तर । सदस्यों के सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से व्यावहारिक प्रत्युत्तरों को जानकर कार्यकर्ता इस बात का ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि समूह किस स्तर से गुजर रहा है अथवा उसका वर्तमान स्तर क्या है ? समूह-विकास के स्तर की विभिन्नता के अनुसार सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका भी भिन्न-भिन्न होती है । कार्यक्रम भी स्तर के अनुसार आयोजित किए जाते हैं तथा अनुभवों में वृद्धि होती है ।

कार्यकर्ता को समूह की प्रारम्भिक अवस्था में या पूर्व-स्थिति में व्यक्तियों के

व्यावहारिक प्रत्युत्तर (**Behaviour response**) किस प्रकार के होते हैं, यह जानना चाहिए। यद्यपि समूहों में विभिन्नता होती है फिर भी सभी समूहों में कुछ व्यक्ति तो अपना पूर्व-व्यवहार करते ही हैं। प्रारंभिक अवस्था में भाग लेने-वाले की प्रवृत्ति में कमी होती है। सदस्यों में अधिक उत्साह नहीं होता है। कार्यक्रमों तथा उद्देश्यों में अनिश्चितता होती है। हो सकता है कि सदस्य एक दूसरे का नाम भी न जानते हों। वास्तव में समूह को पता नहीं होता है उससे कौन-कौन लोग सम्बन्धित हैं। नये समूह निरन्तर अपनी रुचि को पाने का प्रयास संस्था के माध्यम से या कार्यकर्ता के माध्यम से करते रहते हैं। वे उद्देश्य को बहुत ही जल्दी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्न करते रहते हैं। वे आशा कर सकते हैं कि कार्यकर्ता समूह के समस्त कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करे, या दूसरी तरफ समूह-सदस्य कार्यकर्ता को समूह के साथ कार्य करने की कम से कम अनुमति दें। प्रारम्भिक अवस्था में यह भी संभव है कि समूह-सदस्य असुरक्षा तथा नैराश्य भावना का प्रदर्शन करें क्योंकि उनका इस प्रकार का प्रथम अनुभव होता है। वे उद्देश्यों की प्राप्ति तथा कार्य-क्रम के संचालन में सन्देह कर सकते हैं। इस स्तर पर सम्पूर्ण समूह पर एक या दो सदस्य अपना आधिपत्य रखते हैं तथा अन्य सदस्य निष्क्रिय रूप से कार्य करते हैं। कभी-कभी समूह में छोटे समूह बन जाते हैं और वे स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहते हैं। व्यक्ति के रूप में सदस्य एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा रखते हैं।

इस स्तर पर कार्यकर्ता की क्या भूमिका होती है तथा उसका संबंध इस स्तर से क्या है, कार्यकर्ता को इसे समझना चाहिए। कार्यकर्ता सबसे पहले इस बात का प्रयत्न करता है कि सदस्य उत्तर देने में कोई हिचकिचाहट न महसूस करें। वे उत्तर स्वतन्त्रतापूर्वक उत्तर देने में अवश्य समर्थ हों। जिस कार्य के लिए समूह एकत्रित हुआ है उसमें सभी सदस्य अपनापन महसूस करें। हो सकता है कि समूह-सदस्य एक दूसरे का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कार्यकर्ता की सहायता चाहते हों। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता उनकी सहायता परस्पर घनिष्ठ होने में करता है। कार्यकर्ता अपने से पूछता है कि समूह-सदस्य क्यों एकत्रित होते हैं तथा उनका उद्देश्य क्या है और वे समूह के निर्माण की कितनी योग्यता एवं क्षमता रखते हैं अथवा नहीं रखते हैं। उनमें समूह-निर्माण की कितनी रुचि है तथा वे क्या करना चाहते हैं, इत्यादि बातें कार्यकर्ता को जाननी चाहिए। कार्यकर्ता समूह-क्षमताओं को बताता है तथा सीमाओं से अवगत कराता है। उन कार्यक्रमों से भी अवगत कराता है जो समूह-उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे चलकर आवश्यक होते हैं।

प्रश्न है, समूह की उपरिलिखिन स्थिति में कार्यक्रम किस प्रकार के हों

जिससे सदस्यों में रुचि बढ़े तथा सामूहिक भावना का विकास हो। संगीत, खेल, ड्रामा तथा इसी प्रकार के कार्यक्रम लाभदायक होते हैं तथा सामूहिक भावना के विकास में सहायता करते हैं। इस स्तर पर कार्यक्रम-निर्धारण का उत्तरदायित्व मुख्यतः कार्यकर्ता का होता है, क्योंकि समूह का कोई निश्चित स्वरूप नहीं रहता। वह केवल लघु क्रियाओं को सम्पन्न करता है जिसमें अधिक से अधिक सदस्य भाग लेते हैं तथा भाग लेने की दर में भी अधिकता होती है। कार्यकर्ता समूह की सहायता संस्था से अवगत होने में करता है। वह समूह को साधनों एवं स्रोतों से अवगत कराता है। समूह संस्था के उद्देश्यों तथा स्वयं के उद्देश्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। सदस्य एक दूसरे से अपने-अपने अनुभव के विषय में बातचीत करते हैं तथा सम्पर्क बढ़ाते हैं। इस प्रकार कार्यकर्ता समूह की एक रुचि का पता लगाता है। और भविष्य के लिए निर्देशन का पथ निर्धारित करता है जिसे समूह स्वीकार करता है।

जब व्यक्ति कई बार एक साथ एकत्रित हो लेते हैं, साधारण कार्यक्रमों में भाग ले लेते हैं तो सामूहिक विकास के लक्षण स्पष्ट दिखायी देने लगते हैं। विकास के स्तर, जिनसे समूह गुजरता है, सदैव परिवर्तनकारी होते हैं। प्रत्येक विकास-स्तर दूसरे स्तरों से विभिन्न तरीकों से अन्तःसम्बन्धित होता है। अतः जब मनोवैज्ञानिक रूप से समूह के सदस्य बनते हैं तब उसका निर्धारण करना कठिन होता है। यह स्थिति बिलकुल स्पष्ट नहीं होती। साधारणतया सामूहिक विकास के लक्षण निम्नलिखित होते हैं :—

(i) सदस्य अधिकाधिक कार्यक्रम में भाग लेते हैं,
(ii) रुचि प्रदर्शित करते हैं,
(iii) एक निश्चित स्थान पर तथा निश्चित समय पर मिलते हैं तथा निर्णय लेते हैं,
(iv) औपचारिक संगठन का विकास करते हैं तथा समूह के कार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हैं।

इसके पश्चात् वे समूह को अपना समूह कहने लगते हैं। बातचीत में अपने समूह का उदाहरण देते तथा अपनत्व महसूस करते हैं। चिन्ता कम हो जाती है तथा सदस्य एक दूसरे के सम्पर्क में आने में अधिक अच्छाई महसूस करते हैं। उन्हें सम्बन्ध-स्थापन में सुख मिलता है तथा अहं की संतुष्टि होती है। कार्यकर्ता से भी वे आसानी से सम्बन्ध बना लेते हैं। वे समूह का विशेष नाम रखने का प्रयास करते हैं जिससे परिचय आसानी से दिया जा सकता है। सम्पूर्ण समूह में सदस्यों के प्रत्युत्तर अधिक उत्साही होते हैं तथा वे अधिक भाग लेने लगते हैं। उनके भाग लेने का क्षेत्र बढ़ जाता है। कुछ व्यक्ति नेतृत्व का उत्तरदायित्व ग्रहण

करने लगते हैं तथा अन्य ऐसे गुणों को प्रदर्शित करते हैं जिनका उपयोग समूह-विकास के लिए किया जा सकता है। समूह अधिक जटिल कार्यक्रम चाहने लगता है तथा अपने सम्बन्धों का विस्तार संस्था के अन्य समूहों तक भी करता है। समूह के विकास के इस स्तर पर कार्यकर्ता की भूमिका भिन्न हो जाती है। कार्यकर्ता यह जानने के लिए सजग रहता है, कि समूह में क्या घटित हो रहा है और वह सदस्यों को उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है। अधिक गति से विकास पर वह रोक लगाता है क्योंकि उसका विश्वास होता है कि समूह जिस कार्य को करने के लिए सबल है वह उससे अधिक कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता है। अधिक तीव्र गति में समूह नियन्त्रित नहीं कर सकता है। इस अवस्था में अधिक लम्बी अवधि के कार्यक्रम कार्यकर्ता आयोजित करता है तथा संगठन में जटिलता के लिए प्रोत्साहित करता है। अर्थात् कार्यक्रम में जटिलता आनी प्रारम्भ हो जाती है। इस समय समूह की प्रारम्भिक सफलता देखी जा सकती है। यह सफलता भविष्य की सफलता के लिए आवश्यक होती है। कार्यकर्ता मुख्य रूप से समूह से उत्पन्न होनेवाले नेतृत्व का अध्ययन करता है तथा उचित नेतृत्व के विकास में सहायता करता है। वह उस समय बाहर से व्यक्तियों का निरीक्षण भी करता रहता है तथा उनकी सामूहिक कार्यों में रुचि बढ़ाने के लिए प्रयत्न करता है। यहाँ पर एक बात विशेष महत्त्व की है कि समूह बहुत कम निरन्तर विकास करता रहता है या कार्यकर्ताओं को बिना किसी बाधा के आगे बढ़ाता है। उसका एक समय असफलता या बाधा का अवश्य होता है जिसमें उसकी क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं। कार्यकर्ता ऐसे समय का मुख्य रूप से अध्ययन करता है तथा लम्बी अवधि के कार्यक्रम में विशेष रूप से ध्यान रखता है। कभी-कभी समूह-सदस्य उद्‌देश्य प्राप्त करने की स्थिति में पहुँच जाते हैं तथा वे आराम चाहने लगते हैं। बिना आराम के आगे कार्य करना नहीं चाहते हैं। इस बात का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है।

विकास का तीसरा स्तर वह है जब समूह स्थायित्व तथा परिपक्वता के गुण प्रदर्शित करता है। अधिक से अधिक संख्या में सदस्य क्रियाओं में उपस्थित रहते हैं। वे उद्‌देश्य प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करते हैं तथा कार्य का आकार अधिक से अधिक विस्तृत होता है। सदस्यों की योग्यताओं एवं क्षमताओं के अनुसार अधिक से अधिक भागीकरण होता है अर्थात् सदस्य अपनी इच्छा से पूरी क्षमता से समूह-क्रियाओं में भाग लेते हैं। समूह दूसरे समूहों से परिचय प्राप्त करना चाहता है तथा अन्य समूहों का तुलनात्मक अध्ययन करता है। इस अवस्था में फिर कार्यकर्ता की भूमिका परिवर्तित हो जाती है। अधिकांश उत्तर-दायित्व समूह स्वयं ग्रहण करता है। समूह अपने उद्‌देश्यों का निर्धारण तथा

कार्यक्रमों का विकास करता है जिसके परिणामस्वरूप उद्देश्य-प्राप्ति के लक्षण आते जाते हैं ।

कार्यकर्ता सदैव सहायता के लिए तैयार रहता है । जब समूह आगे बढ़ने के लिए तैयार होता है तो कार्यकर्ता उनको अपने अनुभव एवं ज्ञान द्वारा विभिन्न स्थितियों से अवगत कराता है तथा अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करने की सलाह देता है । जब सदस्य अपनी क्षमताओं को दूर करने तथा कार्य में सुधार लाने के लिए इच्छा प्रकट करते हैं तब वे विकास के उच्च स्तर पर पहुँच जाते हैं । जो कार्यक्रम अब तक समूह-केन्द्रित होते थे वे संस्था तथा समुदाय-केन्द्रित होने लगते हैं तथा समूह में विशेषीकरण उत्पन्न हो जाता है । यहाँ पर कार्यकर्ता संस्था तथा समुदाय के स्रोतों से सम्बन्धित ज्ञान का उपयोग करता है वह समूह में व्याख्याकार का कार्य करता है । वह समूह का मूल्यांकन भी करता है क्योंकि समूह में कार्यक्षमता उत्पन्न हो जाती है ।

सन्तोषजनक अनुभव के पश्चात् एक स्थिति ऐसी आती है जब समूह में विघटन उत्पन्न हो जाता है जिसको कार्यकर्ता भी देख सकता है । समूह अपना कार्य समाप्त करना चाहता है, उपस्थिति कम होती जाती है, सदस्य सदस्यता छोड़ने लगते हैं तथा दूसरे समूहों से सम्बन्ध स्थापित करने लगते हैं । यह समय कार्यकर्ता के लिए बहुत सोचने विचारने का होता है । यदि वह स्वाभाविक विघटन को गलत ढंग से समझा गया या कार्यकर्ता इसको अपनी असफलता समझ बैठा या उसने समूह की असफलता को समझा तो विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है और वह वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर सकता है । ऐसा हुआ तो समूह तथा कार्यकर्ता दोनों अपने को अपराधी महसूस करेंगे तथा एक दूसरे के प्रति अथवा संस्था के प्रति उग्र हो जायेंगे । अतः कार्यकर्ता को सही रूप में देखना चाहिए कि परिवर्तन के समय समूहों में क्या घटित हो रहा है तथा सामूहिक जीवन में क्या अनुभव हो पाया है ।

सारांश में हम कह सकते हैं कि समूह विकास के 6 स्तर होते हैं :

(1) प्रारम्भिक स्थिति में प्रथम बार व्यक्ति एक साथ एकत्रित होते हैं ।

(2) दूसरी अवस्था में सदस्यों में कुछ सामूहिक भावना का विकास होता है, संगठन का रूप निश्चित होता है तथा कार्यक्रम निश्चित होकर प्रारम्भ किये जाते हैं ।

(3) शर्तों एवं नियमों का विकास होता है, उद्देश्य विकसित होते हैं तथा घनिष्ठता बढ़ती है ।

(4) घनिष्ठ सामूहिक भावना का विकास होता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति होती है ।

(5) रुचियों में कमी आ जाती है तथा सामूहिक भावना में भी कमी आती है।
(6) अन्त में समाप्ति का स्तर आता है और समूह को विघटित कर दिया जाता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य में अध्ययन-पद्धति की विभिन्नता :

यहाँ पर समूह के सभी अन्तरों का वर्णन करना कठिन है परन्तु कुछ अन्तरों के क्षेत्रों का वर्णन किया जा रहा है उदाहरण के लिए, बच्चों तथा युवकों के साथ सामाजिक सामूहिक कार्य के उपयोग में भिन्नता होती है। समूह-सदस्यों की उम्र में भिन्नता एक आवश्यक अन्तर है। दूसरा महत्त्वपूर्ण अन्तर समूह की अवधि है जिसके अन्तर्गत समूह कार्य करता है। जो समूह थोड़े समय के लिए संगठित होते हैं वे सामूहिक कार्य की निपुणताओं का उपयोग दूसरे ढंग से करते हैं तथा दीर्घकालीन समूह में सामूहिक कार्य की निपुणताएँ भिन्न होती हैं। समूह का आकार भी एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है जिसमें विभिन्न निपुणताओं, प्रविधियों तथा कार्यक्रमों का उपयोग होता है। जब समूह कौंसिल के रूप में होता है या अन्य समूहों का प्रतिनिधित्व करता होता है तो वह कल्याणकारी समूह से बिलकुल भिन्न होता है। मुख्य रूप से उम्र, समय, आकार, संगठन तथा कार्य ऐसे कारक हैं जिनमें होती विभिन्नता है। अतः कार्यकर्ता में इन सभी विभिन्न समूहों के साथ कार्य करने की निपुणता होनी चाहिए तथा उसे इन सभी प्रकार के समूहों के महत्त्व से भली-भाँति परिचित होना चाहिए।

कार्यकर्ता कार्यक्रमों का आयोजन सदस्यों की उम्र के अनुसार करता है। कार्यकर्ता के लिए बच्चों तथा युवकों के समूह के साथ कार्य करने में अलग-अलग कार्यक्रमों तथा प्रविधियों का उपयोग करना होता है। बच्चे उत्साही होते हैं, जल्दी थकान भी महसूस करते हैं तथा समूह के मामले में विकासशील तथा आशावादी होते हैं। उनमें कार्यक्रमों का चयन करने की शक्ति कमजोर होती है। संचार तथा तार्किक शक्ति के विकास में काफी समय लगता है। सीखने की गति भी बहुत तीव्र नहीं होती है। किन्तु युवकों में संचार तथा तार्किक शक्ति तीव्र होती है, वे किसी भी बात को अच्छो तरीके से समझ लेते हैं तथा समस्या का निराकरण जल्दी कर लेते हैं। अतः बच्चों में समूह के कार्यक्रमों में अधिक गतिशीलता, स्वतंत्रता तथा कम जटिलता होती है।

कम उम्र के समूह-सदस्यों में अन्तर्क्रिया कम जटिल, प्रत्यक्ष, कम भावुक, अविरोधी तथा साधारण होती है। प्रौढ़ या युवक समूहों में अन्तर्क्रिया अधिक जटिल, सूक्ष्म या तीक्ष्ण तथा दूरदर्शी होती है। छोटे बच्चे मूल प्रवृत्तियों के नियन्त्रण में सहायता चाहते तथा शक्ति को किस प्रकार चालित किया जाय इसके लिए निर्देशन चाहते हैं। दूसरी तरफ युवक समूह-सदस्य अपनी भावनाओं

के नियन्त्रण में कुशल तथा परिपक्व होते हैं। कार्यक्रम के सम्बन्ध में बच्चों के समूह में अधिक प्रकार की क्रियाओं के कार्यक्रम की आवश्यकता होती है। उनके कार्यक्रमों में धीरे-धीरे परिवर्तन एवं विकास उनकी इच्छा एवं आवश्यकता से किया जाता है। युवकों के पास कम समय होता है तथा वे लघुकालीन कार्यक्रम चाहते हैं। वे मानसिक प्रयत्नों की क्रियाएँ सम्पन्न करना चाहते हैं। युवकों के समूह में सामाजिक सामूहिक कार्य प्रक्रिया का उद्देश्य समाज की भलाई है जबकि बच्चों के समूह में व्यक्तिगत विकास पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार उम्र के अनुसार कार्यक्रमों में अन्तर होता है।

साधारणतया यह कहा जाता है कि समूह में सदस्य-संख्या अधिक होने से सामूहिक कार्य-प्रणाली प्रभावकारी नहीं होती। यदि समूह में 100 सदस्य हैं तो इस प्रणाली का अंशतः लाभ होता है। परन्तु सामाजिक कार्य का विकास बड़े समूहों, जैसे क्लब, मनोरंजन संस्थाओं, नृत्य-केन्द्र इत्यादि संस्थाओं से ही हुआ है। वास्तव में बड़े समूहों में सदैव छोटे-छोटे समूह होते हैं। अतः बड़े समूह को समझने के लिए इनको समझना आवश्यक होता है। बड़े समूह के कार्यक्रम-संचालन के लिए एक छोटी समिति बना दी जाती है। अतः कुछ व्यक्ति लघु समूह के अनुभवी होते हैं तथा बड़े समूह में भी भाग लेने के अवसर प्राप्त करते हैं। कार्य में निपुणतापूर्वक परिवर्तन करने से अधिक व्यक्तियों के लिए बड़े समूह के उत्तर-दायित्व को ग्रहण करने का अवसर मिलता है। बड़े समूह में लघु समूह की क्रियाएँ होती रहती हैं जिनसे वे सभी लाभान्वित होते रहते हैं। बड़े समूहों के साथ कार्य करने में कई कार्यकर्ता एक साथ समूह के उत्तरदायित्व को अलग-अलग ग्रहण करते हैं। ये कार्यकर्ता एकसंस्था के हो सकते हैं या कई संस्थाओं के भी हो सकते हैं। यह उनका उत्तरदायित्व है कि वे अपने प्रयत्नों को इस प्रकार एक साथ संगठित करें जिससे उसका लाभ परिलक्षित हो। कार्यकर्ताओं की जल्दी-जल्दी मीटिंग स्वयं परस्पर सम्बन्ध उत्पन्न कर देती है जिससे वे एक संगठित एवं निश्चित दिशा में प्रयत्न करने लगते हैं।

समूह की अवधि भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है जिसके आधार पर सामाजिक सामूहिक कार्य की क्रियाओं एवं कार्यक्रमों में अन्तर होता है। जब समूह लघु समय के लिए नियोजित किया जाता है तो सामूहिक कार्य-प्रणाली में संशोधन करना आवश्यक होता है कुछ लघु समूहों का समय पहले से संस्थागत समूह की राय से निश्चित होता है; जैसे कैम्प का समय पहले से ही निश्चित होता है। दूसरे-समूह अपने सदस्यों के लिए समय निश्चित कर देते हैं। वे निश्चित अवधि तक ही सदस्य रह सकते हैं। उनमें परिवर्तन होता रहता है। कुछ समूहों में क्रियाएँ

बिलकुल समयानुसार निश्चित होती हैं। इन समूहों में व्यक्ति एक दूसरे से घनिष्ट होने का कम समय रखता है तथा सम्बन्ध साधारण अवस्था में ही स्थापित हो जाते हैं।

सदस्यता तथा सम्बन्ध की प्रकृति

सामाजिक सामूहिक कार्य में 'सदस्यता' तथा 'सम्बन्ध' दो महत्त्वपूर्ण शब्द है, वर्णन में जिनका प्रायः प्रयोग किया जाता है। वेब्स्टर शब्दकोष के अनुसार सदस्य का अर्थ समाज, समुदाय या पार्टी को निर्मित करनेवाले व्यक्तियों में से एक व्यक्ति है। सदस्य एक व्यक्ति है जो इन संघों से सम्बन्ध रखता है। सम्बन्ध का तात्पर्य दूसरे व्यक्तियों से सम्पर्क या सम्बन्ध से हैं। यहाँ पर सम्बन्ध शब्द महत्त्वपूर्ण है। जब व्यक्ति समूह मे शामिल होते हैं तो वे कार्य अथवा भवन से संलग्न नहो होते। वे उन दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं जो एक आदर्श या उद्देश्य के लिए कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार सम्बन्ध का तात्पर्य व्यक्तियों में मानव सम्बन्धों के गुण से है। सदस्य बनना केवल एक साधारण बौद्धिक अनुभव है परन्तु सम्बन्ध आवश्यक रूप से सांवेगिक अनुभव है। व्यक्ति जो समूह से वास्तव में संबंध स्थापित करते हैं वे अपनी अन्तर्भावना में सौहार्द, प्रेम, भक्ति, वात्सल्य, नम्रता, आदर, सम्मान तथा भाग लेने की भावना दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में विकसित करते हैं। सम्बन्ध का अर्थ किसी वस्तु के हिस्से के रूप में होने से है और सदस्यों में ये भावनाएँ व्यक्तियों के साथ एक निश्चित अनुभव के बाद ही उत्पन्न होती हैं। सदस्यता का अर्थ मानव सम्बन्धों के विकास की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सदस्य सम्बन्धित होते हैं। सम्पर्क का सम्बन्ध लोगों तथा उद्देश्य से होता है, न कि स्थान अथवा कार्यक्रम से। यह एक प्रत्युत्तर है जो स्वतन्त्रतापूर्वक किया जाता है। जो व्यक्ति सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है वह कुछ प्रत्युत्तर करता है। यह सत्य है कि सभी व्यक्ति समूह से सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहते और जो सम्बन्धित हैं वे सभी सम्बन्धों की गहराई अथवा घनिष्ठता तक नही पहुँच पाते हैं। कुछ व्यक्ति तो बिना समझे और जाने कि उनका उद्देश्य क्या है, समूह के सदस्य बन जाते हैं। इस स्तर पर मनोवैज्ञानिक अर्थ में वे समूह से सम्बन्धित नहीं होते हैं। अतः उनकी सहायता कार्यकर्ता द्वारा संस्था व समूह की सहायता से की जाती है। वे जैसे ही सम्बन्ध की भावना का अनुभव करेंगे, समूह की भाषा को प्राप्त कर लेंगे, वैसे ही 'मेरा' शब्द के स्थान पर 'हम लोगों का' शब्द प्रयोग करने लगेंगे।

जब व्यक्ति किसी समूह का सदस्य बनता है तो विभिन्न बातें उत्पन्न होती हैं। सोचने, अनुभव करने तथा क्रिया के क्षेत्र में परिवर्तन होने लगते हैं। जो

व्यक्ति सदस्य बनता है वह समूह के उद्देश्य को स्वीकार करता है तथा उसके लिए कार्य करता है। जब नयी आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं तो वह समूह के उद्देश्यों में परिवर्तन चाहता है। इन परिवर्तनों में प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा निहित होती है। व्यक्ति उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है तथा अपनी योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार कार्य करता है। जैसे-जैसे समूह से घनिष्ठ बनता जाता है, वह दूसरों की सहायता समान सदस्यों के अनुभव से प्राप्त करने के लिए करता है।

उत्तरदायी सम्मिलन के विकास में कार्यकर्ता की भूमिका

जब व्यक्ति अपने समूह के कार्यों में उत्तरदायी ढंग से भाग लेते हैं तथा सामूहिक निर्णय में सक्रिय रूप से भागीदार होते हैं तो वे समूह से वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। कार्यकर्ता किस प्रकार से सहायता करे जिससे व्यक्ति समूह से सम्बन्ध रख सकें, इसके लिए आवश्यक है कि निम्नलिखित कदम उठाए जायँ :—

(1) सदस्यों को नये सदस्यों के प्रवेश एवं समूह से परिचित होने के लिए कार्यकर्ता का सहयोग आवश्यक होता है। उसी समय ये सदस्य आसानी से सम्पूर्ण संस्था तथा समूह से अवगत हो सकेंगे तथा उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान हो सकेगा।

(2) कार्यकर्ता को सोच विचार कर नए सदस्यों का समूह में स्थान निर्धारित करना चाहिए तथा समूह को नये सदस्यों को स्वीकर करने के लिए तैयार करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है, कि उसको व्यक्ति तथा समूह दोनों का ज्ञान हो तथा वह प्रत्येक की आवश्यकताओं से परिचित हो।

(3) समूह को संस्था के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान प्रदान करने के लिए कार्यकर्ता को सदैव सुअवसरों की खोज करनी चाहिए तथा उनका उपयोग सफलता-पूर्वक करना चाहिए। उसको दूसरे समूहों के उद्देश्य से भी सम्बन्ध रखना चाहिए तथा उनके उद्देश्यों का संस्था के उद्देश्यों से तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए।

(4) कार्यकर्ता को नेतृत्व-प्रशिक्षण पर विशेष जोर देना चाहिए क्योंकि इससे सदस्य एक सूत्र में बँधे रहते हैं तथा अपनेपन की भावना का विकास होता है। नेतृत्व की स्थिति का उपयोग उचित प्रकार से करना चाहिए। संस्था के इतिहास को सभी व्यक्तियों को समझना चाहिए क्योंकि संस्था के विषय में ज्ञान उत्तरदायित्व के विकास में सहायक होता है।

(5) कार्यकर्ता को चाहे जो भूमिका निभानी हो, उसको कुशलतापूर्वक एवं सम्मान के साथ निभानी चाहिए। चाहे उसका सम्बन्ध कार्यक्रम से हो या प्रशासन से, नियन्त्रण से हो या सामुदायिक समूह से उसको सदैव अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह पूरी लगन एवं सामर्थ्य से करना चाहिए।

जब सदस्य यह देखेंगे कि कार्यकर्ता सभी सदस्यों को सभी अवसरों एवं स्थितियों में समान अवसर देता है तो वे भी अपने उत्तरदायित्व को समझेंगे तथा उत्तरदायी व्यवहार सीखने का प्रयास करेंगे।

●

अध्याय 12

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका एवं कार्य

मनुष्य एक सामूहिक प्राणी है। वह समूह से पृथक् किसी भी स्थिति में नहीं रह सकता। समूह का निर्माण वह सुरक्षा, शिक्षा, साहसिक कार्य एवं अन्वेषण, उपचार, उन्नति, सलाह, प्रशासन, सहयोग, एकीकरण तथा नियोजन के लिए करता है।[1] परन्तु इन कार्यों में उसे कभी-कभी कठिनाई अनुभव होती है और जब तक इन कठिनाइयों को दूर नहीं किया जाता है तब तक समूह ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर सकता है। सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का विकास इसी उद्‌देश्य को ध्यान में रखकर किया गया है। कार्यकर्ता सामूहिक कार्य-प्रणाली द्वारा समूह-सदस्यों के विकास, उन्नति, शिक्षा एवं सांस्कृतिक प्रगति पर जोर देता है। सामूहिक कार्य व्यक्ति के सामाजिक विकास का एक मौलिक ढंग है। इसका स्वरूप मनोरंजनात्मक तथा विकासात्मक है। कार्यकर्ता सदस्यों के साथ चाहे जिस स्तर से कार्य करना प्रारम्भ करे, उसका उद्‌देश्य निरन्तर विकास करना होता है। अपनी क्रियाओं (खेलकूद, संगीत, नृत्य, सिलाई, पेंटिग इत्यादि) द्वारा वह शारीरिक तथा मानसिक निपुणताओं का विकास करता है। वार्तालाप, शिक्षण एवं विचार-विमर्श द्वारा वह आदान-प्रदान की भावना का विकास करता है। इन सभी क्रियाओं में कार्यकर्ता का उद्‌देश्य व्यक्ति में सामूहिक चिंतन (group thinking) तथा सामूहिक क्रिया (group action) करने की योग्यता का विकास करना है।

सामूहिक कार्यकर्ता के कार्य :

सामूहिक कार्यकर्ता अमेरिकन एसोसियेशन आफ ग्रुप वर्कर्स ने निम्नलिखित कार्य (Functions) बतलाये हैं :—

1. सामूहिक कार्यकर्ता समूह की परस्पर सम्बन्धी क्रियाओं और कार्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं को इस प्रकार कार्य करने के योग्य बनाता है, जिससे व्यक्ति का विकास और वांछित सामाजिक उद्‌देश्यों की प्राप्ति हो सके।

2. सामूहिक कार्यकर्ता के उद्‌देश्यों के अन्तर्गत व्यक्ति की क्षमता और आवश्यकता के अनुसार व्यक्तिगत विकास का विधान या व्यवस्था, व्यक्ति का

1. Wilson G. and Ryland G, : op. cit., p. 26

व्यक्तियों तथा समूह का समाज से समायोजन और व्यक्ति की समाज-सुधार की सम्प्रेरणा, व्यक्ति को अपने अधिकारों, सीमाओं और योग्यताओं का ज्ञान तथा दूसरों के अधिकारों, योग्यताओं एवं अन्तरों की स्वीकृति आदि सम्मिलित हैं।

3. अपनी साझेदारी से सामूहिक कार्यकर्ता का उद्देश्य सामूहिक प्रक्रिया को प्रभावित करना है, जिससे निर्णय के एकीकरण तथा भाग लेने के परिणाम-स्वरूप हो, न कि बाहर के प्रभाव से।

4. अनुभव द्वारा उसका उद्देश्य उन विस्तृत समुदाय एवं दूसरे समूहों के साथ ऐसे सम्बन्ध उत्पन्न करना है जो उत्तरदायी नागरिकता, समुदाय में सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक या सामाजिक सामूहीकरण की सूझ और समाज की प्रजातांत्रिक उद्देश्यों की ओर निरन्तर प्रगति में भागीदारी को जन्म देते हैं।

5. इस प्रकार के नेतृत्व के पीछे पथ-प्रदर्शन का उद्देश्य प्रजातांत्रिक समाज की सामान्य मान्यताओं पर निर्भर हैं। जैसे—प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी क्षमता को प्राप्त करने के सुअवसर देना, दूसरों का आदर एवं प्रशंसा करना और प्रजातांत्रिक समाज की उन्नति एवं स्थिरता को बनाये रखने के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व को ग्रहण करना।

6. व्यक्ति का ज्ञान, सामूहिक व्यवहार, सामाजिक दशायें और सामुदायिक सम्बन्ध सामूहिक कार्य के अन्तर्गत आते हैं जो आधुनिक सामाजिक विज्ञानों पर आधारित हैं।

7. इस ज्ञान के आधार पर सामूहिक कार्यकर्ता योग्य नेतृत्व द्वारा समूह को सहयोग देता है जो सदस्यों को अपनी पूर्ण क्षमताओं का उपयोग करने और सामाजिक रचनात्मक समूह-क्रियाओं को उत्पन्न करने योग्य बनाता है।

8. वह समूह के और आसपास के समुदाय के कार्यक्रम, क्रियाओं तथा व्यक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रति सजग रहता है।

9. वह प्रत्येक की रुचियों और आवश्यकताओं के अनुसार कार्यक्रम क्रियाओं के आधार पर प्राप्त सामूहिक अनुभव के संतोष द्वारा व्यक्तिगत विकास एवं प्रसन्नता और उत्तरदायी नागरिक के रूप में भाग लेने के सुअवसर प्रदान करने में सहायता करता है।

10. सामूहिक कार्यकर्ता अपने सम्बन्धों का चेतन रूप से समूह के साथ उपयोग करता है। कार्यक्रमों का ज्ञान, व्यक्ति के विषय में सूझ तथा सामूहिक प्रक्रिया का वह अपने कार्य में उपकरण के रूप में उपयोग करता है। वह व्यक्ति और समूह के प्रति अपने उत्तरदायित्व को मानता है और विस्तृत सामाजिक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

सामान्यतया सामूहिक कार्यकर्ता निम्न कार्य करता है :—

(अ) समूह से सम्बन्धित कार्य :

1. समूह-निर्माण :—कार्यकर्ता व्यक्तियों की रुचियों, इच्छाओं मनोवृत्तियों आदि का अध्ययन करता है और कुछ सामान्य नियमों के आधार पर एक समूह के रूप में उन्हें स्वीकार करता है। वह समूह का निर्माण प्रेरणा तथा सामाजिक अभिकरण की आवश्यकतानुसार करता है। वह साक्षात्कार के उपरान्त एक ऐसी मान्य शर्त का निश्चय एवं विकास करता है जो व्यक्तियों को एक सूत्र में बाँधती हैं। कार्यकर्ता व्यक्तियों की अन्तर्निहित बौद्धिक शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करता है। वह उनकी आर्थिक, सामाजिक, सांवेगिक तथा मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का अध्ययन करता है। टाम डगलस[2] ने निम्न कार्य-सूची का उल्लेख किया है—

1. कार्यकर्ता निश्चित करता है कि किस प्रकार के समूह का निर्माण करने जा रहा है। मनोरंजनात्मक, शिक्षात्मक सामाजिक उपचार के लिए अथवा मिश्रित।

2. कार्य-प्रणाली क्या होगी। खेल, ड्रामा, भूमिका अभिनय, वार्तालाप, कार्य अनुभव आदि।

3. स्थान कौन-सा उपयुक्त होगा।

4. प्रत्येक सेसन कितने समय का होगा। (Frequency)

5. समूह एकत्रित होने की बारम्बारता क्या होगी।

6. समूह की अवधि क्या होगी।

7. मिलने का समय क्या होगा।

8. आवागमन को सुविधा क्या है और सदस्य किस प्रकार संस्था में आयेंगे।

9. सैद्धान्तिक आधार क्या होगा अर्थात् समूह-संचार का माध्यम क्या होगा।

10. समूह का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

11. सदस्यों का चयन किस प्रकार किया जायेगा ? चयन का आधार क्या होगा, आयु-सीमा क्या होगी, सदस्यों की संख्या क्या होगी, सामाजिक पृष्ठभूमि क्या होगी, बौद्धिक स्तर क्या होगा तथा मौखिक संचार की योग्यता कितनी होगी, इत्यादि।

12. समूह का क्या कोई द्वितीयक उद्देश्य भी होगा।

13. संस्था अथवा समुदाय में स्रोतों की उपलब्धता की स्थिति क्या है ?

---

2. Douglas, Tom : Group work Practice. International University Press, Newyork, 1976. p. 41-42.

14. यदि संस्था में आवश्यक साधन एवं सामग्री नहीं है तो कहाँ से प्राप्त की जा सकती है।

15. क्या प्रस्तावित समूह संस्था की नीतियों के अनुकूल है ?

16. समूह-नेताओं की संख्या क्या होगी ? उनकी भूमिका क्या होगी।

17. किस प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता है ?

18. क्या अभिलेखन प्रत्येक सेसन का आवश्यक होगा ? प्रणाली कौन-सी प्रयोग की जायेगी।

19. परामर्श की सुविधा उपलब्ध है या नहीं।

20. क्या वैयक्तिक सेसन (Individual session) की आवश्यकता होगी और उसका प्रावधान करना आवश्यक है।

2. कार्यक्रम नियोजित करने में सहायता करना :

यद्यपि समूह-सदस्य स्वयं अपने कार्य को संगठित एवं नियोजित करते हैं परन्तु कार्यकर्ता का कार्य महत्त्वपूर्ण होता है। वह समूह की सहायता कार्यक्रम को अधिक प्रभावशाली एवं रचनात्मक बनाने में करता है, जिससे अधिक से अधिक समूह की आवश्यकतायें पूरी हो सके। वह कार्यक्रम नियोजित करने के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश देता है, क्योंकि यह कार्य आयु अथवा बौद्धिक स्तर पर निर्भर नहीं होता है बल्कि अनुभव पर निर्भर होता है। बच्चों के समूहों के साथ वह अधिकाधिक कार्यक्रमों का सुझाव रखता है और वे उनमें से किसी एक का चयन करते हैं। जब वह ऐसे समूहों के साथ कार्य करता है जिनमें सामाजिक बाधित या मानसिक मंदित लोग होते हैं तो उसकी भूमिका कार्यक्रम के निर्धारण एवं विकास में अधिक रहती है। इस प्रकार की सहायता उन समूहों के लिए भी आवश्यक होती है जिनमें सामूहिक कार्य एक उपचार क्रिया के रूप में उपयोग किया जाता है।

कार्यकर्ता सदस्यों के सम्बन्धों को दृढ़ करता है। वह देखता है कि कार्यक्रम में सभी सदस्य भाग ले रहे हैं अथवा नहीं। जो नहीं भाग ले रहे हैं उन व्यक्तियों को भाग लेने में सहायता करता है। कभी-कभी समूह में कार्यक्रम को लेकर दो वर्ग बन जाते हैं : एक पक्ष में तथा दूसरा विपक्ष में। कार्यकर्ता इस स्थिति में अपनी व्यावसायिक निपुणता द्वारा ऐसे कार्यक्रम को स्वीकार करने की सलाह देता है जो उनको अधिक से अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं। अधिकतर कार्यक्रम वार्तालाप के माध्यम से नियोजित किये जाते हैं। कार्यकर्ता वार्तालाप को इस प्रकार निर्देशित करता है कि समूह-सदस्य किसी प्रकार का बाहरी दबाव नहीं महसूस करते हैं।

3. समूह की रुचियों की खोज करना :—

व्यक्तियों की आयु, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, संस्कृति तथा अन्य भिन्नताओं के कारण उनकी रुचियों में भिन्नता होती है। अतः कार्यक्रमों को निश्चित करना अत्यन्त कठिन होता है। कार्यकर्ता व्यक्तियों के साक्षात्कार के द्वारा उनकी सामान्य रुचियों की सूची तैयार करता है। इसके साथ ही साथ अपने सामान्य ज्ञान से रुचियों एवं आवश्यकताओं का पता लगाकर उनके स्तर का निर्धारण करता है।

समूह का सदस्य व्यक्ति किसी न किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनता है। वे इस उद्देश्य की सन्तुष्टि चाहते हैं। कार्यकर्ता अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर उनमें निहित आवश्यकताओं का पता लगाता है, जिससे सहायता की दिशा निर्धारित की जा सके।

4. उत्तरदायी भागीकरण का विकास करना :

सामूहिक कार्य का यह दृढ़ विश्वास है कि जब सदस्य वास्तव में समूह से सम्बन्ध रखते हैं तथा उत्तरदायी ढंग से व्यवहार करते हैं तो व्यक्ति पर समूह का प्रभाव अधिक शक्तिशाली होता है। ऐसा समूह सामाजिक परिवर्तन के लिए अत्यन्त उपयोग एवं उपयुक्त होता है, अतः कार्यकर्ता सदैव इस प्रयास में रहता है कि जहाँ तक सम्भव हो सदस्य समूह को अपना समूह समझे तथा कार्यों के प्रति स्वतः स्फूर्ति आये। सदस्यों में जब समूह के प्रति लगाव बढ़ जाता है तो उनमें पारस्परिकता भी बढ़ जाती है। सम्बद्धता (**belonging**) की स्थिति की निम्न दशायें है :

1. जो सदस्य अपनी सम्बद्धता समूह से वास्तविक रूप में रखता है वह समूह के उद्देश्यों को स्वीकार करता है, उनकी व्याख्या करता है तथा उनकी प्राप्ति के लिए कार्य करता है।

2. जब उद्देश्यों के बदलने की आवश्यकता होती है तो वह सभी तथ्यों को समूह के सामने रखता है।

3. वह अपनी क्षमता एवं शक्ति के अनुरूप अपनी भूमिका पूरी करने का प्रयत्न करता है। वह अपनी शक्ति का समुचित उपयोग करता है।

4. समूह का आधारस्तम्भ बनता है तथा दूसरो को उसी प्रकार बनने व अनुभव करने की सलाह देता है। आवश्यकतानुसार उनकी मदद करता है।

5. वह समूह के प्रति सक्रिय आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास इस स्तर के बाद करता है। अर्थात् जब समूह यह समझने लगता है कि अमुक सदस्य उसका आवश्यक अंग है तब वह आलोचनात्मक व्यवहार प्रारम्भ करता है।

सामूहिक कार्यकर्ता सदस्यों में उत्तरदायी भागीकरण प्राप्त करने के लिए निम्न कार्य करता है :—

1. समूह के निर्माण के समय वह उन्हीं व्यक्तियों का चयन करता है जो समूह व संस्था से वास्तविक रूप से लाभ उठाना चाहते हैं। कार्यकर्ता इन व्यक्तियों को संस्था के विषय में, उसमें उपलब्ध सुविधाओं के विषय में तथा कार्य-प्रणाली के विषय में सम्पूर्ण जानकारी देता है।

2. समूह में जब कोई नया सदस्य बनता है तो कार्यकर्ता इस प्रकार से उसका परिचय समूह व संस्था से करवाता है जिसमें उस सदस्य में अपनापन का एहसास होता है। इस कार्य के लिए कार्यकर्ता पहले समूह को प्रशिक्षित करता है।

3. कार्यकर्ता सामूहिक क्रियाओं को अधिकतर समूह की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप ही सम्भव कराता है। उसका ध्यान सदैव सदस्यों की आवश्यकताओं एवं संस्था के उद्देश्यों पर रहता है।

4. कार्यकर्ता प्रशिक्षण-कार्यक्रम के द्वारा उनके नेतृत्व का विकास करता है, जिससे वे स्वतः अपनी कार्यक्रम-क्रियाओं का संचालन एवं निर्देशन करते हैं।

5. कार्यकर्ता किसी भी सदस्य को आवश्यकता से अधिक प्रभावकारी नहीं होने देता है।

6. कार्यकर्ता सदस्यों का निरन्तर वैयक्तीकरण करता है जिससे उनकी सहायता की जा सके, जो कठिनाई अनुभव करने लगे हैं। प्रत्येक सदस्य के लिए वह चेतन रूप से योजना तैयार करता है, जिसमें उसकी रुचियों, आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का ध्यान रखता है।

5. अन्तःक्रिया का निर्देशन :

समूह के सदस्यों के बीच कुछ न कुछ प्रतिक्रिया अवश्य होती रहती है जिसे सामूहिक कार्य में अन्तःक्रिया कहते हैं। यद्यपि कार्यक्रम की विषयवस्तु, संगठन, रुचियाँ व आवश्यकतायें महत्त्वपूर्ण होती हैं परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों के संवेग एवं भावनायें हैं, जिनको समझना कार्यकर्ता के लिए नितान्त आवश्यक है। कार्यकर्ता का प्राथमिक कार्य अन्तःक्रिया का निर्देशन करना होता है, क्योंकि समूह स्वयं व्यक्तित्व के विकास का मुख्य यन्त्र है। कार्यकर्ता सदस्यों की अन्तःक्रियाओं का अवलोकन करता है। अन्तःक्रिया उस समय होती है जब सदस्य एक-दूसरे के व्यवहार में भाग लेते हैं। कार्यकर्ता देखता है कि कौन सदस्य क्या कर रहा है, कितनी बार प्रयास कर रहा है, कार्य करने में कितना समय ले रहा है, विषयवस्तु का तारतम्य क्या है, किस तरह प्रयास कर रहा

है, कार्य करने तथा प्रतिक्रिया करने का तात्पर्य क्या है इत्यादि । ट्रेकर ने निम्नलिखित क्षेत्रों का ज्ञान कार्यकर्ता के लिए आवश्यक बतलाया है :—

1. **कार्य का विवरण**—कार्यकर्ता यह देखता है कि कौन सदस्य भाग ले रहा है, कौन-कौन क्या कर रहा है, कौन-कौन रुचि ले रहा है तथा वे क्या चाहते हैं ।

2. **बारम्बारता**—कार्यकर्ता देखता है कि सदस्य कितनी बार तथा कैसे कार्य में भाग लेते हैं ।

3. **अवधि**—कार्यकर्ता देखता है कि समूह-सदस्य कितनी देर तक क्रियाओं में भाग लेते हैं, क्योंकि कुछ सदस्य तो सभी क्रियाओं में पूरे समय भाग लेते हैं परन्तु कुछ यदा-कदा ही सक्रिय रूप से भाग लेते हैं ।

4. **भाग लेने का क्रम**—कार्यकर्ता यह देखता है कि सदस्य किस प्रकार भाग ले रहे हैं, क्योंकि कुछ सदस्य किसी विशेष कारण से कम भाग लेते हैं, कुछ अधिक बोलते हैं तथा कुछ बोलने के लिए सहायता चाहते हैं ।

5. **अन्तःक्रिया की दिशा**—दिशा की दो श्रेणियाँ हैं—एक व्यक्ति की ओर तथा दूसरी उद्देश्य की ओर । कार्यकर्ता अन्तःक्रिया की दिशा को ध्यान में रखता है ।

6. **अन्तःक्रिया की विषयवस्तु**—अन्तःक्रिया की विषयवस्तु कार्यक्रम तथा व्यक्तित्व पर निर्भर है । सदस्य नये कार्यक्रम का सुझाव रखते हैं तथा व्यक्तियों के स्थानों में परिवर्तन होता है । कार्यकर्ता इसका ध्यान रखता है ।

7. **अन्तःक्रिया का अर्थ**—कार्यकर्ता अन्तःक्रिया का मूल्यांकन करता है । वह सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रत्युत्तरों को देखता है । वह सफलता व असफलता के कारणों पर प्रकाश डालता है ।

समूह में विघटित अन्तःकिया के 3 रूप प्रायः प्रगट होते हैं :—

(1) संघर्ष के रूप में, (2) उदासीनता के रूप में तथा (3) अपर्याप्त परिपक्वता के रूप में । समूह में जब संघर्ष की स्थिति होती है उस समय सदस्य एक-दूसरे के प्रति अधैर्य रखते हैं, विचारों पर प्रहार होता है, सदस्य समझौता नहीं करना चाहते हैं, योजना अथवा सुझाव का विरोध करते हैं, व्यक्तिगत स्तर पर भी विरोध कर सकते हैं, परोक्ष रूप से भर्त्सना करते हैं, एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं । उदासीनता की स्थिति उस समय होती है जब सदस्य जमुहाई लेते हैं, वार्तालाप में भाग नहीं लेते हैं, कार्यक्रम खींचता दिखलायी देता है, सदस्य लेट जाते हैं तथा अनुपस्थित रहते हैं । अपरिपक्वता उस समय दिखलायी देती है जब सदस्य निर्णय को कई बार बदलते हैं या कोई निर्णय नहीं ले पाते हैं । इन सभी स्थितियों में कार्यकर्ता समूह की सहायता करता है ।

6. नेतृत्व का विकास करना :

समूह-सदस्य योग्यताओं तथा क्षमताओं में भिन्न-भिन्न होते हैं। उनमें नेतृत्व की क्षमता भी भिन्न-भिन्न होती है। अतः कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह उन सदस्यों का पता लगाये जिनमें सकारात्मक नेतृत्व के गुण विद्यमान हैं और वे उत्तरदायित्व को ग्रहण कर सकते हैं। यदि समूह को अपना कार्यक्रम चलाना है तो यह आवश्यक है कि नेतृत्व भी उन्हीं सदस्यों में से हो, अन्यथा कार्यकर्ता को यह कार्य करना होगा जो कि न तो समूह के लिए हितकर है और न ही समूह-सिद्धनतों के अनुकूल है। कार्यकर्ता पहले उन सदस्यों की सहायता करता है जो नेतृत्व का कार्य करते हैं तथा कार्यक्रम-क्रियाओं को पूरा करने में अगुवाई करते हैं, जिससे वे अधिक सक्रियता से अपनी भूमिका का निर्वाह कर सकें। तदुपरान्त प्रत्येक सदस्य को ऐसे अवसर देने का प्रयत्न करता है जहाँ पर वे अपनी इस शक्ति का मूल्यांकन कर सकें और अनुभव प्राप्त कर सकें।

कार्यकर्ता समूह द्वारा चुने हुए नेता को अपने कर्तव्यों को पूरा करने में सहायता करता है। वह इसके साथ निरन्तर सम्पर्क बनाये रखता है तथा इस प्रकार से निर्देशित करता है जिससे समूह-नेता समूह का प्रिय सदस्य हो जाता है। वह समूह के प्रत्येक सदस्य को किसी न किसी कार्य के नेतृत्व का उत्तरदायित्व देता है, जिससे एक ओर समूह में श्रेष्ठता-निम्नता की भावना नहीं आती और दूसरी ओर नेतृत्व का अनुभव प्राप्त होता है, जिससे अपने सामाजिक जीवन में कुशलतापूर्वक समस्या का समाधान कर लेते हैं।

7. वैयक्तीकरण करना :

कार्यकर्ता निम्न स्थितियों में समूह में एक व्यक्ति सदस्य के रूप में सहायता करता है :—

1. कार्यकर्ता समूह को संस्था के बारे में बतलाता है लेकिन प्रत्येक सदस्य की अपनी रुचि के अनुकूल उपलब्ध साधनों के उपयोग करने की सलाह देता है। संस्था में सेवार्थी आता है, वह संस्था के विषय में सम्पूर्ण जानकारी चाहता है तथा यह भी चाहता है कि कार्यकर्ता उसकी भी समस्या समझे और उसके अनुरूप सलाह दे।

2. कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य की विशेषताओं, रुचियों तथा आवश्यकताओं को पृथक्-पृथक् समझता है तथा समूह से उसका परिचय करवाता है।

3. वह प्रत्येक सदस्य को उनके उत्तरदायित्व को पूरा करने की सलाह देता है, आवश्यक ज्ञान प्रदान करता है, कार्य का स्तर निश्चित करता है तथा अपने कार्य का मूल्यांकन करने के तरीके बतलाता है।

4. जब कोई सदस्य अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पाता है और कठिनाई अनुभव करता है ऐसी दशा में कार्यकर्ता उसमें अन्तर्दृष्टि का विकास करता है तथा उन कारकों पर प्रकाश डालता है जिनके कारण वह अपना कार्य नहीं कर पाया है। कार्यकर्ता नकारात्मक अनुभव को सकारात्मक अनुभव में बदल देता है।

5. जब सदस्य अति उग्रात्मक व्यवहार अथवा प्रत्याहार (Withdrawal) के कारण समूह में समायोजित नहीं हो पाता है ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता उसके व्यवहार में परिवर्तन लाता है।

6. प्रत्येक सदस्य को अधिकाधिक उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

7. जिन सदस्यों का समूह से लाभ नहीं हो रहा है उन्हें समूह से पृथक् करने की सलाह देता है।

8. जब सदस्य को विशेष प्रकार की सेवा की आवश्यकता होती है और वह उस संस्था में उपलब्ध नहीं होती है तो कार्यकर्ता उस सदस्य को दूसरी संस्था में संदर्भित कर देता है।

8. समस्याग्रस्त व्यक्तियों की सहायता करना :

समूह में कभी-कभी ऐसी समस्या उत्पन्न हो जाती है जब सदस्य समूह से अपना समायोजन स्थापित करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता न केवल उस सदस्य-विशेष का अध्ययन करता है बल्कि सम्पूर्ण समूह की स्थिति का विश्लेषण भी करता है। वह उस सदस्य के प्रति समूह की भावनाओं तथा दृष्टिकोण का अध्ययन करता है। साथ ही साथ सदस्य विशेष के समूह के प्रति व्यवहार का अध्ययन भी करता है। यह जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जब तक सदस्य पूर्णरूप से समूह में समायोजित नहीं होगा वह न तो अपना विकास करेगा और न ही समूह को कोई योगदान देगा।

सामूहिक कार्यकर्ता ऐसी स्थिति में 3 प्रकार के कार्य करता है :—

1. वह समूह के प्रति उस व्यक्ति-विशेष के व्यवहार के कारणों का पता लगाता है।

2. वह उस व्यक्ति-विशेष के प्रति अपने विचारों एवं प्रत्युत्तरों को समझने का प्रयत्न करता है।

3. वह समझने का प्रयत्न करता है कि उस व्यक्ति-विशेष के व्यवहार का समूह पर क्या असर पड़ रहा है तथा समूह किस प्रकार उस व्यवहार का प्रत्युत्तर कर रहा है।

जब कार्यकर्ता को ज्ञात हो जाता है कि व्यक्ति-विशेष के व्यवहार का क्या अर्थ है, इस व्यवहार के पीछे क्या बात है, यह व्यवहार किस बात का प्रतीक है, समूह पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है, कार्यकर्ता स्वयं उसको किस दृष्टि से देखता है, वह इसके लिए क्या कर सकता है, उस समय वह कोई ठोस उपाय ढूँढ़ने का प्रयास करता है ।

समूह में सदस्यों को निम्न प्रकार की समस्यायें कभी-कभी आती है और समायोजन में कठिनाई उत्पन्न कर देती है :—

1. जिस सदस्य में बहुत अधिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है उसे समूह स्वीकार नहीं करता है । कार्यकर्ता का प्रयास होता है कि वह अपने पर नियन्त्रण रखे ।

2. कुछ सदस्य अत्यन्त निष्क्रिय होते हैं, किसी भी क्रिया में खुलकर भाग नहीं लेते हैं और भाग लेने से कतराते रहते हैं । कार्यकर्ता इन सदस्यों को उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए प्रेरित करता है ।

3. कुछ सदस्य पराश्रित होते हैं । वे या तो पूर्णतया कार्यकर्ता पर अथवा समूह-सदस्यों पर निर्भर रहते हैं । स्वयं कोई कदम नहीं उठाते हैं । कार्यकर्ता ऐसे सदस्यों को पहले साधारण प्रकार के उत्तरदायित्व एवं निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है, तदुपरान्त उत्तरदायित्वों का क्षेत्र बढ़ता जाता है ।

4. कभी-कभी सदस्य उत्तरदायित्व तो ग्रहण कर लेते हैं परन्तु उनको पूरा नहीं करते हैं । ऐसे सदस्यों को उनके उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों का आभास कराना होता है ।

5. समूह में कभी-कभी कुछ सदस्य सदैव नकारात्मक दृष्टिकोण ही रखते हैं जिससे समूह की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो जाती है । कार्यकर्ता उन सदस्यों के विचारों में परिवर्तन लाता है जिससे वे सकारात्मक दिशा में सोच सकें ।

6. समूह में कभी-कभी सदस्य सीमा का उल्लंघन करते हैं जिससे समूह को कठिनाई उत्पन्न हो जाती है । कार्यकर्ता इन सदस्यों को विशेष ज्ञान प्रदान करता है ।

7. सदस्यों में कभी-कभी गलत धारणायें बन जाती हैं, जिससे एकीकरण को ठेस लगती है । अतः कार्यकर्ता ऐसी स्थिति से निपटने के लिए ठोस कदम उठाता है ।

8. कभी-कभी सदस्य की कठोर मनोवृत्ति के कारण समस्या उत्पन्न हो जाती है । कार्यकर्ता उसके व्यवहार को बदलने का प्रयास करता है ।

9. संदर्भित करना :

संस्था में अनेक ऐसे सेवार्थी आते हैं जिनको पता नहीं होता है कि उनकी आवश्यकता से सम्बन्धित सेवायें कहाँ उपलब्ध हैं अथवा सेवार्थी की आवश्यकताओं का कुछ अंश तो एक संस्था में तथा अन्य दूसरी संस्थाओं से सम्बन्धित है। ऐसी दशा में कार्यकर्ता इन व्यक्तियों को सही स्थान व संस्था का ज्ञान कराता है। समूह में भी कार्य किसी विशेष सदस्य को विशेषीकृत (specialised) सहायता की आवश्यकता होती है लेकिन सदस्य को इसका ज्ञान नहीं होता है और न ही वह इस संस्था से बाहर जाना चाहता है। कार्यकर्ता की निपुणता पर निर्भर होता है कि वह किस प्रकार सदस्य-विशेष को बाह्य सहायता के लिए तैयार करता है।

बाह्य सहायता की आवश्यकता चाहे सदस्य द्वारा व्यक्त की जाय अथवा कार्यकर्ता द्वारा लेकिन संदर्भित करने की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण होती है। सामूहिक कार्य में संदर्भित का तात्पर्य व्यक्ति की सहायता करना ही है लेकिन उस सहायता का स्रोत दूसरी संस्था होती है। कार्यकर्ता को संदर्भित (Referral) प्रक्रिया में निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए :—

1, संदर्भित प्रक्रिया सदैव वैयक्तीकृत (Individualized) हो। कार्यकर्ता को उस सदस्य-विशेष का पूरा अध्ययन करना चाहिये।

2. संदर्भित का अर्थ कार्यकर्ता तथा सेवार्थी दोनों को ज्ञात होना चाहिये।

3. कार्यकर्ता को चाहिये कि वह संदर्भित संस्था की कार्यविधियों, तरीकों, उद्देश्यों, आर्थिक सुविधाओं आदि के विषय में सेवाकार्मिक सुविधाओं आदि के विषय में सेवार्थी को ज्ञान करा दे।

4. कार्यकर्ता को चाहिये कि वह उस संस्था को पहले से ही सेवार्थी के विषय में सूचना दे दे।

5. फालोअप का कार्य कार्यकर्ता को करते रहना चाहिए।

गृह-सम्पर्क करना—कभी-कभी समूह-सदस्य किसी विशेष कारण से कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाते हैं या ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जब समूह की क्रियाओं से उसे वंचित रहना पड़ता है। यदि कई दिनों तक कोई सदस्य कार्यक्रम में भाग नहीं लेता है तो कार्यकर्ता उस सदस्य के पास जाकर कारणों का पता लगाता है और यथाशक्ति उसकी सहायता करता है।

10. मूल्यांकन करना :

कार्यकर्ता कार्यक्रम-प्रक्रिया का मूल्यांकन सामूहिक प्रक्रिया के साथ ही साथ करता रहता है। वह सबसे पहले समूह के उद्देश्यों को निश्चित करके उनके

औचित्य की जाँच करता है। सामूहिक क्रियाओं के मूल्यांकन द्वारा ही वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समूह के लिए कौन से कार्यक्रम उसके उद्देश्यों तक पहुँचने में पूरी सहायता कर सकते हैं। व्यक्ति व समूह के विकास का निर्णय करके व समझने के लिए वह उन मानदण्डों को ढूँढ़ता है जिससे यह सम्भव हो सकता है अर्थात् कार्यकर्ता कार्यक्रम से प्राप्त सफलता तथा सामूहिक अनुभव से विकास आदि का मूल्यांकन करता रहता है। वह विकास की गति तथा परिवर्तनों का मूल्यांकन करता है। वह समूह तथा सदस्यों के व्यवहारों का मूल्यांकन करता है, जिससे व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान होता है। ट्रेकर[3] (Trecker) ने मूल्यांकन के लिए निम्न कार्यों का उल्लेख किया है :—

1. संस्था को ध्यान में रखकर व्यक्तियों और समूहों के उद्देश्यों का निर्धारण करना,

2. समूह व व्यक्ति के विकास व उन्नति को निश्चित करने के लिए मापदण्ड का ज्ञान रखना,

3. तीव्र विकास एवं परिवर्तन के लिए कार्यक्रम की योजना तैयार करना,

4. व्यक्ति व समूह के व्यवहार का पूर्ण अभिलेखन करना,

5. विकास व उन्नति के मापदण्ड के आधार पर अभिलेखों का विश्लेषण करना,

6. यह निश्चित करने के लिए कि क्या समूह उद्देश्य प्राप्त कर रहा है, विश्लेषणात्मक आँकड़ों की व्याख्या करना,

7. कार्यक्रम, विषयवस्तु और ढंगों का पुनरावलोकन करना,

8. उद्देश्यों को संशोधित करना तथा मूल्यांकन में निरन्तरता बनाये रखना।

(ब) संस्था (Agency) से सम्बन्धित कार्य :

सामाजिक सामूहिक कार्य के 3 प्रमुख अंग हैं :—कार्यकर्ता, समूह व सामाजिक संस्था। सामाजिक संस्था द्वारा ही कार्यकर्ता समूह को सेवा प्रदान करता है। कार्यकर्ता को जिस सीमा तक संस्था के विषय में ज्ञान होता है, वह अपनी सेवाओं को समूह के साथ उसी सीमा तक सम्पन्न करते हैं एवं सामूहिक विकास में उतनी ही अधिक कुशलता से सहायता करता है। चूँकि कार्यकर्ता संस्था का कर्मचारी होता है अतः वह सामूहिक कार्य की निपुणताओं का उपयोग संस्था के प्रतिनिधि के रूप में करता है। कार्यकर्ता संस्था के विषय में निम्न

---

3. Trecker, op. cit. p. 218.

जानकारी प्राप्त करता है और उसका उपयोग समूह के माध्यम से उसकी भलाई के लिए करता है।

1. संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों के विषय में जानकारी प्राप्त करता है।

2. संस्था की परिवर्तनशील प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करता है।

3. संस्था से सम्बन्धित रुचियों, आवश्यकताओं, भौगोलिक स्थिति तथा मनोसामाजिक व आर्थिक कारणों का पता लगाता है।

4. वह संस्था के उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों का पता लगाता है।

5. संस्था की शर्तों एवं सुविधाओं का समूह से नाता है।

6. वह संस्था की आन्तरिक कार्यवाहिक नीतियों से अवगत होता है। वह संस्था में कार्य के घंटे, भाग लेने की सुविधायें तथा अन्य समूहों से सम्बन्ध की दशायें, कार्यसम्बन्धी अधिनियम की जानकारी रखता है तथा समूह को बतलाता है।

7. समूह को संस्था की नीतियों के अनुरूप मोड़ने का प्रयास करता है।

8. संस्था की सभी बैठकों, कार्यक्रमों तथा क्रिया-कलापों में भाग लेता है।

9. संस्था के कार्यक्रमों और साधनों के विकास में मदद देता है।

10. संस्था को समूह के हित में सोचने के लिए अन्तर्दृष्टि देता है।

(स) समुदाय से सम्बन्धित कार्य :

सामूहिक कार्यकर्ता केवल संस्था अथवा समूह के साथ ही कार्य नहीं करता है बल्कि इसके परे भी उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कर्ता, समूह तथा संस्था के समुदाय के अंग हैं। यदि समूह के विषय में सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है तो सामुदायिक स्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है। समुदाय की विशेषतायें समूह-सदस्यों की आवश्यकताओं का निर्धारण करती है। पारिवारिक जीवन, शिक्षा-संस्थायें, कार्य तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक शक्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति की मनोवृत्ति का निर्माण उसका सम्पूर्ण वातावरण अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप होता है। अतः समूह तथा संस्था को भलीभाँति समझने के लिए, जिससे पारस्परिक सहयोग बढ़े, कार्यकर्ता को सामुदायिक स्थितियों का अवश्य अध्ययन करना चाहिये।[4]

व्यक्तियों तथा समूहों की भाँति समुदाय भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, अतः कार्यकर्ता को समूह की भाँति ही सामुदायिक स्थितियों का वैयक्तीकरण करना चाहिये। इसे उस विशेष समुदाय, जिनके अन्तर्गत काम करना है, उसके विद्यालय,

---

4. Porter, E. H. : Community wise women's Press, Newyork, 1947.

आवास, धार्मिक संस्था के मनोरंजन के साधन, कार्यदशायें आदि के विषय में जानकारी आवश्यक है। कार्यकर्ता समूह-निर्माण से पहले समुदाय का अध्ययन करता है तथा निम्न सूचनायें एकत्र करता है :—

1. समुदाय की जनसंख्या,
2. परिवारों की संख्या,
3. जनसंख्या का निम्न आधारों पर वितरण :—
   (अ) आयु,
   (ब) लिंग,
   (स) प्रजाति तथा सांस्कृतिक विशेषतायें,
   (द) धार्मिक प्रकृति,
   (य) आर्थिक स्तर।
4. रहने की दशायें :—
   (अ) आवास, (ब) गृहस्वामित्व ,(स) किरायेदारों की संख्या, (द) सफाई एवं स्वच्छता, (य) जल-सुविधा।
5. लोगों की विशेषतायें :—
   (अ) गतिशीलता, (ब) शिक्षा का स्तर, (स) रोजगार की दर तथा इसके प्रकार, (द) मतदाता आदि।
6. सामाजिक संस्थायें तथा उपलब्ध सेवायें :—
   (अ) धार्मिक संस्थायें, (ब) विद्यालय तथा उनके प्रकार, (स) खेल मैदान, (द) पार्क तथा मनोरंजन केन्द्र, (य) पुस्तकालय, (र) कला तथा संगीत के केन्द्र, (ल) जनसहायता सेवायें, (ब) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवायें, (स) स्वैच्छिक संस्थायें, (द) वाणिज्यीय मनोरंजन।
7. सामाजिक नेतृत्व-महत्त्वपूर्ण व्यक्ति (नेता),
8. समुदाय के विकास के कार्यक्रम,
9. सामाजिक असमायोजन के द्योतक :—
   (अ) तलाक की दर, (ब) अपराध, (स) बाल अपराध, (द) साम्प्रदायिक दंगे, (य) असामाजिक व्यवहार, (र) मृत्युदर तथा गम्भीर बीमारियाँ।

इन सूचनाओं से कार्यकर्ता को समुदाय की आवश्यकताओं का ज्ञान हो जाता है। अतः उसे निश्चित करना होता है कि सामुदायिक स्थितियाँ विशेष समूह पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से कितना प्रभाव डाल रही हैं। इसके अतिरिक्त वह निम्न प्रश्नों के उत्तर ढूँढता है :—

1. समूह-सदस्य घर में, स्कूल में या कार्यस्थल पर किन दशाओं में रहते हैं ?

2. समूह-सदस्य जब संस्था में नहीं होते हैं उस समय वे क्या करते हैं तथा उनमें आपस में कितना सम्पर्क रहता है ?

3. क्या मनोरंजन क्रियाओं से सम्बन्धित कोई महत्त्वपूर्ण प्रथायें एवं परम्परायें हैं ?

4. समुदाय में कौन-सी स्थितियाँ हैं जिनसे एकता को खतरा लगता है ?

5. समुदाय में समूह की स्थिति क्या है ?

6. समूह समुदाय के विषय में अथवा अन्य समूहों के विषय में कितनी जानकारी रखता है ?

7. समूह अन्य समूहों से किस प्रकार के सम्बन्ध रखता है ?

8. सामुदायिक स्रोतों के विषय में समूह को कितना ज्ञान है ?

9. समुदाय में गतिशीलता कितनी है तथा समूह पर उसका क्या प्रभाव है ?

10. सामुदायिक परिवर्तन के कौन क्षेत्र महत्त्वपूर्ण हैं ?

11. समुदाय में और कौन-कौन-सी संस्थायें इस विशेष क्षेत्र में कार्य कर रही है ?

कार्यकर्ता समूह को समझने तथा सम्बन्ध स्थापित करने में सहायता करता है :—

समुदाय में अनेक ऐसी सुविधायें तथा साधन होते हैं जो समूह के लिए लाभकारी होते हैं। समूहों को इन सुविधाओं एवं स्रोतों का ज्ञान नहीं होता है, जिससे अनेक कार्यक्रम या तो सम्पन्न नहीं हो पाते हैं अथवा सफल नहीं हो पाते हैं। यदि उन्हें इन स्थानों एवं संस्थाओं का ज्ञान हो तो वह अधिक लाभकारी तरीके से कार्य कर सकता है। कार्यकर्ता का यह प्रमुख कार्य है कि वह समूह को समुदाय में उपलब्ध सुविधाओं से परिचय कराये। समुदाय में उपलब्ध खेल सामग्री, फिल्म, वक्ता, स्थान, भौतिक साधन आदि का उपयोग कार्यकर्ता समुदाय के लिए करता है। कार्यकर्ता समुदाय में होने वाली क्रियाओं से अवगत रहता है जिससे, समूह का ध्यान, उन क्रियाओं की ओर खींच सके। वह अन्य समूहों को अपनी संस्था में बुलाता है और अपने समूह से अन्तःक्रिया करवाता है। वह अपने समूह को भी अन्य संस्थाओं में ले जाता है जिससे समूह-सदस्य व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता के प्रमुख यंत्र (Tools) :

कोनोपका ने निम्नलिखित यंत्रों का उल्लेख किया है :—

1. कार्यकर्ता का चेतनात्मक तथा अनुशासित रूप से स्वयं का उपयोग,

2. कार्यकर्ता तथा सदस्यों के बीच मौखिक अन्तःक्रिया,

3. व्यक्ति तथा समूह की आवश्यकताओं के आधार पर कार्यक्रम क्रियाओं का चयन तथा उनका उपयोग,

4. समूह-सदस्यों में स्वयं अन्तःक्रिया।

1. **कार्यकर्ता का चेतनात्मक उपयोग**—कार्यकर्ता में आवश्यक ज्ञान, निपुणता, कौशल तथा समस्या समाधान करने की योग्यता का होना आवश्यक होता है। वह तभी सफल कार्यकर्ता हो सकता है जब स्वयं में वह योग्य एवं कुशल हो। कार्यकर्ता निम्न कार्यों को विशेष रूप से करता है :—

1. समूह संस्था तथा समुदाय के साथ उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उनको प्रगाढ़तर करता रहता है।

2. उपर्युक्त स्थितियों तथा आवश्यकताओं सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करता है और बढ़ावा देता है।

3. समूह, संस्था तथा समुदाय में भागीदार बनता है और इस माध्यम से उनकी सहायता करता है।

4. आवश्यकतानुरूप अपने कर्तव्यों का निर्धारण, विकास एवं मूल्यांकन करता है।

5. अपने सम्बन्ध व ज्ञान का उपयोग समयानुसार करता है।

6. अपने में आत्मनियन्त्रण, संयम, धैर्य इत्यादि गुणों का विकास करता है और स्वयं को स्वस्थ बनाकर व्यक्तित्व को अधिक प्रभावकारी तथा वृत्तिक बनाता है।

(2) **मौखिक अन्तःक्रिया**—सम्बन्ध स्थापन की प्रथम आवश्यकता सम्पर्क है। समूह-सदस्य तथा कार्यकर्ता में विभिन्न उपकरणों द्वारा सांवेगिक एवं मानसिक सम्पर्क होते हैं। सम्पर्क के कारण एक-दूसरे के विचारों पर परस्पर प्रभाव डालते हैं। अन्तःक्रिया इस तथ्य की ओर इंगित करती है कि कार्यकर्ता की प्रतिक्रिया, हावभाव, शुद्ध या स्थूल, शारीरिक गति सदस्यों को उत्तेजित करती है और ये अपनी बारी पर कार्यकर्ता के प्रति तथा समूह के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। सम्बन्ध की स्थिरता अथवा अस्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें भाग लेने वाले किस प्रकार अन्तःक्रिया कर रहे हैं। सामूहिक कार्य में मौखिक अन्तःक्रिया अधिक होती है। उसी के अन्तर्गत संकेत, चिह्न अथवा भाव व्यक्त किये जाते हैं। मुख तथा शरीर की अभिव्यक्ति द्वारा भी सुधार की क्रिया सम्भव होती है। अतः कार्यकर्ता में न केवल अन्तःक्रिया की निपुणता आवश्यक है बल्कि उसे उन समूह को लाभकारी अन्तःक्रिया में भाग लेने के लिए उत्साहित करने की योग्यता होनी चाहिये।

कार्यकर्ता समूह-सदस्यों के प्रत्युत्तरों को तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को धैर्यपूर्वक सहन करता है एवं स्वीकार करता है। वह उनकी उग्र प्रवृत्ति एवं सहयोगी

प्रवृत्ति दोनों का स्वागत करता है। वह प्रत्येक सदस्य की उग्रात्मक तथा मित्रवत् भावनाओं को स्वीकार करता है परन्तु यह तभी सम्भव होगा जब उसे मानव-व्यवहार के सिद्धान्तों का समुचित ज्ञान हो। कार्यकर्ता इस उग्र व्यवहार का उपयोग रचनात्मक कार्यों में परिवर्तित कर देता है जिससे समूह में एक ओर एकता दूसरी ओर प्रगति एवं विकास के अवसर बढ़ते जाते हैं।

(3) **कार्यक्रम का उपयोग**—कार्यक्रमों के माध्यम से ही सामूहिक कार्य सम्भव होता है। समूह तथा व्यक्ति के विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का उपयोग किया जाता है, जिनके आधार पर सदस्य अनुभव प्राप्त करते हैं। कार्यक्रम के अनेक माध्यम हैं जैसे—खेल, मनोरंजन, नृत्य, संगीत, कहानी, नाटक, कला, शिल्प, सिलाई, कढ़ाई, चित्रकारी आदि। इनके द्वारा समूह की आवश्यकताओं की संतुष्टि की जाती है। कार्यक्रम के माध्यम वे यन्त्र हैं जिनका उपयोग कार्यकर्ता इस प्रकार करता है जिससे समूह व व्यक्ति दोनों द्वारा इच्छित एवं सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

जब व्यक्ति तथा समूह के अनुभव का विश्लेषण करते हैं तो कार्यक्रम-क्रिया के महत्त्व को हम ध्यान से ओझिल नहीं कर सकते हैं, क्योंकि क्रियाओं के आधार पर ही अन्तःक्रिया होती है और अनुभव का क्षेत्र विस्तृत होता है। कार्यक्रम-क्रिया का सदस्य, कार्यकर्ता तथा संस्था तीनों पर प्रभाव पड़ता है। कार्यक्रम-क्रियाओं का उचित चयन तथा उनका आवश्यक निर्देशन कार्यकर्ता की सफलता का परिचायक होता है। अतः कार्यकर्ता को न केवल विभिन्न कार्य करने की क्रियाओं में निपुण एवं दक्ष होना चाहिये बल्कि उसे उन स्रोतों का भी ज्ञान होना चाहिये जहाँ से आवश्यकता पड़ने पर सहायता ली जा सकती है।

समूह-सदस्यों में अन्तःक्रिया—समूह-सदस्यों में परस्पर अन्तःक्रिया के फलस्वरूप ही विकास सम्भव होता है। प्रारम्भ में समूह अधिकांश व्यक्तियों को एकचित्त होने के गुणों का प्रदर्शन करता है और सामूहिक चेतना निम्न स्तर की होती है। सदस्य अपनी-अपनी बातों में रुचि लेते हैं परन्तु कार्यकर्ता उन सदस्यों में एक इच्छा उत्पन्न करता है और यही समूह होने की प्रथम विशेषता है। जैसे-जैसे एक इच्छा या एक आवश्यकता की उत्पत्ति होती है वैसे-वैसे सामूहिक भावना बढ़ती जाती है। बाद के स्तरों में समूह घनिष्ठ सामूहिक भावना उत्पन्न करता है। समूह के जीवन में कार्यकर्ता एक आवश्यक अंग है। सदस्यों के सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से व्यावहारिक प्रत्युत्तरों को जानकर कार्यकर्ता इस बात का ज्ञान प्राप्त करता है कि समूह किस स्तर से गुजर रहा है। कार्यकर्ता सदस्यों में होने वाली अन्तःक्रिया को समझकर विकास

के स्तर का निर्धारण करता है। सदस्य सकारात्मक सामूहिक अन्तःक्रिया के 6 स्तर हैं :—

1. प्रारम्भिक स्थिति में केवल एक साथ एकत्रित होते हैं और अपने में रुचि रखते हैं।

2. दूसरी अवस्था में सामूहिक भावना का विकास होता है, संगठन का रूप निश्चित करते हैं तथा कार्यक्रम निश्चित होकर प्रारम्भ होते हैं।

3. शर्तों एवं नियमों का विकास होता है, घनिष्ठता बढ़ती है।

4. घनिष्ठ सामूहिक भावना का विकास होता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।

5. रुचियों में कमी आती है। अन्तःक्रिया कम होती है।

6. समूह को विघटित करना होता है।

परन्तु कार्यकर्ता का कार्य समूह में सकारात्मक अन्तःक्रिया को बनाये रखना तथा उनका निर्देशन करना होता है।

III. सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका (Role)

सामूहिक कार्यकर्ता समूह की आवश्यकता एवं सामूहिक स्थितियों की माँग के अनुरूप अनेक प्रकार की भूमिका पूरी करता है। निम्न प्रमुख भूमिकायें है :—

(अ) समूह के साथः—

1. **सार्थकता की भूमिका** (The Enabler) :—कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को अपनी आवश्यकताओं एवं समस्याओं को समझने में सहायता करता है। वह उन स्रोतों को बतलाता है जिनसे आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है तथा सदस्य सहयोग ले सकते हैं। वह समूह निर्माण के लिए व्यक्तियों में अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति असंतोष उत्पन्न करता है, जिससे वे परस्पर सहयोग एवं संयुक्त प्रयास के लिए एकत्रित होते हैं। वह सर्वसम्मति के आधार पर समूह का निर्माण करता है। वह सदस्यों में अपनी समस्याओं के समाधान करने की शक्ति विकसित करता है तथा कार्यक्रमों के चयन की योग्यता का विकास करता है। वह सभी सदस्यों के भागीकरण को बढ़ावा देता है।

2. **पथ-प्रदर्शक के रूप में** (The guide) :—वह सदस्यों को संस्था व समुदाय की सुविधाओं एवं अन्य स्रोतों से अवगत कराता है, जिनकी उन्हें आवश्यकता तो है परन्तु वे जानते नहीं हैं। वह सदस्यों की अपनी भूमिका का एहसास कराता है तथा आवश्यक मुद्दों को स्पष्ट करता है। आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यक्ष रूप से समूह को सहायता करता है। वह सामूहिक अन्तःक्रिया का निर्देशन करता है।

3. **अधिवक्ता के रूप में (The Advocate) :**—कार्यकर्ता सदस्यों की समस्याओं को उच्च अधिकारियों के समक्ष रखता है तथा आवश्यक सेवायें प्रदान करने की सिफारिश करता है। वह संस्था की नीतियों, कार्यक्रमों व योजनाओं में परिवर्तन करने की भी सिफारिश करता है।

4. **विशेषज्ञ के रूप में (The Expert) :**—कार्यकर्ता सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर विशेष सलाह देता है। वह समूह-समस्या का विश्लेषण करता है तथा उसका निदान करता है। समूह को विधिवत् तथा अधिक प्रभावकारी होने के लिए उपयुक्त तरीके बतलाता है। वह संस्था व समूह के कार्यक्रमों का मूल्यांकन करता है।

5. **चिकित्सक के रूप में (The Therapist) :**—कार्यकर्ता समूह की कुछ समस्याओं का प्रयास पहले करता है जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और जिनकी जड़ें काफी गहरी हैं। वह समूह को उन शक्तियों से परिचय करवाता है जो विघटनात्मक हैं तथा जिनका प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। वह समूह को इस प्रकार से प्रेरित करता है जिससे सदस्य स्वयं परिवर्तन की माँग करते हैं। वह सदस्यों के अहं को सुदृढ़ करता है।

6. **परिवर्तक के रूप में (The Changer)** कार्यकर्ता सदस्यों की आदतों में परिवर्तन लाने के लिए अनेक कार्यक्रम करता है, क्योंकि कभी-कभी आदतों के कारण ही समस्या उठ खड़ी होती है और परिवार व समाज में विघटन उत्पन्न कर देती है। कार्यकर्ता सदस्यों के कार्य करने के तरीकों में भी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है, क्योंकि जब तक कार्य करने के ढंगों में बदलाव नहीं आयेगा तब तक समूह किसी भी प्रकार से विकास नहीं कर सकेगा। वह सदस्यों की मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन लाने के कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से सारांश में कहा जा सकता है कि कार्यकर्ता सामाजिक व्यवस्था को बदलने का बृहद् उद्देश्य रखता है।

7. **सूचनादाता के रूप में (The Imformer)** कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को संस्था से क्या-क्या सुविधायें प्राप्त हो सकती हैं और वे उनसे क्या लाभ उठा सकते हैं। परन्तु संस्था की आवश्यक शर्तों को पूरा करना होगा अतः उन्हें भी विस्तार से समझाता है।

8. **सहायक के रूप में (The Helper)** कार्यकर्ता समूह की सहायता लक्ष्य निर्धारण तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीकों को निश्चित करने में करता है। वह संस्था से सहायता लेने में समूह की मदद करता है। कार्यक्रमों के निर्धारण तथा उनका चयन करने में वह सहायता करता है। समूह में सामूहिक चेतना तथा सामूहिक भावना विकसित होने के लिए समूह की सहायता करता

है। वह सदस्यों को उनकी क्षमताओं एवं योग्यताओं से अवगत कराता है, जिससे वे आत्ममूल्यांकन करने में समर्थ होते हैं तथा उन्हीं के अनुरूप कार्यक्रम चलाने का निर्णय लेते हैं। वह उन आन्तरिक समस्याओं की ओर समूह को इंगित करता है जिनके कारण समूह अपने अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करने में विलम्ब लगा रहा है। वह इन समस्याओं के समाधान में समूह की सहायता करता है। वह समूह संगठन को सुदृढ़ बनाने तथा प्रत्येक सदस्य को उत्तरदायित्व ग्रहण करने में सहायता करता है। वह समूह के साथ कार्य का स्तर निर्धारित करता है तथा नियंत्रण के साधनों को प्रभावकारी बनाता है। वह समुदाय में उपलब्ध स्रोतों से परिचय करवाकर सहायता दिलाता है एवं अन्य संस्थाओं से सम्पर्क करवाता है।

(ब) प्राथमिक (Basic) कार्यकर्ताओं का अधोक्षण :

सामूहिक कार्यकर्ता समूहों की सहायता करने के पश्चात् कार्यकर्ताओं की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करता है। वह यहाँ पर अधोक्षक की भूमिका अदा करता है, जिसके द्वारा समूह की अप्रत्यक्ष ढंग से सहायता करता है। उसका कार्य कार्यकर्ताओं में निपुणता एवं दक्षता का विकास करना है। वह उनमें ज्ञान एवं अनुभव की वृद्धि करता है तथा नये-नये तरीकों को समझाता है और निपुणताओं का विकास करता है। अधीक्षक अपने तथा दूसरे व्यक्तियों के विषय में और सामाजिक स्थिति तथा संस्था के कार्यों के विषय में अपने ज्ञान एवं सूझ के आधार पर कार्यकर्ताओं की सहायता कार्य को पूर्ण करने तथा उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में करता है जिसके लिए संस्था संगठित की गयी है।

वह कार्यकर्ताओं के कार्यों का अवलोकन करता है तथा सिद्धांतों, निपुणताओं, प्रविधियों एवं अहं के उचित प्रयोग पर बल देता है। उनमें अक्षमताओं को देखता है तथा उनको दूर करने का प्रयास करता है, जिससे वह समूह के साथ अपने संबंध का भलीभाँति प्रयोग कर सकें। उनमें स्वयं समझने की शक्ति का विकास करता है तथा उन मनोवृत्तियों, व्यवहारों तथा विचारों में परिवर्तन लाता है जो समूह से उचित संबंध-स्थापन में बाधक होते हैं। उनको निर्धारित भूमिका पर सदैव चलने की सलाह देता है और जहाँ कहीं वे विचलित होते हैं वहाँ उनकी अपने ज्ञान, अनुभव तथा बुद्धि द्वारा सहायता करता है।

अधोक्षक शिक्षात्मक आवश्यकताओं तथा कार्यकर्ता के उद्देश्यों पर विशेष ध्यान देता है। कार्यकर्ताओं में ऐसी योग्यताओं का विकास करता है जिससे वे स्वयं उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होते हैं तथा स्वतंत्र इच्छा से समूह के साथ कार्य कर सकतें हैं। नवीन परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं में भूमिका

निभाने की योग्यता का विकास करता है। वह कार्यकर्ता के उन कारणों का पता लगाता है जिससे वह किसी सदस्य से अप्रसन्न या परेशान रहता है। वह कार्यकर्ता को व्यवहार का उचित अर्थ समझने में तथा अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखकर समूह-सदस्यों की भावनाओं पर प्रभावात्मक नियन्त्रण रखने में मदद करता है।

अधीक्षक के रूप में वह कार्यकर्ता को समूह के प्रति अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। वह ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जहाँ पर कार्यकर्ता अपनी इन भावनाओं को व्यक्त करने में सुरक्षा महसूस करता है। वह न केवल व्यक्त करने का अवसर देता है बल्कि इन भावनाओं के अर्थ को खोज करता है तथा वास्तविकता का पता लगाता है। वह कार्यकर्ता के कार्यों का मूल्यांकन भी साथ ही साथ करता चलता है।

अधीक्षक कार्यकर्ताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया को समझता है, विकास के स्तरों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है तथा जहाँ पर प्रतिगमन होता है वहाँ पर वह स्वयं सहायता करता है। अतः वह कार्यकर्ता को धीरे-धीरे, रुक-रुक कर नयी शिक्षा, कला, निपुणता, ज्ञान, क्षमता इत्यादि प्रदान करता है। कभी-कभी कार्यकर्ता कोई कार्य न पूरा होने पर अपने में हीन भावना उत्पन्न कर लेता है। ऐसी स्थिति में अधीक्षक बहुत ही सावधानी से, कार्यकर्ता के विचारों को ठेस न पहुँचाते हुए सहायता करता है। चूँकि कार्यकर्ताओं में भिन्नता होती है अतः वह प्रत्येक कार्यकर्ता का अध्ययन करता है और उनके स्तर के अनुसार कार्य करने में तथा कान्फरेन्स में भाग लेने में उनकी सहायता करता है।

वह कार्यकर्ताओं में सामूहिक कार्य के दर्शन का विकास करता है। वह उनकी अपनी सीमाओं को समझने में मदद करता है। वह उनकी सहायता करता है जो सहायता चाहते हैं तथा उनकी भी जो कार्य को समझ नहीं पाते हैं और विफलता एवं भग्नाशा की स्थिति उत्पन्न कर लेते हैं। इस प्रकार वह कार्यकर्ताओं की चारों तरफ से सहायता करता है।

(स) सामूहिक कार्य प्रदान करनेवाली संस्थाओं एवं विभागों का प्रशासन :

सामाजिक सामूहिक कार्य का तीसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र प्रशासन है। इसके अन्तर्गत वह सामाजिक संस्थाओं का संगठन इस आधार पर करता है जिससे सेवार्थियों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचा सके। उसका उद्‌देश्य सामूहिक क्रियाओं को उचित प्रकार से सम्पन्न करना तथा रुकावटों को दूर करना है। प्रशासकीय सेवाओं का सम्बन्ध सामाजिक सेवा को लाभप्रद तरीकों द्वारा समूहों तक पहुँचाना है। कार्यकर्ता यहाँ पर नियोजन, संगठन, कर्मचारियों के चयन

तथा उनके नियंत्रण, निर्देशन, सहयोग, अभिलेखन तथा बजट क्रियाओं में भाग लेता है।

नियोजन द्वारा वह भविष्य के कार्यक्रमों को निर्धारित करता है तथा अपनी सीमाओं को ध्यान में रखकर उद्‌देश्य निर्धारित करता है। वह इस प्रकार से नियोजन करता है जिससे समय पड़ने पर परिवर्तन हो सके तथा सभी सदस्य एवं कर्मचारी उसको समझ सके। संगठन के कार्य में वह औपचारिक संरचना का निर्माण करता है। जिससे संस्था के सभी सदस्य एक-दूसरे से कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकें। प्रत्येक कर्मचारी का कार्य स्पष्ट होता है तथा कार्य-क्रम की प्रक्रिया व्यवस्थित रूप से संचालित होती है।

संगठन एवं प्रशासन चाहे जितना उपयुक्त क्यों न हो, नियोजन सीमाओं के अंतर्गत क्यों न हो, परन्तु यदि कर्मचारीगण कार्य-कुशल नहीं हैं तो कोई भी संस्था उद्‌देश्य को प्राप्त नहीं कर सकती। उद्‌देश्य की पूर्ति समय पर नहीं होगी तो कार्यान्वियन उचित ढंग से नहीं हो सकेगा। कार्यकर्ता का कार्य यहाँ पर संस्था के लिए अनुभवी, शिक्षित, योग्य कर्मचारी का चयन करना होता है। वह उनका नियन्त्रण भी करता है तथा कार्यक्रम का निर्देशन भी करता है। इस कार्य के अंतर्गत निर्णय लेना, उत्तरदायित्व का बँटवारा करना तथा शक्ति का विकेन्द्री-करण आता है। वह कर्मचारियों के साथ इन कार्यों को सम्पन्न करता है। वह कर्मचारियों में सहयोग की भावना उत्पन्न करता है। वहाँ पर उसका उद्‌देश्य संस्था के कार्य की पूर्ति हेतु प्रशासन में ऊपर से नीचे तक मधुर संबंध बनाए रखना होता है। उसका अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य अभिलेखन करना है, क्योंकि सभी व्यक्ति यह जानना चाहते हैं कि संस्था क्या कर रही है, किस दिशा में प्रयत्न-शील है तथा वह अपने उद्‌देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हो रही है। प्रशासकीय नियन्त्रण के लिए भी अभिलेखन एक आवश्यक यन्त्र है। लेखा-जोखा तैयार करना भी एक आवश्यक कार्य है। यह संस्था के कार्यक्रम के कार्यान्वियन तथा मूल्यांकन के लिए आवश्यक है।

(द) सामाजिक सामूहिक कार्य-सेवाओं को प्रदान करने वाली संस्थाओं के लिए सामुदायिक नियोजन :

कार्यकर्ता संस्था के लिए सामुदायिक नियोजन करता है, जिससे उसकी उपयोगिता बढ़ती है तथा उसकी आवश्यकता का भान होता है। वह समुदाय की अवस्थाओं, जैसे—शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, सांस्कृतिक तथा अन्य विभिन्नताओं के आधार पर कार्यक्रम का नियोजन करता है। वह समुदाय के रीति-रिवाजों का भी ध्यान रखता है। वह समुदाय में समूह-निर्माण की आवश्यकता

एवं उपादेयता संबंधी जन-जागृति को बढ़ावा देता है। वह समुदाय के विशिष्ट व्यक्तियों का समूह से संपर्क कराता है और इस प्रकार उनका सहयोग प्राप्त करता हैं। समूह के हित में वह सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों का परिमार्जन करता है। कार्यकर्ता के लिए सामुदायिक नियोजन वह साधन है जिसके द्वारा संस्थाएँ, व्यक्ति, समूह तथा संगठन ऐच्छिक रूप से समुदाय के स्वास्थ्य तथा कल्याणकारी कार्यों में भाग लेते हैं। वह समुदाय की समस्याओं का अध्ययन करता है और उन पर शोध-कार्य करता है, तत्पश्चात् सेवाओं की उपयोगिता तथा उपयुक्तता का पता लगाकर संस्था को अवगत कराता है और नवीन सेवाओं का विकास करता हैं।

सारांश में, सामूहिक कार्यकर्ता अपनी सेवाओं द्वारा सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है, व्यक्ति को स्वतंत्र विकास तथा उन्नति के लिए अवसर प्रदान करता है तथा व्यक्तित्व के सामान्य निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करता हैं। वह सामाजिक संबंधों को आधार मानकर विकासात्मक एवं शिक्षात्मक क्रियाओं का आयोजन व्यक्ति की समस्याओं के समाधान के लिए करता है और इस प्रकार उसके सर्वाङ्गीण विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है।

अध्याय 13

नेतृत्व

नेतृत्व एक सार्वभौमिक घटना है। समाज में नेतृत्व की आवश्यकता सदैव रही है और सदैव नेतृत्व होता आया है। मनुष्य का जीवन जब पूरी तरह से जंगली था तो भी शिकार करने, बाहरी समूहों से अपनी रक्षा करने और आवश्यकता की वस्तुओं का संचय करने में एक या कुछ व्यक्ति समूह का नेतृत्व अवश्य करते थे। वर्तमान जटिल समाजों में तो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था नेतृत्व पर आधारित है।

विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया है। परन्तु एक बात सभी मानते हैं कि नेतृत्व करने वाले व्यक्ति में दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करने तथा उन्हें निर्देशित करने की क्षमता होती है। नेतृत्व एक ऐसी स्थिति समझा जाता है जिसमें कुछ व्यक्ति स्वेच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति के आदेशों का पालन करता है। लेकिन शक्ति के आधार पर भी दूसरे व्यक्तियों से मनचाहे व्यवहार करवा लेने की क्षमता को भी नेतृत्व में ही सम्मिलित किया जाता है। लेकिन यह स्थिति नेतृत्व के मापदण्डों पर खरी नहीं उतरती है। वास्तव में नेतृत्व सामाजिक अन्तःक्रियाओं को नवीन रूप देकर व्यक्तियों में नवीन चेतना का संचार करने की कला है। नेता अपनी शक्तियों का उपयोग समूह के विकास में करता है। वह सामाजिक क्रियाओं को प्रोत्साहित करता है तथा आदर्श प्रस्तुत करता है जिसे दूसरे लोग स्वेच्छा से अपनाते हैं। उसके विचार, क्रियायें तथा व्यवहार के ढंग अन्य लोगों के लिए आदर्श होते हैं और वे उन्हीं के अनुसार कार्य करते हैं।

1. नेतृत्व की परिभाषा :

पीजर्स (Pigors)—नेतृत्व एक ऐसी अवधारणा है जिसे व्यक्तित्व तथा पर्यावरण के संदर्भ में प्रयुक्त किया जाता है, ताकि उस स्थिति का वर्णन किया जा सके जिसमें व्यक्तित्व द्वारा समान उद्देश्यों को पाने के लिए दूसरों का नियंत्रण तथा निर्देशन किया जाता है।

लैपियर तथा फ्रान्सवर्थ (Lapiere and Fransworth)—नेतृत्व एक ऐसा व्यवहार है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को उससे कहीं अधिक प्रभावित होता है जितना कि उनका व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।

सीमेन तथा मोरिस (Seeman and Morris)—नेतृत्व का तात्पर्य एक व्यक्ति द्वारा की जाने वाली उन क्रियाओं से है जो दूसरे व्यक्तियों को एक विशेष दिशा में प्रभावित करती हैं ।

ब्रिट्ट (Britt)—नेतृत्व एक चलनशील उत्तेजनात्मक या पारस्परिक पुष्टि-करण की प्रक्रिया है जो महत्त्वपूर्ण अन्तरों के सफलतम अन्तःक्रिया के द्वारा सामान्य उद्देश्यों के लिए मानव-शक्ति को नियंत्रित करती हैं ।

मैकाइवर तथा पेज (MacIver and Page)—नेतृत्व से हमारा तात्पर्य व्यक्ति को मानना अथवा निर्देशित करना है जो चेहरे के अतिरिक्त वैयक्तिक गुणों से होता है ।

गिब (Gibb)[1]—'नेतृत्व एक प्रत्यय है जो दो या अधिक व्यक्तियों की अन्तःक्रियाओं के लिए प्रयुक्त होता है तथा नेता का मूल्यांकन सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति में दूसरों की क्रियाओं को नियन्त्रित एवं निर्देशित करता है' ।

कूपर तथा मैकगाथ (Cooper and Mcgaugh)[2]—नेतृत्व को खींचना, ढकेलना कारक के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो कि लोगों में प्रभुत्व आज्ञाकारी सम्बन्धों में कार्य करता है ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व और प्रभुत्व शब्दों का उपयोग समान अर्थ में किया है ।

किम्बाल यंग (Kimball young)—"प्रभुत्व को शक्ति के ऐसे साधन के रूप में देखा जा सकता है जिसका उपयोग एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों और क्रियाओं को नियंत्रित करने तथा उन्हें परिवर्तित करने के लिए किया जाता है, जिसे हम साधारणतया नेतृत्व कहते हैं । इसकी विवेचना सही तौर पर प्रभुत्व के रूप में ही की जानी चाहिये ।"

इस प्रकार प्रभुत्व की शक्ति अथवा सत्ता का तत्त्व आवश्यक रूप से जुड़ा रहता है । प्रभुत्व द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों में जो परिवर्तन लाया जाता है वह साधारणतया दबाव के द्वारा होता है । इसके विपरीत नेतृत्व व्यक्तियों के व्यवहारों में जो परिवर्तन उत्पन्न करता है, वह ऐच्छिक होता है । जिसे हम

1. Gibb, C. A. : Leadership : Selected Readings Penguin Books, Baltimore, 1969.
2. Cooper, G. B. & Mc ambgaugh, G. R. Leadership Integrating Principles of Social Psychology, Schenkmon, Cambridge, 1963.

साधारणतया नेतृत्व कहते हैं, इसकी विवेचना सही तौर पर प्रभुत्व के रूप में ही की जानी चाहिये।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नेतृत्व की निम्नलिखित विशेषतायें हैं।

1. नेतृत्व एक विशेष प्रकार का व्यवहार है जिसमें प्रभुत्व, सुझाव तथा आग्रह का संमिश्रण होता है।

2. नेतृत्व द्विमुखी प्रक्रिया है जिसमें दो कारक नेता तथा अनुयायी कार्य करते हैं। नेता अपने अनुयायियों के व्यवहारों से प्रभावित होने की अपेक्षा उनके व्यवहारों को अधिक सीमा तक प्रभावित करता है। परन्तु इसके साथ ही साथ वह भी अनुयायियों से प्रभावित होता है। वह इनकी इच्छाओं के विपरीत नहीं जा सकता। वह अपने व्यवहार को अनुयायियों की इच्छाओं एवं आशाओं के अनुरूप बनाता है।

3. नेतृत्व से सम्बन्धित प्रभाव दबाव से मुक्त नहीं होता है। इसे साधारणतया स्वेच्छा से ग्रहण किया जाता है।

4. नेतृत्व नियोजित नहीं होता बल्कि इसमें विचारपूर्वक अनुयायियों के व्यवहारों को एक निश्चित दिशा में मोड़ दिया जाता है।

5. नेतृत्व द्वारा समूह-सदस्यों की भावनाओं, दृष्टिकोणों, व्यवहारों एवं क्रियाओं को प्रभावित किया जाता है।

6. सुझाव तथा निर्देशन नेतृत्व के प्रमुख यंत्र हैं जिनकी सहायता से नेता अपने अनुयायियों को इच्छित दिशा में चलने के लिए प्रेरित करता है।

7. अनुयायी नेता की सत्ता प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं। इस सामाजिक प्रक्रिया में अनुयायी की स्थिति नेता से भिन्न होती है।

8. नेतृत्व कई प्रकार का होता है जैसे : निरंकुशवादी, अधिनायकवादी प्रजातांत्रिक।

2. नेतृत्व अथवा नेता के सामान्य गुण :

आलपोर्ट[3] ने नेता के निम्न गुणों का उल्लेख किया है :—

1. प्रभावित करने का गुण
2. शारीरिक शक्ति
3. उच्च गतिशीलता
4. सीधा तथा प्रभावशाली शरीर
5. मृदु वाणी तथा दृढ़ता
6. सम्मुख बोलने की कला

---

3. Allport, F. H. : Social Psychology, Mcmillan Company, Newyork, 1922

7. शक्ति की परिपूर्ति
8. संयम तथा गम्भीरता
9. व्यापक क्रिया-योग
10. तीव्र बुद्धि तथा सूझ-बूझ
11. सामाजिक उत्तेजना से प्रभावित होने की प्रवृत्ति
12. चतुरता एवं उत्साह
13. सामाजिक कार्यों में भागीकरण की रुचि ।
14. चरित्र एवं प्रेरणा शक्ति

बोगार्डस[4] ने नेतृत्व के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख किया है :—

1. प्रजातांत्रिक धारणायें
2. चेतना
3. यथार्थता
4. उत्साह
5. मित्रता
6. सहानुभूति
7. विश्वसनीयता
8. धैर्य ।

इसके अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों ने नेतृत्व के अनेकों लक्षणों का उल्लेख किया है, जिनके विवेचन से ज्ञात होता है कि नेतृत्व के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं :—

1. **बौद्धिक क्षमता**—वही नेता सफल हो सकता है जिसमें समूह के अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि हो । वह परिस्थिति का ज्ञान रखता हो, सूझ-बूझ हो, सुझावों को रखने की योग्यता हो, तीव्र अन्तर्दृष्टि हो, दूरदर्शिता हो तथा बोलने की कला हो । व्यक्ति के पास ये क्षमतायें उसे नेता बना देती हैं । क्योंकि उनके द्वारा वह दूसरों को प्रभावित कर लेता है ।

2. **पूर्वानुमान की क्षमता**—नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में कल्पना करने की क्षमता हो । वह पूर्वानुमान लगा ले कि भविष्य में क्या होने वाला है । वही सफल नेता बन सकता है जो परिस्थितियों को पहले से ही पूर्वानुमान के आधार पर मूल्यांकित कर लें और अपने अनुयायियों को उनसे अवगत करा दे ।

3. **आत्मविश्वास**—नेतृत्व के लिए आत्मविश्वास एक महत्त्वपूर्ण यंत्र है । इसके बल पर ही नेता कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना बिना भयभीत हुए कर लेता है । यदि उसमें यह शक्ति नहीं है तो वह कभी भी समूह का वास्तविक नेतृत्व नहीं कर सकता है । आत्मविश्वास के द्वारा ही वह अपने को आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर सकता है तथा लोगों को प्रभावित कर सकता है ।

---

4. Bogardes, E. S. : Fundamental of Social Psychology, Appleton Century Crofts, Newyork, 1950, pp. 170-180.

4. **संकल्प-शक्ति**—संकल्प-शक्ति वह शक्ति है जो व्यक्ति को विशेष प्रकार का व्यवहार करने के लिए तथा अधिक से अधिक कठिनाइयों से निपटने के लिए शक्ति प्रदान करती है। जिन व्यक्तियों में दृढ़ निश्चय की प्रवृत्ति होती है वे अधिकतर नेतृत्व करते हैं। संकल्प शक्ति के होने पर वह व्यक्ति नेतृत्व के अन्य गुणों को भी उत्पन्न कर लेता है।

5. **जोखिम उठाने की क्षमता**—नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति जनसाधारण की अनुपयोगी परम्पराओं को छोड़कर व्यवहार के नये ढंगों को अपनाने की प्रेरणा दे। यदि व्यवहार के नये ढंग जन-साधारण के लिए अधिक उपयोगी होते हैं तो भविष्य में वे उचित निर्देशन की आशा रखते हैं। इस प्रकार जोखिम उठाने वाला व्यक्ति नेतृत्व ग्रहण कर लेता है।

6. **आकर्षक शरीर**—साधारणतया यह देखा गया है कि जिन व्यक्तियों का शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है तथा वे स्वस्थ, फुर्तीले, ओजस्वी, सुन्दर एवं लम्बे कद के होते हैं वे शीघ्र ही जन-समुदाय को प्रभावित कर लेते हैं।

7. **व्यवहार को समझने की क्षमता**—नेतृत्व की सबसे बड़ी आवश्यकता व्यवहार समझने की होती है। वही नेता की भूमिका पूरी कर सकता है जो मुखाकृति तथा हाव-भाव देखकर अनुमान लगा ले कि वे क्या चाहते हैं तथा किस प्रकार के व्यवहार एवं कार्य की आशा रखते हैं।

8. **निर्णय की तत्परता**—नेता का कार्य सही निर्णय लेना तथा तत्परता दिखाना होता है, जिससे समूह को आवश्यक निर्देशन प्राप्त हो सके। वही सदस्य समूह का आदर्श हो सकता है जो प्रत्येक परिस्थिति में समूह के साथ हो सकता है, जो प्रत्येक परिस्थिति में समूह के साथ खड़ा रहे व ऐसे निर्णय ले जो समूह के लिए हितकारी हों। मार्गदर्शन के लिए अति आवश्यक है कि उस व्यक्ति में सही एवं तत्परता से निर्णय की क्षमता हो।

9. **सरलता**—सादा जीवन उच्च विचार वाला व्यक्ति नेतृत्व के लिए बहुत उपयुक्त होता है। सादगी और सरलता होने से जनसाधारण में यह विश्वास हो जाता है कि व्यक्ति ईमानदार है तथा उनका सच्चा हितैषी एवं साथी है। जो व्यक्ति सरल एवं सादगी युक्त दिखलाई देता है वह अच्छा नेता हो सकता है लेकिन अन्य गुणों का होना भी महत्त्वपूर्ण होता है।

10. **लचीला व्यवहार**—नेता का व्यवहार समयानुसार होना चाहिये। यदि वह अपने विचारों और व्यवहारों में कोई परिवर्तन नहीं करेगा तो समय की माँग को पूरा नहीं कर सकेगा। व्यक्तियों की भावनाओं एवं समय से सामंजस्य बनाये रखना तभी सम्भव हो सकता है जब नेता के व्यवहार में लचीलापन हो।

11. सामाजिकता—नेता का अधिक मिलनसार तथा मित्रवत् व्यवहार करने वाला होना चाहिए। उसकी प्रवृत्ति दूसरे व्यक्तियों से अधिक सम्पर्क स्थापित करने की हो तभी वह दूसरों को लाभ पहुँचा सकता है।

12. नैतिकता—नेतृत्व के लिए आवश्यक है कि नेता में ईमानदारी, दूसरों का कल्याण, उत्तम चरित्र, उदार दृष्टिकोण तथा दूसरों को लाभ पहुँचाने की भावना होनी चाहिये। नेतृत्व करने के लिए सदस्यों को विश्वास दिलाना जरूरी होता है कि वह जनसाधारण के हित के लिए ही कार्य कर रहा है।

3. मूल प्रकृति

नेतृत्व की भूमिका की गत्यात्मकता को समझने के लिए निम्न मूल प्रत्ययों को स्पष्ट करना आवश्यक है :—

1. प्रभाव—प्रभाव का तात्पर्य उस मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक असर से है जो अन्तर्वैयक्तिक अन्तःक्रिया के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे पर डालता है। यह असर 4 रूपों में हो सकता है—आँकलन, सुझाव, प्रोत्साहन, दण्ड। अनुकरण का तात्पर्य इच्छित प्रत्युत्तरों एवं परिणामों को प्राप्त करने के लिए दूसरे के व्यवहार का अनुकरण करना। सुझाव का तात्पर्य उन प्रयत्नों से है जिनके द्वारा किसी विशेष कार्य-पथ का अनुसरण करके व्यवहार को प्रभावित करना। प्रोत्साहन का तात्पर्य उस स्थिति से है जो किसी लालच के आधार पर इच्छित परिणाम प्राप्त करने का प्रयास होता है। दण्ड का तात्पर्य शक्ति के द्वारा इच्छित प्रत्युत्तरों को प्राप्त करना है।

2. **शक्ति**—व्यवहार प्रभावित करने की योग्यता को शक्ति कहते हैं। शक्ति एक व्यक्ति अथवा समूह को दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता होती है जिसकी प्राप्ति श्रेष्ठ स्थिति के कारण होती है। यह स्थिति चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक इस प्रकार शक्ति को पूर्वनिर्धारित तरीकों द्वारा व्यवहार को प्रभावित करने की क्षमता के रूप में समझा जा सकता है।

3. **अधिकारी**—शक्ति के उपयोग की संस्थागत मान्यता को अधिकार कहते हैं। यह शक्ति संरचना का प्रतिनिधित्व करती है। 3 प्रकार के अधिकार हैं :—(1) तार्किक वैधानिक, (2) परम्परागत, (3) करिश्मात्मक। तार्किक वैधानिक में अधिकार शक्ति संस्थागत तथा औपचारिक होती है। परम्परागत अधिक शक्ति रीति-रिवाजों तथा स्वामिभक्त पर निर्भर होती है। करिश्मात्मक अधिकार शक्ति नेता के व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर होती है। यह तार्किक होती है, अधिकांशः सांवेगिक होती है। ऐसा नेता अपने व्यक्तित्व की विशेषता के कारण दूसरों को आकर्षित कर लेता है। इन प्रत्ययों के आधार पर 4 प्रकार के नेतृत्व का वर्णन किया जा सकता है।

4. नेतृत्व के प्रकार—नेतृत्व के प्रायः 4 प्रकार देखने को मिलते हैं—

(1) अधिनायकवादी,
(2) निरंकुशवादी,
(3) प्रजातांत्रिक,
(4) हस्तक्षेप-विहीन,

अधिनायकवादी नेतृत्व—अधिनायकवादी नेता कार्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति सदस्यों में भय उत्पन्न करके करता है। अनुयायियों-सदस्यों को दण्ड का भय रहता है, जिसके कारण वे विरोध नहीं करते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व नकारात्मक कार्य-प्रणाली पर आधारित होता है, जिसकी यह मूल मान्यता होती है कि लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया और प्रेरित करने का सबसे अच्छा तरीका भय है। नेता भय दिखलाकर सदस्यों को इच्छित व्यवहार करने के लिए तैयार करता है। इस प्रकार से प्राप्त परिणाम अपने आपमें महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं परन्तु सदस्यों में सदैव असन्तोष बना रहता है।

निरंकुशवादी नेतृत्व—निरंकुशवादी नेता शक्ति तथा निर्णय-प्रक्रिया का केन्द्रबिन्दु होता है। ऐसा नेता सदस्यों को उस पर विश्वास करने के लिए मजबूर करता है। वह ऐसा प्रभाव डालता हैं जिससे सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस पर निर्भर हो जाते हैं। कार्य पूरा करने का उत्तरदायित्व नेता ही लेता है। समूह-सदस्यों को निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने के अवसर नहीं देता है। वह यह भी नहीं चाहता है कि सदस्य पूर्व निर्धारित नियमों से जरा भी विचलित हों। निरंकुश नेता के साथ सदस्य अनुयायी विनय का व्यवहार करते हैं। ऐसा नेता इच्छित परिणाम शीघ्र प्राप्त कर लेता है। लेकिन समूह तभी तक अच्छा रहता है जब तक नेता अच्छा रखता है। यदि नेता कमजोर तथा अप्रभावकारी है तो सदस्य भी वैसे ही हो जाते हैं।

प्रजातांत्रिक नेतृत्व—प्रजातान्त्रिक नेतृत्व शक्ति तथा निर्णय-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है। जो भी निर्णय होता है उसमें समूह के सभी सदस्य भागीदार होते हैं। किसी भी निर्णय के लिए लोगों की राय ली जाती है तथा विचार-विमर्श को काफी महत्त्व दिया जाता है। इस प्रकार के नेतृत्व में अनुकरण करने वाले लोग यह समझते हैं कि नेता जो कुछ कर रहा है वह उनकी भलाई के लिए है। इसमें लोग स्वेच्छा से नेता के आदेश का पालन करते हैं। इस प्रकार का नेतृत्व सदस्यों में उच्चतम निपुणताओं का विकास करता है तथा अधिकतम सन्तोष प्रदान करता है। इस प्रकार के सम्बन्धों में घनिष्ठता

तथा पारस्परिक लगाव अधिक होता है। सदस्यों को एक आवश्यक ईकाई के रूप में देखा जाता है और मान्यता दी जाती है।

हस्तक्षेप-विहीन नेतृत्व—इस प्रकार के नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नेता समूह के ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता। वह न तो समूह के कार्यों में हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार का सहयोग देता है। सदस्यों को स्वयं अपने लक्ष्य निर्धारित करने होते हैं तथा स्वयं निर्णय लेना होता है। इस प्रकार के नेतृत्व में सदस्यों को निराशा होती है। वे सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकते रहते हैं। इस कारण असंगठन तथा दिशा भ्रम की स्थिति समूह में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

मार्टिन कानवे ने नेता के 4 प्रकारों का उल्लेख किया है : —

1. भीड़ को विवश करने वाला,
2. समूह-प्रदर्शन,
3. समूह का प्रतिनिधि,
4. विचार प्रदान करने वाला नेता।

वार्टलेट ने नेतृत्व की तीन श्रेणियों का उल्लेख किया है : —

1. संस्थात्मक—जो किसी संस्था का सदस्य अथवा उसके किसी प्रतिनिधि पद पर आसीन होता है।

2. **प्रभावशाली**—सबसे अधिक प्रभुत्व वाला सदस्य नेता हो जाता है।

3. **अनुरोधक**—जो अपना निर्णय मानने के लिए प्रत्यक्ष पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरित करता है। लेकिन नेतृत्व के 3 प्रकारों का उल्लेख किया है :—

1. निरंकुश नेतृत्व,
2. लोकतान्त्रिक नेतृत्व,
3. हस्तक्षेप-विहीन नेतृत्व।

बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व के निम्नलिखित रूप हैं :—

1. **प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नेता**—प्रत्यक्ष नेता वह है जो समूह के अन्य सदस्यों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखता है। वह अपने समूह की आवश्यकताओं से परिचित होता है। वह समय-समय पर सदस्यों को उनकी समस्याओं को हल करने के तरीकों को बतलाता रहता है। वह समूह के बाहर प्रतिनिधित्व भी करता है, आपसी वैमनस्यता को विचार-विमर्श के द्वारा निपटाता है तथा सामान्य समूह को विश्वास दिलाता है कि वह उन्हीं में से एक है। अप्रत्यक्ष नेता के अपने अनुयायियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क बहुत कम होते हैं। इस तरह के नेता अपने कार्यों

अथवा नीतियों की सहायता से बहुत दूर भी रहने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रख लेते हैं।

2. **पक्षपातपूर्ण एवं वैज्ञानिक नेता**—पक्षपातपूर्ण नेता का कार्य सदैव अपने समूह का पक्ष लेने को तथा अपने समूह के दुर्गुणों को छिपाना होता है। जब कभी किसी समस्या पर विचार-विमर्श करता है, भले अपने समूह को ही लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है, भले ही इससे दूसरों को हानि पहुँचती हो। किसी राजनैतिक नेता द्वारा सदैव अपने दल का समर्थन करना इस प्रकार के नेतृत्व का उदाहरण है।

वैज्ञानिक नेता वह होता है जो यथार्थ बातों को ही समूह के सामने लाता है, ये बातें चाहे समूह के हित में हों या अहित में। ऐसे नेता सामान्यतः सिद्धान्तवादी होते हैं तथा प्रत्येक कार्य को करते समय सदैव अपने सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं।

3. **सामाजिक, मानसिक तथा अधिशासी नेता**—सामाजिक नेता सामाजिक कार्यों के द्वारा समूह में लोकप्रियता प्राप्त करता है। इसका प्रमुख कार्य समूह की समस्याओं का समाधान करना और सदस्यों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाये रखना होता है। ऐसे नेता उत्साही और त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

मानसिक नेता वे होते हैं जो अपने विचारों और क्रियाओं के द्वारा समूह के सदस्यों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन करते हैं। इनमें उत्तेजना की अपेक्षा बौद्धिकता अधिक होती है। मानसिक नेतृत्व तभी सफल हो पाता है जब ऐसे नेता को शान्तिपूर्ण वातावरण मिले तथा आजीविका के बारे में अधिक चिन्तित न होना पड़े।

अधिशासी नेता वह होता है जिसमें सामाजिक, बौद्धिक तथा प्रबन्धकीय गुणों का समावेश होता है। ऐसे नेता का कार्य एक विशेष समूह संगठित करना तथा उनके लिए कार्य-योजना बनाना होता है। यह कार्य केवल तभी सम्भव है जबकि वह सामाजिक क्षेत्र में सेवा कार्य कर रहा हो तथा व्यक्तियों को व्यावहारिक सुझाव दे रहा हो। ऐसे नेताओं को राज्य के द्वारा कुछ अधिकार मिले होते हैं जिनका वे जनहित में उपयोग करते हैं।

4. **पैगम्बर, सन्त, विशेषज्ञ तथा मालिक**—पैगम्बर भी एक प्रकार का नेता होता है जिसमें एक अलौकिक शक्ति के होने का विश्वास होता है। सन्त श्रेष्ठ जीवन बिताने वाला व्यक्ति होता है जो अपनी पवित्रता, त्याग तथा प्रेम के द्वारा जनसाधारण में लोकप्रिय हो जाता है। विशेषज्ञ नेता का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो एक क्षेत्र में विशेष योग्यता रखने के कारण उस क्षेत्र से सम्बद्ध सभी लोगों में लोकप्रिय होता है। वह अपने प्रयत्नों से कुशलता प्राप्त करके दूसरों से आगे

निकल जाता है। इसके फलस्वरूप उस क्षेत्र के दूसरे व्यक्ति भी उसके व्यवहार का अनुकरण करते हैं। मालिक नेता सबसे कम व्यक्तियों का नेता होता है। मालिक के निर्देशों तथा संकेतों का पालन वे सभी कर्मचारी करते हैं जो उसके अधीन होते हैं।

5. **नेतृत्व के कार्य**—नेतृत्व के कार्यों की दो महत्त्वपूर्ण श्रेणियाँ हैं। एक का सम्बन्ध कार्य-स्तर से है तथा दूसरे बनाये रखने के स्तर से है।

1. **कार्य-स्तर के कार्य**—यहाँ पर नेता का कार्य समूह के प्रयत्नों को इस प्रकार प्रोत्साहित करना एवं निर्देशित करना है जिसमें सामान्य समस्या का चयन हो सके तथा उसे परिभाषित किया जा सके। साथ ही साथ समस्या का समाधान भी कर सके। इस कार्य में निम्नलिखित प्रयत्न किये जाते हैं :—

1. **शुभारम्भ**—समूह के कार्यों व लक्ष्यों को प्रोत्साहित करना, समूह-समस्या को परिभाषित करना, तरीका का सुझाव देना अथवा समस्या समाधान के लिए अपने विचार रखना।

2. **सूचना अथवा विचारों को ग्रहण करना**—नेता समूह से अनेक प्रकार की सूचनाएँ ग्रहण करता है तथा उनके विचारों को स्पष्ट होने का अवसर देता है। इससे समूह के सम्बन्ध में सभी सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं। वह सदस्यों के विचारों तथा सुझावों को भी आमंत्रित करता है।

3. **सूचना देना तथा अपने विचार प्रस्तुत करना**—वह समूह को आवश्यक तथ्यों से अवगत कराता है, उपयोगी सूचनायें देता है, सुझाव देता है तथा विचारों का आदान-प्रदान करता है।

4. **विचारों को स्पष्ट करना या विस्तार करना**—वह अपने विचारों अथवा सुझावों का 'विस्तार करता है, भ्रमों को दूर करता है तथा विकल्पों को बतलाता है।

5. **सारांश तैयार करना**—समूह में होने वाली क्रियाओं तथा विचारों को एकत्रित कर उनका सारांश तैयार करता है।

2. **रख-रखाव का कार्य**—इस क्षेत्र में नेता को उन कार्यों को करने की सलाह दी जाती है जिससे वर्तमान स्थिति यथावत् बनी रहे तथा यदि आवश्यक हो तो उसमें परिवर्तन भी हो जाय। एक-दूसरे के प्रति सद्भावना, श्रद्धा, लगाव, आदि उत्पन्न करने में नेता सहायता करता है। इसके अन्तर्गत वह निम्न कार्य करता है :—

1. **उत्साहवर्धन करना**—नेता सदस्यों का उत्साहवर्धन करता है। दूसरों का सम्मान करता है तथा आत्म-परिचय एवं योगदान का अवसर देता है।

2. **समूह-भावनाओं का प्रगटन**—नेता समूह की भावनाओं का अध्ययन

करता है, उनकी मनोदशा को समझता है, समूह में पारस्परिक सम्बन्ध को समझता है तथा समूह-सदस्यों से विचारों का आदान-प्रदान करता है।

3. **एकरूपता लाना**—असहमति को दूर करता है तथा सहमति का वातावरण तैयार करता है, तनाव को कम करता है, सदस्यों को अन्तरों को समाप्त करने का अवसर देता है।

4. **समझौता करना**—कभी-कभी संघर्ष की स्थिति आ जाती है, नेता इसका निवारण करता है तथा समझौता करा देता है। गलतियों को मान लेता है। समूह में एक समता बने रहने के लिए अनुशासित रहता है।

5. **संचार की सुविधा प्रदान करना**—नेता बातचीत का दरवाजा हमेशा खुला रखता है। वह भागीकरण के अवसर प्रदान करता है तथा समूह की समस्याओं के समाधान के लिए उपाय बतलाता है।

6. **कार्य-स्तर निश्चित करना है**—समूह का क्या स्तर होना चाहिए, किस स्तर से कार्य करना चाहिए, उपलब्धि का क्या स्तर होना चाहिए, निश्चित करता है।

साधारणतया नेता निम्न कार्य करता है :

1. **अधिशासकीय कार्य**—नेता समूह द्वारा स्वीकृत नीतियों का पालन करने की प्रेरणा देता है। इसके लिए वह विभिन्न कार्यों के लिए सदस्यों में श्रम का बँटवारा करता है, उनको भिन्न-भिन्न पद प्रदान करता है तथा समय-समय पर उन्हें उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराता है। वह समूह को हर प्रकार से व्यवस्थित रखने का प्रयत्न करता है। उसके इस कार्य के कारण समूह में सामञ्जस्य बना रहता है।

2. **योजना बनाना**—नेता समूह की सहायता योजना बनाने में करता है। वह इन योजनाओं के लिए साधनों का पता लगाता है तथा उनका अधिकतम उपयोग करने का प्रयत्न करता है। वह समाज की मान्यताओं, मूल्यों तथा उद्देश्यों को ऊँचा उठाने के लिए नियोजन करता है। नियोजन उसकी योग्यता तथा कल्पना को स्पष्ट करता है।

3. **नीति निर्धारण करना**—समूह की सभी महत्त्वपूर्ण नीतियों का निर्माण नेता द्वारा ही किया जाता है। नीतियों के द्वारा ही वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। नेता इन नीतियों के निर्धारण में सभी सदस्यों की इच्छाओं का ध्यान रखता है।

4. **विशेषज्ञ के रूप में**—नेता समूह को इस प्रकार के निर्देश और सूचनायें देता है जिससे उनका मनोबल ऊँचा बना रहे। जब स्थिति काफी विस्फोटक

होती है उस समय नेता अपने ज्ञान तथा अनुभव से उस स्थिति को सामान्य बनाता है ।

5. **समूह का प्रतिनिधित्व करना**—नेता दूसरे समूहों के सामने अपने समूह का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने समूह की भावनाओं को दूसरे समूहों तक पहुँचाता है, दूसरे समूहों के सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित करने की नकारात्मक या सकारात्मक स्वीकृति देता है ।

6. **आंतरिक संबंधों पर नियंत्रण रखना**—नेता समूह-सदस्यों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखता है । वह सदैव यह प्रयत्न करता है कि सभी सदस्य नियमों का पालन करें तथा आपस में मित्रता बनी रहे। वह सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को नियंत्रित, निर्देशित तथा पथ प्रदर्शित करता है ।

7. **पुरस्कार एवं दण्ड का निर्धारण करना**—नेता का कार्य अपने समूह के लिए पुरस्कार तथा दण्ड की भी व्यवस्था करना है। जो सदस्य स्वीकृत नियमों और नीतियों के अनुसार कार्य करते हैं उन्हें पुरस्कार दिया जाता है । नियमों की अवहेलना करने वाले को दण्ड मिलता है । वह दण्ड देने के लिए किसी सदस्य को अपने समूह पद से हटा सकता है अथवा भाग लेने से मना कर सकता है ।

8. **मध्यस्थता करना**—नेता का कार्य समूह के पारस्परिक विवादों को सुलझाना तथा शंकाओं का समाधान करना है । वह विचार-विमर्श के द्वारा आपसी समझौता कराने का कार्य करता है ।

9. **पथ-प्रदर्शन करना**—नयी परिस्थितियों में नेता ही उन्हें इस बात का निर्देश देता है कि वे किस प्रकार से व्यवहार करें, किन बातों का समर्थन करें और क्या निर्णय लें। इससे समूह में एकरूपता बनी रहती है ।

10. **आदर्श प्रस्तुत करना**—नेता समूह के लिए आदर्श होता है । उसे समूह के सामने एक आदर्श भूमिका निभानी होती है जिससे दूसरे सदस्य उसका अनुसरण करें ।

6. **नेतृत्व के सिद्धान्त**—नेतृत्व अनेक कारकों पर निर्भर होता है । ये कारक सफल नेतृत्व के लिए उत्तरदायी हैं, अतः इन्हें नेतृत्व के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है । ये सिद्धान्त निम्न हैं :—

1. संतुलन का सिद्धान्त,
2. अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त,
3. विचित्रता का सिद्धान्त,
4. पूर्वानुमान का सिद्धान्त,
5. मनोशक्ति के केन्द्रीकरण का सिद्धान्त,
6. योग्यता तथा अयोग्यता का सिद्धान्त,

7. समूह-प्रक्रिया सिद्धान्त ।

1. **संतुलन का सिद्धांत**—इस सिद्धान्त के अनुसार नेता का अपना पद बनाये रखने के लिए संतुलित व्यक्तित्व का प्रदर्शन करना चाहिए। उसमें व्यक्तित्व तथा नियंत्रक दोनों का गुण होना चाहिये। उग्रात्मक व्यवहार के कारण ही वह किसी कार्य को पूरी शक्ति के साथ प्रारम्भ करता है तथा अनुयायी की भी भूमिका निभाने की कला रखता है। नेता को सदैव आशावादी होना चाहिये लेकिन यदि सफल नहीं होता है तो उसमें असफलता स्वीकार करने की क्षमता भी होनी चाहिए। नेता को सभी कार्यों का ज्ञान होना चाहिए परन्तु किसी न किसी क्षेत्र में विशेष निपुणता होनी चाहिए। उसे समूह-प्रक्रिया का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिये तथा सामूहिक मन से निपटने की क्षमता होनी चाहिये।

2. **अन्तर्दृष्टि का सिद्धांत**—कार्यकर्ता में समूह की समस्याओं को सुलझाने से सम्बन्धित अन्तर्दृष्टि होनी चाहिये। वह उन कठिनाइयों को देखने तथा समझने व उसके निराकरण की योग्यता अवश्य रखता हो। नेता की अन्तर्दृष्टि उसके ज्ञान, बुद्धि, अनुभव तथा कड़ी मेहनत पर निर्भर होती है। नेता को समस्या समझने के लिए प्रत्येक दृष्टिकोण से सक्षम होना चाहिये।

3. **विचित्रता का सिद्धांत**—इस सिद्धान्त के अनुसार नेता में कुछ विचित्र गुण एवं क्षमतायें होनी चाहिये। जब तक इसमें असाधारण गुण नहीं होंगे वह समूह का नेतृत्व नहीं कर सकता है। इस प्रकार का गुण नेता में चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न करता है जिससे वह सम्मान प्राप्त करता है, साथ ही साथ नेतृत्व करने की मान्यता भी ग्रहण करता है।

4. **पूर्वानुमान का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व निम्न तीन गुणों—पूर्वानुमान कला है, व्यक्तिगत योग्यता, समस्या तथा समस्या समाधान के अवसर पर आधारित है। यदि व्यक्ति समूह-समस्या का समाधान अपनी योग्यता से कर लेता है तो वह समूह का नेता बन जाता है।

5. **मनोशक्ति के केन्द्रीकरण का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार कोई भी नेता बन सकता है, उसकी बुद्धि चाहे जितनी हो लेकिन वह अपनी मानसिक शक्ति को किसी एक बिन्दु पर स्थिर रख सकने की क्षमता रखता हो। वह एक दिशा में ध्यानाकर्षण करके समूह को अपनी ओर प्रेरित कर लेता है।

योग्यता-अयोग्यता का सिद्धांत—इस सिद्धान्त के अनुसार वे व्यक्ति जिनमें मानसिक अथवा शारीरिक अयोग्यता होती है, इस अयोग्यता को छिपाने के लिए अथवा दूर करने के लिए अतिरिक्त श्रम करते हैं तथा विशेष गुणों को अर्जित करते हैं। इसके कारण वे एक विशेष स्थान समाज या समूह में बना लेते हैं

और नेता बन जाते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति जब किसी एक दिशा में असफल होता है तो वह इसकी क्षतिपूर्ति का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया में वह समाज में नयी स्थिति प्राप्त कर लेता है ।

7. **समूह-प्रक्रिया का सिद्धांत**—जब व्यक्ति बृहत् समस्याओं के समाधान के लिए समूह में कार्य करता है तो वह नेतृत्व के गुणों का विकास करता है। बड़े समूह में सक्रिय रूप से कार्य करने से छोटे समूहों के लिए नेतृत्व के गुण आ जाते हैं । यदि वह निःस्वार्थ सामाजिक सेवा करता है तो कभी न कभी वह नेता अवश्य बन जाता है । इसी प्रकार जब व्यक्ति संकट-काल में समाज की सहायता करता है तो वह आगे नेता बन जाता है ।

7. **नेतृत्व की उत्पत्ति एवं विकास**—नेतृत्व की उत्पत्ति अनेक कारकों पर आधारित हैं । नेता में ज्ञान एवं साहस की प्रबल आवश्यकता होती है । इसी कारण ब्राउन ने नेता में विशेष योग्यता एवं शक्ति का होना आवश्यक बतलाया है । इस विचारधारा के समर्थक नेतृत्व की उत्पत्ति को ईश्वरीय गुण मानते हैं, अर्थात् नेता ईश्वर की देन है । अतः उसमें नेतृत्व के जन्मजात गुण होते हैं । परन्तु कुछ विचारक, जैसे जैकिन्स तथा केलर ने इस आधार को नहीं माना है । उनके अनुसार नेता बनने में परिस्थितियाँ अधिक उत्तरदायी होती हैं । जब समाज में विकट समस्या या ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसका नियंत्रण असम्भव हो जाता है तो ऐसी स्थिति में नेता की उत्पत्ति होती है ।

मनोविश्लेषणवादियों का मत—मनोविश्लेषणवादी नेतृत्व की उत्पत्ति का कारण इच्छा, कामलोलुपता, विफलता, धनलोलुपता, मर्यादा की लालसा, दमन, परिशोधन, हीनभावना, घृणा तथा पारिवारिक अनुभव मानते हैं । ये विचारक कामेच्छाओं के दमन तथा मनोरचनाओं के विकास को नेतृत्व के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं । कामेच्छा का ऊर्ध्वीकरण नेतृत्व के रूप में परिणत हो जाता है । इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए फ्रायड ने लियोनार्डो का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उसके अच्छे कार्यों का मूल कारण कामेच्छा का ऊर्ध्वीकरण था । लासविले ने भी नेतृत्व के अध्ययन में पाया कि पारिवारिक पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण होती है । पारिवारिक कटु अनुभव, हीन भावना, कामेच्छा का दमन, दोष भावना इत्यादि नेतृत्व की उत्पत्ति में सहायक होते हैं ।

एरिक फ्रोम ने हिटलर का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विफलता नेतृत्व की उत्पत्ति का मुख्य कारक है। उन्होंने सिद्ध किया कि पर-पीड़ातोषी तथा आत्म-पीड़ानन्दी प्रवृत्तियों के विकास से सत्तावादी नेतृत्व की उत्पत्ति होती है ।

उपर्युक्त सिद्धान्त की दूसरे स्कूल के लोगों ने काफी आलोचना की । उनके

अनुसार यह कहना गलत है कि असामान्य कारक या विशेषताएँ या दमन व विफलता आदि नेतृत्व को उत्पन्न करते हैं। बहुत से नेता बहुत धार्मिक और उच्च आदर्श एवं मूल्य रखते हैं। वे अच्छे सामाजिक पृष्ठभूमि के होते हैं।

बोगार्डस ने निम्नलिखित तीन प्रमुख कारकों को नेतृत्व की उत्पत्ति एवं विकास के लिए उत्तरदायी बतलाया है :—

1. वंशानुक्रम, 2. सामाजिक उत्तेजनाएँ और 3. व्यक्तित्व।

(1) **वंशानुक्रम**—नेतृत्व के लिए जन्मजात गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है। समान परिस्थितियाँ होने पर भी सभी व्यक्ति नेता नहीं बन पाते हैं।

(2) **सामाजिक उत्तेजनाएँ**—सामाजिक उत्तेजनाएँ न केवल नेतृत्व को जन्म देती हैं बल्कि नेतृत्व का विकास भी करती हैं। निरन्तर सामाजिक उत्तेजनाएँ व्यक्ति को आगे बढ़ाती हैं। अतः नेतृत्व के लिए सामाजिक उत्तेजनाओं का होना आवश्यक होता है।

(3) **व्यक्तित्व**—वंशानुक्रम तथा सामाजिक उत्तेजनाएँ अनुकूल होने के साथ-साथ अच्छा चरित्र, बुद्धि तथा दूसरों को प्रभावित करने वाली शारीरिक क्षमता का भी होना आवश्यक होता है।

8. समाज-कार्य में व्यावसायिक नेतृत्व—नेतृत्व सभीप्र कार के समूहों में पाया जाता है। सामूहिक परिस्थितियाँ ही वे दशाएँ हैं जो नेतृत्व को जन्म देती हैं। नेता की आवश्यकता का सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुभव होता है। समूह के सदस्यों में जो अधिक निपुण होता है एवं सामूहिक परिस्थिति को उद्देश्य प्राप्त करने में सहायता दे सकता है वही नेता चुना जाता है। समूह की स्थितियों की विभिन्नता के कारण नेता के कार्यों में भी विभिन्नता होती है। इस कारण नेतृत्व के गुण किसी एक व्यक्ति के कार्यों में न होकर सभी समूह-सदस्यों में पाये जाते हैं क्योंकि, कोई भी व्यक्ति सभी प्रकार की स्थितियों के समाधान में निपुण नहीं होता। अतः समूह में परिस्थिति के अनुरूप जिस सदस्य में गुण होते हैं उसको नेतृत्व ग्रहण करने का अधिकार दिया जाता है।

समूह के सदस्य नेता का चुनाव करते तथा उसके कार्यों को निर्धारित करते हैं। नेता को उतने ही अधिकार प्राप्त होते हैं जितने समूह उसको देता है। उसके कार्य समूह-सदस्यों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं पर निर्भर होते हैं। उसकी भूमिका सदस्यों की अनुमति से निर्धारित होती है। समाजिक सामूहिक कार्य में नेतृत्व का उत्तरदायित्व सभी सदस्यों में निहित होता है परन्तु व्यवहार में केवल कुछ ही सदस्य इस उत्तरदायित्व को ग्रहण करते हैं। लेकिन इस बात

का ध्यान रखा जाता है कि धीरे-धीरे यह गुण सभी सदस्यों में विकसित हों।

सामूहिक कार्य में नेतृत्व प्रजातान्त्रिक होता है। सामूहिक सदस्यों का कार्य के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पूर्ण अधिकार होता है। नेता प्रत्येक सदस्य की राय को जानता है और उसकी आन्तरिक इच्छा जानने का प्रयत्न करता है। सदस्यों का सक्रिय सहयोग नेता सदैव प्राप्त करना चाहता है। उसका यह उत्तरदायित्व होता है कि प्रत्येक सदस्य में कार्य के प्रति सोचने एवं विचारने की योग्यता का विकास करे। समूह के सदस्य जब एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो सकारात्मक तथा नकारात्मक सभी प्रकार की भावनाएँ प्रगट होती हैं। नेता का कार्य इन दोनों प्रकार की भावनाओं का उचित समायोजन कराना होता है।

सामूहिक वार्तालाप में नेता के कार्य—समूह में व्यक्ति बातचीत करते हैं, क्योंकि उनको कुछ न कुछ कहना रहता है। परन्तु जो कहना है उसके विषय में वे सदैव नहीं सोचते। प्रत्येक प्रकार की बातचीत में संवेग तथा विचार दोनों उपस्थित रहते हैं। व्यक्ति जो सोचते हैं उसके स्थान पर जो अनुभव करते हैं, उसको अवसर कहते हैं। इस प्रकार का कथन व्यक्ति के आन्तरिक भावों को प्रकट करता है तथा इससे संवेगों का व्यक्तिकरण होता है। अधिकांश व्यक्ति बिना अपनी समस्या को समक्ष रखे हुए बातचीत ही नहीं कर पाते। उनको अपने संवेगों को रखने या स्पष्ट करने के अवसर ही भाग लेने को प्रेरित करते हैं। परन्तु इस विशेषता को अक्सर समूह में भुला दिया जाता है। हम अक्सर सोच लेते हैं व्यक्ति जो कहता है उसका वही अर्थ है और उस विचार से वह पूर्ण सन्तुष्ट एवं सहमत है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। सामूहिक नेता का कर्तव्य होता है कि वह स्थितियों से सावधानीपूर्वक निपटे तथा व्यक्तियों के संवेगों को स्पष्ट करने का सुअवसर दे। उसमें इस बात की निपुणता होनी चाहिए जिससे सदस्यों के प्रति उत्तर सदैव रचनात्मक हों और उनमें उग्रता, असुरक्षा, निषेधात्मक तथा ध्वंसात्मक विचार न उत्पन्न होने पावें।

वार्तालाप के प्रारम्भ में नेता को चुप रहना तथा वार्तालाप के प्रारम्भ का उत्तरदायित्व समूह को ही देना चाहिए। यदि कक्षा में किसी बात को समझाना है तो समूह में केवल रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। सदस्यों को विचार स्पष्ट करने का अधिकार हो तथा वे उत्तरदायित्व को ग्रहण करने योग्य हों। नेता को उद्‌देश्यपूर्ण सम्बन्धों पर ध्यान रखना चाहिए और इन सम्बन्धों को समूह के समक्ष स्पष्ट करना चाहिए। उसको ध्यान रखना चाहिए कि कौन सदस्य कितना वार्तालाप में भाग ले रहा है। जो सदस्य बिलकुल भाग नहीं ले रहा है उसके कारणों का पता लगाकर तथा समझ कर उसको अपनी भावनाओं एवं विचारों को

रखने का अवसर देना चाहिए। नेता समूह का केन्द्र-बिन्दु होता है जिस पर सामूहिक कार्य निर्भर होते हैं। वह समूहों के साथ-साथ निम्न प्रकार की भूमिका अदा करता है :—

लघु समूह वार्तालाप—इस प्रकार के वार्तालाप में सदस्यों के मध्य अन्तः-क्रिया तथा अन्तरुत्तेजना अधिकाधिक होती है। सभी सदस्यों का उत्तरदायित्व स्पष्ट होता है तथा उन्हें सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार के वार्तालाप में समानता का व्यवहार सम्भव होता है, नेतृत्व के विकास में सहायता मिलती है और दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है। वार्तालाप में भाग लेनेवाले सभी सदस्यों को नेतृत्व के अवसर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वार्तालाप तभी लाभदायक होता है जब समूह छोटा होता है और वार्तालाप में सभी सदस्यों को सम्मिलित कर दिया जाता है। समूह-सदस्य भी अपनी रुचि समस्या को सुलझाने में रखते हैं तथा उन्हें समाधान के साधनों को जानने की जिज्ञासा होती है। इस स्थिति में सामूहिक नेता निम्न भूमिका निभाता है :—

1. वह सदस्यों के समक्ष समूह-वार्तालाप के विषय को स्पष्ट करता तथा कार्यपद्धति का वर्णन करता है।

2. वह समूह की समस्या को समझने तथा उद्देश्य को ग्रहण करने में सहायता करता है।

3. सदस्यों को विचार व्यक्त करने का अवसर देता है।

4. प्रश्न समूह के समक्ष रखता है तथा उनका उत्तर प्राप्त करता है।

5. वह देखता है कि समस्या के सभी पहलुओं पर वार्तालाप हो रहा है या नहीं।

6. समूह में सहयोगिक, अनौपचारिक तथा यौगिक वातावरण बनाये रखता है।

7. वह निर्देशन के स्थान पर सुझाव रखता है।

8. वह देखता है कि वार्तालाप सही दिशा में हो रहा है या नहीं।

9. वह वार्तालाप का सारांश तैयार करता है।

10. अस्पष्ट बातों को स्पष्ट करता है।

कमेटी वार्तालाप—जब किसी विषय पर विशेष मशविरें, सलाह या वार्तालाप की आवश्यकता होती है तब कमेटी का निर्माण करके वार्तालाप किया जाता है। इसके द्वारा कार्यक्रम-नियोजन तथा नीतियों का निर्माण सम्भव होता है। कमेटी वार्तालाप में सदस्य-संख्या बहुत कम होती है। प्रत्येक सदस्य को अपनी

इच्छाओं, भावनाओं, विचारों तथा सुझावों को रखने का पूर्ण अवसर मिलता है। नेता का कार्य इस प्रकार के वार्तालाप में निम्नलिखित होता है :—

1. सह सम्पूर्ण समूह को उसके उद्देश्य से अवगत कराता है, वह समय सदस्य एवं तरीकों के विषय में समूह की सलाह लेता है।

2. कमेटी के सदस्यों को विशेषज्ञता, अनुभव एवं निपुणता के आधार पर चुनता है और समूह की राय भी ले लेता है।

3. कमेटी-चेयरमैन का चुनाव करता है।

4. चेयरमैन को कमेटी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के लिए कहता है।

5. उन प्रश्नों को कमेटी के समक्ष रखता है जिन पर वार्तालाप करना है।

6. प्रत्येक सदस्य को उत्तर देने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा यह चाहता है कि प्रत्येक सदस्य पूरी क्षमता से भाग लें।

7. समय का वह विशेष ध्यान रखता है। अगर वह आवश्यक समझता है तो कमेटी की अनुमति से वार्तालाप का समय बढ़ा देता है।

8. वह सदस्यों से मौखिक व लिखित प्रतिवेदन लेता है और उसका सारांश तैयार करता है।

परिसंवाद या गोष्ठी—जब विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी एक विषय के विभिन्न पहलुओं पर विचार व्यक्त किये जाते हैं, भाषण होते हैं तथा वार्तालाप किया जाता है तो उसे परिसंवाद या गोष्ठी कहते हैं। नेता या माडरेटर समय एवं विषय को नियंत्रित करता है। परिसंवाद का समय लगभग 1 घण्टा ही होता है। परिसंवाद में नेता निम्न कार्य करता है :—

1. वह वक्ताओं से परिसंवाद के पहले मिलता है। उनके विचारों को समझता है तथा गोष्ठी के विषय से सामंजस्य स्थापित करके विषय निर्धारित करता है। प्रत्येक का समय निश्चित करता है तथा उन्हें एक तारतम्य में बोलने के अवसर प्रदान करता है।

2. जब परिसंवाद प्रारम्भ होता है तो मुख्य-मुख्य बातों को नोट करता है।

3. वह सबसे पहले स्वयं समस्या पर प्रकाश डालता है, उसके महत्त्व को स्पष्ट करता है तथा उस विषय पर बोलने के लिए वक्ताओं को आमंत्रित करता है। वह सम्पूर्ण समूह का सहयोग प्राप्त करता है।

4. समूह को परिसंवाद के वक्ताओं से परिचय करवाता है।

5. वह प्रत्येक सदस्य की भूमिका निश्चित करता है।

भूमिका का निर्वाह—मानव सम्बन्धों की समस्याओं या स्थितियों के सन्दर्भ में भूमिका निभाना रोल प्लेइंग कहलाता है। संचार के साधनों में यह एक

अद्भुत एवं महत्त्वपूर्ण प्रविधि है। यह एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा अधिकाधिक समूह का शिक्षा, ज्ञान, अनुभव सम्बन्धी एवं बौद्धिक विकास किया जा सकता है। परन्तु इसके साथ ही साथ यह एक कठिन एवं मुश्किल प्रविधि है।

इस प्रविधि द्वारा सम्पूर्ण समूह को उन परिस्थितियों, दशाओं, आँकड़ों तथा संबंधों से नेता अवगत करा देता है जिनको व्यवहार में लाना होता है। मौखिक तथा वार्तालाप में जिन बातों को समझने में कठिनाई होती है उनको भूमिका-निर्वाह द्वारा उचित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। इसमें समूह के सदस्यों का मनोवैज्ञानिक भागीकरण भी सम्भव हो जाता है। परन्तु यह प्रविधि तभी उपयोग में लायी जा सकती है जब समूह-सदस्य काफी सीमा तक शैक्षिक, मानसिक तथा सांवेगिक रूप से परिपक्व होते हैं तथा अपनी भावनाओं, विचारों तथा मनोवृत्तियों को व्यक्त नहीं कर पाते।

भूमिका-निर्वाह में सामूहिक नेता उन समस्याओं एवं भावों को व्यक्त करना चाहता है जिनको मौखिक रूप से व्यक्त करने में उसे कठिनाई होती है और समूह-सदस्य किसी प्रकार की परेशानी महसूस करते हैं। उदाहरण के लिए, परिवार-नियोजन सम्बन्धी समस्याओं को भूमिका-निर्वाह द्वारा उचित प्रकार से समझाया जा सकता है। नेता का कार्य इस विधि में विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। वह प्रारम्भ से अन्त तक बहुत ही सावधानी से भूमिका अदा करता है।

मनोरंजनात्मक क्रियायें—समूह अधिकांशतः मनोरंजनात्मक क्रियाएँ इसलिए करता है कि उसके सदस्य शारीरिक, मानसिक तथा सांवेगिक रूप से स्वस्थ अनुभव करें। जब समूह प्रारम्भिक अवस्था में होता है तो समूह-सदस्य एक दूसरे से भलीभाँति परिचित नहीं होते। ऐसी दशा में मनोरंजन ही एक ऐसा साधन है जो प्रत्येक सदस्य को एक-दूसरे के नजदीक लाता है। सामूहिक कार्यकर्ता समूह के प्रत्येक सदस्य को मनोरंजनात्मक क्रियाओं में भाग लेने के लिए उत्साहित करता है तथा वह देखता रहता है कि सदस्यों के भाग लेने की क्या गति है। वह समस्त प्रक्रिया का मूल्यांकन भी साथ ही साथ करता चलता है।

अध्याय 14

कार्यक्रम, नियोजन तथा विकास

कार्यक्रम की विचारधारा ने समाज-कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। परन्तु इसकी उत्पत्ति आधुनिक ही है। इसको पहले क्रियाओं तथा घटनाओं से सम्बन्धित किया जाता था। समूह इन क्रियाओं को सम्पन्न करता था जो समूह के सदस्यों एवं संस्थाओं को परिलक्षित होती थीं। परन्तु समय के साथ-साथ परिवर्तन हुए और कार्यक्रम शब्द ने सामूहिक कार्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। आज सामूहिक कार्य की लगभग प्रत्येक क्रिया कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित की जाने लगी है।

I कार्यक्रम (Programme) का अर्थ :

ट्रेकर (Trecker) के अनुसार—साधारण भाषा में सामाजिक सामूहिक कार्य के अन्तर्गत कार्यक्रम का अर्थ कोई वस्तु तथा प्रत्येक वस्तु हो गया है जो समूह अपनी अभिरुचियों की संतुष्टि के लिए करता है।[1]

बृहद् रूप में कार्यक्रम एक प्रत्यय है, जिसके अन्तर्गत वे सभी क्रियायें, सम्बन्ध, अन्तःक्रिया, अनुभव, व्याप्ति, समूह जो जान-बूझकर नियोजित किये जाते हैं और कार्यकर्ता की सहायता से व्यक्तियों और समूहों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, आती हैं। कार्यक्रम कार्यकर्ता के लिए एक यंत्र (Tool) होता है जिसके द्वारा वह उद्देश्य की प्राप्ति करता है।[2]

---

1. "Simply stated, programme in social group work has come to mean anything and everything that the group does to satisfy it interest."
   Trecker, H. B., op. cit., p. 142.
2. "·····Programme is a concept which when broadly conceived, includes the entire range of activities, relationships, interactions and experiences—individual and group—which have been deliberately planned and carried out with help of the worker to meet the needs of the individual and the group. Ibid, p. 142.

क्लीन (Klein)[3] ने कार्यक्रम को परिभाषित करते हुये कहा है कि इसके अन्तर्गत वह सभी आता है जिसे समूह के सदस्य करते हैं। उन्होंने क्रियाओं तथा कार्यक्रमों में अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि कार्यक्रम के अन्तर्गत शिल्प, अभिनय तथा खेल आदि आते हैं। नार्देन (Northen)[4] ने समूह में नियोजित तथा संरचित अन्तःक्रिया का दर्शन करने के लिए सभी क्रिया-प्रधान क्रियायें (Action oriented activities) का प्रयोग किया है।

मिडलेमैन (Middleman)[5] का मत है कि कार्यक्रम शब्द उन क्रियाओं में प्रयोग किया जाता है जो वार्तालाप (Talking) के स्थान पर करने (doing) पर अधिक महत्त्व देती है।

विन्टर (Vinter) के अनुसार कार्यक्रम एक सामान्य प्रकार की क्रियायें हैं जिसमें सामाजिक व्यवहारों की कड़ी होती है। ये व्यवहार विस्तृत संस्कृति के अर्थों तथा उपलब्धि स्तर से निर्देशित होते हैं। इन कार्यक्रम-क्रियाओं में एक अनोखे प्रकार का तरीका, एक तारतम्यता तथा निष्कर्ष होता है। कार्यक्रम में भौतिक पदार्थों के साथ अन्तःक्रिया का उपयोग होता है तथा अन्तःक्रिया होती है।[6]

II. सामाजिक सामूहिक कार्य में कार्यक्रम की प्रकृति तथा उद्देश्य :

कार्यक्रम का उद्देश्य समूह को क्रियाओं और गतिविधियों को इस प्रकार से नियोजित करके सम्पन्न करना है जिससे समूह व समूह के सदस्यों को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस अर्थ में कार्यक्रम स्वयं एक प्रक्रिया है। कार्यक्रम में विषयवस्तु तथा कर्म भोगों, विचार व्यक्त करने का माध्यम तथा कार्यान्वयन का तरोका सम्मिलित होता है। कार्यक्रम विषयवस्तु में जोवन के सामान्य अनुभवों का निरूपण होता है, जो व्यक्ति-विशेष के लिए विकास की दृष्टि से

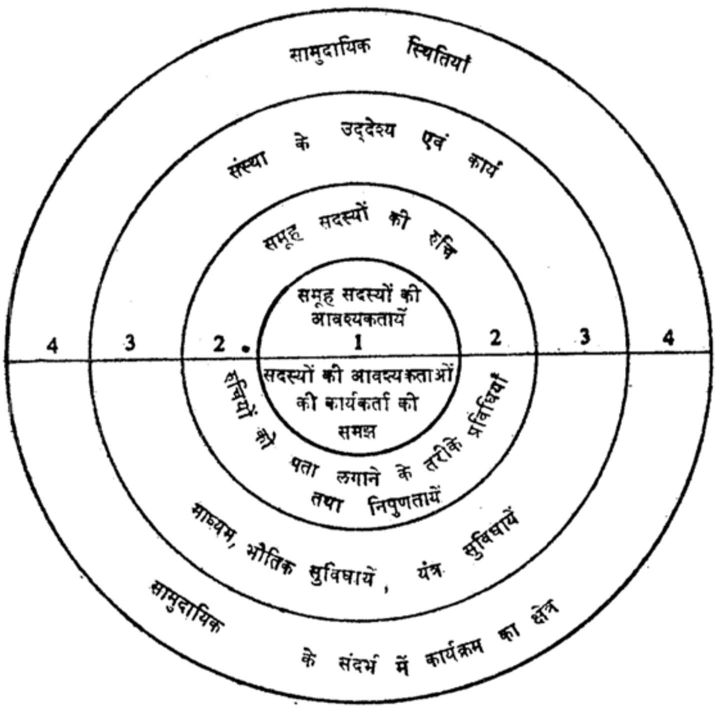
---

3. Kelin, A, F. : Effective Group Work, Association Press, Newyork, 1972.
4. Northen, H. : Social Work with Groups, Columbia University Press, Newyork, 1969.
5. Middleman, R. R. : The Non-Verbal Method in working with groups, Association Press, Newyork, 1968.
6. Vinter, R. D. : The Essential components of social work Practice" in R. D. Vinter (ed,) Readings in group work Practice,, Campus Publisher, Ann Arbor Mi. 1967.

अर्थपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए सामूहिक कार्य के कार्यक्रम विषयवस्तु में अधिकांशत: मनोरंजन से सम्बन्धित क्रियायें होती हैं। यह क्षेत्र महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि खाली समय का उपयोग सामाजिक महत्त्व का है। समुदाय के मामलों में जनभागीकरण सामूहिक कार्य का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। कुछ संस्थायें गृह तथा पारिवारिक जीवन क्षेत्र को अधिक महत्त्व देती हैं, क्योंकि इनमें आर्थिक तथा सामाजिक सम्बन्धों की अनेक समस्यायें होती हैं।

III. सामूहिक कार्य में कार्यक्रम एक प्रक्रिया के रूप में :—

*ट्रेकर ने निम्न प्रकार के कार्यक्रम को प्रक्रिया के रूप में दर्शाया है :—



कार्यक्रम में व्यक्तीकरण (Expression) के माध्यम वे विशिष्ट साधन होते हैं जिनके द्वारा समूह किसी विशेष क्षेत्र में क्रियायें सम्पन्न करता है। मनोरंजन, ड्रामों, नृत्य, संगीत, वाद-विवाद, वार्तालाप, खेलकूद, कला, शिल्प

*Trecker, H. B. : op. cit, p. 143.

आदि कार्यक्रम के माध्यम हैं। कार्यकर्ता सबसे पहले कार्यक्रम चलाने के लिए समूह को कार्यात्मक संगठन (Functional organization) बनाने के लिए सहायता करता है। वह समूह की विषयवस्तु का क्षेत्र तथा प्रगटन का माध्यम चुनने में सहायता करता है। परन्तु इससे पहले वह समूह की रुचियों की खोज करता है। वह समूह की सहायता इस प्रकार से करता है जिससे वह अपने ही स्रोतों का उपयोग अधिकाधिक कर सके। कार्यकर्ता का सम्बन्ध मुख्यतः तीन बातों से होता है :—(1) क्या कार्यक्रम है (विषयवस्तु), (2) कार्यक्रम किस प्रकार चलेगा (How)—माध्यम से कार्यक्रम क्यों चलाया जायेगा (Why)—उद्देश्य। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कार्यक्रम के 3 आवश्यक अंग हैं।

1. विषयवस्तु का क्षेत्र : विषयवस्तु का तात्पर्य है कि कार्यक्रम के अन्तर्गत हम किन-किन क्रियाओं का समावेश करते हैं, समूह क्या अनुभव प्राप्त कर रहा है और उसका विकास किस दिशा में हो रहा है। कार्यक्रम की विषयवस्तु, मनोरंजन, शिक्षा, मनोवैज्ञानिक सहायता, शारीरिक विकास इत्यादि हो सकती है। साधारणतया इसका अर्थ उस क्षेत्र से समझा जाता है जिसको कि कार्यक्रम पूरा कर रहा है। कार्यक्रम की विषयवस्तु के आधार पर कभी-कभी समूहों का संगठन होता है। परन्तु ऐसी स्थिति उस समय आती है जब अभिकरण समूह की रुचियों एवं आवश्यकताओं को अनुभव करके विषयवस्तु का चुनाव करती है। कार्यकर्ता विषयवस्तु को निर्धारित करने के पश्चात् ही क्रियाओं को सम्पन्न करने के माध्यमों का चुनाव करता है।

2. माध्यम : कार्यकर्ता जब क्षेत्र तथा विषय-वस्तु का चुनाव कर लेता है तो कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए माध्यम निर्धारित करता है। वह साधनों एवं तरीकों को उपयोग में लाकर समूह द्वारा क्रियाओं को सम्पन्न कराता है या समूह इन साधनों व तरीकों का उपयोग करके अपनी निर्धारित क्रियाएँ करता है। अतः माध्यम का मतलब उन साधनों से है जिनका उपयोग समूह अपने अनुभव के लिए करता है। कार्यक्रम में बहुत से माध्यम प्रयोग किये जाते हैं, जैसे—नाच, गाना, कहानी, ड्रामा, खेल, कला इत्यादि। ये क्रियाएँ समूह को अपनी भावनाओं व आवश्यकताओं को समझने तथा व्यक्त करने का अवसर देती हैं। इन माध्यमों के द्वारा न केवल रचनात्मक अनुभव प्राप्त होता है बल्कि समूह की आवश्यकताओं को समझने तथा व्यक्त करने का अवसर देती है। इन माध्यमों के द्वारा न केवल रचनात्मक अनुभव प्राप्त होता है बल्कि समूह की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए ड्रामों में यदि स्वास्थ्य की समस्याओं को दूर करने के उपायों के लिए

अभिनय किया गया है तो समूह के सदस्य न केवल स्वास्थ्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं बल्कि उनको सामुदायिक स्वास्थ्य-स्तर की भी जानकारी हो जाती है।

3. **पद्धति :** सामूहिक कार्य में पद्धति का तात्पर्य समूह की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है। कार्यकर्ता सबसे पहले समूह की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की खोज करता है तथा समूह को कार्यात्मक संगठन के रूप में संगठित करता है, जिससे वह उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय ले सकने में समर्थ हो। वह कार्यक्रम की विषयवस्तु का चुनाव करता है और माध्यम निर्धारित करता है। कार्यक्रम के तथ्यों का निरूपण करता है तथा समस्या का निदान करता है। अन्त में उपचार की प्रक्रिया आती है। उपचार होने के बाद समूह को स्थगित कर दिया जाता है।

(IV) कार्यक्रम-प्रक्रिया के तत्त्व :

कार्यक्रम प्रक्रिया के तीन आवश्यक तत्त्व हैं :—

(1) सदस्य, (2) सामूहिक कार्यकर्ता और (3) कार्यक्रम को विषय-वस्तु।

इन तीनों तत्त्वों की अपनी-अपनी अलग-अलग विशेषताएँ होती हैं और इनमें संमिश्रण से सामूहिक कार्य-क्रियाओं का सम्पादन होता है।

किसी भी समूह के कार्यक्रम की विषयवस्तु उन सभी मौलिक कारकों से प्रभावित होती है जो उस समुदाय में उपस्थित होते हैं जिसमें कार्यक्रम चलाना होता है। कुछ समूहों में कार्यक्रम की विषय-वस्तु लगभग समान होती है। परन्तु जहाँ पर सदस्य भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के होते हैं वहाँ पर विषय-वस्तु को बदलना पड़ता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि समूह की रुचि, अभि-रुचि, ज्ञान, स्तर आदि में अन्तर होने से ऐसी विषय-वस्तु का चुनाव करना पड़ता है जिसमें सभी सदस्यों की मूल रुचियों का समावेश होता है। व्यवस्थित, एकीकृत तथा संगठित समुदायों से आये हुए सदस्यों के समूहों में कार्यक्रम की विषय-वस्तु असंगठित तथा अ–एकीकृत समुदायों से आये हुए सदस्यों के समूहों से बिलकुल भिन्न होती है।

एकीकरण तथा अ–एकीकरण करनेवाली सामाजिक शक्तियों को लगभग सभी जानते हैं। परन्तु कार्यक्रम नियोजन-प्रक्रिया पर इन शक्तियों का किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, यह जानना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। असंगठित समुदायों में युवकों की रुचियों को सामान्य खेलों या कल्याणकारी समूहों के लिए एकीकृत करना प्रायः कठिन होता है। वे सोचते हैं कि यदि वे अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधित होंगे तो उनका सामाजिक स्तर कम हो जायगा। वे केवल अपने ही समुदाय या परिवार के सदस्यों के साथ सम्मिलित एवं संगठित हो

सकते हैं। एक एकीकृत समुदाय में सामाजिक शक्तियाँ मनोरंजनात्मक तथा सामाजिक महत्त्व की क्रिया में परिवार के सदस्यों की रुचियों को विस्तृत करती हैं एवं उन्हें उनमें भाग लेने के लिए प्रेरित करती है।

कार्यक्रम की विषय-वस्तु तथा इसका उपयोग समूह की सामाजिक शक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। इन शक्तियों के प्रभाव के आधार पर समूह का आकार, संरचना तथा अन्य क्रियाएँ, जिनके द्वारा वह उद्देश्य को प्राप्त करता है, निश्चित की जाती हैं। जिन समाजों में असुरक्षा, सामाजिक उथल-पुथल तथा संघर्ष बना रहता है, उनके समूहों में संरचना स्थिर नहीं रह पाती तथा कार्यक्रम की विषय-वस्तु के निर्माण का उत्तरदायित्व कुछ ही सदस्य ग्रहण करते हैं। वास्तव में कार्यक्रम की विषय-वस्तु एकीकरण करने वाला मुख्य कारक होता है जिनमें सामान्य एवं समान रुचियों का समावेश होता है। लघु समूहों के सदस्यों में संबंध एकीकृत करने का गुण होता है अतः समूहों की रचना महत्त्वपूर्ण होती है। सदस्य सामान्य शर्तों से बँधे होते हैं। लेकिन समूह चाहे छोटा हो या बड़ा, प्रत्येक में छोटे-छोटे समूह होते हैं जो व्यक्तिगत प्रेम एवं भावना पर आधारित होते हैं। समूहों का संगठन कार्यक्रम की विषय-वस्तु पर भी आधारित हो सकता है। इस स्थिति में संस्था समुदाय की रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप विषय-वस्तु निश्चित करती है। जब एक बार समूह संगठित हो जाता है तो कार्यक्रम का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि सदस्य कार्य नियोजन-प्रक्रिया में किस प्रकार भाग ले रहे हैं। कार्यक्रम की विषय-वस्तु सदैव समूहों की अन्तर्निहित रुचियों पर निर्भर नहीं होती।

सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता कार्यक्रम में नियोजन तथा विकास के लिए एक कलाकार जैसा होता है। एक अच्छे कलाकार की भाँति वह उन पन्नों तथा विषयों से पूर्ण अवगत होता है जिनसे वह कार्य करता रहा। वह कार्यक्रम की विषयवस्तु में अन्तर्निहित क्षमताओं, संस्था के कार्यों तथा उद्देश्यों, सदस्यों की विकासात्मक आवश्यकताओं तथा रुचियों, समूह के मूल्यों तथा प्रतिमानों और समुदाय का सम्पूर्ण ज्ञान रखता है। मुख्य रूप से कार्यक्रम-प्रक्रिया के तीन आवश्यक तत्त्व होते हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, इनमें से प्रत्येक तत्त्व के अनेक भाग होते हैं। सदस्यों की अपनी रुचियाँ एवं आवश्यकताएँ होती हैं, उनकी विशेष क्षमताएँ होती हैं, आपस में संबंध होते हैं तथा कार्यकर्ता से भी संबंध होते हैं, उनके प्रतिमान एवं मूल्य समुदाय तथा पारिवारिक जीवन से संबंधित होते हैं। कार्यकर्ता में व्यावसायिक ज्ञान, निपुणता, विशेष योग्यता, उसका सदस्यों से सम्बन्ध, संस्था के प्रतिनिधि के रूप में भूमिका, संस्था के प्रतिमानों तथा मूल्यों

का प्रतिनिधित्व आदि छोटे-छोटे तत्त्व उपस्थित रहते हैं। कार्यक्रम में समूह-सदस्यों की आवश्यकताओं एवं रुचियों को पूरा करने की क्षमता होती है। ये रुचियाँ समूहों, समुदायों तथा सम्पूर्ण समाज के मूल्यों तथा प्रतिमानों का प्रतिनिधित्व करती हैं। कार्यक्रम-नियोजन में इन तीनों तत्वों की परस्पर अन्त:क्रिया आवश्यक होती है। समूह-सदस्यों को गुणात्मक अनुभव प्रदान करने में ये तीनों कारक प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परन्तु यह हो सकता है कि किसी समय कोई कारक विशेष महत्त्व का हो जाय, जैसे—कभी सदस्य प्रभुत्व प्राप्त करते हैं, कभी कार्यकर्ता और कभी विषय-वस्तु प्रथम स्थान ग्रहण करती है। कार्यक्रम-प्रक्रिया के उपयोगी कार्य करने के लिए किसी एक तत्त्व या कारक का स्थायी रूप से प्रभुत्व नहीं बना रहना चाहिए। इन तत्त्वों के उचित सामंजस्य से सदस्यों की आवश्यकताएँ अधिक संतोषपूर्ण ढंग से पूरी होती हैं।

(V) कार्यक्रम के सिद्धान्त :

1. कार्यक्रम का उपयोग समूह-चिकित्सा के रूप में किया जाना चाहिये। अर्थात् किसी भी कार्यक्रम का उद्देश्य लघु-कालीन (साधारण मनोरंजन) न होकर दीर्घकालीन और स्थायी प्रभावकारी होना चाहिये।

2. कार्यक्रम क्रियाओं के चलाने का निर्णय समूह का होना चाहिये। अर्थात् अपनी समस्या का समाधान वे किस प्रकार करना चाहते हैं, उन्हें निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए।

3. कार्यक्रम का उपयोग समूह-प्रक्रिया को परिवर्तित करने के लिए किया जाना चाहिये।

4. सदस्यों की आवश्यकताओं, निपुणताओं और रुचियों के अनुरूप ही कार्यक्रम होने चाहिये।

5. कार्यक्रम के प्रभाव का मूल्यांकन निरन्तर होना चाहिये।

6. कार्यक्रम का उपयोग समूह-कार्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाना चाहिये।

(VI) समूह के लिए कार्यक्रम का महत्त्व :

समूह के लिए कार्यक्रम अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि कार्यक्रमों के माध्यम से ही विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न किया जाता है, जिसके कारण समूह किसी न किसी क्रिया को सम्पन्न करके मनोरंजन प्राप्त करते हैं। इसके द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति होती है, परिणामस्वरूप शारीरिक एवं मानसिक विकास सम्भव होता है। पारस्परिक अन्तःक्रिया के कारण सदस्य एक-दूसरे के निकट आते हैं और एक-दूसरे के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं तथा साथ ही साथ समान

आवश्यकताओं का पता चलता है। कार्यक्रम-क्रियायें समूह को प्रेम, सौहार्द, भिन्नतायें तथा उग्रतायें आदि मनोभावों को व्यक्त करने का अवसर देता है। इससे उनमें परस्पर महत्त्व की इच्छा पूरी होती है। कार्यक्रम के नियोजन से समूह को निर्णय लेने तथा उत्तरदायित्व को स्वीकार करने का अवसर प्राप्त होता है। संघर्ष का निवारण भी कार्यक्रम द्वारा ही होता है। कार्यक्रमों के कारण ही लोग एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, जिससे एक-दूसरे को समझने तथा समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिलता है। कार्यक्रम से मानसिक स्वास्थ्य का विकास होता है। समूह-क्रियाओं में भाग लेकर अपनी संघर्षमयी भावनाओं को व्यक्त करता है, जिससे उसे राहत मिलती है। यह सामूहिक परिवर्तन का आकरण यंत्र भी है।

(VII) व्यक्ति के जीवन में कार्यक्रम का महत्त्व :

कार्यक्रम व्यक्ति के जीवन में विशेष स्थान रखते है। व्यक्ति जिन भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते या जिन्हें शब्दों में स्पष्ट नहीं कर पाते उनको कार्यक्रमों के द्वारा स्पष्ट कर लेते हैं। इससे आन्तरिक संघर्ष में कमी आती है तथा सांवेगिक तनाव कम होता है। उनको शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के अवसर प्राप्त होते हैं, उनमें सामूहिकता की भावना बढ़ती है तथा उत्तरदायित्व का विकास होता है। कार्यक्रम का जीवन में अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। इसके मुख्य लाभ निम्न हैं :—

1. शारीरिक विकास में सहायक :

कार्यक्रम द्वारा बालक का शारीरिक विकास होता है। जब वह अनेक क्रियाओं में भाग लेता है तो स्वतः शारीरिक अंग विकसित होते हैं। कार्यक्रम न केवल शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है बल्कि वह सामान्य शारीरिक विकास के लिए भी आवश्यक है। खेलों का महत्त्व इसीलिए हमारे जीवन में है।

2. नियन्त्रण प्राप्त करने के अवसर :

कार्यक्रमों के द्वारा बच्चे अपनी शारीरिक क्रियाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करते हैं। नियन्त्रण प्राप्त करने के उद्देश्य से हो वे शारीरिक क्रियाओं की पुनरावृत्ति करते हैं। वे इस स्तर पर अधिक परिश्रम करते हैं। जब उनको कठिनाई होती है तो निराश होने के स्थान पर अधिक वेग से कार्य करते हैं। साधनों के उचित उपयोग की निपुणता भी वे कार्यक्रमों द्वारा प्राप्त करते हैं। वे यह सीखते हैं कि किस प्रकार के उपलब्ध साधनों को अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। कार्यक्रमों से स्थिति के विषय में वे जानकारी प्राप्त करते हैं तथा अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखते हैं एवं आवश्यकतानुसार कार्य में विशेष

योग्यता प्राप्त करते हैं। इससे उन्हें अच्छे-बुरे का ज्ञान प्राप्त होता है तथा हितकारी एवं अहितकारी कार्यों की विशेषता ज्ञात होती है। व्यक्ति को कार्यक्रम यह सिखाते हैं कि किस अवसर पर, कब, किस प्रकार और कहाँ ज्ञान और बुद्धि का उपयोग किया जाय।

3. बौद्धिक योग्यता का विकास :

कार्यक्रम द्वारा व्यक्तियों में शारीरिक तथा बौद्धिक शक्तियों का समावेश होता है। जब वह किसी समूह का सदस्य बनता है तो शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ अपनी बुद्धि का भी उपयोग करता है। स्थिति से निपटने के लिए उसे अनेक प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है जिनको वह सामूहिक क्रियाओं के माध्यम से धीरे-धीरे प्राप्त करता है। कार्यक्रम में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जहाँ पर उसे बाधा होती है। इनसे निपटने के लिए वह प्रयत्नशील रहता है। एक बार स्थिति पर विजय पाकर वह हमेशा-हमेशा के लिए उस प्रकार की स्थितियों से निपटने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

4. ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा की जागृति :

कार्यक्रम के द्वारा व्यक्ति में इस बात की इच्छा जागृत होती है कि समूह के अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा उसको अधिक ज्ञान, निपुणता एवं योग्यता प्राप्त हो। इसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। उसमें एक प्रकार की बौद्धिक प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

5. सांवेगिक तनाव से छुटकारा :

कार्यक्रम के मध्य ऐसे अवसर आते हैं जब व्यक्तियों को आराम करने तथा हँसी-मजाक करने का अवसर मिलता है। इससे सांवेगिक तनाव कम होता है तथा सांवेगिक संतुलन प्राप्त होता है जो सामान्य विकास के लिए आवश्यक है। व्यक्ति कार्यक्रमों में इसीलिए भाग लेता है कि वह उस वातावरण से दूर हो सके जो कष्टप्रद एवं दुखदायी है। कार्यक्रम के द्वारा वह अपनी समस्याओं को कुछ समय के लिए भूल जाने का प्रयत्न करता है, जिससे उसे अत्यधिक शांति मिलती है।

6. इच्छा-पूर्ति के अवसर :

कार्यक्रम व्यक्तियों की सामान्य इच्छाओं को पूरा करते हैं। सामूहिकता की इच्छा व्यक्ति की सबसे प्रबल इच्छा होती है जिसको वे कार्यक्रम के द्वारा प्राप्त करते हैं। वे अनुभवों, सुखों एवं आनन्द की कल्पना करते हैं। इसके अतिरिक्त

जिन इच्छाओं की पूर्ति वे दैनिक जीवन में नहीं कर पाते, उनकी पूर्ति कार्यक्रम के माध्यम से करते हैं, जैसे—नेता बनने की इच्छा, महान् वक्ता बनने की इच्छा, या शासक बनने की इच्छा।

7. व्यक्तित्व का विकास :

व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को सामूहिकजीवन का अनुभव हो क्योंकि व्यक्ति पर पर्यावरण का विशेष प्रभाव रहता है। जिस प्रकार की स्थितियों एवं परिस्थितियों से वह गुजरता है उनके प्रभाव से वह अछूता नहीं रहता है। कार्यक्रमों के द्वारा उसको ऐसे अनुभव कराये जाते हैं जो व्यक्तित्व के सकारात्मक पक्ष की सहायता प्रदान करते हैं। सामाजिक सामूहिक कार्य का उद्देश्य ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। कार्यक्रम तो उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही होते हैं।

8. प्रेम-प्रदर्शन :

व्यक्ति का यह स्वभाव है कि वह अनुकूल एवं समान को स्वीकार करता है, प्रेम प्रदर्शित करता है एवं सहयोग करता है। विपरीत होने पर वह असहयोग करता है एवं किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं बनाना चाहता है। कार्यक्रमों के द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है तथा उसका स्वभाव कैसा है। इसके द्वारा वह आत्मिक प्रेम प्रदर्शित करता तथा नैतिक भावना को स्पष्ट करता है।

9. सामूहिक एकीकरण :

कार्यक्रम के द्वारा व्यक्ति उन आदतों को सीखता है जो दूसरों को अच्छी लगती हैं और जिनकी दूसरे लोग प्रशंसा करते हैं तथा उन क्रियाओं का त्याग करता है जो दूसरों द्वारा पसन्द नहीं की जातीं। धीरे-धीरे वह अपने अन्दर उन सामाजिक गुणों का विकास कर लेता है जो वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन के लिए परमावश्यक होते हैं। कार्यक्रम के द्वारा समूहों की उत्पत्ति होती है और व्यक्ति सामूहिकता की ओर बढ़ने का प्रयास करता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक एवं सामूहिक एकता का विकास होता है।

10. मनोबल की उच्चता :

व्यक्ति का मनोबल पुरस्कार एवं दण्ड से प्रभावित होता है। यदि उसे अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं, कार्यों की प्रशंसा होती है एवं उसका कुछ पुरस्कार प्राप्त होता है तो उसका मनोबल ऊँचा होता है। इसके विपरीत होने पर वह हतोत्साहित होता है। कार्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा उसको

व्यक्तियों की भावनाओं को जानने का अवसर मिलता है। उन कार्यों को करने की उसमें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है जिनको समूह चाहता है। अतः कार्यक्रम व्यक्ति की इच्छा को जागृत करने एवं मनोबल को ऊँचा करने का यन्त्र है।

11. स्वीकृति प्राप्त करना तथा स्वीकृति प्रदान करना :

जब व्यक्ति कार्यक्रम में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं तो वे सीखते हैं कि दूसरों को किस प्रकार मान्यता तथा कार्य की स्वीकृति दी जाय। इसके साथ ही साथ वे यह भी चाहते हैं कि उनके कार्यों एवं भावनाओं को भी स्वीकृत किया जाय। इस प्रकार उनमें धीरे-धीरे आदान-प्रदान की भावना का विकास होता है।

12. दुःखदायी स्थिति से कल्पना द्वारा बचाव :

कार्यक्रम की क्रियाओं में भाग लेकर व्यक्ति कुछ समय के लिए सभी दुःखों को भूल जाता है। वह कल्पना में उन सुखों की अनुभूति करता है जो उसे प्राप्त नहीं हो पाए हैं।

13. भावनाओं का स्पष्टीकरण :

कार्यक्रम के मध्य बच्चा अपनी दुनियाँ के ज्ञान और भावनाओं को व्यक्त करता है। वह इससे अनुभव प्राप्त करता है तथा वास्तविक व काल्पनिक भावनाओं एवं विचारों को स्पष्ट करता है। इन अनुभवों एवं विचारों को स्पष्ट करता है। इन अनुभवों को व्यक्त करने में वह क्रोध, घृणा, प्रसन्नता आदि संवेगों को व्यक्त करता है। न केवल वह सुखदायी अनुभव प्राप्त करता है बल्कि उसे दुःखदायी अनुभव भी होते हैं। ये दोनों प्रकार के अनुभव विकास के लिए आवश्यक होते हैं।

14. नेतृत्व के गुणों का ग्रहण :

चूंकि व्यक्ति में सामूहिकता की भावना बहुत अधिक होती है इसलिए वह वही कार्य करता है जो उसके मित्र चाहते हैं। वह अपनी भावनाओं पर नियंत्रण प्राप्त करता है तथा अपनी भूमिका अदा करता है। परन्तु सदैव वह दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करता क्योंकि ऐसा करने से उसे कार्यक्रम में स्वीकृति नहीं मिलती है। कार्यक्रम के मध्य प्रत्येक व्यक्ति को स्थिति के अनुरूप कार्य करने के अवसर दिये जाते हैं। किसी का कार्य पूर्णतया निश्चित नहीं होता है। प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति एक समान भूमिका अदा नहीं कर सकता। जो बालक शारीरिक खेलों में नेतृत्व करता है, आवश्यक नहीं कि वह मानसिक क्रियाओं में भी नेतृत्व करे। अतः प्रत्येक को अनुयायी एवं नेतृत्व दोनों

प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं। फलस्वरूप निर्णय लेने एवं उत्तरदायित्व ग्रहण करने के गुण का विकास होता है।

VIII. प्रभावात्मक कार्यक्रम की शर्तें :

सामूहिक कार्य-प्रक्रिया उस समय भलीभाँति सम्पन्न होती है जब संस्थाकर्ता तथा समूह ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जिसमें समूह-सदस्य अपनापन अनुभव करते हैं एवं व्यक्तित्व विकास के अवसर स्पष्ट दिखलायी देते हैं। एक-दूसरे का उत्साहवर्धन होता है, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक सहायता प्राप्त होती है, योजना बनाने, कार्यान्वियन करने तथा कार्यक्रम-क्रियाओं के सम्पन्न करने में सहयोगिक भावना पायी जाती है तथा सम्पूर्ण समूह का संयुक्त प्रयास होता है। यद्यपि सामूहिक कार्य के लिए कार्यक्रम महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन उससे अधिक कार्यक्रम किस प्रकार चलाया जा रहा है, महत्त्वपूर्ण होता है। अतः कार्यक्रम प्रभावपूर्ण होने के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना चाहिये:—

1. कार्यक्रम उन व्यक्तियों की रुचियों पर आधारित होना चाहिये जिन्होंने समूह का निर्माण किया है।

2. कार्यक्रम के अन्तर्गत समूह-सदस्यों की आयु, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा आर्थिक अंतरों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

3. कार्यक्रम में व्यक्तियों को इन अनुभवों तथा अवसरों की प्राप्ति अवश्य होनी चाहिए जिनके कारण समूह के सदस्य बने हैं और उनके प्रति आन्तरिक मूल्य उनमें हैं।

4. कार्यक्रम को लचीला होना चाहिये तथा विभिन्न प्रकार की रुचियों एवं आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता होनी चाहिये। साथ ही साथ भाग लेने वाले सदस्यों को अधिकाधिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अवसर मिलने चाहिए।

5. कार्यक्रम को सदैव सरल से जटिल की ओर अग्रसर होना चाहिए।

IX. नियोजन का अर्थ :

कार्यक्रम का अर्थ समझ लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि नियोजन का अर्थ समझें, क्योंकि कार्यक्रम-नियोजन द्वारा ही उद्देश्य पूर्ति के लिए वास्तविक प्रयास करते हैं। किसी कार्य को निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करना ही नियोजन होता है। नियोजन के अन्तर्गत विद्यमान स्थितियों तथा सम्भावित परिवर्तनों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर एक नियमित, व्यवस्थित तथा सुसंगठित रूपरेखा तैयार की जाती है, जिससे भविष्य में

परिवर्तनों को अपेक्षित लक्ष्यों के अनुरूप नियंत्रित, निर्देशित तथा संशोधित किया जा सके। नियोजन भौतिक पर्यावरण का कुशलतापूर्वक उपयोग करने की प्रक्रिया है।

समाजशास्त्रीय शब्दकोष में नियोजन की धारणा को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है :

नियोजन लक्ष्यों का आरोपण, उनकी पूर्ति के लिए साधनों की व्यवस्था और क्रियाओं के व्यवस्थित रूपों, जो कि सामान्य सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न होते हैं, का प्रयोग है।

जब हम समूह द्वारा विकास एवं उन्नति का प्रयास करते हैं तो हमें उसके अनुकूल कार्य की पद्धतियों का निश्चय करना होता है। हम नियोजन द्वारा समूह की समस्त क्रियाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि समस्त प्रक्रिया को समन्वित रूप से चलाया जा सके तथा समूह में परिवर्तन सम्भव हो सके।

X. सामूहिक कार्य में नियोजन का महत्त्व :

यदि सामूहिक कार्य सेवायें आवश्यक हैं तो उनका नियोजन करना कार्यकर्ता का आवश्यक कार्य है। वर्तमान समय में नियोजन पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। यद्यपि सेवाओं का विस्तार हुआ है लेकिन अभी भी बहुत से लोग सामाजिक सेवाओं से वंचित हैं। अतः सेवाओं को नियोजित आधार पर व्यवहार में लाना आवश्यक है। नियोजन करना समूह-कार्य में आवश्यक है, क्योंकि ये सेवायें उनकी उपलब्ध करायी जाती हैं जो इससे वंचित हैं परन्तु उनके लिए आवश्यक हैं। उपलब्ध सेवाओं में सुधार केवल योजनाबद्ध तरीके से ही किया जा सकता है। यह कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व है कि वह नियोजन-प्रक्रिया में नेतृत्व ग्रहण करे, जिससे समूह को उच्चकोटि की सेवायें उपलब्ध करा सकें।

नियोजन के क्षेत्र अथवा स्थितियाँ :

1. उन क्षेत्रों को प्राथमिकता देनी चाहिए जहाँ पर सामूहिक कार्य सेवायें अभी तक उपलब्ध नहीं हो पायी हैं। यदि किसी विशेष समुदाय की ऐसी स्थिति हो तो सम्पूर्ण समुदाय के विषय में कार्यकर्ता कार्यक्रम बना सकता है।

2. एक समुदाय में उस समूह का पता लगाना तथा उनके लिए सेवाओं का नियोजन करना जो छूटे हुए हैं अथवा जो उपलब्ध सेवाओं का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। बच्चे, मातायें, वृद्ध आदि ऐसे हो सकते हैं।

3. उन समूहों तथा समुदाय के लिए योजना बनाना जहाँ पर सेवायें तो उपलब्ध हैं लेकिन वे निम्न स्तर की हैं।

4. एक ही प्रकार की संस्थाओं में समन्वय होने के लिए योजना बनाना।

नियोजन-प्रक्रिया का सिद्धान्त :

1. प्रत्येक समूह व समुदाय को एक प्रथम ईकाई के रूप में देखना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। उसे समूह-सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक होता है।

2. समूह व्यक्तियों की भाँति गत्यात्मक होते हैं। उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, अतः कार्यकर्ता को इस परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होना चाहिये। नियोजन का कार्य उस स्थान से प्रारम्भ हो जहाँ पर समूह है तथा उसकी क्षमताओं के अनुरूप ही कार्यक्रम निर्धारित किये जायें।

3. कार्यकर्ता को समूह को जैसा है उसी प्रकार स्वीकार करना चाहिए जैसे व्यक्ति सेवा-कार्य में सेवार्थी को स्वीकार किया जाता है। नियोजन का आधार समूह की क्षमतायें तथा योग्यतायें होनी चाहिये, जिससे समूह उन कार्यक्रमों को स्वीकार करें।

4. नियोजन में समूह-सदस्यों को पूरा अवसर मिलना चाहिए जिससे सदस्य लगाव अनुभव कर सकें।

5. समस्या-समाधान की प्रक्रिया का नियोजन इस प्रकार से हो जिससे सदस्यों को उपचार ढूँढ़ने का स्वयं का उत्तरदायित्व हो।

6. नियोजन-प्रक्रिया में समूह की आवश्यकताओं को प्राथमिकता मिलनी चाहिए और उन आवश्यकताओं को पूरा करने का तरीका भी सदस्यों को स्वयं ढूँढ़ना चाहिये।

XI. विकास का अर्थ :

सामूहिक कार्य में विकास शब्द का विशेष महत्त्व है। कार्यक्रम का नियोजन ही पर्याप्त नहीं है, उसका विकास करना उतना ही आवश्यक है। सामूहिक कार्य में हम विश्वास रखते हैं कि सामूहिक अनुभव के लिए कार्यक्रम का विकास अत्यन्त आवश्यक होता है। समूह में सदैव परिवर्तन होता है, क्योंकि परिवर्तन एक सामाजिक प्रक्रिया है। अतएव विकास भी निरन्तर गति से चलता रहता है। कार्यक्रमों का विकास भी इसी कारण अनिवार्य होता है। इसमें विकास के एक स्तर से दूसरे स्तर के साथ सम्बन्ध होता है तथा उसकी एक निश्चित दिशा होती है। यह परिवर्तन सरल स्तर से जटिल स्तर की ओर होता है।

XII. कार्यक्रम-नियोजन तथा विकास में अभिकरण (Agency) का महत्त्व :

अभिकरण के लिए कार्यक्रम का तात्पर्य उन क्रियाओं और सेवाओं से है जो उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तरीके के रूप में उपयोग की जाती हैं। कार्यक्रम सदैव

अभिकरण के माध्यम से ही किये जाते हैं। कार्यक्रम के नियोजन तथा विकास में अभिकरण का ध्यान रखना आवश्यक है। कार्यक्रम के संदर्भ में अभिकरण निम्नलिखित कार्य करता है :—

1. अभिकरण में उन कार्यक्रमों के प्रकारों का अभिलेखन होता है जो समुदाय व समूह से प्राप्त होते हैं।

2. कार्यक्रमों के लिए वह एक कार्यक्रम-कमेटी बनाता है।

3. कार्यक्रम अभिकरण के उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं।

4. ये कार्यक्रम समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं।

5. अभिकरण प्रत्येक कार्यक्रम को चलाने के लिए धन का भी ध्यान रखता है।

6. अभिकरण की निर्धारित नीति होती है और वह उसी के अनुरूप कार्यक्रम रखता है।

7. अभिकरण कार्यक्रम की कई प्रकार की क्रियाएँ करता है।

8. अभिकरण अपने छोटे-छोटे समूहों के द्वारा कार्यक्रम करवाता है।

9. अभिकरण में समूह से सम्बन्धित जो कार्यक्रम होते हैं उनमें समूह-सदस्य अवश्य भाग लेते हैं।

10. वह कार्यक्रमों का अभिलेखन करता है।

11. वह अभिलेखन का प्रयोग कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए करता है।

12. अभिकरण इस बात का ध्यान रखता है कि कार्यक्रम के तारतम्य में अन्तर न आने पावे।

XIII. कार्यक्रम नियोजन तथा विकास में कार्यकर्ता की भूमिका :

कार्यकर्ता कार्यक्रम नियोजन एवं विकास में निम्न प्रकार से सहायता करता है :

1. सदस्यों को कार्यक्रम नियोजित करने में सहायता :

समूह के सदस्य स्वयं अपने कार्य का नियोजन करते हैं, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि कार्यकर्ता इसमें कुछ भी नहीं करता। वह समूह की सहायता कार्यक्रम-नियोजन को अधिक प्रभावशील एवं रचनात्मक बनाने में करता है जिससे अधिक-से-अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव होती है। वह कार्यक्रम नियोजन के लिए अनुभव प्रदान करता है, क्योंकि कार्यक्रम का नियन्त्रण और विकास सदस्यों की उम्र पर निर्भर नहीं होता, बल्कि अनुभव पर निर्भर होता है। बच्चों के समूहों के साथ वह अधिकांश कार्यक्रमों का सुझाव रखता है और बच्चे उसमें से किसी एक कार्य का चुनाव करते हैं, क्योंकि बच्चों में इतनी

योग्यता एवं क्षमता नहीं होती कि वे स्वयं हितकारी कार्यक्रमों का चुनाव कर सकें। कार्यकर्ता समूह के विकास के अनुरूप अपने ज्ञान के आधार पर उचित सुझाव प्रस्तुत करता है और सम्भावनाओं पर प्रकाश डालता है। जब वह ऐसे समूह के साथ कार्य करता है जिनमें सामाजिक बाधित या मानसिक मन्दित लोग होते हैं तो उसकी भूमिका कार्यक्रम के निर्धारण एवं विकास में अधिक रहती है। इस प्रकार की सहायता उन समूहों के लिए भी आवश्यक होती है जिनमें सामूहिक कार्य का एक उपचार क्रिया के रूप में उपयोग किया जाता है या जो स्वयं बहुत की कम नियोजन की क्षमता रखते हैं।

सामूहिक कार्यकर्ता लगभग प्रत्येक प्रकार के समूहों के साथ कार्यक्रम-नियोजन एवं विकास में ऐसी सहायता करता है जिससे आवश्यकताओं एवं रुचियों की पूर्ति होती है। वह उनके सम्बन्धों को दृढ़ करता है, क्योंकि उनके आपस में सम्बन्ध तथा समूह और कार्यकर्ता के बीच सम्बन्ध इस बात को प्रभावित करते हैं कि नियोजन किस प्रकार का किया जाता है। वह यह देखता है कि कार्यक्रम में सभी सदस्य भाग ले रहे हैं अथवा नहीं। जो नहीं भाग ले रहे हैं उन व्यक्तियों की भाग लेने में सहायता करता है। कभी-कभी समूह में कार्यक्रम के नियोजन के कारण दो समूह बन जाते हैं, एक पक्ष में होता है, दूसरा विपक्ष में। कार्यकर्ता इस स्थिति में अपनी व्यावसायिक निपुणता के द्वारा ऐसे कार्यक्रम को स्वीकार करने के लिए सलाह देता है जो उनको अधिक से अधिक लाभ पहुँचा सकते हैं। अधिकतर कार्यक्रम वार्तालाप के माध्यम से नियोजित किये जाते हैं। वार्तालाप कार्यकर्ता द्वारा इस प्रकार निर्देशित किया जाता है कि समूह-सदस्य किसी प्रकार का बाहरी दबाव नहीं महसूस करते।

2. समूह की रुचियों की खोज करना तथा उनको उत्पन्न करना :

व्यक्तियों की अवस्था, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, व्यवसाय, संस्कृति तथा अन्य विभिन्नताओं के कारण रुचियों में भी विभिन्नता होती है। अतः कार्यक्रम-नियोजन इन्हीं रुचियों के आधार पर होना चाहिए। इसी प्रकार के कार्यक्रम सफल होते हैं, क्योंकि वे मनोवैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ होते हैं। अपने सामान्य ज्ञान से कार्यकर्ता विभिन्न व्यक्तियों की रुचियों एवं आवश्यकताओं का पता लगाकर उनकी उन्नति एवं विकास का स्तर निर्धारित करता है। वह यह समझता है कि किस उम्र में किस प्रकार की आवश्यकताएँ होती हैं। वह इस बात की भी कल्पना करता है कि मानसिक योग्यता किस स्तर तक पहुँच चुकी है और उसके अनुरूप समूह-सदस्य क्या चाहते हैं। स्कूल-पूर्व वाले बच्चे अक्सर ऐसी क्रियाएँ चाहते हैं

जिनसे वे अपनी संवेदनाओं का उपयोग कर सकते हों। वे कहानी, ड्रामा तथा रचनात्मक खेल इत्यादि पसन्द करते हैं। प्रारम्भिक स्कूल के बच्चे दौड़ना, भागना इत्यादि पसन्द करते हैं।

कायकर्ता समुदाय की रीति-रिवाजों का भी ध्यान रखता है और यह अनुमान रखना है कि विशेष रीति-रिवाज किस प्रकार के कार्यक्रम पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। वे रीति-रिवाज अभिकरण एवं कार्यकर्ता को किसी विशेष कार्यक्रम पर जोर देने के लिए भी प्रेरित करते हैं। समूह की यदि शिक्षात्मक उन्नति करनी होती है तो कार्यकर्ता को शिक्षण कार्य अधिक करना पड़ता है और यदि मानसिक विकास करना होता है तो वह मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ सम्पन्न कराता है।

जब समूह के सदस्य एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो वे क्रियाओं की एक लम्बी सूची तैयार करते हैं। परन्तु कभी-कभी ये क्रियाएँ वास्तविक तथ्य से परे होती हैं या उद्देश्य से उनका नाममात्र का सम्बन्ध होना है। प्रभावकारी व्यक्ति अपना प्रभाव क्रियाओं को निश्चित करने में उपयोग करते हैं। कार्यकर्ता इन प्रस्तावित क्रियाओं के विषय पर ध्यान देता है और समूह-सदस्यों की प्रतिक्रियाओं को देखता है तथा अनुमान लगाता है कि वे क्रियाएँ समूह के उचित विकास के लिए कहाँ तक उपयोगी हैं। वह यह देखता है कि यदि समूह के सदस्यों की संख्या पूरी रहती है, सदस्य थकान महसूस नहीं करते हैं तब तो क्रियाएँ ठीक हैं अथवा वे उपयुक्त नहीं हैं। सामूहिक कार्यकर्ता को सदस्यों की व्यक्त इच्छाओं, रुचियों एवं अव्यक्त रुचियों का ज्ञान होना चाहिए। समूह की चेतन तथा अचेतन इच्छाओं का भी उसको ज्ञान होना चाहिए।

3. पर्यावरण का उपयोग :

सामूहिक कार्यकर्ता नई कार्यक्रम-क्रियाओं के विकास के लिए पर्यावरण का उपयोग करता है। अभिकरण के यन्त्र तथा सुविधाएँ, जैसे—स्वास्थ्यवर्धक कक्ष, रिकार्ड प्लेयर, पुस्तकालय, तैरने का सामान, फुटबाल, वालीबाल इत्यादि समूह-सदस्यों को विशेष प्रकार की क्रियाएँ करने के लिए प्रेरित करती है। अगर दूसरे प्रकार की सुविधाएं, जैसे—ड्रामा, गाना-बजाना, कला, क्राफ्ट आदि उपलब्ध होती हैं तो कार्यक्रम का एक विशेष रूप होता है। जब अभिकरण कोई सुविधा प्रदान नहीं करता तो समूह की इच्छानुसार ही क्रियाओं का सम्पादन होता है।

कार्यकर्ता समूह के पर्यावरण को विभिन्न प्रकार से प्रभावकारी बना सकता है। वह पुस्तकों तथा अन्य सामग्री को खेलों में नवीनीकरण के लिए उपयोग में लाता है। वह विशेषज्ञों का उपयोग कर सकता है। समूह को बाहर प्रदर्शन के

लिए ले जा सकता है। नवीन कार्यक्रमों को जानने के लिए उसे उन अभिकरणों को दिखा सकता है जिनमें वे कार्यक्रम हो रहे हैं। कार्यकर्ता समूह के पर्यावरण का एक भाग है, अतः उसकी योग्यताएँ, क्षमताएँ, निपुणताएँ आदि कार्यक्रम के विकास में सहायक होती हैं। उसके अनुभवों द्वारा कार्यक्रम का विकास सम्भव होता है। परन्तु अपनी रुचियों एवं इच्छाओं को वह समूह पर नहीं थोपता है। कार्यकर्ता में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि वह समूह-सदस्यों के भावों को पहचान सके। यदि वे उसकी वरीयता को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं तो कार्यकर्ता समूह को स्वयं उन क्रियाओं के लिए प्रेरित करता है जिन्हें वह स्वयं नहीं चाहता। इससे वह समूह-सदस्यों की प्रतिक्रियाओं को जान लेता है और उस की उपयुक्ता अथवा अनुपयुक्तता को स्पष्ट करता है।

4. सीमाओं का उपयोग :

समूह आर्थिक, भौतिक तथा सामाजिक नियमों से नियन्त्रित होता है। वह अपनी क्रियाओं को इन सीमाओं से बाहर नहीं रख सकता है। अभिकरण में जो साधन उपलब्ध होते हैं उन्हीं के अनुरूप कार्यक्रम हो सकते हैं। कार्यक्रम निर्धारित करने में समय तथा उद्देश्य का भी ध्यान रखना होता है। यद्यपि समूह की असीम इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ होती हैं परन्तु कार्यकर्ता सीमाओं को देखकर कार्यक्रम के विकास में सहायता करता है। अभिकरण के नियम तथा साधनों की उपलब्धि समूह को अपनी क्रियाओं को बढ़ाने या कम करने के लिए बाध्य कर सकती हैं। कार्यक्रम को वित्तीय कारण भी प्रभावित करता है। उसको एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत ही खर्च करने का धन मिल सकता है। अतः कार्यकर्ता उसी के अनुरूप क्रियाओं को बढ़ाने में सहायता करता है। कार्यक्रम का नियोजन वित्तीय स्थिति के अनुरूप हो, इसलिए कार्यकर्ता समूह-सदस्यों को इससे अवगत कराकर उसी प्रकार के कार्यक्रम का विकास करवाता है। कार्यक्रम का नियोजन सम्भावित सफलता की ओर अवश्य होना चाहिए। अगर समूह के सदस्य अपंग हैं तो कार्यकर्ता को इसका भी ध्यान रखना चाहिए। कार्यकर्ता को सदस्यों की मानसिक स्थिति का भी ध्यान रखना चाहिए।

5. सुनना, अवलोकन करना तथा कार्य करना :

व्यक्तियों के कार्य करने के ढंग तथा शब्दों के उच्चारण, कार्यक्रम के कार्यान्वियन में अभिव्यक्ति के प्रकार आदि कार्यक्रमों में भाग लेने से स्पष्ट हो जाते हैं। कार्यकर्ता यह अवलोकन करता है कि समूह-सदस्य किस ढंग से बात-चीत कर रहे हैं तथा भाग ले रहे हैं। वह वास्तविक शब्दों पर अधिक जोर नहीं देता है बल्कि भावों पर अधिक ध्यान रखता है। वह समूह के वार्तालाप

का रुख जानता रहता है। कभी-कभी समूह नये शब्दों का उच्चारण क्रियाओं के मध्य करता है। सामूहिक कार्यकर्ता इन बातों को धैर्य से सुनता व समझता है। वह अक्सर नयी क्रियाएँ करने का प्रयत्न करता है, निपुणताओं को ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त करता है, मित्रता का विकास करता है, भावनाओं को व्यक्त करता है, पद-ग्रहण, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की बढ़ोत्तरी, घर, स्कूल, व्यवसाय तथा मित्रों के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। वह सदस्यों के विषय में जानकारी रखता है कि कौन सदस्य कार्यक्रम के नियोजन और विकास में कितना कार्य करता है। वह सदस्यों से बातचीत करके उसकी सहायता करता है।

6. विश्लेषण एवं अभिलेखन :

सामूहिक कार्यकर्ता समूह की क्रियाओं का अभिलेखन तथा विश्लेषण करता है। इससे उसे कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करने में काफी सहायता मिलती है। वह अभिलेख से यह देखता है कि समूह की गति क्या है, समूह-सदस्य कहाँ तक भाग ले रहे हैं, समूह कार्यक्रम-नियोजन में कहाँ तक रुचि रखता है, कार्यक्रम किस प्रकार से नियोजित किया गया है, किसने क्या सुझाव रखा है, किसने कार्यक्रम-नियोजन की रूपरेखा तैयार की है, किसने उसे स्वीकार किया है तथा किसने अस्वीकार किया है और सदस्यों की प्रतिक्रिया क्या है। इन बातों का वह अभिलेखन करता है। विश्लेषण से यह पता चलता है कि उसने कहाँ पर महत्त्व की बात छोड़ दी है। अभिलेखन के विश्लेषण से उसे समूह की प्रारम्भ से अब तक की क्रियाओं का पता चल जाता है और वह आगे उसी के अनुसार कार्यक्रम का विकास करता है।

7. निरीक्षण तथा परामर्श :

कार्यकर्ता समूह की रुचियों एवं इच्छाओं को समझने के लिए परिवार, स्कूल, घर तथा अन्य सामुदायिक स्रोतों का निरीक्षण करता है। गृह-सम्पर्क से कार्यकर्ता को सदस्यों के विषय में काफी जानकारी प्राप्त होती है। उनके पारिवारिक सम्बन्धों तथा जीवन-स्तर का ज्ञान हो जाता है तथा उनकी रुचियों, मूल्यों तथा मान्यताओं का भी पता चल जाता है। विद्यालय का अवलोकन करने से विद्यालय के पर्यावरण का भी पता चल जाता है। वह विद्यालय के विशेष कार्यक्रमों में भाग लेता है जिससे सदस्यों के विषय में जानकारी होती है। वह सदस्यों के परिवारों की आर्थिक दशा, स्वास्थ्य-स्तर, ज्ञान का स्तर तथा सांवेगिक समस्याओं का भी ध्यान रखता है। ये सूचनाएँ कार्यकर्ता को कार्यक्रम के विकास में सहायता देती हैं। वह उन अभिकरणों से भी सम्पर्क रखता है जो

परिवार-कल्याण का कार्य करते हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर वह समूह-सदस्यों की कार्यक्रम के नियोजन तथा विकास में सहायता करता है।

8. **शिक्षा तथा नेतृत्व**—वह कार्यक्रम का नेतृत्व इस प्रकार करता है कि समूह-सदस्य उससे आनन्द तथा अनुभव प्राप्त करते हैं। कार्यक्रम में सभी सदस्य समान रूप से भाग लेते हैं। ऐसा करने के लिए वह पहले सदस्यों को शिक्षा देता है जिससे वे क्रियाओं के विषय में समझते हैं तथा उनमें सामूहिक क्रियाओं के प्रति रुचि पैदा होती है। कार्यकर्ता को शिक्षा के नियमों का ज्ञान होता है। वह जानता है कि कार्यक्रम उन क्रियाओं से प्रारम्भ किया जाय जिनको समूह सदस्य जानते हैं और फिर नयी क्रियाएँ सम्पन्न की जाएँ। वह साधारण से जटिल कार्यक्रम की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। कार्यकर्ता क्रियाओं का विश्लेषण करता है जिससे उसको नेतृत्व करने में सहायता मिलती है। वह वहीं तक नेतृत्व करता है जहाँ तक समूह उचित समझता है। जब समूह समर्थ हो जाता है तो वह नेतृत्व नहीं करता।

9. **निपुणता प्राप्त करने में सहायता**—बहुत से व्यक्ति समूह-सदस्यता इसलिए छोड़ देते हैं क्योंकि उनमें भाग लेने की पूरी निपुणता नहीं होती। वास्तव में जिस व्यक्ति में कार्यक्रम क्रियाओं की निपुणता नहीं होती, वह हीनता अनुभव करता है और अपने को समूह से पृथक् कर लेता है, क्योंकि उसके समक्ष निपुणता वाले व्यक्तियों का ही सम्मान होता है। इस प्रकार के व्यक्तियों की सहायता कार्यकर्ता या तो समूह में या वैयक्तिक रूप से करता है। वह इन व्यक्तियों के लिए विशेष अभ्यास का भी प्रबंध करता है जिससे समूह के सभी सदस्य निपुण हो सकें।

10. **नेतृत्व में सहायता**—सामूहिक कार्यकर्ता सबसे पहले समूह के प्रत्येक सदस्य को अपना कर्तव्य और अधिकार समझाता है। नेता को समूह के संचालन की पूरी जिम्मेदारी वह इस विश्वास के साथ देता है कि समूह के प्रत्येक सदस्य को सुझाव देने तथा उनकी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर अवश्य मिलेगा। वह नेता को प्रजातांत्रिक ढंग से कार्य करने में सहायता करता है। वह विभिन्न तरीकों एवं ढंगों का उपयोग करने की शिक्षा देता है। वह कान्फरेन्सों के लिए नेता के सहयोग से एजेण्डा तैयार करता है, मिटिंग के लिए योजनाएँ बनाता है तथा पिछली मीटिंग का मूल्यांकन करता है। कार्यकर्ता शिक्षण द्वारा सदस्यों की क्रियाओं को करने तथा उनसे उत्पन्न मानसिक तनाव को दूर करने का प्रयत्न करता है तथा उनको क्रियाओं के नेतृत्व का अवसर देता है। वह उन शैक्षिक क्रियाओं को सम्पन्न करवाता है जिसमें प्रत्येक सदस्य स्वयं एक दूसरे

को शिक्षा देने में समर्थ होते हैं। कार्यक्रम नियोजन तथा विकास की क्रियाओं को स्वयं करने के लिए वह सदस्यों से कहता है परन्तु साथ ही वह भी उन पर ध्यान रखता है। वह जब देखता है कि कोई सदस्य किसी विशेष कार्य को इसलिए नहीं कर सकता क्योंकि उसका उत्तरदायित्व उसके ज्ञान-स्तर से उच्च हैं तो वह स्वयं उसका कार्य करता है। वह समय-समय पर प्रत्येक सदस्य की क्रियाओं को सम्पन्न करवाने का अवसर देता है।

11. **विशेषज्ञ का उपयोग**—विशेषज्ञ अपने अनुभव, निपुणता तथा प्रभावकारी व्यक्तित्व के कारण समूह के स्तर को ऊँचा उठाता है। कार्यकर्ता अपनी सेवाओं के लिए पहले सभी सदस्यों को समझाता है। जब समूह ऐसी कोई क्रिया करने की आवश्यकता महसूस करता है जिसमें कार्यकर्ता स्वयं निपुण नहीं है तथा कार्यकर्ता समूह के नेतृत्व को उस समय उचित नहीं समझता है, तो ऐसी स्थिति में वह दूसरे निपुण व्यक्ति का सहारा लेता है। परन्तु ऐसी स्थिति में पहले समूह की राय ली जाती है जिससे वह अन्य व्यक्तियों की सेवाओं को अस्वीकार न करें। कार्यकर्ता स्पष्ट करता है कि किस प्रकार विशेषज्ञ उनकी सहायता कर सकता है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए वह समूह-वार्तालाप का प्रबंध करता करता है। तब कार्यकर्ता विशेषज्ञ से सम्पर्क स्थापित करता है, समूह के विषय में सूचना देता है तथा विशेष क्षेत्र के विषय में उसे उत्तरदायित्व सौंपता है।

11. **कार्यक्रम में अभिकरण का स्थान**—अभिकरण के लिए कार्यक्रम का तात्पर्य उन क्रियाओं और सेवाओं से है जो उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तरीके के रूप में उपयोग की जाती है। कार्यक्रम सदैव अभिकरण के माध्यम से ही किये जाते हैं। कार्यक्रम के नियोजन तथा विकास में अभिकरण का ध्यान रखना आवयक है। कार्यक्रम के संदर्भ में अभिकरण निम्नलिखित कार्य करता है :—

1. अभिकरण में उन कार्यक्रमों के प्रकारों का अभिलेखन होता है जो समुदाय व समूह से प्राप्त होते हैं।

2. कार्यक्रमों के लिए वह एक कार्यक्रम कमेटी बनाता है।

3. कार्यक्रम अभिकरण के उद्देश्यों के अनुरूप होते हैं।

4. ये कार्यक्रम समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं।

5. अभिकरण प्रत्येक कार्यक्रम को चलाने के लिए धन का भी ध्यान रखता है।

6. अभिकरण की निर्धारित नीति होती है और वह उसी के अनुरूप कार्यक्रम रखता है।

7. अभिकरण कार्यक्रम कई प्रकार की क्रियाएँ करता है।

8. अभिकरण अपने छोटे-छोटे समूहों के द्वारा कार्यक्रम करवाता है।

9. अभिकरण में समूह से सम्बन्धित जो कार्यक्रम होते हैं उनमें समूह-सदस्य अवश्य भाग लेते हैं।

10. वह कार्यक्रमों का अभिलेखन करता है।

11. वह अभिलेखन का प्रयोग कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए करता है।

12. अभिकरण इस बात का ध्यान रखता है कि कार्यक्रम के तारतम्य में अन्तर न आने पावें।

13. **वृहद समूह तथा सामाजिक सामूहिक कार्य**—अब धीरे-धीरे कार्यकर्ता को बड़े समूहों के साथ कार्यक्रम-नियोजन तथा विकास करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाने लगा है। इसके अन्तर्गत बड़े सामाजिक मनोरंजनात्मक कार्यक्रम, जैसे—नृत्य, खुला वार्तालाप, बड़ी-बड़ी कक्षायें, टूर्नामेन्ट इत्यादि सम्मिलित किये जाते हैं। इन बड़े समूहों में तीस से लेकर सौ तक व्यक्ति होते हैं जो किसी विशेष कार्यक्रम के लिए उपस्थित होते हैं। इन बड़े समूहों में छोटे-छोटे समूह हो सकते हैं या केवल एक ही समूह हो सकता है। कभी-कभी छोटे-छोटे समूह इस प्रकार बढ़ जाते हैं कि उनकी छोटे समूह की विशेषतायें खत्म हो जाती हैं।

यह किसी भी प्रकार से नहीं कहा जा सकता है कि बड़े समूहों में उत्पादकता या लाभ कम होता है, वे व्यक्तियों की रुचियों को संतुष्ट करने में छोटे समूहों की अपेक्षा कम प्रभावशील होते हैं। साधारणतया बड़े समूहों का उद्देश्य छोटे समूहों के उद्देश्यों से भिन्न होता है। वे दूसरे प्रकार की आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हैं और उनका संगठन भिन्न क्षेत्रों में कार्य करने के लिए होता है। चूँकि सामूहिक कार्य व्यक्तियों के विकास करने का लाभदायक तरीका है, अतः प्रश्न उठता है कि सामाजिक सामूहिक कार्य समूहों के साथ कार्यक्रम विकास में कहाँ तक लाभदायक होता है। वैसे यह प्रणाली छोटे समूहों के साथ अधिक सुविधा एवं आसानी से कार्य कर लेती है परन्तु बड़े समूहों के साथ भी कार्य करना होता है। आज अधिकांश संस्थाओं के अन्तर्गत बड़े-बड़े समूह कार्य कर रहे हैं। वे अधिक बड़े समूहों में भाग लेने की निपुणता चाहते हैं, अर्थात् इन समूहों में सुचारु रूप से कार्य करने के लिए बड़े समूहों के साथ कार्य करने का अनुभव आवश्यक होता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् से जनसंख्या में भारी वृद्धि हो रही है। अतः संस्थाओं के लिए आवश्यक हो गया है कि वे बड़े समूहों के साथ कार्य करने का अनुभव प्रदान करें क्योंकि संस्थाओं की संख्या में न तो इतनी वृद्धि हो रही है और न ही संस्था का बजट इतना अधिक है। कोई भी

कार्यक्रम सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि बड़े समूहों को सेवायें प्रदान की जायँ।

बड़े समूह न तो अपने आपमें अच्छे होते हैं और न खराब। उनकी स्थिति सामूहिक नेतृत्व पर पूर्णतया निर्भर होती है। किसी भी समूह की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसको किस प्रकार का व्यावहारिक नेतृत्व प्राप्त हो रहा है। इस स्थिति में सामूहिक कार्यकर्ता कार्यक्रम को इस प्रकार से विकसित करता है जिससे व्यक्ति बड़े समूहों से अनुभव प्राप्त करे तथा बड़े समूहों में भाग लेने की निपुणता का विकास कर सके। कार्यकर्ता वैयक्तीकरण तथा वैयक्तिक भागीकरण में वृद्धि करता है। वह इन निपुणताओं को धीरे-धीरे विकसित करता है। पहले थोड़े बड़े समूहों में जहाँ पर वैयक्तीकरण तथा संपर्क सम्भव होता है, अनुभव प्रदान करता है और धीरे-धीरे बड़े समूहों की ओर प्रयास करता है। यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि समूह उतना ही बड़ा होता है जहाँ तक विचारों में समानता होती है तथा लोग एक-दूसरे से कुछ न कुछ अवश्य परिचित होते हैं।

कार्यकर्ता बड़े समूहों की सहायता उसको छोटे-छोटे समूहों में विभाजित करके कर सकता है—ये छोटे-छोटे समूह चाहे कुछ समय के लिए हों या लम्बी अवधि के लिए। सामूहिक नियोजन-प्रक्रिया में विभिन्न अवसरों पर अधिकांश सदस्य भाग लेते हैं तथा अपनी इच्छा व्यक्त करने का अवसर प्राप्त करते हैं। छोटी-छोटी समितियाँ बड़े समूहों को एक विशेष उद्देश्य-पूर्ति के लिए बनाई जाती हैं। यदि समूह में इन उत्तरदायित्वों को ग्रहण करने का अवसर क्रमानुसार व्यक्तियों को दिया जाय तो अधिकांश सदस्य प्रत्येक प्रकार के कार्य का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक कार्यकर्ता को आवश्यक सदस्यों को छोटे-छोटे समूहों में सन्दर्भित करने का अवसर मिलता है। बड़े समूहों के साथ कार्य करने के लिए कार्यकर्ता को अधिक निपुण होना चाहिए, क्योंकि असफलता की अनेक सम्भावनाएँ इसलिए बनी रहती हैं क्योंकि व्यक्तियों को अनेक उत्तरदायित्व सौंपे जा सकते हैं। कार्यक्रम का विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है और उसमें अधिक से अधिक सदस्यों को भाग लेने का अवसर कार्यकर्ता को प्रदान करना चाहिए, तभी उसकी सफलता है।

(xii) सामाजिक सामूहिक कार्य में कार्यक्रम माध्यम (Programme Media)

सामाजिक सामूहिक कार्य व्यक्ति तथा समूह का विकास विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से करता है। इन माध्यमों में खेल, मनोरंजनात्मक क्रियायें, नृत्य,

संगीत, कहानी, न ाटक, ड्रामा, कला, शिल्प, सिलाई, कढ़ाई, चित्रकारी, प्राकृतिक अध्ययन, शिक्षात्मक भ्रमण आदि प्रमुख हैं। कार्यक्रम के माध्यम (Tools) यंत्र हैं जिनका उपयोग समूह द्वारा इच्छित व्यक्तिगत एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। लेकिन यदि समूह के कार्यक्रम का उद्देश्य उन लक्ष्यों को प्राप्त करना है जिनको सदस्य चाहते हैं तो कार्यक्रम को विषयवस्तु तथा उसके कार्यान्वयन का तरीका उसी के अनुसार व्यवस्थित ढंग से होना चाहिए।

व्यक्तियों के जीवन में मनोरंजन सम्बन्धी कार्यक्रम क्रियाओं का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इससे निम्नलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति होती है :—

1. कार्यक्रम क्रियाओं में भागीकरण से आनन्द प्राप्त होता है, व ताज़गी का अनुभव होता है।

2. शारीरिक तथा सांवेगिक शक्ति का संचार होता है। मनोरंजनात्मक क्रियाओं के पश्चात् व्यक्ति को कार्य करने की नयी शक्ति प्राप्त होती है। उसके मनोगत्यात्मकता एवं शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है। शरीर व मन में जो भी तनाव होता है वह दूर हो जाता है।

3. आत्म-नियंत्रण तथा आत्म-उपयोग की निपुणता आती है। अपनी क्रियाओं पर नियंत्रण करना सीखता है। आत्म-निर्भरता एवं आत्म-सम्मान प्राप्त होता है, क्योंकि जब कार्यक्रम में व्यक्ति भाग लेता है तो उसे अपनी भूमिका पूरी करनी होती है एवं उस भूमिका के बदले समूह उसको मान्यता प्रदान करता है। शिल्प तथा कलात्मक क्रियाओं से वह कार्य-दक्षता प्राप्त करता है। उपलब्धि का भाव प्रबल होता है। उसे इन क्रियाओं के माध्यम से आत्म-प्रगटन का अवसर मिलता है। कुछ व्यक्ति यह सोचते हैं कि उनमें कोई रचनात्मक शक्ति या कला नहीं है लेकिन जब कार्यक्रम क्रियाओं में भाग लेते हैं और अनुभव प्राप्त करते हैं तो उनमें आत्म-विश्वास की भावना जागृत होती है। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम-क्रियाओं में भाग लेने से दूसरों को अपनी निपुणता दिखलाने का अवसर प्राप्त होता है।

4. वास्तविक जीवन में व्यक्ति अपनी कल्पनाओं को मस्तिष्क की उड़ानों, तथा, मन की ऊँचाई को नहीं पा सकता है। वह वास्तविकता से परे यदि सोचता है और व्यवहार करता है तो असामाजिक बन जाता है लेकिन नाटक, नृत्य, संगीत आदि कार्यक्रम-क्रियाओं द्वारा वह इन कल्पनाओं को वास्तविक रूप दे सकता है। इन अनुभवों को जहाँ एक ओर जीवन के नये अनुभव प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों को पूरा करने के अतिरिक्त शक्ति प्राप्त होती है।

5. साहसिक कार्यों को करने का अवसर प्राप्त होता है।

6. कार्यक्रम-क्रियाओं द्वारा सुरक्षा प्राप्त होती है। वह अनुभव करता है कि वह अकेला नहीं है, उसके साथ अनेक लोग सहयोग देने के लिए हैं।

7. सामाजिकता का गुण विकसित होता है। नये लोगों से मेल-मिलाप होता है तथा नये मित्र बनते हैं।

8. कार्यक्रम-क्रियाओं द्वारा मधुर स्मृतियाँ बनती हैं तथा सम्बन्धों में घनिष्ठता आती है।

क्रीड़ा (Play)

दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री, शिक्षाशास्त्री, मानवशास्त्री तथा मनोरंजनात्मक ज्ञानविद् क्रीड़ा को इतना महत्त्व देते हैं कि इसकी सम्प्रेरणा के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वे सिद्धान्त शारीरिक वृद्धि, शक्ति-संवर्धन, अतिरिक्त ऊर्जा, सामाजिक आवश्यकता, आत्म-प्रगटन, मनोरेचन आदि के नामों से जाना जाता है। रेन वाटर (Rain water) ने निम्न प्रकार से क्रीड़ा को परिभाषित किया है :—

'क्रीड़ा' मानव-व्यवहार का वैयक्तिक अथवा सामूहिक माध्यम है जिसमें मनोरंजनात्मक क्रियायें बिना किसी पुरस्कार की इच्छा से सम्पन्न की जाती हैं तथा किसी की आयु स्तर पर सम्पन्न होती हैं। उससे सम्बन्धित विशेष क्रिया उसी अवसर पर समूह की दैहिक संरचना तथा सामाजिक मनोवृत्तियों द्वारा निश्चित की जाती हैं।

क्रीड़ा सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए समान महत्त्व की होती है। कार्यक्रम क्रिया का चुनाव व्यक्ति-विशेष की रुचि एवं समूह की रुचियों के आधार पर चयन किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के सामूहिक सम्बन्ध तथा व्यक्तित्व कार्यक्रम विषयवस्तु (Content) का चयन में महत्त्वपूर्ण होता है।

क्रीड़ा का महत्त्व—मानव जीवन में क्रीड़ा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इसके द्वारा वह निम्न अवसर प्राप्त करता है :—

1. नियंत्रण अथवा दक्षता ग्रहण करता है।
2. इच्छापूर्ति के अवसरों का उपयोग करता है।
3. कल्पना के द्वारा वास्तविक जीवन से कुछ समय के लिए पृथक्ता प्राप्त करता है।
4. पराहं से कुछ समय के लिए छुटकारा मिलता है।
5. क्रियाओं के माध्यम से भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलता है।

6. सामूहिक जीवन के लिए नेतृत्व तथा अनुयायी दोनों गुणों को सीखता है ।

नियंत्रण—क्रीड़ा में सबसे पहले बालक अपने शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करता है । वह इन क्रीड़ाओं के माध्यमों से अपने शरीर के अंगों का उपयोग बार-बार करता है, जिससे शारीरिक नियंत्रण की क्षमता बढ़ती है । बालक खेलों में अधिक शक्ति लगाते हैं तथा जब उसमें सफल हो जाते हैं तो उन्हें एक प्रकार का आत्मिक सन्तोष प्राप्त होता है । बालक उन पदार्थों अथवा वस्तुओं पर भी नियंत्रण प्राप्त करते हैं तथा अपनी इच्छा के अनुरूप उनका प्रयोग करना सीखते हैं । वे खेलों के माध्यम से पर्यावरणीय कारकों पर नियंत्रण करना सीखते हैं । उनमें सक्रियता का विकास होता है तथा नेतृत्व के गुण आते हैं । इस प्रकार वह अपने शरीर पर नियंत्रण, पर्यावरण दशाओं पर नियंत्रण करना सीखता है । इस क्षमता को शारीरिक वृद्धि (Physiological growth) कहते हैं ।

इच्छा-पूर्ति (Wish fulfilment)—बच्चों के खेलों का आधार प्रायः इच्छा पूर्ति ही होता है । वह वही खेलते हैं जो वे खेलना चाहते हैं । वे अपने दिवा स्वप्नों को खेलों के माध्यम से प्रगट करते हैं । वे अपने को अच्छे बच्चे होने का अभिनय करते हैं तथा आत्म-स्थापन की प्रकृति को दृढ़ करते हैं । इस प्रकार के खेलों से कल्पना करने तथा उस पर नियन्त्रण करने की शक्ति आती है ।

खेल वास्तविकता एवं पराहं से अनुपस्थिति की मुक्ति हैं । (Play is a leave q absence from q reality, as well as from the super ego)[1] बालकों को खेलों में उन कार्यों को करने का अवसर मिलता है जो उनको व्यक्त करने के लिए प्रायः मना किया जाता है । उन्हें अपने क्रोध, घृणा, उग्रता आदि भावनाओं को खेलों के माध्यम से प्रगटन का अवसर मिलता है । बालक जब बड़े होने लगते हैं तो उनमें पराहं का विकास होने लगता है, जिसके कारण विपरीत लिंग के साथ प्रेम का प्रदर्शन नहीं कर सकते हैं । लेकिन खेलों में ऐसा कोई बन्धन नहीं होता है । सारांश में कहा जा सकता है कि बंधनों से मुक्ति दिलाकर खेल स्वतंत्रता की भावना का विकास करता है, जिससे व्यक्ति को उग्रात्मक एवं प्रेम की भावनाओं को स्पष्ट करने का अवसर मिलता है तथा इन कार्यों को करने का अवसर मिलता है जिनको वे करने से डरते हैं ।[2]

---

1. Walder, Robert : The Psycho-Analytic Theory of Play, Psycho-analytic Quarterly, Vol. 2, 1933, p. 222.
2. In short, by affording a release from restrictions, Play,

हँसी तथा रसिकता (Fun & Humer) :—हँसी तथा रसिकता खेल का महत्त्वपूर्ण अंग है। आश्चर्य, अप्रत्याशित तथा अर्थहीन (**absured**) क्रियायें हँसी उत्पन्न करती हैं। सामान्य विकास के लिए हँसी आवश्यक होती है। इससे सांवेगिक सन्तुलन तनाव कम होता है एवं सांवेगिक ऊर्जा का प्रवाह होता है। साथ ही साथ सांवेगिक सन्तुलन बनाये रखना सम्भव होता है। लेकिन हँसी के लिए शारीरिक एवं सांवेगिक सुरक्षा आवश्यक है। जो व्यक्ति सांवेगिक रूप से अस्त-व्यस्त होता है वह हँसी के वातावरण में समायोजन नहीं कर सकता है। अतः कार्यकर्ता को उसका ध्यान रखना चाहिये। जब हँसी समूह में दूसरों पर प्रकाश डालती है तो उससे समूह में विघटन उत्पन्न होता है।

सामाजिकता (Sociability) :—खेलों के माध्यम से बालक दूसरों के साथ रहना, काम करना, उठना-बैठना आदतों को छोड़ता है तथा कुछ को ग्रहण करता है। वह सदैव इसी बात का प्रयास करता है कि कैसे दूसरे सदस्य उसे अधिकाधिक मान्यता दें। वह यह भी अनुभव करता है कि सदैव नेता की भूमिका वह नहीं कर सकता है, उसे दूसरों को भी अवसर देने होंगे, अतः नेतृत्व व अनुयायी दोनों की भूमिका निभाना सीखता है। सामूहिक स्थितियों में खेल सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं के स्वस्थ प्रगटन का अन्तहीन अवसर प्रदान करते हैं। खेल बालकों एवं प्रौढ़ों को विभिन्न वर्गों, जातियों एवं सम्प्रदाय के लोगों के साथ कार्य करने का अवसर देता है जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना पनपती है।

अवकाशकालीन तथा मनोरंजनात्मक क्रियायें :

जिस प्रकार से खेल बालकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं उसी प्रकार मनोरंजनात्मक क्रियायें प्रौढ़ों तथा युवकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। पूर्ण शारीरिक विकास के लिए मनोरंजनात्मक कार्यों में भाग लेना आवश्यक होता है। वह इन कार्यों के द्वारा शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है एवं नवीन स्फूर्ति अनुभव करता है। समाज में ऐसे युवकों की आवश्यकता है जो अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकें। लेकिन युवक तभी अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर सकते हैं जब सांवेगिक तथा बौद्धिक रूप से इसके लिए तैयार हों। जिस व्यक्ति को बालपन में खेलों के माध्यम से आत्म-प्रगटन का अवसर नहीं मिलता है तथा खेलने का

---

provides a sense of freedom which makes it possible for individuals to express their real feding of hostility and of love and to do those things which they otherwise would fear to try. Wilson, G. Ryland, G. op. cit, p. 204.

अवसर नहीं मिलता है वह इस इच्छा को अचेतन में पहुँचा देता है लेकिन यदि युवावस्था में भी उसे अवसर नहीं मिलता है तो वह सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने में घबड़ाता है तथा उत्तरदायित्व से बचना चाहता है।

मनोरंजनात्मक समूह अपने सदस्यों को खेलने के अवसर प्रदान करते हैं जिससे वे अपने कार्यों को करने के लिए सामाजिक तथा सांवेगिक रूप से सदैव तत्पर रहते हैं। वे खेलों से वही संतोष प्राप्त करते हैं जो संतोष बालक खेलों से प्राप्त करते हैं। कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि प्रत्येक सदस्य के व्यवहार पर तथा उसके भागीकरण की बारम्बारता पर ध्यान रखे, जिससे उनमें सक्रियता संतोष प्राप्त करने के लिए जनतन्त्रीय व्यवस्था रखता है तथा वैयक्तिकरण के सिद्धान्त का अनुसरण करता है।

खेल (Games) :—खेल शब्द में तीन बातें निहित होती हैं :—एक निश्चित तरीका, निश्चित क्रियायें तथा निश्चित नियम एवं कार्यविधियाँ। जब कार्यकर्ता इन तीनों तत्त्वों तथा उनके मूल्यों से अवगत हो जाता है तो खेलों को वर्गीकृत करता है तथा समूह विशेष की आवश्यकतानुसार चुनाव करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब एक बार खेल प्रारम्भ हो जाता है तो ये दोनों कारक अन्तःक्रिया -प्रक्रिया के रूप में एक साथ प्रभावकारी होते हैं। खेल के तरीके प्रायः दो प्रकार के होते हैं—(1) सदस्यों का स्थान निश्चित होता है, (2) सदस्य खेल के मैदान में बिखरे रहते हैं, उनका कोई निश्चित स्थान नहीं होता है। प्रथम प्रकार के तरीके में एकीय चक्र, द्विचक्र, एकीय रेखा, द्विरेखीय या बहुरेखीय अथवा टीम संकुल की व्यवस्था होती है। समूह की रुचि के अनुसार क्रिया-कलापों को पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है। प्रत्येक खेल के निश्चित नियम होते हैं जिनको प्रत्येक सदस्य मानता है तथा कार्य-विधियों के अनुसार कार्य करता है। प्रत्येक सदस्य को अवसर मिलता है, सीमारेखा को सभी सदस्य मानते हैं, यदि कोई सदस्य भाग नहीं ले पाता है तो कुछ समय के लिए पृथक् हो जाता है, कार्यकर्ता के निर्णय को सभी सदस्य मानते हैं तथा अन्य नियमों का पालन करते हैं। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह खेल प्रारम्भ कराने से पहले निम्न बातों को निश्चित करे।

1. खेल खेलने के लिए किन तरीकों की आवश्यकता है। खेल के सम्बन्ध की रूपरेखा क्या होगी तथा किस स्तर के सहयोग की आवश्यकता होगी।

2. खेल के लिए किन-किन निपुणताओं का होना वांछनीय होगा तथा कौन-कौन निपुणतायें अधिक आवश्यक हैं।

3. किस प्रकार के नियमों तथा कार्य-विधियों को निश्चित करना होगा।

4. भाग लेने वाले सदस्यों के लिए उस विशेष खेल का क्या महत्त्व है तथा उसके लिए उसकी क्या उपयोगिता है।

5. सम्पूर्ण समूह को उस खेल से क्या लाभ है।

6. कार्यकर्ता इस खेल के मध्य सदस्यों से तथा समूह के विषय में क्या समझ सकता है।

खेल चयन का आधार :—कार्यकर्ता को सदस्य व्यक्ति, सम्पूर्ण समूह, संस्था तथा समुदाय के लिए अलग आधारों को ध्यान में रखकर खेल चयन करना चाहिये। एक सदस्य के लिए—ऐसे खेलों का चुनाव करना चाहिये जो शरीर पर अधिक बोझ न डाले परन्तु निरन्तर विकास होता रहे। खेल उसकी मानसिक एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार हो लेकिन अधिकाधिक मानसिक शक्ति के उपयोग का अवसर भी दे। खेल-सदस्य को संवेगों के स्पष्टीकरण का अवसर मिले परन्तु संवेगों पर नियन्त्रण करना भी सीखे। सामाजिक विकास का अवसर दे एवं सहयोगिक, उत्तरदायी एवं स्वीकृत व्यवहारों को विकसित करने का अवसर मिले। खेलों का उपयोग वह अपनी मानसिक व शारीरिक शक्ति वर्धन के लिए कर सकें तथा निपुणताओं का विकास कर सकें। नेतृत्व के गुणों को निखरने का अवसर मिले।

जब कार्यकर्ता सम्पूर्ण समूह को ध्यान में रखकर खेल का चयन करता है तो उसे निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये—

उस खेल का चयन करना चाहिये जिसके समूह के सभी सदस्य भाग ले सकें, उनकी आयु के अनुकूल हो तथा वैयक्तिक अन्तरों का कोई विशेष प्रभाव न पड़ता हो। खेल सदैव लिंग के अनुसार चयन करना चाहिये जिससे सदस्य भाग लेने में हिचकिचाहट एवं कठिनाई न अनुभव करें। खेलों का चयन सदस्यों के अनुभव को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिये। जिन खेलों में उनकी रुचि हो तथा खेलने का अनुभव हो उनको वरीयता मिलनी चाहिये। खेल ऐसे खेलने चाहिये जो समूह के उद्देश्यों के अनुरूप हो तथा कुछ न कुछ उसमें योगदान करते हों। साथ ही साथ समूह को रुचिकर हो। समूह इन क्रियाओं के माध्यम से अपनी उग्रात्मक भावनाओं को स्पष्ट करने में समर्थ हो, साथ ही साथ सदस्यों में एकता की भावना की वृद्धि भी हो। खेल समूह व संस्था की संरचना के अनुकूल हो तथा आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन करने की समूह क्षमता रखता हो। ऐसे खेलों का चयन किया जाना चाहिये जिससे एक साथ कार्य करने का अनुभव समूह-सदस्यों को प्राप्त हो। सदस्यों में प्रतिस्पर्धा हो, परन्तु एकता बनी रहे। सदस्यों को निर्णय लेने के अवसर प्राप्त हों तथा नई प्रकार की जिम्मेदारियाँ भी दी जायँ। खेल संस्था में उपलब्ध स्थान के अनुकूल हों।

खेलों के चयन के लिए आवश्यक है कि कार्यकर्ता उस विशेष खेल को पसन्द करता हो, उसके नियमों तथा ढंगों को जानता हो, कानूनों का ज्ञान हो तथा नेतृत्व की क्षमता रखता हो। वह समूह को उस खेल-विशेष से सम्बन्ध को समझाने की क्षमता रखता हो, जिससे वह खेल की उपयुक्तता एवं परिवर्तन की आवश्यकता की स्थिति से पूर्णतया अवगत हो। संस्था में उपलब्ध साधनों को उपयोग करने की निपुणता हो।

नृत्य (Dance)

प्राचीन काल से ही मानव जीवन में भाव व्यक्त करने का यह माध्यम प्रभावकारी रहा है। यह विशेष रूप से उन बातों एवं भावनाओं को स्पष्ट करने में प्रभावकारी है जिन्हें सामान्य रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है। यह एक प्रकार की कला है जिसके द्वारा उन सांवेगिक विषयों को व्यक्त किया जाता है जिसके लिए शब्द कम होते हैं। नृत्य न केवल किसी विशेष समूह की भावनाओं को व्यक्त करता है बल्कि इससे सम्पूर्ण संस्कृति का ज्ञान होता है। यदि इतिहास का अवलोकन करें तो ऐतिहासिक विकास तथा नृत्य में काफी सम्बन्ध देखने को मिलता है। लोक-नृत्य तो पूर्णतया संस्कृति को दर्शाते हैं।

प्रायः 3 प्रकार के नृत्य होते हैं :—(1) सोलो नृत्य—जिसमें केवल एक ही भागीदार होता है, (2) युगुल नृत्य जिसमें दो भाग लेने वाले होते हैं, (3) समूह नृत्य—जिसमें पूरा समूह भाग लेता है। कार्यकर्ता को चाहिये कि वह उन्हीं नृत्यों को प्रोत्साहन दे जिसमें अधिकाधिक समूह-सदस्य भाग ले सकें। इसमें पारस्परिक घनिष्ठता बढ़ेगी और झिझक कम होगी। नृत्य से न केवल भावनाओं का प्रगटन होता है बल्कि यह औषधि का कार्य भी करता है। असमायोजित व्यक्तियों के लिए नृत्य बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। वह नृत्य के द्वारा अपनी भावनाओं का इस प्रकार प्रदर्शन करता है जिससे समायोजन के चिह्न उभर आते हैं। वह इनके माध्यम से कल्पना-तरंगों व दिवास्वप्नों को साकार कर लेता है। उसे सामाजिक समस्याओं के प्रति ज्ञान होता है तथा नया सामाजिक अनुभव होता है। इससे उसकी आन्तरिक लैंगिक इच्छाओं का प्रगटन होता है तथा नये सम्बन्ध बनाने की कला आती है।

संगीत (Music)

संगीत एक सार्वभौमिक भाषा है जिसको परिभाषित करने की विशेष आवश्यकता नहीं है, क्योंकि संगीत तथा व्यक्ति का साथ बहुत पुराना है। इसके द्वारा पारस्परिक सम्बन्ध अति शीघ्र स्थापित हो जाते हैं। यह इतना शक्तिशाली माध्यम है कि व्यक्ति को निराशा की अन्तिम सीढ़ी तक ले जा सकता है

और जीवन में आशा का संचार भी उतने ही वेग से कर सकता है। यह युद्ध करा सकता है तथा शांति भी ला सकता है, यह लोगों को संगठित भी कर सकता है तथा विघटित भी कर सकता है। एकीकरण तथा विभेदीकरण करने की शक्ति संगीत में बहुत प्रबल होती है। अतः कार्यकर्ता को उन संगीत कार्यक्रमों का चयन करना चाहिये जो समूह का उत्साहवर्धन करे व उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। यह आवश्यक नहीं कि कार्यकर्ता स्वयं संगीतकार हो परन्तु उसकी रुचि संगीत में होनी चाहिए तभी कार्यक्रमों का संचालन ठीक प्रकार से कर सकेगा।

समूह-संगीत का अपना विशेष महत्त्व है। इसमें समूह का प्रत्येक सदस्य भाग लेता है और इस भागीदारी से वह समूह का अभिन्न अंग बनता है। वे समूह-संगीत से जो आनन्द प्राप्त करते हैं, अकेले गाने से नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

गाने (Songs) व्यक्ति के दिवास्वप्न हैं जिनके द्वारा वह अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं, विचारों, संवेगों आदि को स्पष्ट करता है। गाने के माध्यम से वह उन इच्छाओं को भी प्रगट कर देता है जिनको वास्तविक जीवन में नहीं कर सकता है। इसी कारण से मनुष्य सदियों से सुख-दुःख, घृणा-प्रेम, भय-सुरक्षा, विश्वास, आशा आदि को गानों के माध्यम से कहता आया है। विश्व में चाहे जितनी भाषायें हों परन्तु संगीत भाषा को सभी लोग समझ लेते हैं। अतः यह एकता बनाये रखने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

संगीत चिकित्सा के रूप में :—संगीत का उपयोग चिकित्सा के साथ शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के रोगियों के साथ किया जाता है। लेकिन मानसिक रोगियों पर इसका प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। यह वैराग्य की भावना को दूर करता है, एकाकीपन में कमी लाता है तथा जीवन में नयी उमंग, स्फूर्ति एवं ताजगी लाता है। रोगी संगीत की सहायता से वास्तविकता से सम्पर्क स्थापित करते हैं। संगीत का प्रयोग रोगी को शान्त करने के लिए किया जाता है। साथ ही साथ जब उसे उत्तेजित एवं सक्रिय करने की आवश्यकता होती है तो भी संगीत का उपयोग करते हैं। इसके द्वारा आन्तरिक दुःख को वाह्यीकृत कर दिया जाता है।

संस्था में कार्यकर्ता जब सांवेगिक रूप से घनिष्ठ व्यक्तियों के साथ कार्य करता है उस समय उसका ध्यान क्रिया के स्थान पर रोगी पर होना चाहिये। यदि संगीत से उसे लाभ होने की कोई गुंजाइश है तब तो इसका प्रयोग करना चाहिये। संगीत का प्रयोग सभी सदस्यों की रुचि का हो अन्यथा समूह में सामान्य वातावरण नहीं रहेगा। कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह ऐसे संगीत का कार्यक्रम रखे जो समूह के लिए मलहम का कार्य करें।

संगीत का चिकित्सा के रूप में 3 स्तरों पर महत्त्व है :—

1. संगीत से आत्म-बल को एक आलम्बन प्राप्त होता है तथा जीवन में निराशा दूर होती है, इससे रोगी की चिकित्सा में भाग लेने की दर एवं गहनता बढ़ती है ।

2. संगीत के माध्यम से रोगी अपनी भावनाओं, संवेगों तथा दिवास्वप्नों को साकार करता है जिससे आत्मिक संतोष प्राप्त होता है ।

3. समूह के सदस्यों में एकता आती है । भेद-भाव दूर होता है एवं विचारों में निकटता आती है ।

कहानी (Story telling)

कहानी सुनना सभी आयु के लोग पसन्द करते हैं लेकिन बच्चों के लिए तो व्यक्तिगत वृद्धि एवं सामाजिक विकास का स्रोत है । कहानी वह माध्यम है जिसके द्वारा एक ओर अपनी अचेतन भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलता है और दूसरी ओर वह अपने तथा दूसरों के विचारों, भावनाओं, दृष्टिकोणों तथा मानसिक तत्परता से अवगत होता है । बच्चे साहसिक तथा परियों से सम्बन्धित कहानियाँ सुनना पसन्द करते हैं । युवा तथा प्रौढ़ अपने अनुभव के आधार पर जीवन की वास्तविक कहानियों में रुचि रखते हैं ।

सामाजिक सामूहिक कार्य में कहानी की भूमिका का सम्बन्ध केवल कार्यकर्ता तक ही नहीं होता है अर्थात् कहानी कहने का कार्य केवल कार्यकर्ता ही नहीं करता है बल्कि सदस्यों को कहानी कहने के लिए प्रेरित किया जाता है । कहानी कहने का कार्यक्रम तभी सफल हो सकता है जब स्थितियाँ पूर्णतया अनौपचारिक हों । बच्चों में कहानी का कार्यक्रम भली-भाँति हो सकता है लेकिन युवकों में अनुभव से ही हो सकता है । कार्यकर्ता को सभी सदस्यों की मुखाकृति, हाव-भाव तथा प्रतिक्रिया पर ध्यान देना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक सदस्य की प्रतिक्रियायें वैयक्तिक भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती हैं । सदस्य का सामाजिक दृष्टिकोण कहानी की विषयवस्तु को निश्चित करता है । विषयवस्तु की दृष्टि से 3 प्रकार की कतानियाँ होती हैं—(1) भय उत्पन्न करने वाली, (2) इच्छा-पूर्ति वाली तथा (3) शिक्षात्मक । कार्यकर्ता इन कहानियों का चुनाव समूह के साथ करता है । वह कहानी के माध्यम से अपने लक्ष्य को स्पष्ट करता है तथा भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करता है ।

नाटक (Drama) :

नाटक सम्बन्धी क्रियाओं में अनेकानेक खेल, मूक अभिनय, छायांकन, कठपुतली, तमाशा इत्यादि प्रमुख हैं । इन तरीकों से क्रियाओं अथवा शब्दों

अथवा दोनों से विचारों तथा भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। नाटककार स्वयं आकर्षण का बिन्दु होता है अतः उसका विचार अपनी भूमिका को अधिक से अधिक अच्छे ढंग से करने की होती है। इसमें समूह के स्थान पर व्यक्ति सदस्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता है। इसी कारण नाटक का माध्यम सभी वर्ग के सदस्यों को रुचिकर नहीं लगता है।

नाटकीय खेलों की बालकों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके माध्यम से वे सामाजिक प्रत्युत्तरों के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, जिससे कार्यकर्ता उनकी मनोवृत्तियों एवं दृष्टिकोणों का ज्ञान प्राप्त करता है। वह बालकों के नाटक को देखकर सामाजिक सम्बन्धों के प्रभाव को जानता है। खेलों के माध्यम से वे बड़ों की भूमिका जब निभाते हैं तो उनके अहं का विकास होता है और सम्बन्धों को स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त होता है।

व्यक्तियों तथा समूहों की समस्याओं के समाधान में नाटकों के महत्त्व को प्राचीन समय से ही समझा गया लेकिन इसके उपयोग की विधि को डॉ० मोरेनो (Mereno) ने साकार रूप दिया, जिसे मनो-अभिनय (Psycho-drama) तथा सामाजिक अभिनय (Socio-drama) के नाम से जाना गया। मनो-अभिनय व्यक्तिगत वैचारिकी व अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों से निपटने की गहन क्रियात्मक प्रणाली है जबकि सामाजिक अभिनय अन्तर्समूह सम्बन्धों एवं सामाजिक वैचारिकी से निपटने की क्रियात्मक प्रणाली है। सामाजिक अभिनय का उपयोग सांस्कृतिक सम्बन्धों को समझने तथा उनमें सुधार के लिए किया जाता है, क्योंकि इसमें लोग सामूहिक अनुभवों का चित्रण करते हैं। सांस्कृतिक भिन्नता के कारण तनाव को वास्तविक सूचना देकर कम नहीं किया जा सकता है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें उनकी कमियों व वास्तविक उद्देश्यों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

नाटक का महत्त्व समूह के लिए बहुत ही प्रभावकारी है, क्योंकि नाटक देखने के उपरान्त वे उनके नायकों के विषय में बातचीत करते हैं जिससे वे अपनी सभी समस्या को व्यक्त करते हैं। कुछ कार्यों को तो समर्थन देते हैं तथा कुछ का विरोध करते हैं, इससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। नाटक सदस्यों को अपनी समस्याओं का मूल्यांकन करने का अवसर देते हैं। यदि नाटक का विषय सामाजिक महत्त्व का होता है तो समूह का प्रत्येक सदस्य उस समस्या का विस्तार से बातचीत करता है जिससे साम्प्रदायिक चेतना जागृत होती है।

समूह में नाटक विधि से सामाजिक और वैयक्तिक वृद्धि की जाती है। इससे भूमिका पूरी करने की कला विकसित होती है तथा सहयोग करने की आवश्यकता

का महत्त्व स्पष्ट होता है। सदस्यों में सामाजिक जागरूकता आती है तथा उनमें कलात्मक निपुणता का विकास होता है।

कला एवं शिल्प (Arts and Crafts)

कला एवं शिल्प सम्बन्धी कार्यक्रम-क्रियाओं से समूह-सदस्य आत्म-प्रगटन का अवसर पाते हैं, विश्वास के साथ निर्णय ले लेते हैं, रचना का ज्ञान होता है तथा कला के महत्त्व का ज्ञान होता है। भागीकरण व्यक्तिगत स्तर पर होता है क्योंकि प्रत्येक सदस्य अपना पृथक् कार्य करता है। लेकिन सभी सदस्य एक स्थान पर एक साथ कलात्मक क्रियायें करते हैं इससे शर्मीले सदस्यों को सामूहिक जीवन से आनन्द उठाने का अवसर मिलता है, शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति भी भाग ले सकते हैं। अर्थात् वे सभी इन क्रियाओं में भाग लेकर सामूहिक जीवन का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं जो लेन-देन प्रक्रिया में भाग नहीं लेना चाहते हैं परन्तु समूह में रहना चाहते हैं। लेकिन इस प्रकार के कार्यक्रम में भी यद्यपि सभी भाग लेने वाले सदस्य अपना-अपना कार्य करते हैं फिर भी एक-दूसरे का ज्ञान अवश्य रखते हैं तथा कुछ न कुछ सहयोग भी करते हैं। शिल्प-क्रियाओं में लगे सदस्य औजारों, कच्चा माल, स्थान आदि में एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। धीरे-धीरे एक-दूसरे के मित्र एवं सहयोगी बन जाते हैं और समूह का अंग हो जाते हैं। समूह प्रोजेक्ट में सभी सदस्य कुछ न कुछ योगदान देते हैं और इसके परिणामस्वरूप "हम भावना" (we feeling) का विस्तार होता है।

समूह में अनेक दक्ष एवं निपुण सदस्य होते हैं जो कला एवं शिल्प के किसी एक कार्य में; जैसे पोस्टर बनाना, कार्ड बनाना, झाँकी बनाना, चित्र बनाना, उच्चकोटि की योग्यता रखते हैं। समूह इन सदस्यों की सेवाओं को प्राप्त करता है। लेकिन कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह यह भी देखे कि समूह उस सदस्य का शोषण न करे तथा सामान्य क्रियाओं में भी भाग लेने का अवसर दे। इसके अतिरिक्त वह सदस्य स्वयं अपना विशेष कार्य करने में रुचि दिखा सकता है. लेकिन इससे वह सम्पूर्ण समूह से पृथक् हो जायगा और सामूहिक अनुभव से वंचित रह जायेगा।

कलात्मक एवं शिल्प सम्बन्धी क्रियाओं का अपना विशेष महत्त्व है। इससे व्यक्ति में उपलब्धि का भाव (Sense of achievement) आता है, आत्म-विश्वास जागृत होता है क्योंकि जब किसी वस्तु की रचना कर लेता है तो उसका अहं दृढ़ होता है। कला एवं कौशल का विकास होता है, रचनात्मक क्रियायें करने की इच्छा प्रबल होती है, उसमें शक्ति ऊर्जा की भावना जागृत होती है तथा इच्छाओं को साकार रूप देने की कला आती है। इसके साथ ही साथ वह अनु-

शासन में रहना सीखता है, सीमाओं का पालन करता है तथा एकाग्रचित्त होकर समस्या को समझता है ।

जब कलात्मक एवं शिल्प सम्बन्धी क्रियायें समूह में होती हैं तो सदस्यों में वार्तालाप अधिक स्वतंत्र रूप से होता है । कार्यकर्ता इस प्रकार के वार्तालाप से उनकी समस्याओं तथा मनोवृत्तियों के सम्बन्ध में अन्तःशक्ति प्राप्त करता है जिनको वह सामान्य रूप से काफी समय में जान सकता है । इन क्रियाओं से जहाँ एक ओर सांवेगिक तनाव कम होता है वहीं दूसरी ओर आत्मविश्वास जागृत होता है और समायोजन करने की क्षमता आती है ।

अध्याय 15

समूह-निदान

(Group Diagnosis)

निदान शब्द चिकित्साशास्त्र में अधिकांशतः प्रयोग किया जाता है जिसका तात्पर्य रोग के सम्पूर्ण ज्ञान से होता है। समाजकार्य में निदान का अर्थ न केवल समस्या के पूर्ण ज्ञान से होता है बल्कि सेवार्थी (व्यक्ति) जो समस्या ग्रसित है उसके सम्बन्ध में भी पूर्ण ज्ञान से होता है।[1] निदान सेवार्थी द्वारा प्रस्तुत समस्या की वास्तविक प्रकृति से सम्बन्धित व्यावसायिक मत है।[2] निदान तथा चिकित्सा एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं, क्योंकि निदान चिकित्सा को निर्देशित करता है और जैसे-जैसे चिकित्सा की प्रगति होती है, निदान में परिवर्तन तथा विकास होता है अतः चिकित्सा को पुनः निर्देशित किया जाता है।[3] निदान का स्वरूप निश्चित करने एवं समस्या के समाधान के लिए तथ्यों के अन्वेषण की आवश्यकता होती है। परन्तु सहायता की प्रक्रिया में निदान का महत्त्व अन्वेषण से अधिक हो जाता है।[4]

I. निदान का अर्थ

यहाँ पर हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं एवं विचारों का उल्लेख निदान शब्द को स्पष्ट करने के लिए कर रहे हैं :—

रिचमण्ड, मेरी (1917)[5] :

सामाजिक निदान, जहाँ तक सम्भव हो एक सेवार्थी के व्यक्तित्व तथा सामाजिक स्थिति की एक यथार्थ परिभाषा पर पहुँचने का प्रयत्न है।

---

1. Hamilton, G., : Principles of Social case Recording; Columbia University Press, Newyork, 1946, P. 66.
2. Ibid, p. 66.
3. Tousing, Helen P. : Treatment as an Aid to Diagnosis, *The family* Jan. 1939, pp. 289–294.
4. Sensbury, E. : Social Diagnosis in case Work; Routledge and Kegan Paul Ltd., London, 1920, p. 13.
5. Social diagnosis is "The attempt to arrive at an exact

सजफ्लोरेन्स (1950)[6]

निदान, (1) ज्ञात तथ्यों (दर्शनीय तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य) के आधार पर संरचित एक व्याख्या है। (2) दूसरे सम्भव व्याख्यानों को ध्यान में रखते हुये एक व्याख्या है। (3) जब सम्बन्धित विषय भिन्न व्याख्या प्रस्तुत करता है तो इसमें परिवर्तन एवं मूल्यांकन भी सम्भव है।

काकेरिल, इलेनर ई, लईस जैलेरमैन एण्ड[7]—दूसरे (पिट्सबर्ग फैकल्टी ग्रुप) 1973 अध्ययन द्वारा प्रकाश में लाये गये तथ्यों की व्याख्या एवं संयोजक है तथा सम्पूर्ण घटना की एक परिभाषा और इसके व्यवहार तथा विकास की व्याख्या एवं ज्ञान प्रदान करता है। इसका उद्देश्य कारण को निश्चित करना

---

definition as possible of the social situation and personality of a given client".
Richmund, M. : Social Diagnosis, Russell Sage Foundation, Newyork, 1917, p. 5.

6. Diagnosis is (i) an explanation formulated in the lighting known facts (both tangible fact items and psychological fact items), (ii) an explanation made in the knowledge of other possible explanations, and (iii) subject to change or rivision wherever subsequent material warrents a different explanation." *Suzflorence* : "The Development of Method in Social case Work," in Corakassius; Principles and Techniques in Social Case Work Family Service Association Newyork, 1952, p. 320.

7. "Diagnosis is the organization and interpretation of the facts uncovered by study and provides a definition of the total phenamenon and on understanding and interpretation of its behavior and development. It aims to determine cause and to predict how the organism will behave under definable circumstances."
Quoted in Aptekar's book, "The Dynamics of Case Work and Counselling; Houghton Mifflin Company, Newyork, 1955, p. 143.

तथा भविष्यवाणी करना कि किस प्रकार से एक परिभाषित दशा में प्राणधारी जीव व्यवहार करेगा।

आप्टेकर, हरवर्ट, एच (1955)[8]

निदान जैसा कि निदानात्मक सम्प्रदाय ने देखा है, समस्या के कारणों की खोज है जो सेवार्थी को कार्यकर्ता के पास सहायता के लिए लाती है। समस्या के कारण मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों होते हैं।

अतः निदान का सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक या व्यक्तित्व के कारकों को जो सेवार्थी की समस्या से कारणात्मक सम्बन्ध रखते हैं और सामाजिक या पर्यावरणीय कारक, जो इसको स्थिर रखते हैं, के ज्ञान से है।[9]

यंग, एल (1956) :[10]

सामाजिक निदान एक निश्चित निष्कर्ष अथवा तस्वीर होती है जो सदैव अपूर्ण रहती है जो कि एक निश्चित समय पर सभी तथ्यों का अवलोकन एवं समझ द्वारा प्राप्त की जाती है तथा जो किसी विशेष उद्देश्य के किसी विशेष परिस्थिति के सन्दर्भ से जोड़ी जाती है।

(II) समूह-निदान :

समूह-निदान का तात्पर्य समूह की आवश्यकताओं एवं समस्याओं की प्रकृति

---

8. 'Diagnosis, as seen by the diagnostic school, is a search for the cause of the problem which brings the client to the worker for help."
   Aptekar, H. : The Dynamics of Case Work and Counselling; Honghtan Mifflin Camp. Newyork, 1955, p. 72.
9. Diagnosis, is therefore, concerned with understanding both the psychological or personality factors which bear a casual relation to the clients difficulty and the social or enviromental factors, which tend to sustain it." *Ibid, p. 72.*
10. 'Social diagnosis is a certain conclusion or picture, always incomplete, made up of all the observed and understood facts at a given time, fitted together within a particular frame of reference, for a particular process."
    Young. L. : Diagnosis as a creative Process, *Social Case Work*, June, 1956, p. 275.

के विश्लेषण तथा परिभाषा से है जो कि एक व्यावसायिक कार्यकर्ता द्वारा सम्पन्न किया जाता है। समूह-कार्यकर्ता समूह की आवश्यकताओं की प्रकृति का विश्लेषण करता है तथा समस्याओं की गहनता, विस्तार तथा उन कारकों की व्याख्या करता है जो कि समस्या के लिए उत्तरदायी होते हैं। समूह-निदान एक प्रकार का व्यावसायिक निर्णय होता है जो कि साक्ष्यों पर आधारित होता है तथा उसके समर्थन में अनेक प्रमाण होते हैं।

"Group diagnosis means and implies the explanation of the nature and definition of the professional social worker. It is the expert opinion of the needs and problems of the group by the professional social worker about the nature of the need and the problem of the group, a sort of professional judgement arrived at and supported by evidence and reasons, checked and rechecked."

जिसेला कोनोप्का के अनुसार :

सामूहिक निदान का कार्य सामूहिक स्थिति का विश्लेषण करके निम्न प्रकार से किया जाता है :—

1. समूह-उद्देश्यों के स्थापन द्वारा तथा
2. समूह-स्थिति के मूल्यांकन (Assessment) द्वारा।

समूह के उद्देश्यों का निर्धारण केवल कार्यकर्ता द्वारा ही नहीं किया जाता है बल्कि निम्न कारकों के परस्पर अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप सम्भव होता है :–

1. समूह तथा उसकी व्यक्त आवश्यकतायें,
2. अभिकरण (Agency) तथा उसके उद्देश्य,
3. कार्यकर्ता तथा उसका ज्ञान।

ऐसी भी स्थितियाँ होती हैं जहाँ पर ये तीनों कारक एक-दूसरे के सहयोगी हों, अनुपूरक हों अथवा विरोधी हों। तीसरी अवस्था में काम करना कार्यकर्ता के लिए बहुत कठिन होता है, अतः उग्रात्मक समाजकार्य (Aggressive Social Work) का माध्यम लेना आवश्यक हो जाता है।

समूह स्थिति का मूल्यांकन निम्न माध्यमों से किया जाता है :—

1. व्यक्ति तथा समूह विकास के सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर,
2. सुनने के द्वारा,
3. अवलोकन द्वारा,
4. परानुभूति द्वारा (empathy)।

III. समूह निदान-प्रक्रिया (Process of Group Diagnosis) :

सामूहिक कार्य में प्रत्येक समस्या के विषय में कार्यकर्ता को निश्चित करना पड़ता है कि किस प्रकार से उनकी समस्याओं को अधिकाधिक संतोष के साथ सुलझाया जा सकता है। इसके लिए वह समूह का अध्ययन करता है तथा अपने व्यावसायिक ज्ञान द्वारा समस्या के कारणों की खोज करता है। खोज करने के पश्चात् यह निश्चित करता है कि चिकित्सा प्रबन्ध का क्या स्वरूप हो। इस निदान के अन्तर्गत तीन चरण होते हैं :

(अ) तथ्यों का मूल्यांकन (Evaluation of the facts)

कार्यकर्ता तीन प्रकार के तथ्यों का मूल्यांकन करता है :—

1. **समस्या का मूल्यांकन** :—समस्या का मूल्यांकन करते समय कार्यकर्ता देखता है कि समूह या समूह-सदस्य किस समस्या से ग्रसित हैं, कब से समस्या का प्रारम्भ हुआ है, समस्या के अन्तर्गत कौन-कौन से कारक हैं जिनके कारण सदस्य चिन्तित हैं, सदस्यों ने समस्या सुलझाने के क्या प्रयत्न किये हैं, प्रयत्नों से कितनी सफलता प्राप्त हुई है। समस्या के समाधान के लिए किन-किन तरीकों एवं साधनों की आवश्यकता है, समूह को इस क्षेत्र में कितना ज्ञान है, वह स्वयं अपनी जिम्मेदारी कितनी ग्रहण करना चाहता है, समस्या का समूह के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर कार्यकर्ता ढूँढ़ता है।

2. **सदस्यों के व्यक्तित्व का मूल्यांकन** :—कार्यकर्ता सदस्यों की अहं शक्ति का मूल्यांकन समस्या समाधान हेतु करता है। वह देखता है कि समूह का व्यवहार कैसा है, उसके अनुभव कैसे हैं, उसकी निर्णय-शक्ति किस प्रकार कार्य करती है, समूह-सदस्य बाह्य तथा आन्तरिक दबावों को किस प्रकार महसूस करते हैं। समूह की कार्यकर्ता से तथा संस्था से क्या आशायें हैं तथा इन आशाओं की पूर्ति कहाँ तक की जा सकती है। सदस्यों की समायोजन की क्षमता का भी अध्ययन कार्यकर्ता करता है। सामूहिक कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य के निम्न व्यवहार का पता लगाता है :—उत्साहवर्धन का स्तर, मध्यस्थता का रूप तथा स्तर, कार्य करने की जिज्ञासा तथा प्रस्तावों का रूप एवं प्रकार, सुझाव जो देता है अथवा जो चाहता है, विचार जो प्रगट करता है अथवा जो जानना चाहता है, सूचना जो देता है तथा जो चाहता है, समस्या सुलझाने में योगदान अथवा बाधा, व्यवहार का रूप, आत्म-स्थापन की सीमा, उग्रात्मक प्रदर्शन, निविक्रियता, शान्ति बनाये रखने में भूमिका, समूह का नेतृत्व इत्यादि।

सामूहिक क्रिया के अन्तर्गत कार्यकर्ता निम्न प्रश्नों के उतर ढूँढ़ता है जिससे समूह की विकास की स्थिति का पता चलता है :—

समूह के लक्ष्यों की स्पष्टता :—कार्यकर्ता जानने का प्रयत्न करता है कि समूह के लक्ष्य कितने स्पष्ट हैं। क्या ये लक्ष्य स्वयं संघर्ष का कारण हैं, अनिश्चित हैं तथा ग्रसित करने वाले हैं। वह पता लगाता है कि समूह के लक्ष्यों का समूह को कितना ज्ञान है। कार्यकर्ता यह जानने का प्रयत्न करता है कि समूह में कितना विश्वास एवं खुलापन है तथा समूह-सदस्य कितना संवेदनशील तथा समस्या से परिचित है, समूह ने कितना कार्य व्यवस्थित ढंग से किया है, नेतृत्व का स्तर क्या रहा है तथा समूह ने निर्णय किस प्रकार लिये हैं, अत्यल्प तथा बहुमत का व्यवहार रहा है भागीकरण का स्तर है, समूह ने साधनों का उपयोग किस सीमा तक किया है, समूह में कितना प्रेम तथा अपनापन है। कार्यकर्ता समूह के नियमों, घटनाओं, उपस्थिति, वार्तालाप का कार्य की विषयवस्तु तथा समूह द्वारा समस्या पर दिये गये महत्त्व का मूल्यांकन करता है।

3. सामाजिक पर्यावरण का मूल्यांकन :—कार्यकर्ता परिवार, स्कूल, पड़ोस, धार्मिक संस्थाओं, आर्थिक क्रिया-कलाप, कार्यदशाओं एवं अन्तर्सम्बन्धों का मूल्यांकन करता है। समूह की परिस्थितियों, घटनाओं तथा सम्बन्धित कारकों का अध्ययन करता है। परिवार का प्रकार, परिवार के सदस्य, संस्था, माता-पिता, भाई-बहन की आयु, शिक्षा का स्तर, व्यवसाय का प्रकार, परिवर्तन, अनुशासन के तरीके, आर्थिक स्थिति, सांवेगिक दशायें आदि अध्ययन की जाती हैं। वह जानने का प्रयत्न करता है कि विद्यालय का प्रभाव समूह पर कहाँ तक पड़ा है तथा जहाँ सदस्यों ने शिक्षा प्राप्त की है वहाँ का अनुशासन, अन्तःक्रिया, संबंध, सहयोग कितना रहा है। समूह की भौतिक दशाओं का भी मूल्यांकन किया जाता है। संस्था में उपलब्ध स्रोत, समुदाय में उपलब्ध सुविधाओं एवं बाधाओं का मूल्यांकन होता है।

(ब) कारणान्वेषण :—कारणान्वेषण के अन्तर्गत निम्न 4 कदम उठाये जाते हैं :

(1) **समस्या का रूप** :—समूह में सामान्यतः 3 प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं :—

1. उदासीनता (Apathy) तथा भागीकरण की कमी, 2. संघर्ष (Conflict), 3. गलत निर्णय (Inadequate judgement) जिसके कारण दिशा एवं शक्तिहीनता।

उदासीन सदस्यता समूह के लिए स्वयं एक बड़ा रोग है। समूह इस रोग से अनेक रूपों में पीड़ित हो सकते हैं। कभी सदस्य विपरीत दृष्टिकोण प्रगट करते हैं और कभी अधिकतम विरसता (Broedom) के लक्षण रखते हैं। उदासीनता के लक्षण उत्साह की कमी के रूप में भी दिखलायी देते हैं, जिससे अपनी

शक्ति का उचित उपयोग नहीं कर पाते और असंतुष्ट दिखायी देते हैं। सामान्यतः निम्नलिखित लक्षण उदासीनता के द्योतक हैं।

जमहाई लेना, ऊँघना, वार्तालाप में भाग न लेना तथा केन्द्रबिन्दु से प्रथम वार्तालाप करना, भागीकरण का निम्न स्तर होना, वार्तालाप खिंचता दिखलायी देना, सदस्यों का समय से न आना तथा प्रायः अनुपस्थित रहना, आशाहीन अवस्था दिखायी देना तथा बेचैन रहना, अतिशीघ्र निर्णय लेना, निर्णयों पर स्थिर न रह पाना, स्थगन प्रस्ताव के लिए सुझाव तैयार रखना, उत्तरदायित्व ग्रहण करने में सकुचाना। निर्णयों पर अमल करने में कठिनाई, नेता की उपेक्षा, वार्तालाप में अरुचि, अतार्किक वार्तालाप आदि।

समूह में संघर्ष की स्थिति उस समय परिलक्षित होती है जब सदस्य अधैर्य दिखायी देते हैं, विचारों के प्रगट होने से पहले ही उन पर आघात होने लगते हैं, सदस्य एक-दूसरे का पक्ष लेते हैं तथा समझौता करना नहीं चाहते हैं, सुझावों व प्रस्तावों को नहीं मानते हैं, विरोधी सुझाव प्रस्तुत करते हैं, एक-दूसरे की आलोचना करते हैं, बाधायें उत्पन्न करते हैं, नेता के सुझावों को नहीं मानते, एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं, पर्याप्त ज्ञान की कमी दिखाते हैं, समस्या समाधान करने के स्थान पर चरित्र हनन पर जोर देते हैं, उपसमूह बनते दिखाई देते हैं, सदस्य एक-दूसरे को नहीं सुनते, प्रत्येक कुछ कहने की प्रतीक्षा में रहता है।

कभी-कभी समूह बहुत तेजी से निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ता है लेकिन बीच में ही रुक जाता है, वह कुछ भी निर्णय लेने में कठिनाई अनुभव करता है। कभी-कभी निर्णय तो कर लेता है परन्तु निर्णय पर कार्य करने के प्रारम्भिक रूप में ही उससे अलग हो जाता है, वार्तालाप का ढंग दिशाहीन होता है। वे स्वयं प्रस्ताव रखते हैं तथा स्वयं उसका खण्डन करने लगते हैं। सदस्य कभी-कभी इस प्रयास में रहते हैं कि निर्णय नेता ही करे। वे इस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करते हैं कि वे निर्णय लेने में असमर्थ हैं अतः पर्याप्त सहायता की आवश्यकता है। कार्यकर्ता को इन लक्षणों के आधार पर निश्चित करना होता है कि समस्या का क्या रूप है। वह समस्या के तथ्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है, समस्या के सभी तत्त्वों के अन्तर्सम्बन्धों का पता लगाता है, तत्त्वों को व्यवस्थित करता है तथा समस्या का विश्लेषण करता है। वह समस्या के केन्द्र-बिन्दु पर ध्यान देता है तथा समस्या को सम्पूर्णता में देखता है।

(2) **सामाजिक पर्यावरण का समूह पर प्रभाव** :—समूह केवल अपने चारों ओर की भौगोलिक दशाओं से ही प्रभावित नहीं होता बल्कि स्वयं वह जिस समुदाय में कार्य करता है उसकी विशेषताओं का भी समूह पर गहरा प्रभाव

पड़ता है। समुदाय के भौतिक तथा अभौतिक पक्ष, धर्म, परम्परायें, फैशन, जनरीतियों, विचार, जनरीतियाँ, विचार-व्यवहार के ढंग, उत्पादन का रूप, उद्योगों से सम्बन्धित सुविधायें, कानूनों की प्रकृति, प्रशासन व्यवस्था, सार्वजनिक सुविधायें आवास का रूप, जनसंख्या की भिन्नता का प्रभाव समूह पर पड़ता है।

(3) **समस्या उत्पत्ति के मुख्य कारक** :—कारकों की खोज करने में तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य उन कारणों की खोज करना है जिनसे समस्या उत्पन्न हुई है। समूह में समस्या उत्पत्ति के प्रायः निम्न कारक देखने को मिलते हैं। समूह में उदासीनता के लक्षण प्रायः उस समय प्रगट होते हैं जब समूह जिस समस्या पर कार्य कर रहा है वह सदस्यों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है या अन्य समस्याओं से जिस पर उन्हें कार्य करना चाहिये उनसे कम महत्त्वपूर्ण लग रही है। अथवा सदस्यों को समस्या तो महत्त्वपूर्ण अनुभव हो रही है लेकिन कुछ ऐसे कारण हैं जिससे समस्या समाधान करना नहीं चाहते हैं या समूह, एक या दो ही सदस्य पूरे कार्यक्रम में प्रभाव स्थापित किये रहते हैं या सदस्य अन्तिम निर्णय को प्रभावित करने में अपने को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

संघर्ष की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब समूह को ऐसा कार्य करने के लिये दिया जाता है जो उनके लिए करना बहुत कठिन है। इस कारण उनमें कुण्ठा उत्पन्न हो जाती है तथा पारस्परिक सहयोग के स्थान पर दोषारोपण करते हैं। दूसरा संघर्ष का कारण सदस्यों द्वारा समूह के माध्यम से प्रस्थिति (Status) प्राप्त करना है। जब सदस्य समूह को प्रस्थिति प्राप्त करने का साधन मानने लगते हैं तो संघर्ष हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि मूल्यों तथा विचारों में विरोधाभास है एक पूर्वाग्रह कार्य कर रहे हैं तो समूह में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। सामूहिक कार्यकर्ता इन सभी कारकों का पता लगाता है तथा उनके प्रभाव का मूल्यांकन करता है। वह अपने अनुभव एक कार्यविधि के आधार पर समस्या के मुख्य कारक पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है।

समस्या के उपचार की रणनीति :—कार्यकर्ता समस्या समाधान के लिए विभिन्न कार्यक्रमों का अध्ययन करता है, उनकी उपयोगिता स्थापित करता है, प्रत्येक प्रकार की क्रिया का मूल्य, प्रभाव तथा परिणामों एवं प्रभावपूर्णता के आधार पर व्याख्या करता है। वह इस बात का भी पता लगाता है कि प्रस्तावित क्रियायें कहाँ तक समूह को स्वीकार होंगी। वह सबसे अच्छा कार्यक्रम का चुनाव करता है। वह निश्चित करता है कि समस्या समाधान के लिए किस स्तर के प्रयत्नों की आवश्यकता है तथा किस प्रकार के क्रिया-कलापों की आवश्यकता है। कार्य-नीति क्या हो। वैयक्तिक चेतना जागृति की आवश्यकता है,

समूह चेतना जागृति की आवश्यकता है, संगठन बनाने की आवश्यकता है अथवा कार्यक्रम नियोजन की आवश्यकता है। या समूह को विशेष निपुणताओं की आवश्यकता है जिनसे समस्या का समाधान हो सकता है। वह निश्चित करता है कि समूह को किन प्रविधियों द्वारा सहायता करने की आवश्यकता है। मनो-अभिनय, सामाजिक अभिनय, आदर्श व्यवहार, स्पष्टीकरण, भूमिका ग्रहण, आलम्बन आदि प्रविधियाँ कहाँ तक समूह के लिए उपयोगी हैं, यह कार्यकर्ता निश्चित करता है।

(स) श्रेणीकरण (Classification) :—तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् यह निश्चित करना होता है कि समस्या के कितने प्रकार हैं तथा उस समस्या के लिए संस्था की सेवा का क्या महत्त्व है। इस प्रकार कार्यकर्ता :—

1. समूह का वर्गीकरण समस्या के आधार पर करता है।
2. संस्था की सेवा का महत्त्व निश्चित करता है।

IV. समह-निदान की प्रविधियाँ :

वैयक्तिक गत्यात्मकता तथा विकास के सिद्धान्त का ज्ञान द्वारा (Theories of Individual dynamics and development) :

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रत्यय, जो व्यक्ति की वृद्धि, विकास तथा गत्यात्मकता की प्रक्रिया को समझने में सहायता करते हैं और समाजकार्य में उपयोग में लाये जाते हैं, निम्न हैं :

1. प्रारम्भिक बचपन के अनुभवों का व्यक्तित्व विकास में महत्त्व अर्थात् समूह-कार्यकर्ता सदस्यों के प्रारम्भिक अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करता है जिससे सदस्यों के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का मूल्यांकन सम्भव होता है।

2. परिवर्तन तथा विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो बाह्य सहायता द्वारा तेज की जा सकती है। इस प्रत्यय को आधार मानकर ही कार्यकर्ता समूह का संगठन करता है तथा प्रत्येक स्थिति का इसी आधार पर मूल्यांकन करता है।

3. व्यक्ति में अचेतन तथा अर्धचेतन सम्प्रेरक होते हैं। यदि उनका प्रक्षेपण बाह्य जगत् में उचित प्रकार से किया जाय तो व्यक्ति का विकास तेज हो सकता है तथा सक्रियता में वृद्धि हो सकती है। कार्यकर्ता समूह-सदस्यों के अचेतन सम्प्रेरकों का पता लगाता है तथा उनकी सन्तुष्टि के उपाय खोजता है।

4. व्यक्ति में तार्किक तथा चेतन रूप से कार्य करने की क्षमता होती है। यह कार्य अहं (ego) द्वारा किया जाता है। लेकिन कभी-कभी अहं की शक्ति क्षीण हो जाती है, जिससे व्यवहार में बाधा उत्पन्न हो जाती है। इसे बाह्य

सहायता से ठीक किया जा सकता है। कार्यकर्ता समूह-सदस्यों के अहं कार्यात्मकता का मूल्यांकन करता है और इस बात का निर्धारण करता है कि उसे किस स्तर की सहायता की आवश्यकता है।

5. अहं प्रतिरक्षा का कार्य महत्त्वपूर्ण है। व्यक्ति अपने अहं की रक्षा के लिए अनेक युक्तियों का सहारा लेता है, जिससे उसकी आन्तरिक एकता बनी रहती है और बाह्य सम्बन्धों में संगठन सम्भव होता है। लेकिन अधिकाधिक उपयोग व्यक्ति को असामान्य बना देता है। कार्यकर्ता इस बात को जानने का प्रयास करता है कि सदस्य किस सीमा तक इन युक्तियों का प्रयोग करते हैं तथा ऐसा क्यों करते हैं।

समूह गत्यात्मकता तथा विकास :—समूह का प्रतिभागी एक व्यक्ति के साथ-साथ एक सदस्य भी होता है और यह स्थिति उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। समूह की स्थितियों का प्रभाव उसके व्यवहार पर पड़ता है। अतः निम्न कारक समूह-जीवन तथा समूह-प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं :—

1. समूह अन्तःक्रिया का प्रकार तथा ग्रुप; जैसे—स्वीकृति, तिरस्कार, बहिष्कार (सोसियोग्राम),
2. उपसमूहों की स्थिति, कार्य तथा उद्देश्यों के प्रति सजगता एवं लगन,
3. समूह में भूमिकायें तथा प्रस्थितियाँ, नेता एवं अनुयायी के बीच सम्बन्ध,
4. निर्णय लेने की प्रक्रिया,
5. संहार्ष का रूपतया प्रकृति,
6. सदस्यों की सामाजिक एवं व्यावहारिक परिपक्वता,
7. समूह का उद्देश्य।

कार्यकर्ता इन कारकों का अध्ययन करता है।

सुनना (Listening) : समाजकार्य में सुनना एक कला है जिसमें चेतन आत्मा का उपयोग किया जाता है। निदानात्मक साक्षात्कार में सुनना सामान्य सुनने से भिन्न होता है। यह एक प्रकार का वार्तालाप होता है जो सक्रिय भागीकरण को प्रोत्साहन देता है। समस्या की गम्भीरता तथा कथन की प्रभावपूर्णता सुनने पर ही निर्भर होती है। सेवार्थी के रूप में सदस्य का सहयोग भी सुनने पर निर्भर होता है। अतः कार्यकर्ता इन विधियों का उपयोग सावधानी-पूर्वक करता है। वह सेवार्थी की बातों को गम्भीरता से सुनता है तथा ऐसा प्रदर्शित भी करता है कि वह सेवार्थी में पूरी रुचि ले रहा है एवं उससे सहानुभूति है।

अवलोकन (Observation) :—सुनने की भाँति ही अवलोकन एक प्रविधि है, जिसके द्वारा अव्यक्त भावनाओं एवं मुद्राओं का मूल्यांकन किया

जाता है। समूह-सदस्यों के संवेगों, भावनाओं, विचारों को जाना जाता है। समूह व्यायत्यिकता में कार्यकर्ता अवलोकन करने का प्रयास करता है कि कौन-कौन से सदस्य भाग ले रहे हैं, भागीदार का स्तर क्या है तथा उनका प्रभाव क्या है, एक-दूसरे के प्रति लगाव तथा पारस्परिक सहयोग की सीमा क्या है। वह अवलोकन करता है कि किसने कार्य का प्रस्ताव रखा, कार्य प्रारम्भ किया तथा उसके प्रति उत्तर कैसे थे। वह सदस्यों की भाव-भंगिमाओं का भी अवलोकन करता है, भौतिक साधनों तथा समूह स्थिति का भी अवलोकन करता है। इस प्रकार वह समूह की प्रत्येक गतिविधि का अवलोकन करता है।

परानुभूति (Empathy) :—परानुभूति का वास्तविक अर्थ दूसरे की भूमिकाओं की भावनाओं का ग्रहण करना है। लेकिन ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। अतः यहाँ इसका तात्पर्य लोगों को सहानुभूतिपूर्वक समझना, साथ ही साथ अपनी भूमिका का भी ध्यान रखना है। कार्यकर्ता समूह-सदस्यों की समस्याओं के प्रति लगाव प्रदर्शित करता है तथा उनको दूर करने के रचनात्मक उपाय भी बताता है। वह उनका अध्ययन करके इस प्रकार से व्यक्त करता है, जैसे वह स्वयं समूह का एक सक्रिय सदस्य हो।

सम्बन्धों का अध्ययन (Study of relationship) :—कार्यकर्ता समूह सदस्यों के सम्बन्धों के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। वह जानने का प्रयास करता है कि सदस्यों के पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्ध किस प्रकार के, किस स्तर के तथा कैसे हैं। वह प्रत्येक सम्बन्ध का मूल्यांकन समस्या के परिप्रेक्ष में करता है।

मित्रों का अध्ययन :—कार्यकर्ता यह जानने का प्रयत्न करता है कि सदस्यों के अधिक अभिन्न मित्र कौन-कौन हैं तथा उनकी क्या-क्या विशेषतायें हैं, दूसरे स्तर के मित्र कौन हैं तथा उनकी क्या विशेषतायें हैं। इस ज्ञान से सदस्य के व्यवहार का पता चलता है और समस्या के निदान का संकेत प्राप्त होता है।

वार्तालाप (Discussion) :—वार्तालाप एक सामान्य तरीका है जिसके द्वारा कार्यकर्ता समूह में इस प्रकार की चर्चा करता है जिसमें सभी सदस्य भाग लेते हैं तथा अपनी-अपनी रुचि स्पष्ट करते हैं। ऐसी दशा में कार्यकर्ता न केवल समूह-परिपक्वता का अध्ययन करता है बल्कि समस्या के मूल कारकों का भी पता कर लेता है। निष्पक्ष भूमिका पूरी करने का प्रयत्न करता है।

भूमिका-अध्ययन (Role study) :—कार्यकर्ता सदस्यों की भूमिकाओं का अध्ययन इस दृष्टि से करता है कि वे अपनी भूमिकाओं का निर्वाह किस प्रकार तथा किस सीमा तक कर रहे हैं, क्योंकि समस्या तभी उत्पन्न होती है जब भूमिका निष्पादन में बाधा उत्पन्न होती है। ●

अध्याय 16

मूल्यांकन (Evaluation)

समाज-कार्य में मूल्यांकन का विशेष महत्त्व है। यद्यपि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एवं सभी विज्ञानों में इसका उपयोग किसी न किसी सीमा तक अवश्य होता है परन्तु समाज-कार्य में इसकी उपयोगिता प्रत्येक पग पर अनुभव होती है, क्योंकि यह एक ऐसा व्यवसाय है जिसका उद्देश्य लोगों की भलाई, समृद्धि तथा विकास करना है। सामाजिक कार्यकर्ता का यह कर्तव्य है कि वह अपनी, सदस्यों की एवं समूह की क्रियाओं तथा कार्य में समुदाय के सहयोग आदि का उचित अवसर पर मूल्यांकन करता रहे जिससे उसे अपने पथ निर्धारण में कठिनाई न हो।

I. **मूल्यांकन का अर्थ :**—निदान तथा मूल्यांकन सेवार्थी की समस्या को समझने तथा चिकित्सात्मक सुझाव प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक होते हैं। दोनों ही प्रक्रियायें अन्तर्ग्रहण (Intake) के समय प्रारम्भ हो जाती हैं तथा सम्बन्ध के अन्तिम क्षण तक चलती रहती हैं। अन्तर्ग्रहण के समय कार्यकर्ता शिकायत के आधार पर अनिश्चित निर्णय लेते हैं जिसे निदान का रूप कह सकते हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ उस व्यक्ति की क्षमताओं-अक्षमताओं, सहायता के उपयोग की इच्छा-अनिच्छा, सांस्कृतिक कारक आदि के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाते हुए निर्णय लेते हैं और इन निर्णयों को मूल्यांकन माना जाता है।

II. मूल्यांकन की परिभाषा :

हैमिल्टन, गार्डन (1951)[1]

जब व्याख्या (Interpretation) समस्या को परिभाषित करने की ओर निर्देशित न होकर, व्यक्ति किस प्रकार अपनी समस्या का समाधान कर रहा है की ओर निर्देशित होती है तब जो परिणाम प्राप्त होता है वह निदान न होकर मूल्यांकन होता है।"

---

1. Hamilton, G. : Theory and Practice of Social Case Work, Columbia University Press, Columbia, 1951, p. 232.

हैमिल्टन, गार्डन (1952)[2]

"मूल्यांकन निर्णय करने वाली एक प्रक्रिया है जो निश्चित करती हैं कि व्यक्ति, कार्यकर्ता तथा संस्था का क्या उत्तरदायित्व है, उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या-क्या शक्तियाँ हैं, कौन से कार्य रचनात्मक सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से कार्य समस्या को जटिल बनाते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन उद्देश्य का दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है।

III. **सामाजिक सामूहिक कार्य में मूल्यांकन** :—सामूहिक कार्य में मूल्यांकन का कार्य सामूहिक प्रक्रिया के साथ चलता रहता है। कार्यकर्ता समूह और व्यक्तियों के लिए उद्देश्य निश्चित करके उनके औचित्य की जाँच करता है तथा उनकी उपयोगिता को सदस्यों से स्पष्ट करता है। मूल्यांकन द्वारा ही वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समूह के लिए कौन से कार्यक्रम उसके उद्देश्यों तक पहुँचने में पूरी सहायता कर सकते हैं एवं सफलता की ओर ले जा सकते हैं। मूल्यांकन द्वारा ही विकास की गति समझकर नये कार्यक्रमों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इस प्रकार मूल्यांकन का क्षेत्र वैयक्तिक वृद्धि (Individual growth), कार्यक्रम विषयवस्तु (Programme Content) तथा कार्यकर्ता का योगदान (Worker's performance) है।

ट्रेकर, एच० बी० (1955)[3]

"सामाजिक सामूहिक कार्य में मूल्यांकन वह भाग है जिसमें कार्यकर्ता संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों से सम्बन्धित समूह-अनुभव के गुणों को नापने का प्रयत्न करता है।"

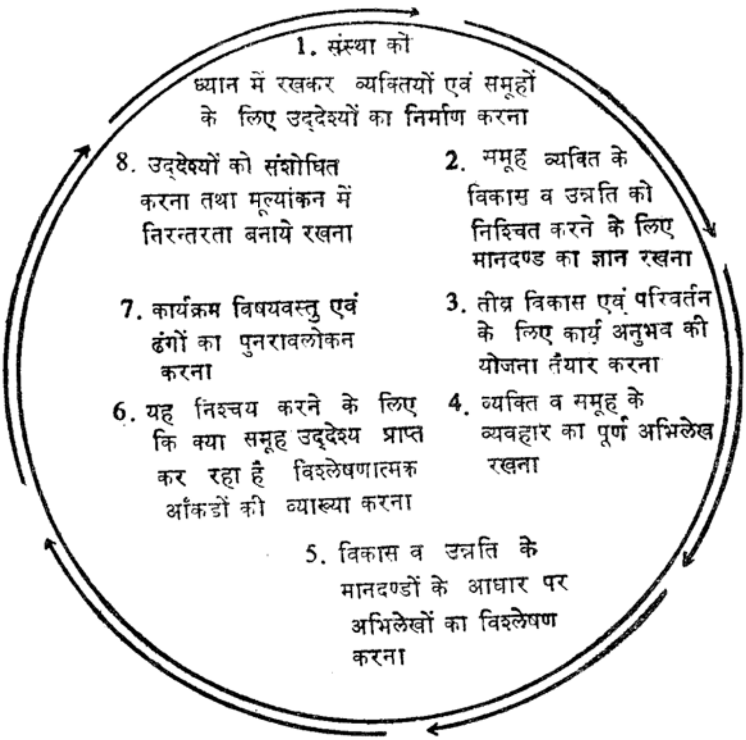
सामूहिक कार्यकर्ता मूल्यांकन के द्वारा यह जानने का प्रयत्न करता है कि उद्देश्यों को प्राप्त करने का समूह ने कितना तथा क्या प्रयत्न किया है, सदस्यों ने समूह से क्या, किस प्रकार तथा कितना अनुभव प्राप्त किया है, किस सीमा तक समूह विकास किया है तथा समूह की गति व दिशा क्या है।

---

2. Hamilton, G. : Principles of Social Case Recording, Columbia University Press, Columbia, 1952, p. 85.
"Evaluation is that part of social group work in which the worker attempts to measure the quality of group's experience in relation to the objectives and Function of the agency."
3. Trecker, H. B., op. cit p. 217.

(IV) सामूहिक कार्य में मूल्यांकन प्रक्रिया के रूप में :

ट्रेकर[4] ने मूल्यांकन प्रक्रिया को निम्न प्रकार से दर्शाया है :—



ट्रेकर द्वारा चित्र प्रदर्शन से ज्ञात होता है कि मूल्यांकन का कार्य सामूहिक कार्य के प्रारम्भिक स्तर से प्रारम्भ होकर समाप्ति स्तर तक चलता रहता है।

1. **समूह उद्देश्य का निर्धारण**—सामूहिक कार्य का यह प्रारम्भिक स्तर है। कार्यकर्ता सर्वप्रथम समूह के सदस्यों का वैयक्तिक अध्ययन करता है। उनकी इच्छाओं, अभिलाषाओं, आवश्यकताओं का पता लगाता है। इन आवश्यकताओं का मूल्यांकन करता है कि उन्हें किस प्रकार से सामूहिक आवश्यकता के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

2. **विकास के मानदण्ड का निर्धारण** :—उद्देश्य निर्धारण के पश्चात् समूह-सदस्यों को उनके विषय में विस्तृत जानकारी देता है तथा सामूहिक विकास की प्रक्रिया का निर्धारण करके विकास की गति का अनुमान लगाता है। वह समूह

4. Trecker, op. cit. p. 218

की योग्यताओं क्षमताओं तथा निपुणताओं का मूल्यांकन करके विकास के मान-दण्ड निश्चित करता है।

3. **कार्यक्रम की योजना का निर्माण** : वह कार्यक्रम का मूल्यांकन करके ऐसे कार्यक्रमों को समूह के लिए चुनता है जो समायोजन तथा विकास के अधिकतम अवसर प्रदान करते हैं। ये कार्यक्रम दीर्घ तथा लघु कालीन दोनों प्रकार के होते हैं। इसका निर्धारण लघुकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है।

4. **अभिलेखन करना** : कार्यकर्ता समूह में होने वाली महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का अभिलेखन करता है। यह कार्यकर्ता की मूल्यांकन योग्यता पर निर्भर होता है कि वह किस प्रकार और कौन-कौन-सी परिस्थितियों का अभिलेखन करता है।

5. **अभिलेखों का विश्लेषण** : अभिलेखन के पश्चात् वह इन अभिलेखों के आधार पर व्यक्ति सदस्य के व्यवहार एवं भागीकरण का विश्लेषण करता है, समूह के प्रत्युत्तरों का अध्ययन करता है, कार्यक्रम की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता का अध्ययन करके उनकी उपयोगिता निश्चित करता है। कार्यकर्ता स्वयं अपनी भूमिका का विवेचन करता है।

6. **उद्देश्यों की प्राप्ति का स्तर** : अभिलेखों के विश्लेषण से कार्यकर्ता इस बात को जानने का प्रयास करता है कि समूह अपने कार्यकलापों के माध्यम से किस सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो पाया है।

7. **कार्यक्रम, विषयवस्तु तथा ढंग का पुनरावलोकन** :—कार्यकर्ता कार्यक्रमों का विश्लेषण एवं विवेचन करता है। उनकी उपयोगिता निर्धारित करता है। उनकी विषयवस्तु का निर्धारण समूह की उन्नति के अनुसार करता है। जो प्रणालियाँ या ढंग कार्यक्रमों के संचालन में उपयोग में लाये गये हैं उन पर प्रकाश डालता है।

8. **उद्देश्यों का संशोधन** : उपरोक्त क्रियाओं के पश्चात् कार्यकर्ता यदि आवश्यक समझता है तो उद्देश्यों में परिवर्तन करता है। उद्देश्यों में संशोधन करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि समूह-अनुभव से उसकी अन्तर्दृष्टि बढ़ती है जिससे लक्ष्यों का विस्तार भी होता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर कार्य करती रहती है।

(V) मूल्यांकन की विषयवस्तु :

सामूहिक कार्यकर्ता निम्न स्थितियों का मूल्यांकन करता है :—

1. व्यक्ति-विकास,

2. कार्यक्रम विषयवस्तु
3. समूह अनुभव
4. कार्यकर्ता की भूमिका

व्यक्ति विकास : समूह का निर्माण व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है। इन व्यक्तियों की कुछ आवश्यकतायें, अभिलाषायें तथा इच्छायें होती हैं जिनके कारण वह समूह का सदस्य बनता है। अतः व्यक्ति का हित करना सामाजिक सामूहिक कार्य का प्रमुख उद्देश्य है। ऐसी हालत में व्यक्ति का मूल्यांकन करना परमावश्यक होता है। कार्यकर्ता सर्वप्रथम प्रत्येक सदस्य की उपस्थिति का मूल्यांकन करता है। अपने अभिलेखों के माध्यम से उसे ज्ञात होता है कि कौन सदस्य सामूहिक क्रियाओं में कितना उपस्थित रहा है। वह अनुपस्थिति के कारणों की खोज भी करता है। कभी-कभी सदस्य अनुपस्थित होने का बहाना बनाता है, क्योंकि वह समूह द्वारा स्वीकृत नहीं अनुभव करता है। अथवा समूह से वह अपनापन महसूस नहीं करता है। कार्यकर्ता इन परिस्थितियों का मूल्यांकन करके उसी के अनुरूप चिकित्सा-प्रणाली का उपयोग करता है।

समूह का महत्त्वपूर्ण कार्य सदस्यों में निपुणताओं का विकास करना है तथा रुचियों को सही दिशा में क्रियान्वित करना है। कार्यकर्ता प्रत्येक सदस्य के भागीकरण, वार्तालाप तथा व्यवहारिक ज्ञान आदि निपुणताओं का अवलोकन करता है। वह देखता है कि व्यक्ति-विशेष इस दिशा में क्या प्रयत्न कर रहा है। वह यह भी जानने का प्रयत्न करता है कि व्यक्ति विशेष कार्यक्रम में कितनी रुचि ले रहा है तथा उसके ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई है।

कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व है कि वह प्रत्येक सदस्य के विषय में जानकारी रखे कि वह समूह संस्थान, समुदाय तथा सम्पूर्ण समाज के प्रति कितनी श्रद्धा एवं भक्ति रखता है। कार्यकर्ता वार्तालाप, शिक्षा, पठन-पाठन, नैतिक व्याख्यान द्वारा उसमें समाज के प्रति सकारात्मक रुचि का विकास करता है। वह साथ ही साथ यह भी देखता रहता है कि व्यक्ति-विशेष में जितनी भक्ति थी उसमें कितना विस्तार हुआ है।

सामाजिक सामूहिक कार्य का एक उद्देश्य समूह की क्रियाओं में प्रत्येक सदस्य को भाग लेने के अवसर प्रदान करना होता है। यह देखना मूल्यांकन के लिए आवश्यक होता है कि प्रारम्भ से अन्त तक सदस्यों ने कितना भाग लिया है, रुचि दिखलायी है तथा नेतृत्व ग्रहण किया है, उसका पूर्व नेतृत्व गुण कैसा रहा है। कभी-कभी यह देखने को मिलता है कि सदस्य जो समूह में पहले बिलकुल सामान्य था, उसने अधिक नेतृत्व के गुणों का विकास कर लिया है या जिसने

समूह पर प्रभुत्व स्थापित किया था, प्रजातांत्रिक ढंग से कार्य सीख रहा है। कार्यकर्ता यह भी जानने का प्रयास करता है कि व्यक्ति-विशेष का समूह में क्या महत्त्व है तथा दूसरे सदस्य उसका कितना आदर करते हैं। यदि उसका अत्यधिक आदर होता है तो समूह में उसका स्थान ऊँचा होता है। दूसरी तरफ यदि उसकी राय कोई महत्त्व नहीं रखती है तो समूह में उसका स्थान निम्न होता है। व्यक्ति का उचित समायोजन करना सामूहिक कार्य का एक विशेष कार्य है। कार्यकर्ता यह समझने का प्रयत्न करता है कि समूह में व्यक्ति-विशेष किस प्रकार समायोजन स्थापित करता है तथा असमायोजन के लक्षण क्या-क्या होते हैं। वह भी देखता है कि समूह क्रिया करने में सदस्य किन-किन स्थानों पर सामञ्जस्य नहीं कर पाया है या उसमें किन-किन गुणों की कमी है।

व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह द्वारा प्रभावित होता है और उसके उत्तर में वह भी समूह को प्रभावित करता तथा उसके विकास में योगदान देता है। कार्यकर्ता प्रत्येक मीटिंग के पश्चात् प्रत्येक सदस्य का समूह में योगदान का मूल्यांकन करता है। यह योगदान दो प्रकार का होता है: रचनात्मक तथा विध्वंसात्मक। रचनात्मक योगदान में निम्न कार्य आते हैं :—विशेष रुचि तथा विशेष योगदान जैसे संघर्षों को दूर करना, असाधारण प्रयत्न के कार्यों का संचालन आदि। विध्वंसात्मक स्थिति वह होती है जब सदस्य समूह के प्रति कोई ध्यान नहीं देता है, रुचि नहीं रखता है, कम भाग लेता है, बेचैनी अनुभव करता है, समूह की क्रियाओं तथा योजनाओं का प्रत्यक्ष रूप से विरोध करता है, नकारात्मक विरोध करता है, अशिष्ट भाषा का उपयोग करता है तथा समूह को तोड़-मोड़ के लिए उकसाता है। कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह इन स्थितियों का मूल्यांकन करे तथा समस्या को प्रारम्भ में ही दूर करने का प्रबन्ध करें।

कार्यकर्ता प्रत्येक की बौद्धिक, संवेगिक, शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के स्तर तथा क्षमताओं के विकास की सीमा का मूल्यांकन करता है।

व्यक्ति-विकास के मूल्यांकन में निम्न क्षेत्र हैं :—

1. आत्म-स्फूर्ति (Self-esteem)
2. समूह से सम्पर्क (Contact with group)
3. आत्म-निर्भरता (Self-reliance)
4. विश्वसनीयता (Realiability)
5. संवेग नियंत्रण (Emotional Control)
6. व्यावहारिक गत्यात्मकता (Behaviour dynamism)

7. वास्तविकता से सम्पर्क (Contact with reality)
8. समूह में भागीकरण (Participation in group)
9. प्रत्युत्तरों की बारम्बारता (Frequency of responses)
10. सहनशीलता (Tolerance)
11. नेतृत्व का गुण (Leadership qualities)
12. संवेदनशीलता (Sensitivity)
13. समूह के प्रति सहानुभूति (Sympathy for group)
14. समूह के प्रति कर्तव्यनिष्ठा (Loyalty for group)
15. समस्या समाधान की क्षमता (Capacity of Problem solving)
16. मित्रता (Friendship)
17. वार्तालाप एवं बातचीत (Discussion and Conversation)
18. कार्य करने का ढंग (Way of performing taske)

व्यक्ति-विकास मूल्यांकन सारणी

व्यक्ति का मानदण्ड प्रतिगमन	स्थायी या स्थित	मामूली उन्नति	अधिक उन्नति
1. आत्मस्फूर्ति			
2. सम्पर्क			
3. आत्मनिर्भरता			
4. विश्वसनीयता			
5. संवेग-नियन्त्रण			
6. गत्यात्मकता			
7. वास्तविकता से सम्पर्क			
8. समूह में भागीकरण			
9. प्रत्युत्तरों की बारम्बारता			
10. सहनशीलता			
11. नतृत्व			
12. समूह के प्रति सहानुभूति			
13 सहनशीलता			
14. समूह के प्रति भक्ति			
15. समस्या समाधान की क्षमता			
16. मित्रता			
17. वार्तालाप			
18. कार्य करने का ढंग			

मूल्यांकन की अवधि : कब से कब तक

कार्यक्रम-विषयवस्तु :

समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा की जाती है। कार्यक्रमों की उपयुक्तता तथा चयन सामाजिक कार्यकर्ता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। अतः इसका वह मूल्यांकन करता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि कार्यक्रमों में भाग लेने की स्थिति कैसी है, प्रत्युत्तरों की दर क्या है, कार्यक्रमों के प्रति सदस्यों का लगाव कैसा है, आवश्यकताओं तथा कार्यक्रमों में किस स्तर का सम्बन्ध है तथा कार्यक्रमों से कहाँ तक उद्देश्यों की पूर्ति हो रही हैं।

समूह-अनुभव :

समूह के द्वारा सदस्य अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं तथा व्यक्ति का विकास करते हैं। अतः समूह के प्रभाव का मूल्यांकन करना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है। वह समूह संगठन का अध्ययन करता है जिसके अन्तर्गत नियमन, उपस्थिति में शीघ्रता, सामाजिक समिति के कार्य, लाभदायक मीटिंग्स इत्यादि बातों को सम्मिलित किया जाता है। समूह संगठन की स्थिति के जानने से कार्यकर्ता कार्यक्रमों को आवश्यक दिशाओं में संचालित कर लेता है। वह समूह में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का मूल्यांकन करता है। इसके अन्तर्गत वह पारस्परिक ध्यान, मिलने का नियमन, आलोचना की कुशलता, सहायता का स्तर, समायोजन की स्थिति, पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति का मूल्यांकन करता है। वह सदस्यों की रुचियों का मूल्यांकन करता है। इसमें सदस्यों की कार्य एवं समूह के प्रति कितनी रुचि उत्पन्न हो गयी है तथा उसका मूल्य क्या है, इस बात का ध्यान रखा जाता है। कार्यकर्ता समूह में संघर्ष तथा उसके निवारण की स्थिति का अध्ययन करता है। वह यह देखता है कि समूह में आदान-प्रदान कितना है, तथ्यों के विकास में समूह का क्या योगदान है, सदस्य एक-दूसरे के विषय में क्या सोचते हैं, समूह में तार्किक शक्ति कितनी है, वार्तालाप में सदस्य कैसे भाग लेते हैं तथा उन्हें विषय का कितना ज्ञान है। सदस्यों में समूह के प्रति भक्ति, उनमें मनोबल, तत्परता, उत्तरदायित्व तथा समूह के मान बढ़ाने की लगन इत्यादि मूल्यांकन से ही जाना जा सकता है।

समूह वृद्धि नापने का पैमाना (Yardstick for measuring the growth of a group) :

टाम डगलर्स[5] ने निम्न पैमाने का उल्लेख किया है :

---

5. Douglas, Tom : Groupwone Practice, International University Press, Newyork, 1976, p. 112–113

1. समूह लक्ष्य कितने स्पष्ट हैं—
   1. कोई दृष्टिगत लक्ष्य नहीं,
   2. लक्ष्यों में भ्रम, अनिश्चितता तथा संघर्ष,
   3. लक्ष्य की औसत स्पष्ट
   4. अधिक लक्ष्य स्पष्ट
   5. लक्ष्य बिलकुल स्पष्ट ।
2. समूह में विश्वास एवं खुलापन कितना है—
   1. अविश्वास, बंध समूह
   2. कुछ विश्वास, सुरक्षात्मक
   3. औसत विश्वास तथा खुलापन
   4. काफी सीमा तक विश्वास एवं खुलापन
   5. उल्लेखनीय विश्वास तथा खुलापन ।
3. समूह-सदस्य कितने संवेदनशील संग्रहणीय—
   1. कोई जागरूकता नहीं या कोई एक-दूसरे की सुनता नहीं,
   2. अधिकांश सदस्य स्वयं में ही कार्यरत
   3. औसत संवेदनशीलता एवं सुनना
   4. सामान्य सुनने से अच्छा
   5. दूसरे के प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता ।
4. प्रक्रिया पर कितना ध्यान दिया गया
   1. प्रक्रिया पर कोई ध्यान नहीं
   2. प्रक्रिया पर कम ध्यान
   3. सामूहिक प्रक्रिया पर कुछ ध्यान
   4. विषयवस्तु तथा प्रक्रिया में अच्छा संतुलन
   5. प्रक्रिया से अत्यधिक सम्बन्ध
5. समूह नेतृत्व की आवश्यकता को कैसे पूरा किया गया—
   1. पूरा नहीं किया गया, मतभेद
   2. नेतृत्व एक ही व्यक्ति के पास रहा
   3. कुछ नेतृत्व का भागीकरण
   4. नेतृत्व कार्य को बाँट दिया गया
   5. नेतृत्व आवश्यकता को रचनात्मक तथा लोचदार तरीके से पूरा किया गया ।
6. सामूहिक निर्णय किस प्रकार किये गये—

1. कोई निर्णय नहीं किया जा सका
2. कुछ लोगों द्वारा निर्णय किया गया
3. बहुसंख्य से निर्धारित किया गया
4. अल्पमतों को भी एकीकरण करने का प्रयास किया गया
5. पूर्ण भागीकरण तथा प्रमाणित एकमतता

7. समूह के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया :—
   1. एक या दो से योगदान मिला तथा विचलित लोग शांत रहे।
   2. अनेक पांगदान के लिए प्रयत्न किये गये लेकिन हतोत्साहित किया गया
   3. सामूहिक स्रोतों का सामान्य औसतन प्रयोग
   4. सामूहिक स्रोतों का उपयोग तथा उत्साहवर्धन
   5. सामूहिक स्रोतों का भरपूर तथा प्रभावात्मक ढंग से उपयोग
8. समूह के प्रति सदस्यों की भक्ति तथा सम्बद्धता का विचार कितना है—
   1. समूह-सदस्यों में न तो कोई समूह के प्रति भक्ति हो न सम्बद्धता का भाव।
   2. सदस्यों में निकटता की कमी कुछ से मित्रवत् व्यवहार
   3. औसत सम्बद्धता की भावना
   4. अधिक सम्बद्धता की भावना
   5. सदस्यों में अत्यधिक सम्बद्धता की भावना।

समूह मूल्यांकन सारिणी

समूह का नाम :—   नेता का नाम :—

समूह-मानदण्ड	प्रवृत्तियाँ			
	प्रतिगमन	स्थिर	मामूली उन्नति	अधिक उन्नति
1. उपस्थिति				
2. समूह-संगठन				
3. समूह-स्तर				
4. कार्य-क्षेत्र में विस्तार				
5. सामाजिक उत्तरदायित्व				
(अ) परस्पर				
(ब) संस्था के प्रति				
(स) समुदाय के प्रति				

समूह-मानदण्ड	प्रवृत्तियाँ			
	प्रतिगमन	स्थित	मामूली उण्नति	अधिक उन्ननि
6. मूल्यवान् रुचियाँ				
7. संघर्षों का निवारण				
8. नेतृत्व तथा भागीकरण				
9. सहकारिक योजना				
10. सामूहिक योजना				
11. समूह-भक्ति तथा मनोबल				
12. अन्तरों की स्वीकृति				
13. नेता की आवश्यकताओं में कमी।				

मूल्यांकन अवधि :— कब से :— कब तक :—

कार्यकर्ता का मूल्यांकन

समूह में कार्यकर्ता का मूल्यांकन बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार वह अपने उत्तरदायित्व को निभाता है और कार्यभार स्वीकार करता है। उसके अनुरूप ही समूह उद्देश्य को पूर्णता का अनुभव करता है। कार्यकर्ता की निपुणता ही यह निश्चित करती है कि समूह ने कितनी वृद्धि की है तथा उसने व्यक्ति के विकास के लिए किन-किन साधनों का उपयोग किया है? अच्छे सामूहिक कार्यकर्ता से निम्नलिखित प्रकार के व्यवहार को आशा की जाती है :—

1. उद्देश्यों को निश्चित करना : कार्यकर्ता का यह कर्तव्य होता है कि वह अपने उद्देश्यों को अवश्य निश्चित करे। उसको यह ज्ञान होना चाहिए कि वह क्या कर रहा है और क्या करना चाहता है। उसको यह निश्चित रूप से स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह सामूहिक अनुभव द्वारा सदस्यों का विकास करना चाहता है।

2. प्रभावात्मक सम्बंधों का विकास :—कार्यकर्ता समूह-सदस्यों के साथ प्रभावात्मक तथा उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों का विकास करता है, क्योंकि सम्बन्ध ही सामूहिक कार्य का मूल आधार है। यदि समूह और कार्यकर्ता का सम्बन्ध अच्छा है तभी यह सम्भव होता है कि वे एक-दूसरे के निकट आकर लाभ उठा सकें। जब सम्बन्ध ही मृदु, विश्वसनीय और सहायक नहीं होगा तो सदस्य न तो आपस में विचार-विनिमय कर सकेगा, न उनमें लाभदायक अन्तःक्रिया होगी और न कार्यकर्ता समूह के विकास में मदद कर सकेगा। अतः सामूहिक कार्य

सम्पादन में बाधाएँ उत्पन्न होंगी तथा समूह में विघटनकारी शक्तियों का बोल-बाला हो जायेगा। इसलिए मूल्यांकन में कार्यकर्ता के सम्बन्ध को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

3. निपुणताओं एवं प्रविधियों का ज्ञान :—कार्यकर्ता को अपनी निपुणताओं एवं प्रविधियों का ज्ञान होना चाहिए। उसको यह ज्ञान होना चाहिए कि समूह की किस परिस्थिति में वह किस प्रकार का व्यवहार करे ? उसको व्यावहारिक रूप से इसका ज्ञान होना चाहिए। सामूहिक कार्यकर्ता की निपुणताएँ और प्रविधियाँ, जो निम्न हैं, इनका उसको मूल्यांकन करना होता है :—

1. अन्तर्ग्रहण की निपुणता।
2. समूह का संस्था से सम्बन्ध स्थापित करने की निपुणता।
3. कार्यकर्ता की भावनाओं में संचार की निपुणता।
4. सामूहिक भावनाओं के संचार की निपुणता।
5. उद्देश्यपरक क्रियाओं के लिए समूह की रुचि के उपयोग की निपुणता।
6. सामूहिक निर्णय लेने की निपुणता।
7. समूह से सम्बन्ध स्थापन की निपुणता।
8. आत्म-नियन्त्रण की निपुणता।
9. यथासमय अपनी भूमिका निभाने की निपुणता।
10. अभिकरण के कार्यों को ग्रहण करने तथा समूह द्वारा उन्हें पूर्ण कराने की निपुणता।
11. अभिकरण एवं समुदाय से सहायता लेने की निपुणता।
12. सम्बन्ध की प्रविधि।
13. सम्बल की प्रविधि।
14. स्पष्टीकरण की प्रविधि।
15. हितकारी तथ्यों के चयन की प्रविधि।
16. व्याख्या की प्रविधि, इत्यादि।

4. व्यक्ति की आवश्यकताओं का ज्ञान :—सामूहिक कार्यकर्ता यह जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होता है, अतः उसकी आवश्यकताएँ भी भिन्न होती हैं। इन विभिन्न आवश्यकता को सामूहिक अनुभव के द्वारा वह पूर्ण करना चाहता है। कार्यकर्ता कार्यक्रम के माध्यम से व्यक्ति के सम्बन्ध में निरन्तर ज्ञान प्राप्त करता रहता है। वह अपने एक समय के ज्ञान को अन्तिम तथा पूर्ण ज्ञान नहीं समझ बैठता। वह गहन अध्ययन करता रहता है। मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामूहिक कार्यकर्ता व्यक्ति की आवश्यकताओं को समझने में कहाँ तक सफल रहा है और उसे आगे क्या करना है।

5. अभिलेख तैयार करना :—कार्यकर्ता अपने अन्य कार्यों के साथ-साथ अभिलेख लिखता तथा समयानुसार उनकी व्याख्या करता रहता है। वह समूह में पैदा होने वाली प्रत्येक क्रिया का वर्णन करता है और इसकी सहायता से कार्य का मूल्यांकन करता है। अभिलेखों के द्वारा ही मूल्यांकन सम्भव होता है। अतः कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह सामूहिक कार्य के साथ-साथ अभिलेख भी तैयार करें।

VI. मूल्यांकन की आवश्यकता—सुसंगठित एवं योजनाबद्ध मूल्यांकन करने के पाँच प्रमुख सहायक कारण हैं :—

1. मूल्यांकन से यह ज्ञात होता है कि किस स्तर तक समूह ने पारस्परिक उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया है, इस उपलब्धि में किस प्रकार उसने अन्य समूहों के तथा संस्था के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है तथा पृथक् रूप से किस प्रकार कार्य करने में वह सफल हुआ है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि समूह को दी जाने वाली सेवाओं की उपयोगिता कितनी है तथा उनकी आवश्यकताओं की संतुष्टि में वे किस प्रकार सहायक होती हैं।

2. मूल्यांकन के द्वारा समूह के साथ कार्य करने के परिणाम का वर्णन किया जा सकता है। इसके द्वारा समूह की क्षमताओं, शक्तियों, निपुणताओं, सम्बन्धों के साथ-साथ कमियों, अक्षमताओं, दोषों तथा संघर्षों को जाना जा सकता है। इससे यह भी पता चलता है कि समूह को कहाँ पर विशेष सहायता की आवश्यकता है।

3. मूल्यांकन के द्वारा हम नये उद्देश्यों के निर्माण में सहायता प्राप्त करते हैं। इससे हमें निरन्तर पता चलता रहता है कि समूह उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किस स्तर तक पहुँच चुका है तथा किस प्रकार वह प्रयास कर रहा है। जब हम नये उद्देश्यों को समूह के लिए निर्मित करते हैं तो पूर्व-अनुभव बहुत सहायक सिद्ध होता है।

4. मूल्यांकन से तरीकों एवं प्रविधियों की उपयुक्तता का आभास होता है। हम अपने तरीकों में परिवर्तन करते रहते हैं तथा स्थिति से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इससे यह पता रहता है कि किस स्थान पर सम्बन्धों में गड़बड़ी होने की गुंजाइश है, अतः उस स्थान पर विशेष ध्यान देते हैं।

5. व्यावसायिक विकास के लिए मूल्यांकन आवश्यक होता है। मूल्यांकन द्वारा नयी-नयी बातों का पता चलता है तथा नयी समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं। अतः उनके निराकरण के लिए नयी-नयी प्रविधियाँ, कार्यक्रम एवं सम्बन्धों का विकास किया जाता है।

VII. मूल्यांकन को मूल विशेषताएँ :

सामाजिक सामूहिक कार्य में मूल्यांकन करना कार्यकर्ता का बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य होता है, क्योंकि इसके आधार पर ही सामूहिक प्रयत्नों की सफलता का हम दावा करते हैं। अतः इसकी मूल मान्यताओं या सिद्धान्तों को समझना आवश्यक प्रतीत होता है। मूल्यांकन को निम्न मौलिक मान्यताएँ हैं :—

1. सभी सामूहिक प्रयत्नों में मूल्यांकन आवश्यक समझा जाता है। यह संस्था अथवा समूह का आवश्यक अंग होता है तथा कार्यकर्ता का प्रथम उत्तरदायित्व है कि वह इस दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहें। संस्था के लिए मूल्यांकन आवश्यक समूह-प्रक्रिया पर निर्भर होती है। अतः अच्छे प्रशासन के लिए मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। इससे क्षमताओं एवं उपलब्धियों का ज्ञान होता है।

2. समूह-क्रियाओं का मूल्यांकन सदैव उद्देश्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए अर्थात् तुलनात्मक अध्ययन मूल्यांकन का एक आवश्यक अंग है। इसके अतिरिक्त मूल्यांकन सदैव उद्देश्य से सम्बन्धित होना चाहिए।

3. मूल्यांकन के अन्तर्गत समूह से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन करना चाहिए। भाग लेनेवाले सभी सदस्यों के विषय में मूल्यांकन होना चाहिए। मूल्यांकन ऐसा हो कि उसको देखकर कोई भी व्यक्ति सम्पूर्ण समूह तथा व्यक्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर ले। मूल्यांकन व्यक्तियों के एक साथ काम के वास्तविक अनुभव पर आधारित होना चाहिए।

4. मूल्यांकन निरन्तर होना अधिक लाभप्रद होता है, क्योंकि समय-समय किया जाने वाला मूल्यांकन उतना वास्तविक एवं उचित नहीं हो पाता है। मूल्यांकन का मूल उद्देश्य प्रत्येक स्थिति का वास्तविक चित्रण करके विकास करना होता है। यह तभी सम्भव हो सकता है कि जब निरन्तर मूल्यांकन होता रहे।

5. यह माना जाता है कि समूह-मूल्यांकन को प्राथमिक रूप से समूह-अनुभव के विकास एवं सुधार के लिए उपयोग में लाया जाता है और इससे सेवार्थियों को अच्छी सेवा प्रदान की जा सकती है।

●

अध्याय 17

सामाजिक सामूहिक कार्य चिकित्सा

साधारण बोलचाल की भाषा में चिकित्सा का तात्पर्य शारीरिक व्याधियों से रोगमुक्त होने से समझा जाता है। परन्तु औषधिशास्त्र में भी रोग से छुटकारा नहीं मिलता है केवल कुछ समय के लिए रोग को नियन्त्रण में कर लिया जाता है, पुनरावृत्ति की सम्भावना सदैव बनी रहती है। इस सम्भावना में कभी भोजन, आराम तथा अनुकूल स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों द्वारा किया जा सकता है। चिकित्सा प्रक्रिया में वे साधन, प्रविधियाँ, कौशल तथा तरीके होते हैं जिनके द्वारा सामूहिक तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है। समाज-कार्य में चिकित्सा शब्द का उपयोग सर्वप्रथम मेरी रिचमण्ड (Mary Richmand) ने किया जिसके पास चिकित्सालयों में चिकित्सकों के साथ काम करने का एक लम्बा अनुभव था और रोगियों की समस्याओं को सुलझाने का व्यवस्थित तरीके का ज्ञान था। वैयक्तिक सेवाकार्य में चिकित्सा की विधि सर्वप्रथम अपनायी गयी क्योंकि उसकी आवश्यकता सामाजिक समायोजन स्थापित करने के लिए अनुभव की गयी। इसके द्वारा उन क्षमताओं को व्यवस्थित एवं कार्यान्वित करते हैं जिनसे अनुकूलन प्राप्त होता है, तथा उन साधनों, अवसरों एवं शक्तियों को प्रदान किया जाता है जिनसे व्यक्ति समायोजन प्राप्त करता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य में चिकित्सा का उपयोग बाल्यावस्था में ही है क्योंकि प्रारम्भ में समूह कार्य का सम्बन्ध मनोरंजन तथा खाली समय की क्रियाओं से था जहाँ पर चिकित्सा का कोई स्थान नहीं था लेकिन अब यह अनुभव किया जाने लगा कि समूह कार्य को चिकित्सा के रूप में सक्रिय रूप से उपयोग में लाया जा सकता है। कार्यकर्ता समूह कार्य का उपयोग समूह व समस्याओं से उपचार के लिए करने लगे हैं।

परिभाषा (Difinition) :

समूह कार्य में चिकित्सा का तात्पर्य समूह स्थितियों तथा समस्याओं का प्रबन्ध करना है जिससे समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा संतोषजनक समूह भागीकरण एवं विकास प्राप्त कर सकें।[1]

---

1. Treatment in group work means management of group situations and problems with a view to satisfy the group

चिकित्सा के प्रकार (Types) :

समूह कार्य में चिकित्सा दो प्रकार की होती है :—

1. अल्पकालीन (Short term treatment)
2. दीर्घकालीन (Long term treatment)

जो समूह मनोरंजन एवं खाली समय की क्रियाओं के लिए संगठित किये जाते हैं वे प्रायः अल्पकालीन अवधि के होते हैं तथा जो समूह विकास के लिए अथवा चिकित्सा के उद्देश्य से संगठित किये जाते हैं वे दीर्घकालीन अवधि के लिए होते हैं वे इस प्रकार चिकित्सा का प्रकार, समूह की प्रकृति, प्रकार, लक्ष्य तथा समस्याओं पर निर्भर होता है।

सामूहिक कार्य चिकित्सा का उद्देश्य :

सामाजिक सामूहिक कार्य में चिकित्सा के निम्न उद्देश्य हैं :—

1. समूह के किसी एक सदस्य अथवा सम्पूर्ण समूह के सदस्यों की मनोवृत्तियों में पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तन लाना,

2. समूह का समाजीकरण करना जिससे सदस्यों में सामाजिक कार्यात्मकता में वृद्धि हो सके और अपनी भूमिकाओं का निष्पादन अधिक बेहतर ढंग से कर सकें।

3. विशेष परिस्थितियों में भूमिका निभाने के लिए व्यवहार में परिवर्तन करना,

4. पर्यावरण में परिवर्तन लाना—जैसे पर्यावरण में सुधार, आवासीय स्थिति में सुधार, आय में वृद्धि के कार्य तथा सेवाओं का प्रावधान,

5. उन परिस्थितियों में रहने की योग्यता विकसित करना जिनको बदला नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए, शारीरिक अक्षमता, अनाथ अवस्था अथवा विधवा अवस्था इत्यादि।

समूह उपचार के माध्यम (Media) :

समूह कार्यकर्ता निम्नलिखित प्रमुख चिकित्सा माध्यमों का उपयोग करता है :

1. उद्देश्यपूर्ण एवं सूझ-बूझ पर आधारित कार्यकर्ता समूह सदस्यों के बीच व्यवसायिक सम्बन्ध (उत्साहवर्धन)

2. समूह सदस्यों में सम्बन्ध (समूह प्रक्रिया)

---

needs and achieve satisfying group participation and growth.

3. मौखिक सम्प्रेरणा (Verbal communication)

4. अमौखिक सम्प्रेषण (Non Verbal Communication)

5. पर्यावरण का उद्देश्यपूर्ण चुनाव (choice) तथा उसका निर्माण (Purposeful choice and creation of environment)

उद्देश्यपूर्ण व्यावसायिक सम्बन्ध (Purposeful professional relation) : सम्बन्ध के साधन हैं जिनके द्वारा संचार प्रक्रिया चलती है एवं उपचार का कार्य प्रभाव पूर्ण बनता है। सम्बन्धों की प्रकृति प्रभावपूर्णता के स्तर को निश्चित करती है। कार्यकर्ता प्रथा समूह सदस्यों के बीच सम्बन्ध की निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये :

1. सम्बन्ध पारस्परिक विश्वास एवं आदर पर निर्भर हो।

2. परानुभूति प्रत्यय का कार्यकर्ता द्वारा ज्ञान तथा उसका उपयोग।

3. सदस्यों की समस्या समाधान की अन्तर्निहित क्षमताओं का मूल्यांकन।

4. विकास परक समूहों को अवरोधों का निवारण।

5. समूह कार्यकर्ता की उपस्थिति न केवल आवश्यक हो बल्कि सदस्यों द्वारा स्वीकृत भी हो।

6. सहायक, आलम्बनात्मक एवं उत्साहवर्धक सम्बन्ध।

7. सम्बन्धों की प्रकृति (Imformal) हो।

8. सम्बन्ध न तो अति उदार हों और न ही कठोर हों बल्कि आवश्यकतानुसार हों।

समूह सदस्यों के बीच सम्बन्ध : समूह कार्य न केवल सामूहिक पृष्ठभूमि में व्यक्तियों के साथ कार्य करने का एक तरीका है बल्कि समूह के द्वारा तथा समूह में समूह सदस्यों के साथ काम करने का एक विशेषीकृत कार्य है। समूह कार्यकर्ता का कार्य समूह सदस्यों के सम्बन्धों को महत्त्वपूर्ण बनाना है। सम्बन्ध समानता के आधार पर होने चाहिए। सभी सदस्यों को अपनी भावनाओं को प्रगट करने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। वे अपना आक्रोश, क्रोध, असंतुष्टि, स्नेह, सद्भावना, समान रूप से बिना रुकावट के प्रकट कर सकें। कार्यकर्ता का कार्य इन प्रतिक्रियाओं का सकारात्मक रूप से समूह विकास के लिए उपयोग करना है। इससे समूह निदान तथा उपचार में सहायता प्राप्त होती है। कार्यकर्ता का दूसरा कार्य अन्तक्रिया प्रक्रिया का निर्देशन करना है जिससे समूह अपने अभीष्ठ लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके।

मौखिक सम्प्रेषण :—समूह सदस्यों के बीच सम्बन्ध का व्यक्तीकरण विभिन्न तरीकों से होता है। इन तरीकों में बातचीत अथवा वार्तालाप एक प्रमुख तरीका

है। समूह में विचार व्यक्त करने का स्वतन्त्र तथा निर्भीक वातावरण सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाता है। तथा सदस्य एक-दूसरे के निकट आने एवं परिचय प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तथा कात्यीकरण की भावना प्रबल होती है। समूह कार्यकर्ता सामूहिक भागीकरण को अत्यधिक महत्त्व देता है तथा समूह वार्तालाप का उपयोग अनेक उद्देश्यों के लिए करता है। सामाजिक क्रिया तथा उपचार के लिए भी कार्यकर्ता वार्तालाप को साधन मानता है। इससे समूह सदस्यों में विभिन्न दृष्टिकोणों के सुनने की क्षमता आती है, वाद-विवाद करते हैं तथा तार्किक आधार पर सहमति होती है। इस प्रकार की संघर्षात्मक स्थिति में कार्य करना सीखते हैं। यह स्थिति सजीव प्रजातन्त्र का विकास करती है। समूह का विकास सही दिशा में होता है कार्यकर्ता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। वह प्रत्येक सदस्य को वार्तालाप में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता है परन्तु अनावश्यक दबाव नहीं डालता है। जब सभी सदस्य भाग लेते हैं तो अपनी भूमिका के प्रति ज्ञान होता है तथा उसका महत्त्व समझते हैं।

(अ) मौखिक सम्प्रेषण : कार्यक्रम क्रियायें, खेल, क्रीड़ा आदि महत्त्वपूर्ण सहायता के पात्र हैं। सदस्य इन कार्यक्रमों के माध्यम से अपने विचारों, भावनाओं, आक्रोश, प्रेम, भय आदि संवेगों को व्यक्त करते हैं।

अमौखिक सम्प्रेषण के रूप में मनोरंजन सृजनात्मक गुणों का विकास करता है तथा मानसिक स्थिति में परिवर्तन आता है। मनोवृत्ति में परिवर्तन वार्तालाप की अपेक्षा अनुभव से अधिक होता है अतः ऐसे कार्यक्रमों का होना नितान्त आवश्यक है। खेल सामग्री के चुनाव के द्वारा सदस्य अपनी भावनाओं को स्पष्ट करते हैं तथा भागीकरण को सीमा बढ़ती है अतः सदस्य स्वयं सामग्री का निर्धारण करते हैं।

नाट्यकला भावनाओं के स्पष्टीकरण का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। यह उनके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है जो साधारण स्थिति में अपना विचार व्यक्त नहीं कर सकते हैं। मोरेना (Morana) ने मनोभिनय का विकास मानसिक रोगियों के उपचार के लिए किया था। सामूहिक कार्यकर्ता इसका उपयोग समूह समस्याओं के निपटने में करता है। लेकिन केवल सीमित रूप में ही इसका प्रयोग करता है।

पर्यावरण का उद्देश्यपूर्ण चुनाव एवं रचना : पर्यावरण में भौतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार का पर्यावरण सम्मिलित होता है। समाज-कार्य का पर्यावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कार्यकर्ता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह सही,

उचित एवं अनुकूल पर्यावरण का विकास करें। अनुकूल पर्यावरण की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :

1. आफिस में प्रथमता (**Privacy**) अवश्य हो, फर्नीचर तथा कमरे की साज-सज्जा इस प्रकार से जिससे आदर एक गरिमा का भाव झलकता हो। समूह के मिलने का स्थान पृथक हो तथा इस प्रकार से बना हो कि जिसमें घनिष्ठता की झलक आती हो।

2. मीटिंग रूप समूह की प्रकृति के अनुरूप बना होना चाहिये। उदाहरण के लिए गोलाकार मेज।

समूह चिकित्सा के तरीके :

परानुभूति, स्नेह तथा सत्यता अनुकूलता (**Empathy, watmth and Genuincness**) परानुभूति का तात्पर्य दूसरे की भूमिका ग्रहण करने से है। कार्यकर्ता का महत्त्वपूर्ण कार्य सदस्यों का अध्ययन करना तथा उसे इस प्रकार से संचरित करना जिससे उसमें सूझ आ सके। दूसरे की भूमिका ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें सांवेगिक लचीलापन हो तथा साथ-ही-साथ अपनी भावनाओं को दूसरे के साथ समझने की सामर्थ्य हो। यदि वह दूसरों की भावनाओं का सही प्रत्यक्षीकरण कर लेता है तो समस्या समाधान का रास्ता भी वह प्राप्त कर लेता है।

स्नेह प्रायः अमौखिक तरीकों से व्यक्त किया जाता है। कार्यकर्ता सदस्यों को स्पर्श के द्वारा, चेहरे की भाव भंगिमा द्वारा तथा अनेक मुद्राओं द्वारा स्पष्ट करता है। यह स्वीकृति का परिचायक है और इससे समूह सदस्यों के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है एवं समूह कार्यकर्ता को अपना हितैषी समझने लगता है। उनमें सुरक्षा की भावना आती है तथा भागीकरण की सीमा का विस्तार होता है। परन्तु यह भी आवश्यक होता है कि किसी भी सदस्य को अनावश्यक स्नेह न प्रदर्शित किया जाय अन्यथा उसका प्रत्यक्षीकरण विघटित हो जायगा। अनुकूलता का तात्पर्य प्रक्रिया की अनुकूलता न होकर प्रक्रिया के तरीके की अनुकूलता होना आवश्यक होता है। अर्थात् कार्यकर्ता जब समूह के साथ कार्य कर रहा है तो यह न प्रदर्शित करे कि उसका सम्बन्ध केवल व्यावसायिक है। उसमें मानवीय गुण जैसे संवेदनशीलता, लगाव तथा स्वतः स्फूर्ति होनी चाहिये।

आत्म प्रगटन (Self disclosure) : आत्म प्रगटन का तात्पर्य समूह के समक्ष कार्यकर्ता के अपने व्यक्तिगत अनुभवों के स्पष्टीकरण से है। जहाँ पर आवश्यक होता है, कार्यकर्ता अपने अनुभवों को इस प्रकार बताता है जिससे समूह सदस्य समस्याओं से निपटने की कला सीखने में समर्थ होते हैं। कार्यकर्ता उस

समय सफल नहीं होगा जब वह सदस्यों से वस्तुओं की भाँति व्यवहार करेगा। अतःउसे अपने को उन्हीं परिस्थितियों में सम्मिलित करते हुए कार्य करना होगा। आत्म प्रगटन का समय विषय सामग्री तथा विशिष्ट प्रकृति का महत्त्व होता है। उदाहरण के लिए यदि चिंता से सम्बन्धित कार्यकर्ता स्वयं अपनी अनेक बातों को बतायेगा तो सदस्यों में आत्मविश्वास के स्थान पर निर्भरता की भावना पनपेगी। अतः बहुत सूझबूझ की आवश्यकता होती है।

प्रत्यक्ष विरोध (Confrontation) :—प्रत्यक्ष विरोध का तात्पर्य उस स्थिति से है जब कार्यकर्ता सदस्यों के व्यवहार और कथन में अन्तर को स्पष्ट करता है। क्योंकि कभी-कभी सदस्य कहते कुछ और हैं और व्यवहार बिल्कुल उसके विपरीत होता है। उदाहरण के लिए समूह का एक सदस्य कहता तो है कि वह किसी से भी नाराज नहीं है लेकिन उसकी वाणी से निकले वाक्य कटाक्ष के रूप में किसी विशेष पद्धति से प्रगट होते हैं। ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता स्वयं इस विरोधाभास को स्पष्ट करता है और सदस्य को आगाह करता है। विरोध की अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं अतः कार्यकर्ता को उनसे निपटने की युक्ति ज्ञात होनी चाहिये।

खोज करना (Exploration) : कार्यकर्ता समस्या के निदान के लिए कुछ प्रश्नों को तैयार करता है तथा उनका उत्तर समूह सदस्यों से प्राप्त करता है। इस प्रश्नावली में खुले तथा बन्द दोनों प्रकार के प्रश्न होते हैं जिससे सदस्यों की आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के विचारों एवं भावनाओं का स्पष्टीकरण होता है।

संक्षेपीकरण (Summarizing) : संक्षेपीकरण से तात्पर्य समूह मीटिंग की सम्पूर्ण प्रक्रिया के मुख्य बिन्दुओं का चयन तथा उनके स्पष्टीकरण से है। यह कार्य समूह क्रिया के समय ही हो सकता है अथवा बाद में भी किया जा सकता है। कार्यकर्ता संक्षेप में सभी पहलुओं की व्याख्या करता है। रचनात्मक कार्यों तथा उपलब्धियों का उल्लेख करता है एवं उन कमियों की ओर संकेत करता है जिनके कारण पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी।

आलम्बन (Support) : आलम्बन एक मनोवैज्ञानिक रणनीति है जिसका उपयोग एक सदस्य या समूह की क्षमता को पुर्नसंगठित अथवा दृढ़ किया जाता है। सदस्यों को बातचीत के लिए प्रोत्साहित करना या निरन्तर भाग लेने के लिए उत्साहित करना, प्रशंसनीय प्रत्युत्तर करना, स्वीकृति की भावना को स्पष्ट करना, विश्वास प्रदर्शित करना आदि आलम्बन के साधन हैं। आलम्बन से तनाव में कमी आती है तथा आत्म प्रगटन का अवसर प्राप्त होता है। कार्यकर्ता समूह को आलम्बन निम्न युक्तियों द्वारा देता है :

1. समूह को बिना किसी बाधा के अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का प्रोत्साहन ।
2. समूह की भावनाओं को सहिष्णुता के साथ समझना तथा उसके व्यवहार को स्वीकृति ।
3. समूह में रुचि ।
4. सहायता के रूप का स्पष्टीकरण ।
5. समस्या समाधान करने की दक्षता में समूह की स्वीकृति प्राप्ति ।
6. समूह में समस्या समाधान की योग्यता का विकास ।
7. समूह को अपना निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहन ।
8. समूह द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सम्मान प्रदर्शन ।
9. आवश्यकतानुसार समूह के लिए योजना निर्माण ।

ज्ञानात्मक पुर्नसंरचना (Cognitive restructuing) : ज्ञानात्मक पुर्नरचना का तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण या सांवेगिक स्थिति के परिवर्तन की जटिल रणनीति से है जिसके द्वारा समूह सदस्यों को योग्यताओं एवं व्यवहारों को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है जिससे रचनात्मक कार्य सम्भव होते रहे तथा समझ में वृद्धि होती है ।[1] कभी कार्य समूह अपनी क्रियाओं को करते-करते इस स्थिति पर पहुँच जाता है कि अब वह क्या करे अथवा समस्या की गम्भीरता के कारण प्रत्यक्षीकरण की क्षमता का ह्रास हो जाता है । ऐसी स्थिति में समूह को इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता होती है जिससे उसमें प्रत्यक्षीकरण की योग्यता का पुनः संचयीकरण हो । सामूहिक कार्यकर्ता इस विधि का उपयोग उस समय करता है जब समूह असमर्थता प्रगट करता है कि वह अब क्या करे ? ऐसी दशा में वह सुझावों एवं निर्देशों द्वारा समूह में योग्यता का विकास करता है ।

---

1. Cognitive restructuring refers to a complex strategy for changing perceptions or emotional sets which seem to impede the group members abilities to change or view behaviour of themselves or others as constructive or understandable.

Bal gopal, P. R. & Vassil, T. V.	Groups in Social Work : An Ecological Perspective. Macmillan Company, Newyork, 1983, p. 253.

भूमिका निष्पादन (Role Playing) : भूमिका निष्पादन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा प्रतिभागियों को अपनी भूमिका तथा दूसरों की भूमिका का ज्ञान प्राप्त होता है। भूमिका निष्पादन द्वारा व्यक्ति अपनी भावनाओं, विचारों तथा क्रियाओं को दूसरों के सन्दर्भ में व्यक्त करते हैं। भूमिका निष्पादन से जहाँ एक ओर समस्या समाधान के लिए व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर मानसिक तनाव कम होता है। भूमिका निष्पादन विधि का उपयोग वास्तविक जीवन स्थितियों से अवगत कराने के लिए किया जाता है। भूमिका की विषयवस्तु समूह के उद्देश्य पर निर्भर होती है। ज्ञानात्मक, प्रभावात्मक तथा व्यावहारिक प्रकार की भूमिकाओं को इस प्रकार से पूरी करने का प्रयत्न किया जाता है जिससे समूह सदस्यों के स्वतः प्रेरणा के स्रोत बनते हैं।

कार्यक्रम क्रियाओं का उपयोग (Use of Programming) : कार्यक्रम क्रियाओं का उपयोग नयी भूमिकाओं की विकास उत्पत्ति विकास तथा कार्यान्वियन के लिए अथवा वर्तमान व्यवहार के समूह में अधिक पुष्टि प्रदान करने के लिए एक आवश्यक यंत्र के रूप में समाजकार्य में प्रारम्भ से ही समझा गया है। अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा जहाँ एक ओर सदस्यों को मनोरंजन प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर नयी भूमिका पूरी करने की क्षमता का विकास होता है।

समस्या का विभक्तीकरण (Partializing) : सामूहिक कार्यकर्ता समूह की समस्या को अनेक खण्डों में विभक्त करके एक खण्ड पर विचार करता है तथा उसी के आधार पर समूह को कार्यक्रम क्रियाओं के संचालन हेतु आवश्यक निर्देशन देता है। इस प्रकार वह समूह को आवश्यक तनाव से मुक्त करके वास्तविक कार्य में लगाता है। इस विधि द्वारा समस्या समाधान की निपुणता का विकास किया जाता है। इस विधि से समूह को यह विश्वास हो जाता है कि समस्या का समाधान सम्भव है। इसके साथ ही साथ उनमें विश्वास जागृत हो जाता है कि वे स्वयं समाधान के लिए समर्थ हैं।

स्पष्टीकरण (Classification) : स्पष्टीकरण एक बौद्धिक प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध सचेत विषयवस्तु तथा मामले से होता है जिसको स्पष्ट करना तथा व्यक्त करना सहज एवं सुलभ होता है तथा सांवेगिक अवरोध उत्पन्न नहीं होते हैं। स्पष्टीकरण के द्वारा कार्यकर्ता समूह की मनोवैज्ञानिक सहायता प्रदान करता है। इस विधि द्वारा समूह को स्वयं अपने-अपने पर्यावरण तथा सम्बन्धित व्यक्तियों के प्रति समझ उत्पन्न हो जाती है। वह समस्या के सभी पहलुओं को वस्तुगत रूप से सोचने तथा समझने लगता है। स्पष्टीकरण में पर्यावरण तथा व्यक्तियों के सम्बन्ध में उन सूचनाओं को दिया जाता है जिनका सेवार्थी में

अभाव होता है तथा जिनके बिना उसको कार्यवाही करने का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है ।

सामान्यीकरण (Generalization) : आरम्भ स्तर पर समूह के सदस्य अपनी समस्याओं को पृथक रूप में देखते हैं तथा वे सोचते हैं कि वे ही केवल उससे ग्रसित हैं अन्य उस समस्या से परे हैं । कार्यकर्ता इस विश्वास को सामान्यीकरण करके उसके अहं को सुदृढ़ करता है । वह बताता है कि केवल वही इस समस्या से ग्रसित नहीं है बल्कि अनेक लोग इससे पीड़ित हैं । अतः समूह में यह समस्या सामूहिक रूप धारण करती है और समूह इसके समाधान के लिए प्रयास करता है ।

पादर्श प्रदर्शन (Modeling) : कार्यकर्ता इस विधि के द्वारा समूह को एक विशेष परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिये स्वयं वैसा व्यवहार करके दिखाता है जिसके परिणामस्वरूप समूह को प्रोत्साहन प्राप्त होता है । जब समूह देखता है कि कर्ता स्वयं किस प्रकार बिना किसी भय, रुकावट अथवा बाधा के कार्य कर लेता है तो वह भी कर सकता है । अतः उसके प्रयास की सकारात्मक दिशा में होते हैं ।

सामूहिक कार्य चिकित्सा के लिए आवश्यक सामूहिक पर्यावरण (Group atmosphere) : समूह निर्देशन के लिए समूह में स्वीकृति तथा अनुमोदन का वातावरण होना आवश्यक होता है । स्वीकृति का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें प्रत्येक सदस्य का चाहे वह जिस समुदाय, जाति, वर्ग अथवा आर्थिक स्थिति का हो, समान हो । यदि उसका व्यवहार विघटनात्मक है तो उसमें तथा उसके व्यवहार में भेद किया जाय । अनुमोदन का तात्पर्य उस स्थिति से है जब प्रत्येक सदस्य को अपने विचारों को स्पष्ट करने का अवसर प्राप्त हो । ये विचार चाहे अनुकूल हों अथवा प्रतिकूल हों । समस्या समाधान में वही समूह अधिक प्रभावकारी होगा जिसका वातावरण इसके अनुकूल होगा और जहाँ पर अनुभव करने के अवसर प्राप्त होंगे । समूह के पर्यावरण का तात्पर्य एक स्थिति में सामान्य मनोवैज्ञानिक अथवा सांवेगिक स्थिति से होता है । यदि वह पर्यावरण कुछ समय के लिए स्थिर रहता हैं जथवा समूह के जीवन का अंग बन जाता है तो उसे समूह की जलवायु (climate) कहते हैं । समूह की जलवायु अपूर्ण निर्णयवादी, चिन्तातुर, असुरक्षित्त, प्रसन्नचित अथवा विरोधात्मक हो सकती हैं । जलवायु का प्रभाव समूह सदस्यों पर बहुत अधिक होता है । वे उसी प्रकार का व्यवहार करेंगे जैसा उन्हें पर्यावरण प्राप्त होगा ।

समूह का वातावरण मुख्य रूप से 2 प्रकार का होता है :—

1. सुरक्षात्मक (Defensive)
2. स्वीकृत (Accepting).

सुरक्षात्मक वातावरण में समूह सदस्यों को स्वतन्त्र रूप से विचारों को स्पष्ट करने में कठिनाई होती है क्योंकि विचारों में विरोधाभास होता है। ऐसे वातावरण में समूह में नियन्त्रण अधिक होता है, दण्ड की व्यवस्था होती है, नियम कठोर होते हैं अतः समूह का व्यवहार उसी के अनुरूप होता है। सदस्यों में पर निर्भरता पायी जाती है तथा कभी-कभी उदासीनता के लक्षण परिलक्षित होते हैं। दूसरी ओर स्वीकृत वातावरण में सदस्य एक-दूसरे की बात को ध्यान से सुनते हैं, समझने का प्रयत्न करते हैं तथा एक-दूसरे पर विश्वास रखते हैं। ऐसे समूह में सीखने की गति तेज होती है, साथ-साथ कार्य करने की प्रवृत्ति पायी जाती है तथा सदस्यों में सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण एवं सहायतामूलक होते हैं।

गिब (Gibb)[2] अनुसार सुरक्षात्मक वातावरण में निम्न कारक प्रभावपूर्ण होते हैं :

1. मूल्यांकन पर बल दिया जाता है।
2. नियन्त्रण कठोर होता है।
3. रणनीति अवश्य बनती है।
4. निरपेक्षता (Neutrality) होती है।
5. श्रेष्ठता की भावना पायी जाती है।
6. निश्चय का तत्त्व निहित होता है।

इसके विपरीत आलम्बनात्मक (Supportive) वातावरण की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है :—

1. वर्णनात्मक स्थिति होती है।
2. समस्या से सीधा सम्बन्ध होता है।
3. स्वतः स्फूर्ति पायी जाती है।
4. परानुभूति (Empathy) होती है।
5. समानता पायी जाती है।
6. अस्थायित्व (Provisional) पाया जाता है।

सामूहिक कार्यकर्ता का प्रमुख कार्य सहायक एवं आलम्बनात्मक वातावरण तैयार करना होता है जिससे सामूहिक क्रियायें सफलतापूर्वक सम्पन्न हो सकें। ●

---

2. Gibb, J. R. : Defensive Communication, in T. Galenbiewski and A. Blumbery (eds), Sensitive Training and Laboratory Approach, F. E. Reacock, Illinois, 1970.

अध्याय 18

अभिलेखन

व्यावसायिक समाज कार्य का उद्देश्य न केवल व्यक्ति की मनो-सामाजिक समस्याओं का निदान व उपचार करना है बल्कि सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन करना है। समाज कार्य का सम्बन्ध व्यक्ति से व्यक्ति का, व्यक्ति से समूह का, व्यक्ति का स्थिति से, समूह का समूह से अनुकूलन से है। प्रारम्भ में समाज कार्य दान तथा सुधार से सम्बन्धित था अर्थात् गरीबों के लिए भोजन, वस्त्र तथा मकान की व्यवस्था करना तथा बीमार की मदद करना था। परन्तु आज इसका रूप विस्तृत हो गया है। समुदाय का कल्याण तथा उन्नति एवं विकास के अवसर दिखाना भी समाज कार्य का कार्य हो गया है।

I. सामूहिक कार्य में अभिलेखन का अर्थ :

सामूहिक कार्यकर्ता के कार्यों में प्रतिवेदन तथा अभिलेखन भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसका यह आवश्यक उत्तरदायित्व है कि समूह की क्रियाओं का क्रमबद्धता से अभिलेखन करें क्योंकि सामूहिक कार्य एक प्रक्रिया है इसलिए कार्यकर्ता को विगत घटनाओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। सामूहिक कार्य अभिलेखन के 3 महत्त्वपूर्ण विषय क्षेत्र हैं : (1) व्यक्ति (2) सम्बन्ध (3) अन्तर्क्रिया। अभिलेख में व्यक्ति की क्रियाओं, सम्बन्धों तथा अन्तःक्रिया को लिखा जाता है। कार्यकर्ता यह लिखता है कि सामूहिक स्थिति में एक विशेष व्यक्ति क्या कर रहा है। उसका क्या योगदान है तथा वह किस इच्छा से कार्य कर रहा है। वह किस प्रकार से भाग ले रहा है, समूह से कैसे सम्बन्ध रखता है तथा सदस्यों में अन्तःक्रिया का क्या रुख है। समूह की उन्नति और विकास के लिए कार्यकर्ता एक सहायक के रूप में क्या सहायता देता है, उसका समूह के प्रति क्या दृष्टिकोण है, उसमें कितनी क्षमता एवं योग्यता समूह को सही दिशा में संचालित करने की है, इत्यादि बातों को लिखते हैं। सामूहिक कार्य में अभिलेखन का तात्पर्य निम्न घटनाओं को क्रमबद्ध रूप से अंकित करना है :

1. समूह के सदस्यों के व्यवहारों का वर्णन
2. सदस्यों के भाग लेने के प्रकार का विस्तार
3. सदस्यों के परस्पर एक दूसरे के प्रति सम्बन्धित होकर कार्य प्रक्रिया।
4. सदस्यों के विचारों की उत्पत्ति तथा विकास
5. विचारों की स्वीकृति-अस्वीकृति

6. परस्पर उत्तेजनात्मक कार्य तथा मनोवैज्ञानिक रूप से कार्य करने की दिशा।

7. कार्यकर्ता द्वारा समूह की सहायता के प्रयत्न

8. कार्य द्वारा समूह की स्थिति के विषय में विचार तथा अनुभव

9. कार्यकर्ता के उद्देश्य तथा उनकी उपलब्धियाँ।

10. व्यक्तियों तथा समूहों में परिवर्तन

11. समूह और अभिकरण के बीच सम्बन्ध

12. कार्यक्रम की उपयोगिता

II. अभिलेखों का उद्देश्य :

1. सामूहिक कार्य अभिलेखन का सर्वप्रथम उद्देश्य समूह सदस्यों की इच्छाओं एवं रुचियों को समझना है। कार्यकर्ता इन अभिलेखों के माध्यम से पता लगा लेता है कि सदस्य क्या चाहता है तथा उस दिशा में हम कितना आगे बढ़ रहे हैं।

2. अभिलेखों के माध्यम से कार्यकर्ता को अपनी भूमिका का ज्ञान होता है। वह यह जब ज्ञात कर लेता है कि उसने कहाँ-कहाँ सहायता की और वह सहायता कहाँ तक उपयोगी रही। इसी आधार पर वह अपनी प्रविधियों एवं ढंगों में परिवर्तन करता है।

3. अभिलेखों से समूह में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान रहता है तथा कार्यक्रमों की उपयोगिता उसके महत्त्व का भी ज्ञान होता है। अतः जब आवश्यक समझता है तब कार्यकर्ता उनमें परिवर्तन एवं विकास करता है। इससे निरन्तर सेवायें समूह के अनुकूल बनी रहती हैं।

4, अभिलेखों की सहायता से समूह में होने वाले विकास तथा उन्नति का ज्ञान होता है। सामूहिक कार्य का उद्देश्य समूह के माध्यम से व्यक्ति का विकास करना है। अभिलेखों के द्वारा कार्यकर्ता यह अनुमान लगा लेता है कि वह समूह के उद्देश्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफल हुआ है।

5. अभिलेखों से समूह से सम्बन्धों का ज्ञान होता है। सम्बन्धों को जानना कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है क्योंकि सम्बन्धों के माध्यम से ही सामूहिक क्रियायें सम्पन्न होती हैं और विकास के अवसर प्राप्त होते हैं।

6. अभिलेखन ही वह माध्यम है जिनसे सामूहिक सहायता के रूप में समझा जाता है। जब कार्यकर्ता पिछले अभिलेखों का अवलोकन करता है तो उसे पता चलता है कि समूह किस प्रकार की सेवायें प्राप्त कर चुका है और अब उसे किस प्रकार की सेवायें आवश्यक हैं।

7. अभिलेखों की सहायता से सुपरवाइजर कार्यकर्ता की शक्तियों, क्षमताओं, कला कौशल तथा निपुणताओं का ज्ञान प्राप्त करता है जिसके आधार पर वह कार्यकर्ता की सहायता करता है ।

8. अभिलेखों द्वारा मूल्यांकन का कार्य सम्भव होता है ।

निम्नलिखित बातों को कार्यकर्ता अपने अभिलेख में शामिल करता है :

1. समूह की परिचय सम्बन्धी मौलिक सूचनायें

1. समूह का नाम
2. मिलने का दिन तथा दिनांक
3. मिलने का स्थान
4. सदस्यों की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति की संख्या तथा नाम
5. यदि कोई नया सदस्य सम्मिलित हुआ है तो उसकी प्राथमिक सूचना
6. संस्था की भौतिक दशायें
7. मौसम, अन्य दशायें जिनसे समूह के सदस्यों की उपस्थिति पर असर पड़ता है
8. महत्त्वपूर्ण अवलोकन

2. सदस्य के विषय में जानकारी

1. सदस्यों के भाग लेने की दशा
2. बातचीत करने का ढंग
3. परस्पर सम्बन्धों का रूप
4. प्रत्येक सदस्य के भाग लेने की क्षमता तथा सीमा
5. भाग लेने का अनुक्रम
6. सदस्यों के योगदान का महत्त्व
7. समूह सदस्यों की अन्तःक्रियायें
8. सदस्यों में क्रियायें तथा प्रतिक्रियायें
9. सदस्यों की भाग लेने के कारण सांकेतिक, मनोवैज्ञानिक स्थिति
10. सदस्यों का व्यवहार
11. समूह का व्यवहार ।

3. कार्यक्रम क्रियाओं में भागीकरण

1. कार्यक्रम में क्रियाओं का रूप
2. कार्यक्रम क्रियाओं में भाग लेने की दशा
3. सदस्यों की सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रत्युत्तर
4. कार्यक्रम क्रियाओं से अनुभव की सीमा

4. विचारों को उत्पत्ति एवं विकास
   1. सदस्यों के विचार
   2. विचारों में परिवर्तन
   3. परिवर्तित विचार तथा उनकी स्वीकृति
   4. सदस्यों का एक दूसरे के प्रति लगाव
   5. सदस्यों की रुचियाँ।
   6. सदस्यों के अनेक मसलों पर विचार
   7. उत्तेजनात्मक शक्तियाँ।

5. सामूहिक कार्यकर्ता की भूमिका तथा सम्बन्ध—
   1. कार्यकर्ता द्वारा दी जाने वाली सुविधायें
   2. कार्यक्रम में कार्य द्वारा दी जाने वाली सुविधायें
   3. सलाह का रूप
   4. सुझाव का रूप
   5. वार्तालाप में भागीकरण
   6. क्रियाओं का निर्देशन
   7. अभिकरण के कार्यों तथा सुविधाओं का अनुमान
   8. सामूहिक स्थिति के प्रति विचार तथा कार्य-सारिणी।

6. समूह में व्यक्तियों के साथ कार्यकर्ता की भूमिका का वर्णन—
   1. व्यक्ति की समस्या
   2. समस्या का रूप
   3. समस्या समाधान के उपाय
   4. समाधान करने का अपनाया गया तरीका
   5. स्रोतों का उपयोग।

7. प्रत्येक मीटिंग का मूल्यांकन—
   1. समूह की क्रियाओं का मूल्यांकन
   2. सम्पूर्ण कार्य का निष्कर्ष
   3. प्रत्येक सदस्य का आलोचनात्मक वर्णन
   4. सफलता-असफलता के कारण
   5. कार्यकर्ता की भूमिका की आलोचना

III. अभिलेखन के प्रकार

अभिलेखन के दो महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं :—

1. वर्णनात्मक प्रकार (Descriptive) :—यह सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका

है। इसमें तथ्यों एवं कार्यों को विस्तार से लिखा जाता है तथा प्रत्येक घटना व व स्थिति का स्पष्ट चित्रण किया जाता है। घटना का क्रमानुसार चित्रण होता है।

2. संक्षिप्त अभिलेखन (Summarized Style) :—इस प्रकार के अभिलेखन में सामाजिक अध्ययन व सामाजिक अतिवृत्ति को कई अंशों में विभक्त कर देते हैं। विषय के आधार पर सम्पूर्ण प्रक्रिया को कई भागों में विभाजित कर दिया जाता है, जैसे—अभिज्ञान आँकड़े, भागीकरण, प्रमुख अन्तःक्रियायें, समस्यायें इत्यादि।

IV. वर्णात्मक अभिलेखों की विषय-वस्तु

सामूहिक कार्य प्रक्रिया में सामूहिक कार्यकर्ता के लिए अभिलेख तैयार करना भी उसकी भूमिका का एक आवश्यक अंग है। यह कार्य इतना आसान नहीं है और उसके लिए तो और भी कठिन प्रतीत होता है जो इस क्षेत्र में नया होता है। वे विद्यार्थी जो सामूहिक स्थिति में कार्य करने जाते हैं, अक्सर पूछते हैं कि उनको अभिलेख में क्या लिखना चाहिए तथा किस प्रकार अभिलेख तैयार करना चाहिए। वे एक ऐसी रूपरेखा चाहते हैं जिसका वे अनुसरण कर सकें और जो अभिलेख तैयार करने में सहायक सिद्ध हो सके। परन्तु कोई भी तालिका या रूपरेखा तैयार करने का तात्पर्य सामूहिक कार्य-दर्शन को समझाना अर्थात् सम्पूर्ण सामूहिक कार्य-प्रक्रिया का वर्णन करना है। अतः कार्यकर्ता में निपुणता तथा अन्तर्दृष्टि दोनों की आवश्यकता होती है। उसको सामूहिक कार्य के सिद्धान्तों का ज्ञान होना आवश्यक होता है क्योंकि अभिलेख में उनका उपयोग आवश्यक है।

समूह भिन्न-भिन्न होते हैं तथा उनकी स्थिति में भी भिन्नता होती है अतः कोई भी सूची या रूपरेखा तैयार करने में हम सामान्य पथ अपनाते हैं जो कार्यकर्ता को ज्ञान प्रदान करता है तथा उसका पथ-प्रदर्शन करता है। यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक समूह में वे परिस्थितियाँ हों जिनका रूपरेखा वर्णन हो या कार्यकर्ता प्रत्येक समूह स्थिति में अनुभव करे। उससे अधिक तथा कम बात हो सकती हैं परन्तु कार्यकर्ता को सदैव उन परिस्थितियों तथा बातों को ध्यान में रखना चाहिए जो समूह को समझने में सहायक होती हैं। इनसे कार्यकर्ता अपनी भूमिका के महत्त्व को अवश्य समझेगा तथा उसकी आलोचना करेगा। वह इन परिस्थितियों तथा दशाओं को ध्यान से देखेगा जो संघर्ष-युक्त हैं और विशेष सहायता चाहती हैं वह मूल्यांकन पर विशेष जोर देगा।

V. वर्णनात्मक अभिलेखों का महत्त्व :

कार्यकर्ता के लिए अभिलेखों को तैयार करना उतना ही आवश्यक है जितना

कि समूह के साथ कार्य करना। यह उसके उत्तरदायित्व का एक आवश्यक अंग है और सामाजिक सामूहिक कार्य प्रक्रिया का भी अंग है। सामूहिक कार्य की उन्नति के लिए अभिलेखन आवश्यक होता है। यद्यपि वर्णनात्मक अभिलेख सामूहिक कार्य से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति के लिए हितकारी है परन्तु सामूहिक कार्यकर्ता के लिए वे विशेष आवश्यक हैं। कार्यकर्ता अभिलेखों के लिखने तथा विश्लेषण करने से ही अपनी निपुणताओं का उपयोग समूह के साथ कर सकता है। इसके द्वारा सामूहिक अनुभव की गुणात्मक उन्नति सम्भव है। जब कार्यकर्ता समूह की प्रत्येक प्रक्रिया का अभिलेखन करता है तो उसको समूह कार्य के विश्लेषण तथा मूल्यांकन में सहायता मिलती है।

इसके द्वारा सामूहिक कार्यकर्ता सदस्यों को भली प्रकार समझता है। इस अनुभव के द्वारा वह भ्रामक अर्थ स्पष्ट करता है। वह अपनी भूमिका को समझ लेता है तथा अपने कार्यों का भी मूल्यांकन कर लेता है जिससे अपनी सफलता का भी उसे ध्यान रहता है। वास्तविक स्थिति से अवगत होकर वह सदस्यों के साथ अपने सम्बन्धों को घनिष्ठ बनाता है।

2. **समूह का ज्ञान**—अभिलेखों की सहायता से वह पूरे समूह के विषय में जानकारी रखता है क्योंकि वह अभिलेख में समूह के प्रत्येक अवयव के विषय में, उसकी कार्य-क्रियाओं के विषय में, उसके व्यवहार तथा सम्बन्धों के विषय में लिखता है, अतः समूह का ज्ञान स्वतः हो जाता है।

3. **मूल्यांकन में सहायक**—अभिलेख व समूह की उन्नति विकास एवं परिवर्तन के प्रमाण हैं। कार्यकर्ता इनकी सहायता से समूह के विकास एवं परिवर्तन को समझता है तथा उसे समूह के विकास के लिए एक दिशा का ज्ञान होता है, वह स्वयं अपना मूल्यांकन भी इसके द्वारा करता है।

4. **अधीक्षण मंत्रणा में सहायक**—अभिलेखों के आधार पर ही अधीक्षक कार्यकर्ता को आवश्यक निर्देश देता है तथा उनकी कुशलताओं का विकास करता है। इससे उसकी सेवायें अधिक मूल्यवान हो जाती हैं।

5. **भविष्य के कार्यक्रम में सहायक**—जब कार्यकर्ता समूह की क्रियाओं का मूल्यांकन निरन्तर करता है जो उसे यह ज्ञान होता रहता है कि समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति किस सीमा तक हो चुकी है। उसको पूर्ण तथा अपूर्ण आवश्यकताओं का यथार्थ ज्ञान रहता है। इसके आधार पर वह भविष्य के कार्यक्रम निर्धारित करता है।

6. **अभिकरण के कार्य के लिए आवश्यक**—अभिकरण के द्वारा ही सामूहिक कार्य सम्पन्न होता है। अतः उसे समूह की क्रियाओं का ज्ञान होना आवश्यक होता है जिससे वह सुविधापूर्वक सम्बन्धित कार्यक्रम बनाता है।

7. सहायता का एक आवश्यक यन्त्र—कार्यकर्ता के लिए समूह की पूर्ण जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि सामूहिक कार्य एक प्रक्रिया है। सदस्य तारतम्य के आधार पर लाभ उठाते हैं। अगर कार्यकर्ता को यह पता नहीं होगा कि अब तक कैसे, किस प्रकार और किस उत्तरदायित्व के साथ समूह ने काम किया है तो वह समूह के साथ समायोजन करने में कठिनाई महसूस करेगा। इसके द्वारा वह उस स्थान की खोज सरलता से कर लेगा जहाँ पर उसकी सहायता की आवश्यकता होगी।

8. अन्तःसम्बन्धों का ज्ञान : कार्यकर्ता व्यक्तियों की रुचियों को समझता है। वह क्रियाओं में भाग लेने की रुचि का विश्लेषण करता है। आवश्यकताओं की पूर्ति वे किस प्रकार करते हैं तथा इसके लिए किस प्रकार के समूह से सम्बद्ध है आदि का ज्ञान कार्यकर्ता को होता है। कार्यक्रम में समूह-सदस्य क्या प्रतिक्रिया करते हैं तथा उनमें क्या परिवर्तन आया है आदि का ज्ञान अभिलेखों द्वारा ही उपलब्ध होता है।

9. अन्तःसंबंधों का ज्ञान : अभिलेख में प्रत्येक सदस्य के सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। वह किस प्रकार दूसरे से, दूसरा-तीसरे से या वे एक-दूसरे से कैसा व्यवहार करते हैं, सम्बन्ध रखते हैं तथा सम्बन्धों को महत्त्व देते हैं आदि का वर्णन किया जाता है। सामूहिक कार्यकर्ता इन सम्बन्धों की दशा को अभिलेखों द्वारा समझता है तथा उन्हें प्रगाढ़ बनाने का प्रयत्न करता है।

10. कार्यकर्ता को अपने संबंधों तथा भूमिका का ज्ञान : अभिलेख में-कार्यकर्ता यह दर्शाता है कि समूह की आस्था कार्यकर्ता के प्रति कितनी है, समूह सदस्य उसको कहाँ तक स्वीकृति देते तथा उसकी आवश्यकता महसूस करते हैं। वह यह भी लिखता है कि उसके सम्बन्ध समूह के साथ कैसे हैं तथा सकारात्मक सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए वह क्या करता रहा है। वह समूह के साथ अपनी सहायक क्रियाओं का वर्णन करता है जिससे उसे अपनी भूमिका के विषय में पूरी जानकारी रहती है।

11. नये कार्यकर्ता के लिए पथ-प्रदर्शक : जो कोई नया कार्यकर्ता समूह के साथ कार्य करता है तो उससे काफी सहायता मिलती है। वह यह समझ लेता है कि अभी तक समूह से कितना अनुभव प्राप्त किया है और अपने उद्देश्यों को किस ओर तथा किस सीमा तक पहुँचा चुका है और पुराने सामूहिक कार्यकर्ता ने समूह के साथ क्या भूमिका निभाई है।

12. सन्दर्भित करने में सहायक : समूह की अनेक प्रकार की इच्छा और आवश्यकता होती है और वे उनकी पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रम करते

की इच्छा व्यक्त करते हैं परन्तु सभी क्रियाओं में कार्यकर्ता दक्ष नहीं हो सकता। अभिलेखों के माध्यम से उसको यह ज्ञात होता है कि अभी तक कहाँ-कहाँ की सेवायें प्राप्त हुई हैं और उनसे क्या-क्या अनुभव मिले हैं। उसी प्रकार की परिस्थिति उपस्थित होने पर वह उन्हीं स्थानों की सेवाओं के लिए सदस्यों को संदर्भित कर देता है।

13. **अभिकरण के प्रशासन में सहायक** : अभिकरण का मुख्य कार्य व्यक्ति की सेवाओं में सुधार करना है। अतः अभिलेखों द्वारा अभिकरण अपनी सेवाओं की औपचारिकता को समझता है, सेवाओं की आवश्यकता का ध्यान रखता है तथा उसके उचित प्रशासन के लिए प्रयास करता है। अभिलेखों से अभिकरण को सहायता मिलती है कि वह अपनी नीति में किस प्रकार परिवर्तन लावे जिससे समुदाय को अधिक से अधिक लाभ हो सके। उसको इससे यह भी सहायता मिलती है कि अपनी सुविधाओं का समुदाय के लिए किस प्रकार क्रियान्वयन करे।

14. **समाज कार्य में महत्त्व** : यह स्पष्ट है अभिलेख समूह कार्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं इससे सामूहिक कार्य की प्रणाली का महत्त्व स्पष्ट होता है। जब कई समूहों के अभिलेख समान समस्या को प्रकाश में लाते हैं तो उसके निराकरण के लिए सामाजिक क्रिया-प्रणाली या सामुदायिक संगठन का उपयोग करते हैं।

15. **अनुसंधान में सहायक** : सामूहिक कार्य के विषय में हम बिना अभिलेख के विस्तृत ज्ञान के अभाव में अनुसंधान नहीं कर सकते, क्योंकि अभिलेख ही एक मात्र साधन हैं जिनके द्वारा सामूहिक क्रियाओं का ज्ञान होता है। सभी अभिलेख उपकल्पना की संरचना तथा परीक्षण करने में सहायक होते हैं।

VI. अभिलेखन के सिद्धान्त :

अभिलेखन तैयार करना कोई कठिन कार्य नहीं है परन्तु ऐसे अभिलेख तैयार करना जिनसे वास्तविक तथा लाभप्रद प्रयोग सम्भव हैं, कठिन है। इसलिए अन्य ज्ञान के साथ-साथ कुछ सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

लिन्डसे ने अभिलेखन के पाँच प्रमुख सिद्धान्त बताये हैं :

1. **लोच का सिद्धान्त** : इसके अनुसार अभिलेख अभिकरण के उद्देश्यों के अनुरूप हों, क्योंकि अभिकरण के उद्देश्य और समूह के उद्देश्य एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

2. **चुनाव का सिद्धान्त** : इसका तात्पर्य यह है कि कार्यकर्ता अभिलेख में सब कुछ नहीं लिखता है वरन् महत्त्वपूर्ण स्थितियों, जैसे व्यक्ति के विकास तथा समूह की उन्नति पर प्रकाश डालता है।

3. **पठनीय सिद्धान्त :** अभिलेखों में भावों की स्पष्टता होती है तथा ढंग उचित रहता है ।

4. **विश्वसनीयता का सिद्धान्त .** अभिलेखों को सदैव गुप्त रखना चाहिए तथा केवल व्यावसायिक रूप से उनका प्रयोग करना चाहिए ।

5. **कार्यकर्ता की स्वीकृति का सिद्धान्त :** कार्यकर्ता यह उत्तरदायित्व महसूस करे, कि उसके अन्य कार्यों में से अभिलेख तैयार करना भी एक आवश्यक कार्य है । इन गुणों के होने पर ही अभिलेखों में स्पष्टता एवं व्यावसायिक मनोवृत्ति हो सकती है ।

VII. सामूहिक अभिलेखों का सारांश तथा विश्लेषण :

सामूहिक कार्यकर्ता के लिए आवश्यक है कि वह समय-समय पर प्रस्तुत अभिलेखों का विश्लेषण किया करे, तथा उनका सारांश प्रस्तुत करें । यह उस समय आवश्यक हो जाता है जब समूह को किसी अवधि उन्नति एवं विकास तथा परिवर्तन का मूल्यांकन करना होता है । इस विश्लेषण से कार्यकर्ता बहुत कुछ सीख सकता है । यह अक्सर उस समय किया जाता है जब समूह के साथ कार्य समाप्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त जब समूह को दूसरे कार्यकर्ता के सुपुर्द किया जाता है तब भी समूह-सारांश आवश्यक होता है । निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अभिलेखों में देकर सारांश तैयार करना चाहिए :

1. समूह में व्यक्तियों को क्या अनुभव हुआ है । प्रत्येक व्यक्ति के विषय में प्राथमिक सूचना के साथ-साथ उनके व्यवहारों तथा समूह के साथ सम्बन्धों में विकास एवं परिवर्तन का वर्णन होता है । यदि समूह सामान्य समूह (15 सदस्यों) से बड़ा है तो महत्त्वपूर्ण सदस्यों तथा नेता का वर्णन होता है तथा उनका वर्णन होता है जो अधिक तथा सबसे कम मान्य है ।

2. समूह-उद्देश्य की समूह-अनुभव से कहाँ तक पूर्ति हुई, सदस्यों ने कहाँ तक सन्तोष प्राप्त किया, किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति हुई, अचेतन अभि-प्रेरणा ने उद्देश्य को कहाँ तक प्रभावित किया, कहाँ तक तथा कैसे अभिकरण के कार्य तथा उद्देश्यों ने समूह के उद्देश्य को प्रभावित किया, किस प्रकार समुदाय ने समूह-उद्देश्यों को प्रभावित किया, इत्यादि बातें जानी जाती हैं ।

3. उद्देश्यों में क्या परिवर्तन हुए तथा क्यों हुए, इसका भी वर्णन होता है ।

4. सदस्यों को किस प्रकार समूह का सदस्य बनाया जाता है तथा अभि-करण की नीतियों का सदस्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, वे कौन-कौन से कारक हैं, जिनका होना समूह-सदस्यता के लिए आवश्यक होता है, इनका वर्णन किया जाता है ।

5. वे कौन से सामाजिक कारक हैं जो समूह-निर्माण को बाध्य करते हैं, इसे जाना जाता है। इसमें समूह पर अन्य परिस्थितियों के प्रभाव को भी देखा जाता है, जैसे राष्ट्रीयता, ग्रामीणता, जन स्कूल, व्यवसाय, स्थिति, आर्थिक दशा, परिवार का स्तर इत्यादि।

6. किस प्रकार समूह-सदस्य एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, इसे भी लिखते हैं।

7. समूह में स्वीकृति तथा अस्वीकृति की दशा का वर्णन करते हैं।

8. किस प्रकार समूह में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई और उसको कैसे दूर किया गया, इसे वर्णित करते हैं।

9. समय-समय पर कार्यकर्ता ने कैसे और कहाँ पर व्यक्ति-विशेष की सहायता की, उसको समूह से सम्बन्ध प्रगाढ़ बनाने में मदद की, इसका वर्णन करते हैं।

10. समूह ने व्यक्ति को अपनी भूमिका पूरी करने में कितनी सहायता की, इसका वर्णन करते हैं।

11. कार्यकर्ता ने स्वीकृति-अस्वीकृति तथा पद की प्रक्रिया में क्या भूमिका अपनाई, उसने किस प्रकार समूह के तरीकों को प्रभावित किया, अपने सम्बन्धों को किस प्रकार व्यक्ति तथा समूह के साथ प्रयोग किया, इसे देखा जाता है।

12. समूह किस प्रकार अनुशासित होता है, क्या कोई औपचारिक तरीका है, समूह कितना इन कानूनों से बँधा है, कितनी कमेटियाँ हैं तथा उनके क्या कार्य हैं, कार्यकर्ता का कमेटियों में क्या कार्य है, इत्यादि बातें समझी जाती हैं।

13. समूह का नेता किस प्रकार समूह को नियन्त्रित करता है, उसने समूह के लिए क्या किया जिसके कारण उसको आदर्श नेता मानते हैं, इसे अभिलेखों से ज्ञात कर सकते हैं।

14. अभिकरण के नियम किस प्रकार-समूह-नियन्त्रण को प्रभावित करते हैं, किस प्रकार इन नियमों को वास्तविक रूप में प्रयोग किया जाता है तथा कार्यकर्ता के अतिरिक्त दूसरे सदस्य-नियन्त्रण के लिए क्या करते हैं, यह अभिलेख से मालूम होता है।

15. कार्यकर्ता ने किस प्रकार समूह-नियन्त्रण में भाग लिया है, अभिलेखों में इसे भी लिखते हैं।

16. समूह का सामाजिक पर्यावरण कैसा है—अर्थात् समूह में दोस्ती, एक-दूसरे के प्रति उग्रता, स्वतन्त्र रूप से अपनी दशाओं को व्यक्त करने की दशा, शक्ति के प्रति अभिव्यक्ति तथा कार्यकर्ता को कार्य करने की सुविधा, इसके

अतिरिक्त बाह्य समूह को किस प्रकार प्रभावित करते हैं आदि अभिलेखों से जाना जा सकता है ।

17. समूह-सदस्यों में सम्बन्ध की क्या स्थिति है तथा इसके लिए वे क्या करते हैं, यह ज्ञात किया जा सकता है ।

18. समूह के कार्यक्रम क्या-क्या हुए हैं, एतदर्थ मुख्य कार्यक्रमों का विवरण देते हैं । कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, कौन-सी क्रियाओं में समूह ने अधिक प्रत्युत्तर किया है और किनमें कम, कार्यक्रमों ने व्यक्ति को कौन-सा योगदान दिया है, कार्यकर्ता की रुचियों तथा निपुणताओं ने कार्यक्रम को कैसे प्रभावित किया है तथा उसका कार्यक्रम-निर्धारण में क्या योगदान रहा है. इसे ज्ञात कर सकते हैं ।

19. एक समूह का दूसरे समूह से क्या सम्बन्ध है, इस समूह का अभिकरण के अन्य समूह से कौन-सम्बन्ध है, बाहर इसका क्या सम्बन्ध है, कार्यकर्ता की इन सम्बन्ध-क्रियाओं में क्या भूमिका रही है, इत्यादि बातों को जाना जा सकता है ।

20. कार्यकर्ता का समूह के सदस्यों के साथ कैसा सम्बन्ध है, उन सदस्यों के साथ जो समूह में सदैव गड़बड़ी करते हैं, बात नहीं मानते हैं, अपना कार्य नहीं करते हैं, अभद्र व्यवहार करते हैं, इनके साथ कार्यकर्ता क्या भूमिका निभाता है, जो सदस्य सामान्य हैं वे समूह-अनुभव में कार्यकर्ता उनके साथ क्या कर रहा है तथा उसने अपने व्यवहार को किस प्रकार कार्यक्रम-विकास में सहायक बनाता है, इत्यादि का वर्णन भी अभिलेखों में होता है ।

अध्याय 19

सामाजिक सामूहिक कार्य में अधीक्षण

समाजकार्य में अधीकरण (Supervision) का विकास शिक्षात्मक तथा प्रशासनिक प्रणाली के रूप में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में वैयक्तिक सेवा कार्य में अधीक्षण का उपयोग प्रारम्भ हुआ लेकिन बाद में सामूहिक कार्य तथा सामुदायिक संगठन में भी उपयोग होने लगा। वैयक्तिक कार्यकर्ता तथा सामूहिक कार्यकर्ता दोनों ने अधीक्षकीय प्रणाली के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। अधीक्षक में शिक्षात्मक तथा प्रशासकीय उत्तरदायित्व के समन्वय से अधीक्षक तथा एक विशिष्ट रूप उभर कर सामने आया और यह समझा जाने लगा कि कार्यकर्ता जो संस्था का कर्मचारी होता है और प्रशासनिक अनुभव रखता है तथा अधीक्षकीय व्यवहार का ज्ञान होने से कार्यकर्ताओं को मार्गदर्शन तथा निर्देशन देने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। अतः अधीक्षक का कार्य कार्यकर्ताओं में निपुणताओं एवं दक्षताओं का विकास करना है जिससे वे समूह की अधिक कुशलता से सहायता कर सकें।

I. अधीक्षण का ऐतिहासिक विकास

समाज-कार्य अधीक्षक का विकास समाज-कार्य के व्यावसायिक रूप में ऐतिहासिक विकास के साथ ही हुआ। चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी तथा सेटिलमेन्ट मूवमेन्ट समाज कार्य के विकास के प्रमुख स्रोत रहे हैं। इन्हीं स्रोतों के द्वारा अधीक्षण कार्य भी प्रारम्भ हुआ। टायन्वी हाल तथा हल हाउस की रिपोर्ट ने यह सिद्ध किया कि अधीक्षण उचित प्रकार के कार्य-संचालन एवं सेवार्थियों को अनुकूल सेवा प्रदान करने के लिए आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी में चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी द्वारा कार्यों की देखभाल एवं कार्यक्रम विकास के लिए समाज कार्य का उत्तरदायित्व स्पष्ट किया गया। इसके द्वारा यह भी बताया गया कि समाज कार्य के उत्तरदायित्वों में से अधीक्षण तथा कार्यक्रम-विकास आवश्यक कार्य हैं। लन्दन की चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी ने उन्नीसवीं रिपोर्ट 30 सितम्बर, 1897 को प्रस्तुत करते हुए इस बात पर जोर दिया कि चैरिटी आर्गनाइजेशन सोसाइटी के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं :—

1. दान देना सिखाना तथा उससे सम्बन्धित उपदेश देना।

2. उन सिद्धान्तों को सिखाना एवं पढ़ाना जिनके द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य कर सकता है।

3. दान-संगठनों का निर्माण करना जिससे संस्थाओं को सहायता प्रदान की जा सके ।

इन संगठनों के सामाजिक कार्यकर्ताओं के व्यावसायिक विकास के लिए ऐच्छिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सामूहिक तरीकों का उपयोग किया गया । समूह समितियों तथा कान्फरेन्सों द्वारा व्यावसायिक विकास पर जोर दिया गया । **19**वीं तथा 20वीं शताब्दी की समूह मीटिंग्स में तथ्यों की खोज, तथ्यों का मूल्यांकन, उपचार-योजना, सूचनाओं को प्राप्त करने की प्रविधि तथा तथ्यों के क्रियान्वयन पर जोर दिया गया । जब किसी विशेष व्यक्ति को भाग लेने के लिए प्रशासकीय सहायता की आवश्यकता प्रतीत हुई तो अधीक्षण का भी कार्य किया गया ।

औपचारिक तथा संरचित अधीक्षण का प्रारम्भ प्रशासकीय कार्यों के रूप में हुआ । अधीक्षण के अन्तर्गत कर्मचारियों के कार्यों को देखना तथा उन पर दृष्टि रखना सम्मिलित था जिससे संस्था का कार्य सुचारु रूप से हो सके । अधीक्षक को प्रत्येक कर्मचारी के कार्य-सम्पादन, उनके कार्यभार, कानूनों तथा नियमों के पालन पर दृष्टि रखने का कार्य सौंपा गया । जो कर्मचारी प्रशासनिक समस्याएँ उपस्थित करते थे उनको सँभालने का कार्य भी उसे दिया गया । कुछ समय पश्चात् व्यक्तिगत रूप से व्यक्ति के विषय में अध्ययन, निदान तथा उपचार का भी कार्य-भार उसे सौंपा गया । यहाँ पर उसने वास्तविक रूप में शिक्षण एवं व्यावसायिक पद्धति के विकास के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया । सन् **1920** तक अधीक्षक के उत्तरदायित्वों को प्रशासनिक तथा शैक्षिक समझा जाने लगा । इन्हीं दिनों समाज कार्य विद्यालयों का विकास और समाज कार्य में फील्ड वर्क एक आवश्यक अंग हो गया । विभिन्न संस्थाओं में फील्ड वर्क करने के लिए विद्यार्थियों के अधीक्षण की आवश्यकता का अनुभव हुआ । समाज कार्य के शिक्षात्मक दर्शन तथा विचारों में जान डेवी के दार्शनिक प्रत्यय को स्वीकार किया गया । अभ्यास द्वारा सीखना अधिक औचित्यपूर्ण होता है । फील्ड वर्क कान्फरेन्सों का प्रारम्भ हुआ जिससे फील्ड वर्क सम्बन्धी कार्यों पर वार्तालाप किया जाने लगा । यह कार्य वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों तरीकों से प्रारम्भ हुआ जिसमें शिक्षात्मक कार्यों पर विशेष जोर दिया गया ।

अधीक्षण पर पहला औपचारिक लेख सन् **1917** में जोआना सी० कोलकार्ड द्वारा लिखा गया । यद्यपि इस लेख में वैयक्तिक अधीक्षण के तरीकों एवं विषय-वस्तु पर प्रकाश डाला गया था परन्तु उन्होंने यह भी कहा कि इसको सामूहिक स्थिति में इन्हीं तरीकों एवं विषय-वस्तु के आधार पर उपयोग में लाया जा सकता है । उन्होंने कहा कि प्रावधानिक वार्तालाप के लिए सामूहिक मीटिंग

अधिक औचित्यपूर्ण है। सन् 1909 ई० के पूर्व चैरिटी ऑर्गनाइजेशन बुलेटिन ने औपचारिक रूप से कर्मचारी विकास तथा वैयक्तिक कान्फरेन्स पर लिखा बहुत कम था। बुलेटिन की प्रथम रिपोर्ट में मेरी रिचमंड ने संगठित निर्देशों की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि चैरिटी आर्गनाइजेशन को बढ़ाना, द्वितीय, अधिकतम लाभकारी अनुभव प्रदान करना। उन्होंने तीसरे कार्य का भी उल्लेख किया और कहा कि वेतन-भोगी कार्यकर्ताओं की पूर्ति में सुधार किया जाय। सचिवों को इतना समय नहीं रहता कि वे कार्यकर्ताओं को शिक्षा प्रदान कर सकें। अतः निर्देशक का यह नया कर्तव्य होगा कि वह स्कूलों में जाकर चैरिटी आर्गनाइजेशन सम्बन्धी निर्देश दिया करे। पोर्टर ली ने अप्रत्यक्ष रूप प्रशिक्षण के अन्तर्गत वार्तालाप प्रणाली के मूल्य पर प्रकाश डाला।

प्रारम्भ में सामूहिक मीटिंग को ऐसी वैयक्तिक कान्फरेन्स के रूप में जाना जाता था जिनका उद्देश्य कर्मचारियों की पारिवारिक समस्याएँ सुलझाने के लिए वैयक्तिक सेवा कार्य-प्रणाली का ज्ञान प्रदान करना था। कर्मचारियों से कहा जाता था कि वे उन केसों को सामूहिक वार्तालाप के लिए चुनें जिन्हें विशेष प्रकार से सहायता पहुँचानी है और जिनमें वे विशेष कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। इस प्रकार इन कान्फरेन्सों का उद्देश्य न केवल कार्यकर्ता में सामाजिक निदान तथा उपचार-निपुणताओं का विकास करना था, वरन् इनका उद्देश्य यह भी था कि नागरिक अपने उत्तरदायित्वों को भली प्रकार से समझ सकें, कानूनों को मानें तथा उच्च जीवन-स्तर के लिए प्रयत्नशील हों। इस प्रकार संस्था के दो कार्य हो गये :

1. व्यवहारिक विकास करना तथा 2. नागरिक जीवन को सुखी बनाना।

राज्य कल्याण संस्थाओं ने वैयक्तिक अधीक्षण एवं पुनरावलोकन द्वारा शिक्षण प्रणाली का उपयोग करना प्रारम्भ किया। जैसे-जैसे कार्य अधिक होता गया वैसे-वैसे अधिक अधिकारियों की आवश्यकता महसूस हुई, फलतः सामूहिक तरीकों का उपयोग प्रारम्भ हुआ। प्रश्नोत्तर के रूप में वक्तव्य को समझने के लिए सबसे पहले सामूहिक मीटिंग का प्रारम्भ हुआ। सामूहिक प्रणाली के उत्तरोत्तर लाभकारी उपयोग के लिए टेकनिकल ब्यूरो की जन सहायक प्राविधिक प्रशिक्षण शाखा ने राज्य की संस्थाओं में प्रशासकों के कार्य को सुधारने का प्रयत्न किया। प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार लाने के नवीनतम तरीकों को ढूंढ़ना प्रारम्भ किया गया। सन् 1936 ई० तथा 1941 ई० के मध्य अधीक्षण विकास कार्यक्रमों के सिद्धान्तों की खोज की गयी तथा नये सिद्धान्त विकसित हुए।

कोरिन एच० उल्फ ने, जो प्रविधि प्रशिक्षण शाखा के प्रधान थे, संस्था अधीक्षण विकास कार्यक्रम के पाँच सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया :

अधोक्षण विकास का कार्यक्रम प्रशासन का एक अभिन्न अंग है तथा वह कर्मचारियों की योग्यता एवं दक्षता में सुधार के लिए आवश्यक है जिससे प्रशासन दृढ़ होता है ।

2. अधोक्षण विकास कार्यकम में संस्था के सभी कर्मचारियों को सम्मिलित करना चाहिए ।

3. कार्यक्रम का नियोजन इस प्रकार से हो जिससे प्रत्येक कर्मचारी को कार्य से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति हो तथा यह पूर्ति संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो ।

4. अधीक्षण विकास सम्बन्धी प्रक्रिया निरन्तर हो क्योंकि संस्थाओं का स्वभाव गतिशील होता है ।

5. अधीक्षक योजना बनाने तथा दिशा निर्देशित करने में कुशल हो जो पद्धतिबद्ध कार्यक्रम का विकास कर सकें ।

अधोक्षण के विकास के लिए संस्था के अन्तर्गत सामूहिक अधीक्षण तथा वैयक्तिक अधीक्षण, दोनों का प्रयोग किया जाता है तथा दोनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

II. अधीक्षण की परिभाषा :

अधीक्षण की परिभाषा व्यावसायिक स्कूलों तथा संस्थाओं में अनेक वर्षों के नियोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप व्यवस्थित रूप प्राप्त कर सकी है । यहाँ पर हम कुछ प्रमुख परिभाषाओं का उल्लेख कर रहे हैं ।

राविन्सन, विरजाइना, पी (1936)[1]

"अधीक्षण को शिक्षात्मक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक व्यक्ति विशेष ज्ञान और निपुणताओं के होने के कारण कम ज्ञान वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व लेता है ।"

---

1. Supervision can be defined as an educational process in which a person with certain equipments of knowledge and skills takes responsibility for training a person with less equipment.

   Robinson, Virgina P. Supervision in Social Case Work, University of North Carolina Press, Chapel Hill, 1936, p. 53.

विलसन एण्ड राइलैण्ड (1949)[2]

"अधीक्षण एवं कार्यकर्ताओं के मध्य सम्बन्ध को अधीक्षण कहते हैं। इसमें अधीक्षण अपने तथा दूसरे व्यक्तियों के विषय में और सामाजिक स्थिति तथा अभिकरण के कार्यों के विषय में अपने ज्ञान एवं सूझ के आधार पर कार्यकर्ताओं की सहायता कार्य को पूर्ण करने तथा उन उद्देश्यों को प्राप्त करने में करता है जिसके लिए अभिकरण को संगठित किया गया है।

डिमोक तथा ट्रेकर (1949)[3]

शिक्षात्मक नीतियों एवं उश्द्देश्यों को निश्चित करने में, कार्यक्रम के नियोजन तथा मूल्यांकन में, कार्यकर्ताओं के चयन तथा प्रशिक्षण में अधीक्षण नेतृत्व की प्रक्रिया हैं।

आस्टिन लूसिले एन, (1957)[4]

शाब्दिक अर्थ में इसका तात्पर्य दूसरे के कार्यों को उसके गुणों के उत्तरदायित्वों के साथ अधिदर्शन एवं निरीक्षण करना है।

---

2. Supervision is a relàtionship between a supervisor and workers, in which the supervisor, because of his knowledge and understanding of himself of other human beings are of the agency function and of the social situation, helps the workers to perform their functions and to cooperate in the accomslishment of the purpose for which the agency is organized,
   Wilson, G. and Ryland, G. op. cit., P. 535.
3. Supervision is a process of leadership in the formulation of educational policies and objectives, in the planning and evaluation of the programme, in the selection and training of workers, and in community planning and organization.
   Dimock, Hedlay S., and Trecker, H. B., The Supervision of Group Work and Recreation, Association Press, Newyork, 1949, pp. 3-4.
4. Austin, Lucille, N. : Supervision in Social work, Social Work Year Book N A S W, 1957, p. 569.

उल्फे, कोरिने, एच० (1954)[5]

अधीक्षण प्रशासकीय नेतृत्व है—एक नेतृत्व जिसका उद्देश्य निपुणताओं एवं ज्ञान का विकास करना तथा कर्मचारियों के कार्यों को इस प्रकार से निर्देशित करना जिससे सेवार्थियों को मिलने वाली संस्था की सेवाओं में सुधार सम्भव हो सके। अधीक्षण-कार्यकर्ताओं की निर्धारित भूमिकाओं को पूरा करने तथा उद्देश्यों को सफल बनाने की एक प्रशासकीय प्रक्रिया है। अधीक्षक कार्यकर्ताओं के कार्यों का अवलोकन करता है तथा इनमें योग्यता एवं क्षमता पैदा करता है जिससे वे समूह के साथ अपने सम्बन्ध का भली-भाँति उपयोग कर सकें। इस प्रकार अधीक्षण व्यावसायिक सम्बन्ध है जिसको अधीक्षक तथा कार्यकर्ता स्वीकृति प्रदान करते हैं।

III. अधीक्षण के कार्य :

अधीक्षण प्रक्रिया का उपयोग अधीक्षक कार्यकर्ता के निर्देशन एवं पथ प्रदर्शन के लिए करता है। वह इस प्रक्रिया में निम्न कार्य करता है।

1. सीखने की क्षमता का विकास करना :

अधीक्षक कार्यकर्ता में सीखने की क्षमता का विकास करता है। वह कार्यकर्ता में होने वाली मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं की विशेषताओं का अध्ययन करता है तथा उसके अर्थ को समझता है। ऐसा इसलिए करता है क्योंकि मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया एक गतिशील प्रक्रिया है। कार्यकर्ता में संघर्ष की स्थिति अधिक होती है क्योंकि प्रारम्भ में आगे बढ़ने तथा पीछे हटने की परिस्थिति अक्सर उत्पन्न होती रहती है। जब कार्य करने की स्थिति दुखदायी हो जाती है अथवा विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो वह सुखदायी स्थिति की ओर प्रतिगमन करता है तथा कष्टकर स्थितियों से पलायन करता है। अधीक्षक इस स्थिति में कार्यकर्ता को धीरे-धीरे, रुक-रुक कर नयी शिक्षा, सूझ, कला, निपुणता, ज्ञान उसकी क्षमता एवं शक्ति के अनुसार प्रदान करता है।

2. अन्तर्दृष्टि का विकास करना :

अधीक्षक की प्रेरणा से कार्यकर्ता सदैव अन्तर्दृष्टि के उपयोग के विकास की प्रक्रिया में रहता है। वह सदैव सीखता है कि किस प्रकार वास्तविकता को समझा जाय तथा उसे व्यवहार में लाया जाय। जब वह अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर

---

5. Wolfe, C. H. : Group Training of Staff in Public Assistance Agencies. Paper presented at the 81th Annual Forum of the National Conference of Social Work, 1954. p. 4.

लेता है परन्तु व्यवहार में लाने में असमर्थ होता है जिससे अधिक कष्ट अनुभव करता है। वह अधीक्षक ही सहायता नहीं लेना चाहता है तथा स्वयं अकेले संघर्ष करते हैं ऐसी स्थिति में अधीक्षक बहुत ही सावधानी से, कार्यकर्ता के विचारों को ठेस न पहुँचाते हुए, सहायता करता है। कार्यकर्ता सीखने की प्रक्रिया में अधीक्षक तथा सहयोगी कार्यकर्ताओं के सुझावों का विरोध करता है तथा वाद-विवाद भी करता है। वह अपने विचारों को बार-बार रखता है तथा पुष्टि के लिए प्रमाण भी प्रस्तुत करता है। वह नये विचारों की जाँच करता है तथा ठोस तथ्य खोजता है। इस क्रिया प्रतिक्रिया में उसमें अन्तर्दृष्टि का विकास होता है तथा उसके प्रयोग की कला आती है।

अधीक्षक उन कार्यकर्ताओं की विशेष सहायता करता है जिनकी सीखने की गति सामान्य होती है। वह सदैव अवरोधक कारकों को अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा समझने तथा दूर करने का प्रयत्न करता है। वह कार्यकर्ता को इन अवरोधकों से अवगत कराकर उनमें शक्ति का संचार करता है। सामूहिक कार्य के अभ्यास द्वारा कार्यकर्ता अपने में उस निपुणता का विकास करता है जिससे वह अपने ज्ञान, अनुभव, व्यवहार आदि को समूह तथा व्यक्तियों के साथ उपयोग में ला सकता है।

3. निपुणताओं का विकास करना :

समाज कार्य की निपुणताओं का विकास केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं, जिनमें परिपक्वता होती है। इसलिए अधीक्षक का सर्वोपरि कार्य कार्यकर्ता को अपनी सीमायें एवं योग्यतायें समझने में सहायता करे। सामूहिक कार्य की निपुणताओं के सीखने की प्रक्रिया बहुत धीमी होती है क्योंकि इन निपुणताओं को केवल क्रियाओं द्वारा तथा ज्ञान व सूझ का प्रयोग करके प्राप्त कर सकते हैं। जब कार्यकर्ता अपने विषय में ज्ञान रखता है तभी वह सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका निभा सकता है। यह ज्ञान उसे साप्ताहिक कान्फ्रेन्स के द्वारा अधीक्षक से प्राप्त होता है। वह कार्यकर्ता को फील्ड वर्क करने में निर्देशन देता है तथा कार्यकर्ता को स्वयं को समझने में उसकी सहायता करता है।

4. कार्यकर्ताओं का वैयक्तिक अध्ययन करना :

कार्यकर्ता उस समय सीखने में कठिनाई अनुभव करता है जब उसके ज्ञान का स्तर तथा अधीक्षक के पढ़ाने व समझाने के स्तर में अधिक अन्तर होता है। अधीक्षक उस स्तर पर सिखाना चाहता है जिस पर चलकर कार्यकर्ता आगे कार्य कर सकता है। परन्तु कार्यकर्ता के ज्ञान का स्तर उससे भिन्न होता है। ऐसी स्थिति में समस्या उत्पन्न हो जाती है कि वह किस प्रकार नये ज्ञान व अनुभव को

ग्रहण करे। अधीक्षक इस प्रकार के कार्यकर्ताओं की वैयक्तिक रूप से सहायता करता है। वह प्रत्येक कार्यकर्ता का अध्ययन करता है और उसके स्तर के अनुसार कान्फ्रेन्स में वार्तालाप करता है। जिस प्रकार से कार्यकर्ता अपने समूह सदस्यों के व्यक्तित्व, व्यवहार, गुण, आदर्श आदि का ज्ञान रखता है उसी प्रकार अधीक्षक प्रत्येक कार्यकर्ता के व्यक्तित्व, व्यवहार, गुणों तथा आदर्शों का ज्ञान रखता है।

5. आत्म नियन्त्रण का विकास करना :

अधीक्षक कार्यकर्ता की सहायता इस दिशा में अवश्य करता है। वह उसके अहं को दृढ़ करता है क्योंकि अहं ही वह शक्ति है जो व्यक्ति को नियन्त्रित करती है। कार्यकर्ता समूह के साथ कार्य करते हुये किसी न किसी सदस्य के व्यवहार से नाराज हो जाता है। अधीक्षक उसकी अप्रसन्नता को इस बात का द्योतक मानता है, न कि उस प्रकार जैसा कि एक कार्यकर्ता को अनुभव करना चाहिये। जब तक दोनों के अनुभवों में अन्तर नहीं होगा, कार्यकर्ता समूह सदस्यों की समस्याओं को सुलझा नहीं सकेगा। अतः अधीक्षक का उत्तरदायित्व है कि वह कार्यकर्ता में इस प्रकार की योग्यता का विकास करे जिससे वह व्यवहार का अर्थ समझ सके तथा अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखकर समूह सदस्यों की भावनाओं पर प्रभावात्मक नियन्त्रण करके समस्या का समाधान कर सके।

6. भावनाओं के प्रगटन का अवसर देना :

अधीक्षक कार्यकर्ता को अपने समूह के प्रति अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर देता है। कार्यकर्ता जब समूह के साथ कार्य करता है तो उस समूह के प्रति कुछ अच्छी तथा कुछ बुरी भावनायें बन जाती हैं जिनको वह अधीक्षक कान्फ्रेन्स में व्यक्त करता है। यदि अधीक्षक इन भावनाओं के व्यक्तीकरण का अवसर नहीं देता है तो कार्यकर्ता में नकारात्मक भावनायें दृढ़ हो जाती हैं और फिर उनको कमजोर करना अथवा निर्मूल करना कठिन होता है। इसलिए अधीक्षक सदैव यह प्रयत्न करता है कि कार्यकर्ता अपने मन की सभी बातें कान्फ्रेन्स में कहे जिससे वह इनके अर्थों को खोज सके तथा कार्यकर्ता का मूल्यांकन कर सके। कार्यकर्ता वार्तालाप के दौरान इन भावनाओं को व्यक्त करता है। ऐसा करने में उसके उत्तरदायित्व का हस्तान्तरण अधीक्षक को हो जाता है। अर्थात् कार्यकर्ता अपने उत्तरदायित्व को अधीक्षक पर थोपता है। अधीक्षक कान्फ्रेन्स का रुख इस प्रकार मोड़ता है जिससे कार्यकर्ता अपनी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में व्यक्तियों और समूहों को समझ सकें।

7. आत्मनिर्भरता प्रदान करना :

अधीक्षक कार्यकर्ता को इस योग्य बनाता है जिससे वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कार्य कर सके। यद्यपि कार्यकर्ता अपनी भूमिका निभाने में स्वतन्त्र होता है परन्तु उसको यह अवश्य सीखना होता है कि किन आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों में कैसे अपने ज्ञान एवं कला का प्रयोग किया जाय। अधीक्षक कान्फ्रेन्स में समूह की कार्य प्रक्रिया तथा कार्यकर्ता की भूमिका का विवेचन करता है जिससे कार्यकर्ता को अपनी भूमिका का वास्तविक स्वरूप समझ में आ जाता है। इस प्रकार वह आत्मनिर्भरता प्राप्त करता है।

8. संस्था एवं समुदाय के स्रोतों के उपयोग में सहायता करना :

कार्यकर्ता का संस्था एवं समुदाय के स्रोतों के विषय में ज्ञान बहुत अधिक नहीं होता है। वह नहीं जानता है कि समूह सदस्यों की किस प्रकार उन माँगों को पूरा करे जिनकी सुविधा उस संस्था में नहीं उपलब्ध है। अधीक्षक इस प्रकार की समस्याओं को कान्फ्रेन्स में सुनता है तथा आवश्यक निर्देश देता है जहाँ से सहायता प्राप्त की जा सकती है।

9. समय का उचित उपयोग करना सिखाना :

अधीक्षक कार्यकर्ता को समय का उचित उपयोग करने में सहायता करता है। वह स्वयं समय पर कान्फ्रेन्स में पहुँचता है, कार्यकर्ताओं से मिलता है तथा उससे भी यह आशा रखता है कि वह समय पर कार्य करे, समय पर कान्फ्रेन्स में आवे, समय पर फील्ड वर्क करने जाय, अभिलेख नियमित रूप से लिखे तथा आवश्यक सहायता ले।

10. योगदान की स्वीकृति देना :

अधीक्षक कार्यकर्ता के योगदान का स्वागत करता है। वह कभी भी कार्यकर्ता के कार्यों पर व्यंग नहीं कसता है तथा निर्णयात्मक विचार नहीं बनाता है। जब कार्यकर्ता के कार्य प्रशंसनीय होते हैं तो वह प्रशंसा अवश्य करता है। वह कार्यकर्ता की इस प्रकार से सहायता करता है जिससे वे अपनी असफलताओं एवं कमियों को ईमानदारी से तथा बिना पद के स्वीकार कर सके। वह कार्यकर्ता में कार्य के प्रति विश्वास पैदा करता है तथा वास्तविकता को समझने में सहायता करता है। वह कार्यकर्ता में व्यावहारिक गुणों का विकास करता है जिससे नयी परिस्थितियों में अपना सामञ्जस्य स्थापित करने में सफल होता है।

IV. अधीक्षण के प्रकार :

अधीक्षक कार्यकर्ताओं का अधीक्षण शिक्षण के माध्यम से करता है जिसके निम्न प्रकार हैं :

प्रत्यक्ष शिक्षण

प्रत्यक्ष शिक्षण के अन्तर्गत अधीक्षक निम्नलिखित कार्य करता है :

1. संस्था की पद्धति, तरीकों, नीतियों एवं व्यवहारों का ज्ञान कराना।
2. सेवार्थी (समूह) के प्रश्नों का उत्तर देना।
3. वैयक्तिक सेवा कार्य तथा सामूहिक कार्य के सिद्धान्तों को बताना।
4. सिद्धान्तों को व्यावहारिक उदाहरणों द्वारा समझाना।
5. समाज के सिद्धान्तों को बताना।
6. वैयक्तिक सेवा कार्य निदान तथा सामूहिक सेवा कार्य सिद्धान्त की क्रिया को उदाहरण देकर समझाना।
7. प्रविधियों को उदाहरण देकर समझाना।
8. सम्भावित समस्याओं को बताना तथा उनके समाधान के उपाय बताना।

शिक्षण के अन्तर्गत अधीक्षक को निम्न सिद्धान्तों का पालन करना अनिवार्य समझा जाता है :

1. शिक्षण की विषय-वस्तु समूह के स्तर के अनुरूप हो। जैसे-जैसे कार्यकर्ताओं में ज्ञान बढ़ता जाय, विषय-वस्तु में गम्भीरता होनी आवश्यक होती है। इसके लिए आवश्यक है कि अधीक्षक को शिक्षात्मक निदान का ज्ञान हो।
2. विषय-वस्तु का कार्यकर्ता के उद्देश्यों से सम्बन्ध हो।
3. अभिलेखों का होना उचित शिक्षण के लिए आवश्यक होता है क्योंकि इनके द्वारा ही अधीक्षक शिक्षण की विषय-वस्तु में तारतम्य बनाये रखता है।
4. कार्यकर्ताओं के कार्यों का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है।
5. शिक्षण में विषय-वस्तु का निरन्तर मूल्यांकन होना चाहिए तथा कार्यकर्ताओं के सन्दर्भ में उसकी भूमिका देखनी चाहिए।
6. विषय-वस्तु में स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से केसों के उदाहरण देना शिक्षण को मूल्यवान बना देता है।
/. कार्य-करण सम्बन्धों को स्पष्ट करना आवश्यक होता है।
8. सुविधाओं को स्पष्ट रूप से बताना चाहिए।

वार्तालाप प्रणाली :

अधीक्षक कार्यकर्ताओं को वार्तालाप के लिए उत्साहित करता है तथा प्रत्येक को वार्तालाप में भाग लेने का अवसर देता है। इससे विचारों का आदान-प्रदान होता है तथा समस्या पर सामूहिक रूप से विचार-विमर्श होता है। इसके अन्तर्गत अधीक्षक निम्न मुख्य कार्य करता है :

1. उपयुक्त विचारों की प्रक्रिया प्राप्त करना।
2. अधिकाधिक सहयोगी प्रकार का भागीकरण प्राप्त करना।

3. वास्तविक तथ्यों की खोज करके उनका व्यावहारिक उपयोग करना।
4. वार्तालाप को स्पष्ट तथा संक्षिप्त बनाना।
5. संघर्षों को रचनात्मक तरीकों से दूर करना।

अधीक्षक में इस प्रणाली से सम्बन्धित निम्नलिखित निपुणताएँ होनी चाहिए :

1. मीटिंग प्रारम्भ करने की क्षमता।
2. प्रश्नों को परिभाषित करने की क्षमता।
3. वार्तालाप में तारतम्य बनाये रखने की क्षमता।
4. पुनरावृत्ति को रोकने की क्षमता।
5. सामान्य भागीकरण को प्रोत्साहित करने की क्षमता।
6. वार्तालाप को एकपक्षीय होने से बचाने की क्षमता।
7. विषय का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता।
8. वार्तालाप उचित प्रकार से समाप्त करने की क्षमता।

अधीक्षक सामूहिक वार्तालाप में अभिलेखों को माध्यम बनाता है और उनकी सहायता से वह वार्तालाप प्रक्रिया में प्रवेश करता है।

प्रश्नावली प्रविधि :

अधीक्षण में प्रश्नावली प्रविधि भी उपयोगी होती है क्योंकि इससे निम्न उद्देश्यों की पूर्ति होती है :

1. वार्तालाप को उत्तेजित करना।
2. सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रतिक्रियाओं को जानना।
3. विचारों में स्पष्टता आना।
4. त्रुटि को इंगित करना।
5. समूह से अन्य सूचनायें प्राप्त करना।
6. भविष्य में सामूहिक कान्फरेन्सों के लिए विषय का चयन करना।
7. कान्फरेन्स प्रारम्भ करना तथा वार्तालाप बढ़ाना।
8. निदानात्मक विचारों को इंगित करना।

अधीक्षक में निम्न क्षेत्रों का ज्ञान होना आवश्यक होता है :

1. शिक्षण सम्बन्धी विषय-वस्तु का विस्तृत ज्ञान।
2. सामूहिक व्यवहारों, अन्तःक्रियाओं तथा समूहों के निर्माण का ज्ञान।
2. शिक्षात्मक सिद्धान्तों का सामान्य ज्ञान।
4. वार्तालाप सम्बन्धी तत्त्वों का ज्ञान।
5. सामूहिक शिक्षण में प्रभावात्मक तथा उपयोगी तरीकों के प्रयोग का ज्ञान।

प्रश्नावली प्रविधि के प्रयोग में निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

1. प्रश्नों को सामान्य रूप से पूछा जाना चाहिये तथा वे स्वयं में रुचिकर हों तथा प्रश्न पूछने की ध्वनि सामान्य वार्तालाप जैसी ही हो।

2. सामान्य प्रश्नों को पूरे समूह के सामने रखने चाहिये। उसके उपरान्त किसी एक सदस्य को उत्तर देने के लिए निर्देशित कर सकता है। इस विधि से सम्पूर्ण समूह को उत्तर ढूँढ़ने के लिए सोचना पड़ता है। समूह किसी एक सदस्य विशेष पर निर्भर नहीं रहता है। समूह में अपना आत्मचिन्तन का विकास होता है।

3. समूह में सभी सदस्यों से प्रश्न पूछे जाने चाहिये। इससे समूह के प्रत्येक सदस्य का भागीकरण प्राप्त होगा तथा सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना विकसित होगी।

4. जो सदस्य वार्तालाप में ध्यान नहीं दे रहे उनसे प्रश्न ऐसे पूछे जाने चाहिए जो वहाँ पर पहले से कहे जा चुके हैं लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया है। इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में वह सदस्य सतर्क रहेगा।

5. प्रश्न इस तरह से पूछे जाने चाहिये जिससे अधीक्षक का विश्वास कार्यकर्ता में या समूह में प्रगट होता हो।

6. प्रश्नों की गति एक निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाती हो।

7. वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर उनसे प्रश्नों को पूछा जाय जिससे सभी सदस्यों में आत्मविश्वास जागृत हो।

8. प्रश्नों के पूछने का उद्देश्य समूह में एकता बनाये रखने के लिए हो।

भाषण विधि :

भाषण विधि शिक्षण की एक विधि है जिसके द्वारा समूह को तथ्यों, सिद्धान्तों तथा सम्बन्धों से अवगत कराया जाता है। भाषण के माध्यम से समूह की मूलभूत बातों पर प्रकाश डाला जाता है जिससे वह फील्ड वर्क में समान कार्य के सिद्धान्तों, प्रविधियों तथा निपुणताओं का उपयोग कर सके। भाषण से विद्यार्थियों का ध्यान कार्य विशेष की ओर आकृष्ट किया जाता है और विचार प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। उनमें सूचना प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ती है। लेकिन वार्तालाप से समस्या समाधान से सम्बन्धित विचार उदय होते हैं। भाषण उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों की आधारशिला रखते हैं तथा समय की बचत होती है। लेकिन भाषण का विषय तथा तरीका ऐसा हो जो सीखने वालों की योग्यता एवं क्षमता के अनुकूल हो तभी उसका कुछ प्रभाव होगा अन्यथा प्रतिकूल सम्बन्ध बनने के कारण सदस्यों की रुचि में कमी हो जायगी।

V. अधीक्षण के सिद्धान्त

जिस प्रकार सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली के कुछ सिद्धान्त हैं, जिनको मानना कार्यकर्ता एवं संस्था के लिए आवश्यक होता है, उसी प्रकार अधीक्षण के सिद्धान्तों पर चलकर अधीक्षक (सुपरवाइजर) अपने कार्य में सफलता प्राप्त करता है। यद्यपि दोनों के सिद्धान्तों में काफी समानता है, परन्तु फिर भी उनका उपयोग भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। इन सिद्धान्तों की विवेचना हम नीचे कर रहे हैं :

1. **उद्देश्यों की स्पष्टता :** अधीक्षण का प्रथम और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि उसके उद्देश्य स्पष्ट हों। अधीक्षक तथा कार्यकर्ता या समूह को स्पष्ट ज्ञान हो कि अधीक्षण के द्वारा वे क्या काम करने का प्रयास कर रहे हैं, उसकी क्या उपयोगिता है, कक्ष-शिक्षण तथा यहाँ के शिक्षण में क्या भिन्नता है तथा उसका व्यावहारिक उपयोग किस प्रकार से किया जा सकता है। फील्ड वर्क के साधारणतया निम्न उद्देश्य हैं :—

1. सेवार्थियों के साथ समाज कार्य-प्रणालियों का उपयोग करने में विद्यार्थियों की सहायता करना जिससे वे समूह या सेवार्थी की मनोवृत्तियों एवं भावनाओं को ठीक प्रकार से अनुभव कर सकें एवं उनका यथार्थ अभिलेखन कर सकें। वे समस्या को समझ सकें, निदान ठीक प्रकार से कर सकें और उपचार-प्रक्रिया की योजना बनाने में सफल हो सकें।

2. वे अपनी सकारात्मक एवं नकारात्मक भावनाओं को समझने में समर्थ हों तथा उनके प्रभाव को जानते हों। उन्हें कार्यकर्ता-सेवार्थी तथा कार्यकर्ता-समूह के बीच के सम्बन्धों का स्पष्ट ज्ञान हो सके एवं कार्यकर्ता तथा अधीक्षण के सम्बन्धों का भी ज्ञान सम्भव हो।

3. वे विद्यार्थियों को सामाजिक सेवा सम्बन्धी कार्यक्रमों से अवगत करा सकें तथा अपने कार्यक्षेत्र से सम्बन्धित कार्यक्रमों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकें।

4. मानव व्यवहार सम्बन्धी ज्ञान का फील्ड वर्क में वे उचित उपयोग कर सकें।

5. संस्था के महत्त्व एवं उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकें।

6. सामुदायिक सेवाओं के अन्तर्गत फील्ड वर्क के महत्त्व को समझ सकें।

7. फील्ड से सम्बन्धित सामाजिक एवं दार्शनिक गुणों को समझें तथा उनमें सम्बन्ध स्थापित करें।

(2) समय की पाबन्दी

समय की पाबन्दी तभी हो सकती है जब :

1. अधीक्षक के कार्य का प्रारम्भ उस बिन्दु से हो जहाँ पर कार्यकर्ता अथवा समूह हैं। कार्यकर्ता की योग्यता, क्षमता, निपुणता तथा कौशल के मूल्यांकन के पश्चात् उसी स्तर के अधीक्षण का कार्य यदि प्रारम्भ होता है तो कार्यकर्ता अथवा समूह अपने कार्यों को भलीभाँति समझ लेता है। मार्ग में बाधायें नहीं आतीं एवं समय बरबाद नहीं होता है।

2. अधीक्षक कार्यकर्ता अथवा समूह की गति के साथ ही आगे बढ़े, न पीछे रहे और न ही अधिक आगे बढ़े। इसका तात्पर्य यह है कि समय सारिणी के अनुसार तभी अधीक्षक चल सकता है जब उसके कार्यक्रम तथा शिक्षात्मक क्रियायें उसी प्रकार आगे बढ़ें एवं जटिल होती जायें जैसे-जैसे कार्यकर्ता व समूह इसको समझता जाय तथा व्यवहार में लाता जाय।

3. अधीक्षक को यह ज्ञान होना चाहिये कि कार्यकर्ता अथवा समूह को कब अधिक निर्देशन की आवश्यकता है और किन कार्यक्रमों में सहायता की आवश्यकता नहीं अनुभव कर रहा है।

3. सेवार्थी अथवा समूह पर ध्यान का केन्द्रीकरण––फील्ड वर्क कान्फरेन्स में वार्तालाप का मुख्य केन्द्र-बिन्दु वह समूह होता है जिसको कार्यकर्ता सेवा प्रदान करता है। अधीक्षक इस बात का प्रयत्न करता है कि वार्तालाप का रूख उद्देश्य-पूर्ण हो तथा कार्यकर्ता अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं का उपयोग सामूहिक हित में सामान्य प्रकार से कर सकें। कान्फरेन्स के अन्तर्गत समाज कार्य के सिद्धान्तों, उद्देश्यों, कार्यों, क्षेत्रों तथा प्रविधियों का व्यावहारिक उपयोग बताया जाता है। इसके पश्चात् सामूहिक कार्य सम्बन्धी ज्ञान कराकर मानव व्यवहार के उपयोग की कुशलता कार्यकर्ता में उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार वह समूह की गति-विधि से ठीक प्रकार परिचित होकर कार्य करने में सफल हो जाता है।

4. सामूहिक भावनाओं के प्रति प्रत्युत्तर : अधीक्षक कान्फरेन्स के अन्तर्गत कार्यकर्ताओं की भावनाओं, इच्छाओं एवं मनस्थिति का अध्ययन करता है तथा उन्हीं के अनुरूप प्रत्युत्तर करता है। सामूहिक भावनाओं को सकारात्मक रूप देने का समुचित प्रयत्न करता है तथा कान्फरेन्स में जो वार्तालाप का विषय होता है उसके महत्त्व एवं विशेषता को ध्यान में रखकर कार्य करता है। कान्फरेन्स में भ्रम एवं विपरीत विचारों को यदि दूर न किया गया तो वे बढ़ सकते हैं। इससे सीखने की गति में बाधा पड़ती है। कार्यकर्ता के अहम् की जब तक सन्तुष्टि नहीं होती तब तक वह सामूहिक समस्या का निवारण ठीक प्रकार से नहीं कर

सकता । जब उसको यह ज्ञान हो जाता है कि वह अपनी असुविधाओं को दूर कर सकता है तथा सीखने की प्रक्रिया को चालू रख सकता है तो वह कार्य से सम्बन्धित भ्रमों को दूर करने में कुशलता प्राप्त करता है । इससे वह अपने समूह के सदस्यों की सहायता करता है । अधीक्षक या फील्ड वर्क निर्देशक सदैव सामूहिक भावनाओं को समझने में सजग रहता है और प्रत्येक भावना को समान महत्त्व देता है ।

5. **वैयक्तिक भावनाओं के प्रति प्रत्युत्तर** : अधीक्षक न केवल सामूहिक भावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है बल्कि वह वैयक्तिक भावनाओं पर भी ध्यान केन्द्रित करता है । वह प्रत्येक व्यक्ति की भावनाओं एवं विचारों को समझ कर उनकी उपयोगिता को स्पष्ट करता है तथा उनको उचित निर्देश देता है । कान्फरेन्स के अन्तर्गत प्रत्येक कार्यकर्ता समान समझा जाता है । यह कभी नहीं होता कि जो कार्यकर्ता अधिक कुशल है उसकी बातों पर अधिक ध्यान दिया जाय तथा उसकी राय मानी जाय और जो कम कुशल है उसकी भावनाओं की उपेक्षा का जाय । जो कार्यकर्ता अधिक बहिर्मुखी होता है उस पर अधीक्षक रोक लगाता है तथा जो कार्यकर्ता अन्तर्मुखी होता है उसको बहिर्मुखी होने के लिए प्रोत्साहन देता है ।

6 **अल्पमतों के व्यक्तिकरण में सहायता एवं संवेदनशीलता** : कान्फरेन्स में अधीक्षक प्रत्येक कार्यकर्ता के विचारों का स्वागत करता है । वह अल्पमत के विचारों के प्रति बहुत ही संवेदनशील होता है । जहाँ तक सम्भव हो वह समूह के प्रत्येक सदस्य को अपने विचार व्यक्त करने का अवसर देता है तथा उसकी स्वीकृति प्रदान करता है । इस व्यवसाय की यह विशेषता है कि इसके अन्तर्गत अल्पमतों को भी महत्त्व की दृष्टि से देखा जाता है । सिद्धान्त के अन्तर्गत अधीक्षक निम्न प्रत्ययों को व्यवहार में लाता है :

1. वैयक्तिक विभिन्नता ।
2. भागीकरण ।
3. प्रोत्साहन ।
4. अल्पमतों का अधिकार ।

7. **आत्म-चेतना** : अधीक्षक को अपनी सकारात्मक तथा नकारात्मक भावनाओं का ज्ञान होना चाहिए । व्यक्ति तथा समूह के प्रति उसकी भावनाओं का क्या स्वरूप है, यह जानना उसके लिए आवश्यक होता है । उसको अपने समूह के प्रति सम्बन्धों का ज्ञान होना चाहिए । कार्यकर्ताओं में भी इन गुणों के विकास के लिए अधीक्षक को प्रयत्नशील होना चाहिए । कान्फरेन्स के अन्तर्गत

निम्न प्रकार की भावनाएँ होती हैं :

1. उग्र स्वभाव वाले सदस्य ।

2. अधिक बात करने वाले सदस्य जो बिना मतलब के बात करते हैं ।

3. निष्क्रिय भाग लेने वाले ।

4. हस्तक्षेप करने वाले ।

5. प्रभुत्व स्थापित करने वाले ।

अधीक्षक को इन भावनाओं को समझकर इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए ।

8. **साधनों का उचित उपयोग** : जहाँ तक व्यावहारिक रूप से सम्भव हो, अधीक्षक को कार्यकर्ता के विकास एवं समस्याओं के समाधान के लिए सामुदायिक साधनों का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए । अधीक्षक कान्फरेन्स के अन्तर्गत प्रत्येक कार्यकर्ता को ऐसा ज्ञान प्रदान करता है जिससे वह उन स्रोतों को जान सके जिनसे अपने समूह के लिए सहायता प्राप्त कर सकता है ।

9. **विषय-वस्तु का चयन** : कान्फरेन्स में अधीक्षक को विषय-वस्तु के चुनाव में अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय देना होता है । उसको विषय-वस्तु में तारतम्य रखना होता है जिससे कार्यकर्ताओं को धीरे-धीरे ज्ञान प्राप्त होता है ।

VI. अधीक्षक की निपुणतायें :

अधीक्षक में निम्न निपुणताओं का होना आवश्यक है :

1. अधीक्षक को समाजकार्य तथा समाज कल्याण के अभ्यास से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं तकनीकी बिन्दुओं को स्पष्ट करने व्याख्या करने, उनके प्रत्ययों को समझाने तथा उन्हें सामान्यीकरण करने में निपुण होना चाहिये ।

2. अधीक्षक को सामूहिक वार्तालाप को उद्दीप्तमान करने, आगे बढ़ाने तथा एकीकरण की भावना लाने में निपुण होना चाहिये । जब समूह एकत्र होता है और वार्तालाप कैसे प्रारम्भ हो, विषयवस्तु क्या है, किस स्तर का वार्तालाप हो आदि बातें प्रश्नवाचक बन जाती हैं । अधीक्षक को वार्तालाप इस प्रकार प्रारम्भ करना चाहिये जैसे कोई दो व्यक्ति आपसी बातचीत कर रहे हैं । इसके साथ ही साथ समाजकार्य विषय का पूरा ज्ञान हो जिससे वह सामूहिक क्रियाओं को अपेक्षित दिशा में ले जा सके ।

3. भाषण प्रणाली द्वारा अथवा समूह में सामूहिक निर्देशनों द्वारा सामूहिक क्रिया को प्रभावित करने की निपुणता हो । उसे कार्यक्रमों के चयन करने, कार्यक्रम तैयारी करने, संगठित करने तथा व्यवहार में लाने में निपुण होना चाहिए ।

4. अधीक्षक को प्रश्न करने की कला आनी चाहिए। प्रश्न करने का तरीका ऐसा हो जिससे विचार करने की शक्ति का कार्य करें, सामूहिक वार्तालाप को प्रोत्साहन प्राप्त हो तथा प्रशिक्षण के उद्देश्य प्राप्त होते हों।

5. अधीक्षक को भौतिक साधनों के चुनाव करने में समूह को निपुण बनाने की निपुणता आवश्यक है।

6. कार्यकर्ताओं को रचनात्मक सहायता तथा प्रोत्साहन देने की निपुणता अधीक्षक में होनी आवश्यक है।

7. प्रशिक्षण देने तथा कान्फ्रेन्स में वार्तालाप की विषय वस्तु चुनने में अधीक्षक को निपुण होना चाहिये।

8. समय का सदुपयोग करने तथा समय पर नयी व्यावहारिक विधि को सीखने के लिए समूह को निर्देश देने की निपुणता आवश्यक है। इससे समूह तथा कार्यकर्ता कभी भी पथ से विचलित नहीं होता है।

VII. अधीक्षक की आवश्यक शर्तें :

अधीक्षक अपने कार्य में तभी सफल होगा जब उसमें निम्नलिखित ज्ञान होगा।

1. **विषय वस्तु का विस्तृत ज्ञान :** अधीक्षक के लिए आवश्यक है कि जिस क्षेत्र में वह कार्यकर्ताओं का अधीक्षण करने जा रहा है उसका सम्पूर्ण ज्ञान उसे होना चाहिये। उदाहरण के लिए, यदि उन कार्यकर्ताओं का अधीक्षण करना है जो चिकित्सकीय क्षेत्र में कार्य करते हैं तो चिकित्सा से सम्बन्धी समस्यायें तथा रोग के मनोसामाजिक कारकों का ज्ञान आवश्यक है।

2. **सामूहिक व्यवहार का ज्ञान :** व्यक्ति का व्यवहार अकेले में दूसरे प्रकार का होता है तथा समूह में दूसरे प्रकार का। अतः अधीक्षक के लिए आवश्यक है कि उसे समूह गत्यात्मकता, समूहपन, सामूहिक व्यवहार आदि का ज्ञान हो।

3. **अन्तःक्रिया के प्रकार तथा प्रक्रिया :** समाज कार्य में कार्यकर्ता का प्रमुख कार्य अन्तःक्रियाओं प्रक्रिया को प्रभावित एवं निर्देशित करना होता है। इसका ज्ञान उसे अधीक्षणीय कान्फ्रेन्स से प्राप्त होता है। अतः अधीक्षक के लिए यह आवश्यक है कि उसे अन्तःक्रिया प्रक्रिया की गति, अवरोध, सुरक्षात्मक यन्त्र, सिद्धान्त तथा प्रभावित करने की विधि का ज्ञान हो तभी वह कार्यकर्ताओं को भूमिका पूरी करने में सहायता कर सकेगा।

4. **शिक्षा सिद्धान्तों का ज्ञान :** अधीक्षक को न केवल शिक्षासम्बन्धी

सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिये बल्कि उसे सीखने के सिद्धान्तों तथा सामूहिक शिक्षा व्यवहार के सिद्धान्तों का भी ज्ञान होना चाहिये।

5. **विवेचन की प्रक्रिया का ज्ञान** : समूह में किस प्रकार वार्तालाप होते हैं तथा उस वार्तालाप से किस प्रकार अर्थपूर्ण विवेचना किया जा सकता है, इसका ज्ञान अधीक्षक के लिए आवश्यक है। उसको यह भी ज्ञान होना चाहिए कि वार्तालाप को कौन-कौन कारक प्रभावित करते हैं तथा उन कारकों के प्रभाव को कैसे कम किया जा सकता है।

6. **सामूहिक शिक्षण में विभिन्न तरीकों एवं प्रविधियों के प्रयोग का ज्ञान तथा उपयोग की कुशलता** : अधीक्षक को पहले तो समाजकार्य की प्रणालियों का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान हो, उसे शिक्षण के तरीकों का भी ज्ञान हो। लेकिन ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं है उसे इनके प्रयोग की विधि भी आती हो अन्यथा कर्ता समूह व्यावहारिक कुशलता नहीं प्राप्त कर सकेगा।

VIII. अधीक्षकीय परामर्श (Supervisory Conference) :

अधीक्षण द्वारा अधीक्षक कार्यकर्ता के सामूहिक कार्य को उपयोग की शिक्षा देता है। वह सीखता है कि किस प्रकार सामूहिक कार्य का व्यवहार में उपयोग हो सकता है। अधीक्षकीय परामर्श एक प्रकार की संरचना है जिसमें दोनों पक्ष विद्यमान होते हैं—अधीक्षक तथा अधीक्षक के माध्यम से अधीक्षकीय कार्यकर्ता को कान्फ्रेन्स का अर्थ समझाता है। जैसे-जैसे अधीक्षकीय प्रक्रिया आगे बढ़ती है, अधीक्षक उसका अर्थ कार्यकर्ता को बताता जाता है। कार्यकर्ता में अभिकरण के कार्य-सम्पादन हेतु तथा समूह के साथ कार्य करने के लिए अधिक ज्ञान एवं निपुणताओं का होना आवश्यक होता है। कान्फ्रेन्स के माध्यम से कार्यकर्ता इन गुणों का विकास करता है। वह कान्फ्रेन्स में आता है, अपनी कठिनाइयों, परेशानियों एवं समस्याओं को अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करता है। अधीक्षक उन पर गहनता से विचार करता है और वह उसकी सहायता तथा निर्देशित स्थान पर करता है। परन्तु समय का ध्यान दोनों को रखना अनिवार्य होता है। निश्चित समय पर कान्फ्रेन्स हो तथा दोनों पक्ष उपस्थित हों यह आवश्यक होता है। अधीक्षक पहले से तैयार होकर कान्फ्रेन्स में आता है। वह कार्यकर्ता के ज्ञान व निपुणता के आधार पर पहले वार्तालाप करता है तथा मौखिक क्रियाओं द्वारा ज्ञान व निपुणता का विकास करने का प्रयत्न करता है।

कान्फ्रेन्स के प्रभाव को मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक होता है कि कान्फ्रेन्स नियमपूर्वक तथा निश्चित समय पर हो। अधीक्षक समय-समय पर कान्फ्रेन्स की विषयवस्तु का परीक्षण तथा व्याख्या करता है। इससे उसे यह पता चलता है कि कार्यकर्ता अपने उत्तरदायित्व को निभाने में कहाँ तक सफल हो रहा है।

कार्यकर्ता के लिए कान्फ्रेन्स का अर्थ :

अधीक्षक द्वारा कान्फ्रेन्स में कार्यकर्ता में व्यावसायिक दक्षता, निपुणता तथा सामाजिक-दर्शन का विकास किया जाता है क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा के साथ-साथ निपुणताओं का होना अति आवश्यक होता है। कान्फ्रेन्स में कार्यकर्ता अपनी कमजोरियों तथा क्षमताओं को जानना है तथा उन तरीकों का ज्ञान प्राप्त करता है जिसके द्वारा वह अपनी कमजोरियों को दूर कर सकता है। वह अपने में व्यावहारिक गुणों का विकास करता है तथा समस्या की गहराई में पहुँचने के रास्ते का ज्ञान प्राप्त करना है।

विद्यार्थियों के लिए अधीक्षण का अर्थ :

विद्यार्थियों को सामूहिक कार्य के विषय में कोई अधिक ज्ञान नहीं होता है। अतः वे पहले प्रारम्भिक ज्ञान एवं निपुणताओं का विकास करना सीखता है। वे व्यावसायिक उत्तरदायित्व का अर्थ समझते हैं तथा समूह में सामंजस्य स्थापित करने की कला का विकास करते हैं। वे आत्मा का चेतन रूप से प्रयोग करना सीखते हैं। ऐच्छिक तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ता भी कान्फ्रेन्स की सहायता से उस क्षेत्र की निपुणताओं का निरन्तर विकास करते हैं जिसमें वे कार्य करते हैं।

वैयक्तिक अधीक्षकीय परामर्श :

कार्यकर्ता तथा अधीक्षक दोनों कान्फ्रेन्सों में समान रुचि से भाग लेते हैं। कार्यकर्ता द्वारा तैयार किये गये अभिलेखों के आधार पर अधीक्षक निश्चित करता है कि किन-किन स्थानों पर वार्तालाप तथा विचार-विमर्श की आवश्यकता है। कान्फ्रेन्स की विषय-वस्तु प्रायः कार्यकर्ता द्वारा अभिलिखित स्थिति मे व्यवहार के रूप में निर्धारित होती है, अर्थात् कार्यकर्ता किस प्रकार अपने व्यवहार का प्रदर्शन समूह में करता है, इस पर कान्फ्रेन्स आधारित होती है। कान्फ्रेन्स में समूह-सदस्यों के व्यवहार को स्पष्ट किया जाता है, उसका अर्थ समझाया जाता है और टीका-टिप्पणी की जाती है तथा समूह को सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। उन कारकों का भी अध्ययन किया जाता है जो किसी न किसी रूप में समूह तथा सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित करते हैं।

अधीक्षक पहले कार्यकर्ता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है और यह निष्कर्ष निकालता है कि उसे व्यक्ति व समूह की सहायता के लिए किस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है। वह उसे यह ज्ञान प्राप्त कराता है। अधीक्षक का यह कार्य होता है कि सम्मेलन में वार्तालाप को सदैव उद्देश्यपूर्ण एवं व्यावसायिक रखें तथा उसमें एक तारतम्य हो। वार्तालाप यदि मुख्य विषय से विचलित हो

तब वह कार्यकर्ता की भूमिका का ध्यान रखकर बातचीत को वास्तविक मोड़ देकर ठीक मार्ग पर ले आये।

यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि अधीक्षकीय सम्बन्ध वैसे तो पारस्परिक एवं समानता का होता है परन्तु यहाँ पर अधीक्षक प्रशिक्षक की भूमिका अदा करता है। अतः वह कार्यकर्ता के कार्यों का मूल्यांकन कान्फ्रेन्स में करता रहता है।

वैयक्तिक कान्फ्रेन्स में अधीक्षक तथा कार्यकर्ता का एक साथ बैठकर अधीक्षक अपना ध्यान उन समूह पर आकर्षित करता है जिसमें कार्यकर्ता कार्य करता है। अधीक्षक कार्यकर्ता की समूह-सदस्यों को जानने में सहायता करता है। वह यह भी जानने का प्रयत्न करता है कि समूह का संगठन कैसा है, आवश्यकताएँ क्या हैं, समूह का कार्यक्रम एवं विषय-वस्तु क्या है तथा किस प्रकार के कार्यक्रम की आवश्यकता है। वह समुदाय की उन समस्याओं पर ध्यान देता है कि जिनको समूह व्यक्त करता है। वह समूह के बनाव को समझता है और सदस्यों के तनाव के कारणों पर प्रकाश डालता है। वह कार्यकर्ता की सहायता करता है जिससे वह इन स्थितियों का सामना कर सके तथा समस्याओं का समाधान कर सके। अधीक्षक कार्यकर्ता में दूर दृष्टि का विकास करता है। अधीक्षक देखता है कि कार्यकर्ता किस प्रकार कार्य करता है, क्या करता है, समूह-परिस्थिति का उसे कहाँ तक ज्ञान है तथा मानव व्यवहार को समझने की उसमें कितनी शक्ति है। अधीक्षक कार्यकर्ता को सभी तत्त्वों एवं कारकों को समझाने तथा आवश्यक ज्ञान-वृद्धि में सहायता करता है। वह कार्यकर्ता को उन स्थानों पर विशेष रूप से सोचने के लिए प्रोत्साहित करता है जिनको कार्यकर्ता छोड़ देता है।

कान्फ्रेन्स में कार्यकर्ता योजना का निर्माण करता है तथा क्षेत्र में जाने पर कार्य-चयन का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है। अधीक्षक यद्यपि इन कार्यों के विषय में कार्यकर्ता की सहायता करता है परन्तु वह न तो विश्लेषण करता है और न उसके लिए योजना बनाता है। कार्यकर्ता जब अपनी योजना प्रस्तुत करता है तो अधीक्षक सफलता तथा असफलता के कारकों को स्पष्ट करता है। वह उन पर वार्तालाप करता है।

कान्फ्रेन्स में वार्तालाप का आधार क्रियात्मक अभिलेख होते हैं जिनको कार्यकर्ता तैयार करता है। इसमें वह समूह की अन्तःक्रिया-प्रक्रिया का वर्णन करता है। वह अपनी भूमिका तथा क्रियाओं का भी उल्लेख करता है। अधीक्षक के साथ वार्तालाप में कार्यकर्ता समझता है कि उसने कौन-सा महत्त्वपूर्ण तथ्य छोड़ दिया है। वह समझता है कि यदि उस स्थिति को ठीक प्रकार से देखकर लिया

गया होता तो वह सफलतापूर्वक कार्य कर सकता था और संघर्ष की स्थिति समूह में उत्पन्न नहीं होती अभिलेख में यदि पूर्ण विवरण नहीं होता है तो कठिनाई होती है। अधीक्षक सिखाता है कि समूह के साथ कार्यकर्ता को क्या कार्य करना है और किस प्रकार करना है। कार्यकर्ता अभ्यास द्वारा सीखता है। कार्यकर्ता में इन निपुणताओं का विकास स्वतः होता रहता है और उसके स्वभाव का अंश बनता रहता है। कार्यकर्ता कुछ समय पश्चात् इतना योग्य हो जाता है कि वह स्वयं समूह की कठिनाइयों को समझ लेता है तथा वास्तविक निदान की स्पष्ट उपचारात्मक प्रक्रिया का विकास करता है जिससे समूह तथा व्यक्ति उन्नति एवं विकास का अनुभव करते हैं। अभिलेख चूँकि कान्फ्रेन्स के आधार होते हैं अतः कार्यकर्ता अपना उत्तरदायित्व समूह में होने वाली समस्त घटनाओं को अभिलिखित करना आवश्यक समझता है। वह समूह में होने वाली प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना का विवरण रखता है।

सामाजिक सामूहिक कार्य की निपुणताओं को सीखने को प्रक्रिया बहुत धीमी होती है, क्योंकि इन निपुणताओं को केवल क्रियाओं द्वारा तथा ज्ञान व सूझ का प्रयोग करके प्राप्त कर सकते हैं। एक व्यक्ति ज्ञान प्राप्त कर सकता है, मानव-व्यवहार को समझ सकता है परन्तु आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्तियों तथा समूहों की सहायता करने में भी समर्थ हो। जब कार्यकर्ता स्वयं अपने विषय में ज्ञान रखता है तभी वह सामाजिक कार्यकर्ता की भूमिका निभा सकता है। यह ज्ञान उसे साप्ताहिक कान्फ्रेन्स के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है जिसमें अधीक्षक अपने ज्ञान एवं अनुभव के आधार उसको निर्देशित करता है तथा स्वयं को समझने में उसकी सहायता करता है।

अधीक्षक समूह का मूल्यांकन करने में कार्यकर्ता की सहायता करता है। वह प्रेरणा देता है जिससे कार्यकर्ता सामूहिक स्थितियों का विश्लेषण करता है तथा उन सदस्यों के व्यवहार को समझना है जिनके साथ वह कार्य करता है। अधीक्षक कार्यकर्ता तथा अभिकरण के कार्यक्रमों के बीच की कड़ी होता है। वह कार्यकर्ता को एजेन्सी की सुविधाओं तथा साधनों को समझता है। समूह यदि कोई ऐसा कार्यक्रम रखना चाहता है जिससे वह अनभिज्ञ हैं तो अधीक्षक उसके विषय में कार्यकर्ता को ज्ञान प्रदान करता है। वह कार्यकर्ता को वस्तुओं तथा साधनों के विषय में बताता है तथा उस माध्यम को समझता है जिससे कार्यक्रम सम्भव हो सकता है। वह समुदाय के साधनों के उपयोग के विषय में भी सलाह देता है।

अधीक्षक कान्फ्रेन्स के प्रोसेस रिकार्ड रखता है। वह इन अभिलेखों पर

मूल्यांकन के लिए पूर्ण रूप से निर्भर होता है। वह इन अभिलेखों द्वारा ही अधीक्षण करने में सफल होता है। वह उनके द्वारा अपनी शक्तियों एवं कमियों को जान लेता है और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है।

सामूहिक अधीक्षकीय परामर्श :

अधीक्षक व्यक्तियों की समूह में सहायता करने में निपुण एवं दक्ष होता है। उसमें सामूहिक कान्फ्रेन्स को वैयक्तिक कान्फ्रेन्स में बदलने की सबसे अधिक कुशलता होती है। इससे एक तरफ तो समय की बचत होती है और दूसरी तरफ समूह को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सिखाया जा सकता है। सीखने की प्रक्रिया समूह में तेज होती हैं। क्योंकि समूह में प्रतिस्पर्धा होती है। परन्तु इस प्रकार की कान्फ्रेन्स सदैव नहीं होती अपितु जब अधीक्षक इसकी आवश्यकता महसूस करता है तभी होती हैं। प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं को सामूहिक कान्फ्रेन्स लाभदायी नहीं होती है क्योंकि समूह में दूसरे का सहारा लेता तथा बहाना बनाता है। इसलिये नये कार्यकर्ताओं के साथ वैयक्तिक कान्फ्रेन्स होती है क्योंकि वे सामूहिक प्रयास में विश्वास कम रखते हैं अधीक्षक तभी सामूहिक कान्फ्रेन्स बुलाता है जब वह जानता है कि कार्यकर्ता सामूहिक प्रयत्नों से लाभ उठा सकेंगे। सामूहिक कान्फ्रेन्स की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है :—

1. समूह की सहायता तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए।
2. समान आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त के लिए।
3. समूह के विशेष सहायता प्राप्त करने के लिए।
4. कार्यकर्ता का समूह में व्यवहार देखने के लिए।
5. समूह की सलाह लेने के लिए।
6. कार्यकर्ता की निपुणताओं का ढंग तुलनात्मक मूल्यांकन करने के लिए।

जब भी अधीक्षक इस प्रकार की कान्फ्रेन्स करता है तो उसकी संरचना तथा कार्य परिचित उद्देश्य की ओर होते हैं। वह वार्तालाप के माध्यम से समस्या पर प्रकाश डालता है। प्रारम्भ में वार्तालाप का विषय अधीक्षक चुनता है। कार्यकर्ता सलाह देते हैं और तर्क-वितर्क करते हैं। वे कुछ समय बाद स्वयं नेतृत्व ग्रहण करते हैं।

कभी-कभी कार्यकर्ता अधिक लगाव या घनिष्ठता के कारण अकेले में अपनी कठिनाइयाँ नहीं बताना चाहता है। अतः सामूहिक कान्फ्रेन्स उसके लिए आवश्यक होती है। सामूहिक कान्फ्रेन्स पढ़ाने के उद्देश्य से भी संगठित की जाती है। सामूहिक कान्फ्रेन्स का अपना विशेष महत्त्व है क्योंकि यह कार्यकर्ता को एक दूसरे के साथ अपनी समस्याओं को समझने का अवसर देती है।

कान्फ्रेन्स में अधीक्षक वार्तालाप का विषय सरल तथा स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत करता है। वह इस प्रकार के प्रश्न प्रारम्भ करता है जिससे वार्तालाप का दौर प्रारम्भ होता है। अधीक्षक वार्तालाप में उस समय भाग लेता है जब देखता है कि कोई रुकावट हो रही है। वह गलत धारणाओं को स्पष्ट कराता है। वह कुछ प्रश्नों को वार्तालाप की दिशा बदलने के लिए जोड़ता है। वह ध्यान रखता है कि वार्तालाप में कौन सदस्य किस प्रकार और कितना भाग ले रहा है। वह उस कार्यकर्ता को प्रेरणा देता है जो भाग लेने में कठिनाई महसूस करता है और उस कार्यकर्ता को हतोत्साहित करता है जो अधिक भाग लेकर दूसरों को अवसर नहीं देना चाहता। वह संक्षिप्त विवरण तैयार करता है जिससे उसे निर्देशन में सहायता मिलती है। अन्त में वह पूरे वार्तालाप का सारांश तैयार करके आगे वार्तालाप का विषय निश्चित करता है।

●

अध्याय 20

सामाजिक सामूहिक कार्य-संस्था

सामाजिक सामूहिक कार्य के तीन मुख्य अंग हैं—(1) कार्यकर्ता, (2) समूह एवं (3) सामाजिक संस्था। इन तीनों अंगों का मुख्य उद्देश्य लगभग समान है क्योंकि वे एक-दूसरे पर आश्रित हैं। सामाजिक संस्था द्वारा ही कार्यकर्ता समूह को सेवा प्रदान करता है। अतः उसके उद्देश्य एवं समूह के उद्देश्य संस्था की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। कार्यकर्ता को जिस सीमा तक संस्था के विषय में ज्ञान होता है वह अपनी सेवाओं को समूह के साथ उसी सीमा तक सम्पन्न करता है एवं सामूहिक विकास में उतनी ही अधिक कुशलता से सहायता करता है। समाज-कार्य दर्शन संस्था, कार्यकर्ता और समूह को प्रभावित करता है। चूँकि कार्यकर्ता संस्था का कर्मचारी होता है अतः वह सामाजिक सामूहिक कार्य की निपुणताओं का उपयोग संस्था के प्रतिनिधि के रूप में करता है। समुदाय में उसकी सेवाओं को आवश्यक माना जाता है तथा संस्था उन सेवाओं को प्रदान करने का साधन मानी जाती है।

व्यक्तियों के लिए सामाजिक संस्थाएं एक यन्त्र का कार्य करती हैं। इनके द्वारा वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं तथा विकास की ओर बढ़ते हैं। ये संस्थाएँ व्यक्तियों व समूहों की कुछ सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित की जाती हैं तथा उनका प्रतिनिधित्व करती हैं। ये आवश्यकताएं सामाजिक दशाओं के परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। साधारणतया सामाजिक संस्था एक अलाभकर संस्था होती है जो लोगों की सेवा के लिए उनकी सहायता एवं मान्यता से कार्य करती है। इसका उद्देश्य कुछ मुख्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। संस्था की आवश्यकता समाज के अधिकांश व्यक्ति महसूस करते हैं। यह संस्था समाज-कार्य व्यवसाय की निपुणताओं का उपयोग करती है जो आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है।

सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास सामाजिक संस्थाओं द्वारा ही हुआ है अतः सामाजिक सामूहिक कार्य सामाजिक कल्याणकारी संस्थाओं में उपयोग में लाया जाता है। इन संस्थाओं के स्वरूप अलग-अलग हो सकते हैं, परन्तु उद्देश्य लगभग समान होते हैं; उदाहरण के लिए, चरित्र-निर्माण कार्य, सामूहिक कार्य, खाली समय का कार्य, मनोरंजनात्मक तथा शिक्षणात्मक कार्य एवं युवकों

सम्बन्धी सेवाएँ। इन क्षेत्रों से संबंधित संस्थाएँ सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग करती हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त अब नयी-नयी संस्थाएँ सामाजिक सामूहिक कार्य का उपयोग अपने व्यवहार में करने लगी हैं, जिनमें चिकित्सालय, दवाखाना, बालरक्षा संस्था, राज्य सुरक्षा-गृह, सुधारात्मक भवन विकास योजना, मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम, पारिवारिक जीवन-शिक्षा संस्थाएँ कुछ प्रमुख हैं। सामाजिक व्यवस्थापन-गृह, सामुदायिक केन्द्र, बालक-बालिकाओं के क्लब, ब्वाय स्काउट्स, गर्ल स्काउट्स, वाई० एम० सी० ए० तथा वाई० डब्लू० सी० ए० आदि ऐसी संस्थाएँ हैं जो सामाजिक सामूहिक कार्य प्रक्रिया का उपयोग करती हैं। श्रम कल्याण केन्द्र, बाल संस्थाएँ, विद्यालय इत्यादि भी सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग करने लगे हैं। समाज कार्य-प्रणालियों के विकास के लिए यह सत्य है कि पहले सेवाओं की आवश्यकता महसूस हुई, उसके पश्चात् इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संस्थाओं का निर्माण हुआ। जब वे कार्य करने लगीं तो इनकी कार्य-पद्धति का अध्ययन किया गया तथा जो पद्धति उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनुकूल एवं वांछनीय हुई उसके उपयोग पर बल दिया गया। सामूहिक कार्य-पद्धति सबसे अधिक अनुकूल सिद्ध हुई। इस प्रकार सामाजिक सामूहिक कार्य का विकास हुआ। सामाजिक सामूहिक कार्य की उत्पत्ति चूँकि ऐच्छिक सामाजिक संस्थाओं से हुई है अतः लोग सोचते हैं कि इसकी उपयोगिता केवल संस्थाओं तक ही सीमित है। इसकी उत्पत्तिवाली संस्थाएँ प्रारम्भ में बच्चों तथा किशोरों के विकास के लिए प्रयत्नशील थीं अतः यह भी समझा जाता है कि सामाजिक सामूहिक कार्य बच्चों तथा किशोरों के लिए ही उपयुक्त है, युवकों के लिए नहीं। इसके अतिरिक्त चूँकि सामाजिक संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन प्रदान करना है अतः कुछ लोग सामूहिक कार्य को मनोरंजन का साधन समझते हैं। वास्तव में सामाजिक सामूहिक कार्य एक मूल्यवान तरीका है जो ऐच्छिक तथा अनैच्छिक संस्थाओं के लिए, सभी आयु के सदस्यों के समूहों के लिए तथा न केवल मनोरंजन के लिए वरन् सभी कार्यों के लिए उपयुक्त है।

सामूहिक कार्य-प्रणाली :

सामूहिक कार्य-प्रणाली व्यक्तियों तथा समूहों के साथ कार्य करने का एक तरीका है। इसको समूहों तथा व्यक्तियों के सम्बन्धों के साथ कार्य करने की एक प्रणाली के रूप में वर्णित किया जा सकता है। यह मौलिक रूप से सामूहिक प्रक्रिया के सिद्धान्तों पर आधारित है, अर्थात् इसका आधार व्यक्तियों की अन्तःक्रिया है जो सामूहिक स्थिति में उत्पन्न होती है। सामूहिक कार्यकर्ता वास्तव में सामूहिक अन्तःक्रिया से सम्बन्धित होता है तथा इसके अतिरिक्त उस

प्रभाव से भी जो सदस्यों व समूहों पर पड़ता है। वह न केवल उन सम्बन्धों को देखता है वरन् उनको निर्देशित करने का भी प्रयत्न करता है। वह समूह के सदस्यों की अन्तःक्रिया का निर्देशन चेतन रूप से करता है जो सामूहिक प्रक्रिया को सामूहिक कार्य-प्रक्रिया में बदलती है। सामूहिक कार्य-प्रक्रिया के लिए तीन बातें आवश्यक हैं :—

(1) व्यक्तियों का समूह मित्रता के बन्धन से बँधा होता है, वे नियमित रूप से एक समय में एक साथ मिलते हैं तथा घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं जिससे प्रत्येक समूह का सदस्य एक-दूसरे को प्रभावित करता एवं प्रभावित होता है। इस प्रकार का समूह तुलनात्मक रूप से छोटा होता है।

(2) ऐसा कार्यकर्ता, जो समूह का सदस्य नहीं है परन्तु इसकी क्रियाओं में भाग लेता है तथा निकट का सम्बन्ध रखता है, अपने प्रभाव समूह पर डालने में दक्ष एवं निपुण होता है।

(3) कार्यकर्ता का अन्तःक्रिया पर प्रभाव तथा निर्देशन प्रजातांत्रिक लक्ष्यों पर आधारित होता है।

सामाजिक क्लब, कक्षाएँ, वर्कशाप, वार्तालाप-समूह, बोर्ड तथा समितियाँ ऐसे संगठन हैं, जहाँ पर सामूहिक कार्य-प्रक्रिया का उपयोग मुख्य रूप से होता है। क्लब, मीटिंग, वार्तालाप, खेलकूद, ड्रामा, संगीत, नृत्य आदि इसके साधन हैं।

संस्था के कार्य की विशेषता कार्यकर्ता के मानव-व्यवहार के ज्ञान तथा समूह-सदस्यों की अन्तःक्रिया को प्रभावित करनेवाली शक्ति पर निर्भर करता है। उसकी निपुणता भी महत्त्वपूर्ण होती है। वह जिस प्रकार से सदस्यों को स्वतन्त्र रूप से सामूहिक क्रिया में भाग लेने का अवसर देता है, सामूहिक प्रक्रिया का निर्देशन करता है एवं उन पर अपने अधिकार का उपयोग करता है, इत्यादि बातों पर संस्था के कार्य तथा गुण निर्भर होते हैं। कार्यकर्ता समुदाय के मूल्यों के अनुसार समूह-कार्य के स्तर को निर्धारित करता है। यदि मूल्य-स्तर निम्न होते हैं तो वह भागीकरण के निपुण निर्देशन द्वारा सामूहिक चेतना का विकास करता है तथा निम्न स्तर के मूल्यों के स्थान पर उच्च मूल्यों का धीरे-धीरे स्थापन करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण समुदाय लाभान्वित होता रहता है। वह इन क्रियाओं को समूह-चयन के माध्यम से करता है। वह सुझावों तथा निर्देशनों द्वारा रुचिकर क्रियाओं से संमुदाय को अनुभव कराता है जिससे नये मूल्य विकसित होते हैं।

सामाजिक संस्थाओं के प्रकार :

सामाजिक संस्थाओं को चार प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

(1) वे संस्थाएँ जिनका उद्देश्य सेवार्थियों को व्यक्तिगत तरीके से अथवा समूहों द्वारा सेवा प्रदान करना होता है। इस प्रकार के अन्तर्गत समाज कल्याण विभाग, परिवार एवं बाल कल्याण, दत्तक संस्थाएँ, वाई० डब्ल्यू० सी० ए०, वाई० एम० सी० ए०, स्काउट्स तथा बाल स्काउट्स आते हैं।

(2) वे संस्थाएँ जो सामाजिक सामूहिक कार्य-सेवाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की सेवाएँ भी प्रदान करते हैं, इनमें रेडक्रास सोसाइटी, व्यवस्था गृह, उत्तर-रक्षाकेन्द्र, मनोरंजन गृह तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाएँ आती हैं।

(3) इसके अन्तर्गत वे संस्थाएँ आती हैं जो उपचारात्मक कार्य करती हैं, जैसे अस्पताल, क्लिनिक, स्कूल, न्यायालय, बाल न्यायालय, प्रोबेशन ऐण्ड पैरोल आफिस, व्यावसायिक पुनर्वास सेवाएँ इत्यादि।

(4) इस प्रकार के अन्तर्गत उन संस्थाओं का वर्णन किया जा सकता है जो प्रत्यक्ष रूप से लोगों को सेवाएँ नहीं प्रदान करतीं परन्तु अन्य सामाजिक संस्थाओं की सहायता करती हैं, जैसे सामुदायिक कल्याण परिषद्, समाज कल्याण, सामुदायिक चेस्ट इत्यादि।

सामाजिक संस्थाओं के प्रकार के आधार पर उनके अलग-अलग कार्य एवं उद्देश्य होते हैं। कुछ संस्थाएँ कुछ विशेष आयुवाले सेवार्थियों को सेवा प्रदान करती हैं, जैसे बच्चों को संस्थाएँ तथा कुछ लिंग के आधार पर सेवा करती हैं। जो संस्थाएँ खाली समय की सेवाएँ प्रदान करती हैं उनकी क्रियाएँ लगभग समान होती हैं परन्तु उन क्रियाओं का प्रयोग एक जैसे तरीके से नहीं करतीं। कुछ संस्थाएँ एक विशेष क्रिया पर जोर देती हैं। उनका उद्देश्य क्रियाओं का इस प्रकार से संगठन करना होता है जिससे भाग लेने वालों को आनन्द (Fun) मिल सके तथा हतोत्साह, तनाव और मनोवैज्ञानिक असन्तोष को दूर किया जा सके एवं शारीरिक विकास सम्भव हो। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि इनमें भाग लेनेवाले सामाजिक मनोवृत्ति का विकास करते हैं तथा सामूहिकता व सहकारिता की शक्ति एवं भावना का विकास होता है।

कुछ संस्थाएँ आत्म-निर्भरता, नागरिकता, सहकारिता आदि गुणों पर विशेष बल देती हैं। बालक-बालिकाओं में इन गुणों के विकास के लिए अनेक कार्यक्रमों का नियोजन करती है। वे उनके उद्देश्यों के पीछे यह सिद्धान्त होता है कि ये गुण व्यक्ति के लिए आवश्यक होते हैं तथा उनका विकास संस्था के कार्य-

क्रमों में भाग लेकर होता है। बच्चों को सामूहिक क्रियाओं के संचालन तथा नियोजन में साथ-साथ अवसर प्रदान किया जाता है। उनका निर्देशन व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए किया जाता है। सामूहिक कार्य इन संस्थाओं में सामूहिक नियोजन तथा क्रियाओं के संचालन में सहयोग पर अधिक महत्त्व देता है। सामूहिक क्रिया पर ध्यान रखा जाता है। अन्य प्रकार की संस्थाएँ सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित होती हैं। वे अपने सदस्यों को सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। ये संस्थाएँ अधिकतर युवकों से सम्बन्धित होती हैं।

सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली को उपयोग में लाने के लिए संस्था को यह देखना होता है कि वह किस प्रकार के कार्य को करने जा रही है तथा यह विश्वास करती है कि सामाजिक सामूहिक कार्य-पद्धति उन कार्यों को पूरा करने में सहायक सिद्ध होती है। वे संस्थाएँ, जो प्रजातांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखती हैं, सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग अपनी कार्य-पद्धति में कर सकती हैं।

अधिनायकतंत्रवादी संस्थाएँ, चाहे वे ऐच्छिक हों या सरकारी, कभी भी सामाजिक सामूहिक कार्य-प्रणाली का उपयोग करने में समर्थ नहीं हो सकतीं, क्योंकि उनमें कार्य करने के समान अवसरों तथा व्यक्तिगत व सामूहिक स्वतंत्रता का अभाव होता है। सामाजिक सामूहिक कार्य-संस्थाओं की कुछ मुख्य विशेषताएँ होती हैं जिनका वर्णन हम यहाँ कर रहे हैं।

सामाजिक सामूहिक कार्य-संस्था की मुख्य विशेषताएँ :

यद्यपि यह सही है कि सामाजिक सामूहिक कार्य-संस्थाएँ अलग-अलग उद्देश्यों के लिए संगठित की जाती हैं अतः उनकी विशेषताएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं, परन्तु सभी संस्थाओं में कुछ समानताएँ भी होती हैं जो निम्न हैं :—

(1) सामाजिक संस्थाओं का उद्देश्य समाज के निर्माण में व्यक्तियों तथा सामाजिक विकास को साधन के रूप में प्रयुक्त करना होता है जिससे प्रजातांत्रिक समाज का निर्माण सम्भव हो सके। यद्यपि इन संस्थाओं की मनोवृत्ति व्यक्तियों की विकासात्मक सहायता में भिन्न-भिन्न हो सकती है, जैसे कुछ संस्थाएँ नागरिक भागीकरण पर बल देती हैं तथा कुछ समाजीकरण व सहकारिता पर, कुछ संस्थाओं का स्वरूप धार्मिक होता है तथा कुछ का विकासात्मक, 'परन्तु इन सभी संस्थाओं का केन्द्र-बिन्दु सामुदायिक जीवन के लिए व्यक्ति और उसका विकास होता है।

(2) सामाजिक संस्थाएँ उन व्यक्तियों के साथ कार्य करती हैं जो स्वतः अपनी

आवश्यकताओं एवं इच्छा के कारण ऐच्छिक रूप से भाग लेते हैं। उनका संस्था से सम्बन्ध स्थापित करने का उद्देश्य उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होता है। परन्तु यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि सामाजिक सामूहिक कार्य-संस्थाएँ किसी व्यक्ति को अपने कार्यक्रम में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं करतीं। उनको केवल उद्देश्यों, कार्यक्रमों तथा लाभों से अवगत करा देती हैं। व्यक्ति यदि उचित समझता है और उसके अहम् की सन्तुष्टि होती है तो वह भाग लेता है अन्यथा नहीं। भाग लेने की दर तथा स्थिति में अन्तर होता है, कुछ लोग अस्थायी रूप से संस्था के सदस्य बनते हैं तथा कुछ स्थायी रूप से भाग लेते हैं, लेकिन संस्था की सेवा बिना दबाव या बाध्यता के प्रदान की जाती हैं।

(3) सामाजिक संस्थाएँ व्यक्तियों के लिए समूहों द्वारा कार्य करती हैं अर्थात् समूह द्वारा ही व्यक्ति सेवा प्राप्त करते हैं। समूह ही वह साधन है जिसके माध्यम से संस्था अपने कार्यों को व्यक्तियों तक पहुँचाती है। सेवा की मुख्य ईकाई समूह होता है, वह व्यक्तियों के लिए संस्था से सम्पर्क करने का प्राथमिक साधन है। समूहों में भी अन्तर होता है। उनके उद्देश्य, संगठन, तरीके तथा केन्द्र-बिन्दु भिन्न-भिन्न हो सकते हैं परन्तु प्रत्येक संस्था सामूहिक भागीकरण पर विशेष जोर देती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि संस्थाओं का दर्शन व्यक्ति-विकास को सामूहिक अनुभव द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् संस्था का विश्वास है कि व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास सामाजिक एवं सामूहिक अनुभवों पर निर्भर होता है।

(4) सामाजिक संस्थाएँ समूहों के साथ अनौपचारिक तरीके से काम करती हैं। समूह-सदस्यों तथा सामूहिक कार्यकर्ता के मध्य सम्बन्ध धीरे-धीरे स्थापित होते हैं। चूँकि ऐच्छिकता की प्रधानता होती है अतः ये सम्बन्ध उद्देश्यपूर्ण होते हैं और धीरे-धीरे इनमें प्रगाढ़ता आती है तथा उद्देश्य-पूर्ति के लिए आवश्यक कारक बन जाते हैं। आपसी सम्बन्ध के द्वारा ही समूह अपनी क्रियाओं को सदस्यों तक पहुँचाते हैं तथा उन्हें लाभान्वित करते हैं। यह सदस्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि समूह के साथ किस सीमा तक सम्बन्ध स्थापित करे। चूँकि इससे स्वयं उनकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है अतः वे इन सम्बन्धों में घनिष्ठता लाते रहते हैं।

(5) सामाजिक संस्थाएँ समूहों की सेवाएँ समयान्तर पर प्रदान करती हैं अर्थात् ये सेवाएँ खाली समय की सेवाएँ होती हैं। व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन

के कार्यों से निवृत्त होकर इनमें भाग लेता है। सामाजिक सामूहिक कार्य अधिकांशतः उस समय किया जाता है जब व्यक्ति आर्थिक तथा अन्य क्रियाओं से निवृत्त होता है। अतः इस प्रकार की सेवाएँ मनोरंजनात्मक सेवाएँ समझी जाती हैं, यद्यपि इनका अर्थ व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

(6) सामाजिक संस्थाओं में दो प्रकार के अधिकारी होते हैं—एक तो वे जो संस्था के वेतनभोगी होते हैं तथा दूसरे वे जो ऐच्छिक कार्यकर्ता होते हैं। यद्यपि प्रत्येक संस्था कुछ सीमा तक ऐच्छिक प्रयत्नों पर निर्भर होती है परन्तु सामाजिक सामूहिक कार्य की संस्थाएँ मुख्य रूप से ऐच्छिक प्रयत्नों पर बल देती हैं।

(7) इन संस्थाओं में व्यक्तिगत, सहयोगिक तथा संयुक्त प्रयत्न पर बल दिया जाता है।

(8) सामाजिक संस्थाएँ वैसे तो वर्तमान उपयोग के लिए सेवाएँ प्रदान करती तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं लेकिन इनका दीर्घकालीन उद्देश्य भविष्य-निर्माण करना होता है।

जब हम सामाजिक संस्था को सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखते हैं तो उसका पूर्ण स्वरूप देखना अनिवार्य होता है, क्योंकि इसका प्रत्येक भाग एक-दूसरे से संबंधित होता है तथा वे अन्तराश्रित होते हैं। संस्थाओं में ऐसे अनेक व्यक्ति तथा समूह होते हैं जिनका सामान्य उद्देश्य होता है और वे उनको प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक की पृष्ठभूमि तथा योगदान भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्येक सदस्य एक कार्य के लिए उत्तरदायी होता है। उनमें संचार की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है तथा अन्तःक्रिया का संचार होता है। इस निरन्तर संचार तथा अन्तःक्रिया द्वारा सम्पूर्ण की विशेषताएँ उसके योग से भिन्न होती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि समूह की विशेषताएँ अलग-अलग व्यक्तियों की विशेषताओं के योग से भिन्न होती हैं। नई-नई भावनाएँ, धारणाएँ तथा प्रभाव उत्पन्न होते हैं। संस्था के उद्देश्य सामाजिक समूहों के द्वारा पूरे किये जाते हैं, अतः समूह निर्माण में संस्था एक अनिवार्य भूमिका अदा करती है। उसके कार्य संस्था की संरचना व उद्देश्यों पर पूर्णरूपेण निर्भर होते हैं।

संस्था की संरचना :

संरचना को उद्यम के लिए ढाँचे के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह परिभाषा सीमित है क्योंकि संरचना स्वयं सम्बन्धों तथा कार्यों का साधन है, अर्थात् इसके माध्यम से क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं।

अतः संस्था की संरचना एक साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति तथा समूह प्रभावात्मक रूप से एक साथ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किये जाते हैं। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा समूह एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं तथा सम्पूर्ण कार्यात्मक अवयव बनते हैं।

उपयोगी संरचना की विशेषताएँ :

(1) संस्था की संरचना उसकी आवश्यकता से अधिक विस्तृत न हो तथा उसमें जटिलता भी न हो।

(2) संरचना इस प्रकार से की जाये जिससे समय, व्यय, आदि में कमी हो।

(3) संस्था के कार्य का प्रवाह उचित हो, तरीकों में समरूपता हो तथा सेवाओं में नियमन हो।

(4) व्यक्तियों तथा समूहों के उत्तरदायित्व स्पष्ट हों जिससे वे निर्भ्रान्ति रूप से जान सकें कि वे क्या करने के लिए वहाँ पर हैं तथा उनका अपना कार्य दूसरे के कार्यों से किस प्रकार सम्बन्धित है।

(5) जिस क्षेत्र में संस्था कार्य कर रही है उससे संबंधित समूह एवं समुदायों में उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध हो।

(6) कार्य के अनुसार संस्था के विभागों का बँटवारा हो।

(7) संचार क्रिया ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर हो तथा संस्था अन्तःक्रिया को उत्तेजित करे।

(8) संस्था के नीति-निर्धारण में समूह भाग लें।

(9) सदस्यों में सहयोग तथा एकीकरण का विकास अवश्य हो।

(10) संरचना में आवश्यकता पड़ने पर हेर-फेर किया जा सके अर्थात् वह लचीली हो।

(11) संरचना सदस्यों के मनोबल को ऊँचा करे तथा उनको संतोष प्रदान करे।

संस्था के अंग :

संस्था के 4 मुख्य अंग हैं :—(1) बोर्ड समूह, (2) कर्मचारी समूह (3) सेवार्थी समूह और (4) सामुदायिक समूह।

मोटे तौर पर इनका संगठन निम्नांकित है :—

(1) बोर्ड समूह

(i) अधिकारी समिति।

(ii) वित्त समिति।

(iii) कार्यक्रम समिति।

(iv) जनसम्पर्क समिति।

(v) भवन समिति ।

(vi) व्यावसायिक सलाहकार समिति ।

(vii) वैयक्तिक कार्यसमिति ।

(viii) सामूहिक कार्यसमिति ।

(ix) स्वास्थ्य समिति ।

(2) **कर्मचारी समूह**

(i) पूरे समय के व्यावसायिक कर्मचारीगण :—

(क) वैयक्तिक सेवा कार्य से सम्बन्धित कर्मचारी ।

(ख) सामूहिक कार्य से सम्बन्धित कर्मचारी ।

(ii) ऐच्छिक कार्यकर्ता—

(क) सामूहिक कार्य के ऐच्छिक कार्यकर्ता ।

(ख) ऐच्छिक चिकित्सक ।

(iii) लिपिक कर्मचारी ।

(iv) मेण्टिनेन्स कर्मचारी ।

(3) **सेवार्थी समूह**

(i) वैयक्तिक सेवा चाहनेवाले सेवार्थी ।

(ii) सामूहिक कार्य सेवा चाहनेवाले सेवार्थी ।

(4) **सामुदायिक समूह** :—यह वह समूह है जिसके लिए संस्था का संगठन किया जाता है, जैसे अस्पताल में रोगी समूह, जेल में अपराधी समूह इत्यादि ।

संस्था के कार्य :

इससे पहले कि कार्यकर्ता अपने कार्यों को समझे कि वह समूह के साथ क्या करने जा रहा है, उसको यह अवश्य समझना चाहिए कि सम्बन्धित संस्था क्या करने का प्रयत्न कर रही है । समूह, कार्यकर्ता तथा संस्था सम्पूर्ण कार्य के अंग होते हैं । अतः तीनों में अन्तःसम्बन्ध होना आवश्यक होता है । 'कार्य' की शब्दकोषीय परिभाषा 'किसी चीज की वास्तविक तथा उचित क्रिया' के रूप में की जा सकती है । जब संस्थाएं अपना कार्य निर्धारित करती हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि वे अपनी सेवाओं का स्पष्टीकरण कर रही हैं तथा वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं ।

कार्य के निम्नलिखित तत्त्व हैं :—

(1) उद्देश्य, (2) कार्यक्रम, (3) नीति, (4) तरीका, (5) क्षेत्र ।

सामूहिक कार्यकर्ता के लिए संस्था के कार्य वे सकारात्मक क्षेत्र हैं जिनका

उपयोग वह समूहों के साथ अपने कार्य में करता है। इससे उसको कार्य का स्पष्ट ज्ञान होता है तथा अन्य अवयवों और ईकाइयों की जानकारी होती है। समूह सदस्यों तथा कार्यकर्ता में भग्नाशा की स्थिति उत्पन्न होती है। परिणामों का मूल्यांकन ठीक प्रकार से हो पाता है। लेकिन संस्था के कार्य गतिशील अवश्य होने चाहिए; जैसे-जैसे सामाजिक स्थितियों में परिवर्तन हो, उसी प्रकार संस्था के कार्यों में भी परिवर्तन हो। अन्यथा संस्था समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकेगी और फलत: उसकी ख्याति में कमी होगी। ऐच्छिक कार्यकर्ता अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे तथा शनैः-शनैः संस्था का स्वरूप विघटित हो जायेगा। अत: संस्था को समयानुसार परिवर्तन करने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए।

संस्था द्वारा समूह को दी जानेवाली सेवाएँ :

संस्था के अन्तर्गत समूह फलते-फूलते एवं बढ़ते हैं। उन पर संस्था का पूरा प्रभाव रहता है। वह समूहों को इस प्रकार से प्रभावित एवं निर्देशित करती है जिसे वे अपने ऊपर किसी प्रकार का बोझ एवं दबाव नहीं मानते हैं। सस्था समूहों को निम्न सेवाएँ प्रदान करती हैं :—

(1) समूहों को उद्देश्य के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान प्रदान करती है। संस्था का मुख्य कार्य समूहों को इस तथ्य से अवगत कराना होता है कि वे क्यों संगठित किये गये हैं तथा किस दिशा में कार्य के लिए प्रयत्नशील होंगे। स्पष्ट उद्देश्यों का ज्ञान होना न केवल समूहों के लिए लाभप्रद होता है बल्कि इससे संस्था को भी सहायता मिलती है।

(2) संस्था समूहों को सुविधाएँ प्रदान करती है। समूह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति अनेक माध्यमों से करते हैं। ड्रामा, खेलकूद, वार्तालाप, कक्षाएँ, व्यावसायिक प्रशिक्षण इत्यादि अनेक माध्यम होते हैं। कार्य-प्रणाली की उपलब्धि के लिए अनेक यन्त्रों की आवश्यकता होती है। संस्था कार्यक्रम से सम्बन्धित सामग्री का प्रबन्ध करती है जिससे समूहों को सुविधा होती है। इसके अतिरिक्त संस्था कार्यक्रमों का भी निर्धारण करती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि समूह के कार्यक्रम संस्था द्वारा निश्चित किये जाते हैं, बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि संस्था समूहों को इस बात से अवगत कराती है कि कार्यक्रम का स्वरूप किस प्रकार का हो सकता है तथा सेवार्थियों के लिए वह कैसे लाभप्रद होगा। वह उच्च स्तर के कार्यक्रमों के निर्धारण की सलाह देती है जो समूह, समुदाय तथा समाज के लिए मूल्यवान् होते हैं।

(3) संस्था समूह के लिए समुदाय का समर्थन तथा स्वीकृति प्राप्त करती है। समूह की मान्यता के लिए समुदाय की स्वीकृति आवश्यक होती है। जब तक किसी सेवा के लिए समुदाय तैयार नहीं होगा उसका प्रारम्भ ही नहीं किया जा सकता। इसमें अतिरिक्त स्तर को मूल्यवान् बनाने के लिए भी समर्थन आवश्यक होता है।

(4) संस्था उन कार्यकर्ताओं को सेवा प्रदान करती है जो समूहों की सहायता करने के लिए तैयार होते हैं, क्योंकि उनके बिना व्यावसायिक सेवा असम्भव है। सामाजिक सामूहिक कार्यकर्ता संस्था का कर्मचारी होता है। वह व्यावसायिक ज्ञान, निपुणता, सिद्धान्त, प्रविधि आदि का उपयोग समूह के साथ करता है। समूह के लिए कार्यकर्ता का होना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि समूह जिन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है उनको प्राप्त करने में केवल व्यावसायिक कार्यकर्ता ही सहायता कर सकता है।

(5) संस्था समूह को जीवन के मूल्य, विश्वास तथा दर्शन समझाती है जिसका ज्ञान दीर्घ अनुभव के पश्चात् होता है। इसका तात्पर्य यह है कि सामूहिक कार्य को सम्पन्न करने में किन-किन मूल्यों को ध्यान में रखना होगा, उसका दर्शन क्या होगा तथा किन विश्वासों पर कार्य होगा। ये सभी आवश्यक तत्त्व मानवतावादी विचारों पर आधारित होते हैं।

(6) संस्था नियन्त्रित पर्यावरण सम्बन्धी स्थिति प्रदान करती है जिसमें समूहों को कार्य करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

(7) यह वह तरीका प्रदान करती है जिसका पूर्व-परीक्षण हो चुका होता है। इस प्रकार समूह संगठनात्मक गलतियों से बचा रहता है।

संस्था के अधिशासीय कार्य :

(1) संस्था के कार्य की परिभाषा ज्ञान, अनुभव तथा संस्था के महत्त्व को समझने में सहायता प्रदान करती है तथा समूहों के उद्देश्यों से अपने उद्देश्यों की पारस्परिकता बनाये रखती है।

(2) विभिन्न समूहों के कार्यों में सम्बन्ध स्थापित करती है।

(3) दीर्घकालीन तथा वर्तमान उद्देश्यों में सन्तुलन बनाये रखती है।

(4) समूहों की आवश्यक दशाओं को समझने तथा स्थापन में सहायता करती है।

(5) साधनों, सुविधाओं, अधिकारियों, कर्मचारियों तथा कार्यात्मक दशाओं का निर्देशन करती है।

(6) स्रोतों का पता लगाती है।

(7) कार्य करने के तरीके निश्चित करती है।

(8) सहयोगिक, सहसम्बन्धित तथा व्यावहारिक प्रयत्नों को प्रोत्साहन देती है।

(9) उत्तरदायित्व में सम्बन्ध स्थापित करती है।

कर्मचारियों से सम्बन्धित सेवाएँ :

(1) संस्था का कार्य कर्मचारियों से सह-सम्बन्ध उत्पन्न करना होता है।

(2) प्रत्येक संस्था में उच्च-निम्न कर्मचारियों में वर्गीकरण होता है। उसके महत्त्व, स्थान तथा उत्तरदायित्व में अन्तर होता है। अतः सभी कर्मचारियों का समान स्तर नहीं होता। इसलिए उनमें प्रायः मतभेद हो जाता है। संस्था का कार्य है कि वह इन भावनाओं में कमी लाये तथा कार्य को समान महत्त्व दे।

(3) संस्था कर्मचारियों में सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश करती है, क्योंकि अक्सर सामान्य कर्मचारियों तथा विशेषज्ञ कर्मचारियों में असामंजस्य उपस्थित होने का खतरा रहता है।

(4) ऐच्छिक रूप से उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए अपनत्व की भावना उत्पन्न करती है।

(5) अधिकारियों तथा कर्मचारियों में काफी अन्तर होता है। वे एक-दूसरे से बहुत कम परिचित होते हैं। अतः संस्था का उद्देश्य इस अन्तर को कम करना होता है।

(6) संस्था सामूहिक प्रयत्नों पर जोर देती है।

कार्यकर्ता को संस्था के विषय में निम्न जानकारी आवश्यक होती है :—

कार्यकर्ता जिस संस्था में कार्य करता है उसकी स्थिति के विषय में उसे पूर्ण अवगत होना चाहिए। समूह के साथ अपना कार्य प्रारम्भ करने से पहले कार्यकर्ता को संस्था की वे आवश्यक बातें जाननी एवं समझनी चाहिए जो उसके कार्य के लिए आवश्यक हैं। यह संस्था का उत्तरदायित्व है कि प्रशासकीय व्यवस्था एवं अधीक्षण द्वारा कार्यकर्ता को आवश्यक ज्ञान उपलब्ध कराती रहे :

(1) कार्यकर्ता को संस्था के उद्देश्यों एवं कार्यों के विषय में अवगत होना चाहिए। वह संस्था के साथ कार्य करने के लिए अवश्य तत्पर हो, उसकी परिवर्तनशील प्रकृति से अवगत हो तथा अपने को उसी प्रकार परिवर्तित करने के लिए समर्थ हो।

(2) संस्था जिस क्षेत्र में कार्य कर रही है, कार्यकर्ता उससे भली-भाँति अवगत हो। वह क्षेत्र की विशेषताओं का ज्ञान रखता हो। रुचियों, आव-

श्यकताओं, भौगोलिक स्थिति तथा मनोसामाजिक व आर्थिक कारकों का ज्ञान वह अवश्य रखता हो ।

(3) संस्था समूहों की जिस तरीके से सहायता करती है, कार्यकर्ता को उसका ज्ञान होना चाहिए । उसको संस्था में उद्देश्यपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान हो । समूह से जिस प्रकार संस्था सम्पर्क स्थापित करती है, उसका ज्ञान होना चाहिए । संस्था की शर्तों से कार्यकर्ता को अवगत होना चाहिए ।

(4) कार्यकर्ता को आन्तरिक कार्यवाहिक नीतियों से अवगत होना चाहिए । उसको शुल्क, कार्य के घंटे, नियम, भाग लेने की सुविधाएँ तथा अन्य समूहों से सम्बन्ध की दशाएँ, अभिलेखों की प्रकृति, कार्य सम्बन्धी अधिनियम इत्यादि बातें कार्यकर्ता को जानना आवश्यक होती हैं ।

(5) संस्था के अन्य कार्यकर्ताओं से अपने सम्बन्धों को समझने में पूर्ण समर्थ हो । जिस प्रकार के अधीक्षण की आवश्यकता हो उनको वह जानता हो ।

(6) कार्यकर्ता में समूह-सदस्यों की सहायता करने की निपुणता हो जिससे वह समूह के साथ उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो ।

(7) जिस प्रकार तथा जिन दशाओं में समूह का मूल्यांकन होता है उसको वह प्रारम्भ से ही जानता हो तथा संस्था से सम्बन्धित अपने कार्यों का उसे बोध हो ।

●

सन्दर्भ साहित्य

1. अह्मद, मिर्जा रफीउद्दीन—समाज कार्य : दर्शन एवं प्रणालियाँ, ब्रिटिश बुक डिपो, लखनऊ, 1967।

2. अटवाटर, पाइरस—प्राब्लेम्स आव ऐडमिनिस्ट्रेशन इन सोशल वर्क, यूनिवर्सिटी आव मिनसोटा प्रेस, मेनियापोलिस, 1940।

3. अमेरिकन एसोसिएशन आव ग्रुप वर्कर्स—रिपोर्ट आव द कमेटी आन द फंक्शन्स आव द प्रोफेशनल ग्रुप वर्कर्स, न्यूयार्क, 1949।

4. ऐडम, एच० एण्ड जोकर के०—ऐन इन्ट्रोडक्शन टु सोशल रिसर्च, हेनरी हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।

5. आप्टेकर, हरबर्ट—बेसिक कन्सेप्ट्स इन सोशल वर्क, यूनिवर्सिटी आव नार्थ कैरोलिना प्रेस, चैपेलहिल, 1941।

6. आगबर्न ऐण्ड निम्काफ—ए हैन्डबुक आव सोशियोलॉजी, राउटलेज एण्ड केगन पाल लि०, लन्दन 1957।

7. आलपोर्ट, एफ० एच०—सोशल साइकोलॉजी, हृघटन मिफलिन कम्पनी, बोस्टन, 1925।

8. इलसवर्थ, एलन० एस०—ऐट वर्क विद यंग अडल्ट्स, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1950।

9. इलियट, हैरिसन—द प्रोसेस आव ग्रुप थिंकिंग, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1928।

10. एलिजाबेथ, ए० फरगुसन—सोशल वर्क, जे० बी० लिपिनकाट कम्पनी, न्यूयार्क, 1963।

11. इलगर, एम० सी०—सोशल रिसर्च, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क 1939।

12. इण्डियन कान्फरेन्स आव सोशल वर्क—स्पेशल ऐनिवरसरी नवम्बर, दिसम्बर 1957।

13. ईब्लंट—सोशल सर्विस इन इण्डिया, एच० एम० एल० ओ०, लंदन 1946।

14. एटवाटर, पियर्सी—प्राब्लेम्स आव ऐडमिनिस्ट्रेशन इन सोशल वर्क, यूनिवर्सिटी आव मिनीसोटा प्रेस, मेनियापोलिस 1940।

15. एण्डरसन, जे०—सोशल वर्क ऐज ए प्रोफेशन, सोशल वर्क इयर बुक, रसेल सेज फाउन्डेशन, न्यूयार्क 1947।

16. एलसल, ई० ए०—द लीडर्स यूज आव सेल्फ, इन रीडिंग्स इन ग्रुप वर्क, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1952।

17. किडनीह, जान सी०—ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेन्सीज, सोशल वर्क ईयर बुक, एसोसिएशन प्रेस ऑव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क 1955।

18. किडनीह, जान०सी०—मैनेजमेंट ऑव स्टाफ इन सोशल एजेंसीज, 1949।

19. कोरा कासियस—न्यू डाइरेक्शन्स इन सोशल वर्क, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क 1954।

20. क्वायल, ग्रेस एल०—ग्रुप एक्स्पीरियन्स एण्ड डेमोक्रैटिक वैल्यूज, वीमेन्स प्रेस, न्यूयार्क 1946।

21. क्वायल, ग्रेस एल०—सोशल ग्रुप वर्क ईयर बुक, अमेरिकन एसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, 1954।

22. क्वायल, ग्रेस एल०—ग्रुप वर्क विद अमेरिकन यूथ, हारपर, न्यूयार्क 1948।

23. क्वायल, ग्रेस एल०—ग्रुप वर्क ऐज ए मेथड आव रिक्रियेशन, द ग्रुप, अप्रैल 1946।

24. क्वायल, ग्रेस एल०—ग्रुप वर्क एण्ड सोशल चेन्ज, प्रोसीडिंग्स आव द नैशनल कान्फरेन्स आव सोशल वर्क, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो 1935।

25. कोनोप्का, जिसेला—ग्रुप वर्क इन द इन्स्टीट्यूशन, ह्वाइटसाइड, न्यूयार्क 1954।

26. कोनोप्का, जिसेला—सोशल वर्क फिलासफी, द यूनिवर्सिटी आव मिनिसोटा प्रेस, मेनियापोलिस 1958।

27. कार्करिल, इलानार—ए कंसेप्चुअल फ्रेम वर्क फार सोशल केस वर्क, यूनिवर्सिटी आव पिट्सबर्ग, स्कूल आव सोशल वर्क, पिट्सबर्ग 1952।

28. किमर, क्लारा—रिकार्ड कीपिंग इन ग्रुप वर्क, न्यू ट्रेन्ड्स इन ग्रुप वर्क, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1938।

29. कनिंघम—ग्रुप डिसिप्लिन, रीडिंग्स इन ग्रुप वर्क, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1952।

30. केन्डोर, नैथानिल—लर्निंग थ्रू डिसकशन, ह्यूमन रिलेशन फार इनडस्ट्री 1950।

31. क्यूबी, स्यूसान एच०—ग्रुप वर्क विद द एजेड, इन्टरनैशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क 1953।

32. कार्टराइट, डारविन एण्ड एलविन जैन्डर—ग्रुप डाइनैमिक्स, रिसर्च एण्ड थियरी, एवेन्शन रो, पीटरसन 1953।

33. क्रेच एण्ड क्रचफील्ड—थियरी एण्ड प्राब्लेम्स आव सोशल साइकोलॉजी, मैक ग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क 1948।

34. कूले, जी० डी० एच०—सोशल थियरी, फ्रेडरिक ए० स्टोक्स कम्पनी, न्यूयार्क 1920।

35. कूले सी० एच०—सोशल आर्गनाइजेशन, चार्ल्स स्क्रिब्नर्स सन्स, न्यूयार्क 1915।

36. क्लार्क, जान जे०—सोशल वेलफेयर, आईजक पिटमैन, लन्दन 1953।

37. कुर्ट्ज, रसेल—कम्यूनिटी आर्गनाइजेशन, नैशनल एसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क 1948।

38. किसर, क्लारा—दि आब्जेक्टिव्स आव ग्रुप वर्क, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1939।

39. खिन्डुका, एस० के०—सोशल वर्क इन इण्डिया, किताब महल, इलाहाबाद 1965।

40. गैरेट, ए०—इन्टरव्यूइङ्ग, इट्स प्रिन्सिपल्स एण्ड मेथड, फैमिली वेलफेयर एसोसिएशन आव अमेरिका, न्यूयार्क 1942।

41. गोरे, एम० एस०—सोशल वर्क एण्ड सोशल वर्क एज्युकेशन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1965।

42. ग्रीन, ई० बी०—मेजरमेंट आव ह्यूमन विहेवियर, प्रोडेसी प्रेस, न्यूयार्क 1952 ।

43. चार्ल्सवर्थ, जेम्स सी०—गवर्नमेन्टल ऐडमिनिस्ट्रेशन, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क 1951 ।

44. चेपनेई, एलाइस सी०—नेचर एण्ड स्कोप ऑव सोशल वर्क, अमेरिकन एसोसिएशन ऑव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क 1926 ।

45. जानसन, एरलिन—दि ऐडमिनिस्ट्रेशन प्रोसेस इन सोशल वर्क, 1946 ।

46. जानसन, एरलिन—सोशल वर्क ऐज ए प्रोफेशन, न्यूयार्क 1943 ।

47. जैनकिन्स, डेविड एण्ड रोनाल्ड लिपिट—इण्टर परसॉनेल परसेप्शन्स, आव टीचर्स, स्टूडेन्ट्स एण्ड पेरेन्ट्स, नैशनल एज्युकेशन एसोसिएशन, वाशिंगटन 1949 ।

48. ट्रेकर, एच० बी—सोशल ग्रुप वर्क, प्रिन्सिपल्स एण्ड प्रैक्टिसेज, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1955 ।

49. ट्रेकर, एच०बी०—ग्रुप प्रोसेस इन ऐडमिनिस्ट्रेशन, द वीमंस प्रेस, न्यूयार्क

50. टांड, आर्डवे—डेमोक्रैटिक ऐडमिनिस्ट्रेशन, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1945 ।

51. ड्यूविन, राबर्ट—ह्यूमन रिलेशन इन ऐडमिनिस्ट्रेशन, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क 1951 ।

52. ड्यूवी, जान—डेमोक्रैसी एण्ड एज्युकेशन, मैकमिलन कं०, न्यूयार्क 1921 ।

53. डनहम, आर्थर—ऐडमिनिस्ट्रेशन आव सोशल एजेन्सीज, सोशल वर्क ईयर बुक, न्यूयार्क 1947 ।

54. डिमांक, हैडली एस० एण्ड हरसिंघ, बी० ट्रेकर—सुपरविजन आव ग्रुप वर्क एण्ड रिक्रियेशन, एसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क 1952 ।

55. डेवी, जान—लाजिक, द थियरी ऑव इन्क्वायरी, हेनरी हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क 1938 ।

56. डेचवाइनेट, कार्ल—दि आर्ट आव हेल्पिंग प्यूपिल आउट आव ट्रबुल, हप्पटन मिफलिन कं०, बोस्टन, 1942 ।

57. डिक्सन, एलिजाबेथ एण्ड ब्राउनिंग, ग्रेस—सोशल केस वर्क, यूनिवर्सिटी आव शिकागो प्रेस, शिकागो, 1938 ।

58. डोनाल्ड, एस०—सोशल वर्क एण्ड सोशल रिफार्म : न्यू डाइरेक्शन्स इन सोशल वर्क, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, 1954।

59. डिमांक, हैडले ए० ऐन्ड हारलिंग, बी० ट्रेकर—फारमुलेशन आब्जेक्टिव्ज इन ग्रुप वर्क इन रिक्रिएशन, 1949।

60. थेलेन, हरबर्ट ए०—डाइनैमिक्स आव ग्रुप ऐट वर्क, यूनिवर्सिटी आव शिकागो प्रेस, शिकागो, 1954।

61. न्यूजलेटर, डब्ल्यू० आई०—ह्वाट इज सोशल ग्रुप वर्क ? इन प्रोसिडिंग्स आव नैशनल कान्फरेन्स आव सोशल वर्क, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो, 1935।

62. पर्लमैन, एच० एच०—सोशल केस वर्क, यूनिवर्सिटी आव शिकागो प्रेस, शिकागो, 1957।

63. पार्क, आर० ई० एण्ड वर्गेस, ई० डब्ल्यू०—इन्ट्रोडक्शन टु द साइन्स आव सोशियोलॉजी, यूनिवर्सिटी आव शिकागो प्रेस, शिकागो, 1921।

64. फ्रायड, सिगमन्ड—ग्रुप साइकोलॉजी एण्ड दि एनैलिसिस आव दि इगो, लिवराइट, न्यूयार्क, 1949।

65. फिन्क, ए० ई०, विलसन, ई० ई०, कोनोनर, एम० बी०—द फील्ड आव सोशल वर्क, रेनहाट कम्पनी, न्यूयार्क, 1955।

66. फिलिप्स, हेलेन—एसेंशल्स आव ग्रुप वर्क स्किल, ऐसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1957।

67. फिलिप्स, क्लीन एण्ड मैरियम, इडा० सी०—द कन्ट्रिब्यूशन आव रिसर्च टु सोशल वर्क, अमेरिकन ऐसोसिएशन आव सोशल वर्कर्स, न्यूयार्क, 1948।

68. फ्रीडलैन्डर, डब्ल्यू० ए०—इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क, 1957।

69. फीडलैन्डर, डब्ल्यू० ए०—इन्ट्रोडक्शन टु सोशल वेलफेयर, प्रेन्टिस हाल आव इण्डिया, न्यू डेलही, 1963।

70. ब्रूनो, फैंक जे०—ट्रेन्ड्स इन सोशल वर्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1957।

71. ब्रूमेन्थल, एल० एच०—ऐडमिनिस्ट्रेशन आव ग्रुप वर्क, ऐसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1948।

88. लोवो, लीस्टर एम०—मेजरिंग ग्रुप कोहेसिवनेस, रिसर्च सेन्टर फार ग्रुप डायनैमिक्स, इंस्टीट्यूट आव सोशल रिसर्च, यूनिवर्सिटी आव मिशिगन 1953 ।

89. लिन्डसे, एनी डब्ल्यू०—ग्रुप वर्क रिकार्डिंग, प्रिन्सिपल्स एण्ड प्रैक्टिसेज, ह्वाइटसाइड, न्यूयार्क, 1952 ।

90. लिन्डमैन, एडवर्ड सी०—ग्रुप वर्क एण्ड एज्युकेशन फार डेमोक्रैसी, प्रोसीडिंग्स आव द नैशनल कान्फरेन्स आव सोशल वर्क, 1939; कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1940 ।

91. लिपिट, रोनल्ड; कुर्ट, ल्यूविन—ऐन एक्सपेरिमेन्टल स्टडी आव दि इफेक्ट आव डेमोक्रेटिक एण्ड एथारिटेरियन ग्रुप ऐटमास्फियर, 1940 ।

92. लेविन, कुर्ट—रिजाल्विंग सोशल कन्फिलक्ट, हारपर एण्ड ब्रदर्स, न्यूयार्क, 1948 ।

93. लेपियर, आर० टी० एण्ड फ्रान्सवर्थ, पी० आर०—सोशल साइकोलॉजी, मैकग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1949 ।

94. लिओनार्ड, डी० ह्वाइट—मीनिंग आव प्रिन्सिपल्स, द फ्रन्टियर्स आव पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो, 1936 ।

95. लाइवरमैन, जोहुआ—न्यू ट्रेन्ड्स इन ग्रुप वर्क, ऐसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1938 ।

96. लिवरमैन, जोशाड—न्यू ट्रेन्ड्स इन ग्रुप वर्क, ऐसोसिएशन प्रेस, न्यूयार्क, 1939 ।

97. वाइन्टन, पी० एल०—साइकोलॉजी आव चाइल्ड डेवलपमेंट, एज्युकेशन पब्लिशर्स, मेनियापोलिस, 1938 ।

98. वरजाइना, पी० राबिन्सन—द मीनिंग आव स्किल, फिलेडेल्फिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1942 ।

99. वार्ड, एल० एफ०—प्योर सोशियोलॉजी, द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1907 ।

100. विटमर, हेलेन लीलैन्ड—सोशल वर्क : ऐन एनैलिसिस आव सोशल इंस्टिट्यूशन, रेनहाट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1950 ।

101. विस्नो, हरबर्ट—द फिलासफी आव सोशल वर्क, पब्लिक अफेयर्स प्रेस, वाशिंगटन, 1952 ।

118. हैमिल्टन, जार्डन—सोशल वर्क ऐज ह्यूमन रिलेशन्स, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1949 ।

119. हिलमैन, आर्थर—कम्यूनिटी आर्गनाइजेशन एण्ड प्लैनिंग, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1950 ।

120. हानकिन्स, एफ० एच०—इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आव सोसाइटी, द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1928 ।

121. हाबहाउस, एल० टी०—सोशल डेवलपमेंट, एलेन एण्ड अनविन, लन्दन, 1924 ।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

समाजशास्त्र और समाजकार्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
समाजकार्य	प्रो. राजाराम शास्त्री	150.00
सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य	डॉ. पी.डी. मिश्र	150.00
औद्योगिक विवाद और उसका सुलझाव	डॉ. बालेश्वर पाण्डेय	115.00
भारत का समाजशास्त्र	प्रो. जयकान्त तिवारी	120.00
आधुनिक समाज वैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय	डॉ. हरीश चन्द्र श्रीवास्तव	90.00
असामान्य व्यवहार	डॉ. डी.पी. मिश्र	235.00
समाजकार्य के क्षेत्र	गिरीश कुमार	210.00
बाल व्यवहार व्यतिक्रम	डॉ. श्याम बिहारी सिंह	50.00
भारत में सामूहिक सौदेबाजी	डॉ. बालेश्वर पाण्डेय	35.00
सामाजिक सामूहिक कार्य	डॉ. पी.डी. मिश्र	100.00
समाज और राजनीति का दार्शनिक अध्ययन	डॉ. ज्ञानञ्जय द्विवेदी	215.00

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - 226001

ISBN : 978-93-82175-56-8 संस्करण : सप्तम् मूल्य : ₹ 100=00